॥ श्रीः ॥

महर्षिकृष्णद्वैपायन (वेदव्यास) प्रणीतम् ।

कल्किपुराणम् ।

मुरादाबादनगरनिवासिपण्डितवरबलदेवप्रसादमिश्रकृत-

भाषाटीकासमेतम् ।

नानाशास्त्रसंकलितटिप्पणीसमेतं च ।

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

मालिक-"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

कल्याण-बम्बई.

संवत् १९९४, शके १८५९.

1937.

श्रीः ।

कल्किपुराण-कल्क्यवतार ।
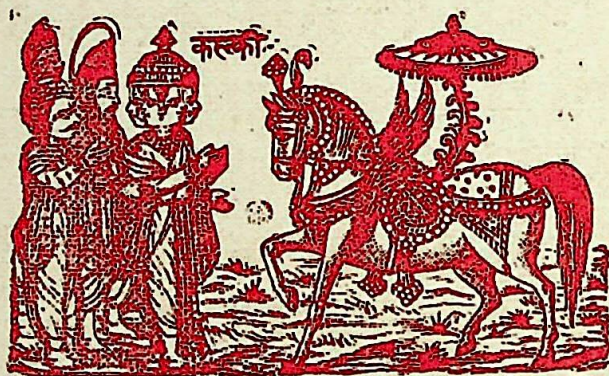
मुद्रक और प्रकाशक-

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

मालिक-"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

कल्याण-बम्बई.

विज्ञप्ति ।

दोहा—जय सत्ययुग थापन करन, नाशन म्लेच्छ अपार ।
कठिन धार तरवार कर, कृष्ण कल्कि अवतार ॥

सनातन धर्मावलंबिगण ! आजकल समयमें बहुत परिवर्त्तन हो गया है, इसी कारण आप लोगोंको विज्ञापन देकर समझाना पडता है कि—"कल्कि-पुराण" क्या है ? लक्ष रुपयोंके बदलेमें, प्राणपणसे परिश्रम करनेपरभी कल्किपुराणके दर्शनमें स्नेह था । आज मुद्रणयंत्र (छापाखाना) के कल्याणसे उसही पुराणको हमने सरलतासे प्राप्त करलिया ।

कल्किपुराण—धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका देनेवाला है ।
" उपन्यास व नाटकके समान रहस्यमय है ।
" इतिहास, भूगोल और मनुष्यचरित्रका पूर्ण आदर्श है ।
" होनहार इतिहासके युद्धविग्रहकी ऋषिगण कथित आश्चर्यमयी भविष्यद्वाणी है ।

कल्किपुराणके पाठ करनेसे ऋषिलोगोंकी बुद्धि, शक्तिके होनहार दिखावेके आश्चर्यसे अत्याश्चर्य, असम्भवसे असम्भव, सत्य समाचार जाने जाते हैं । कल्किपुराणके पढनेसे हमारा पहला इतिहास प्रत्यक्ष होजाता है । इसके अतिरिक्त यहभी प्रकट होता है कि, वेदज्ञ ब्राह्मणसे कलिके ब्राह्मणोंकी, समस्त जातियोंकी और समस्त आश्रमोंकी कहांतक अवनति हुई है । कल्किपुराणके पढनेसे ज्ञात हो जाता है कि, यथार्थ सनातन हिंदुधर्म क्या है ? इसी कारणसे कथा बाँचनेवाले पंडित, संन्यासी, धर्मप्रचारक, सनातन हिन्दु-धर्मावलम्बी, न और सबके लिये भी कल्किपुराणके पढनेका प्रयोजन हुआ ।

यथार्थ—कल्किपुराण अबतक अप्रकाशित था, इसी कारणसे अनुवादक श्रीमान् पंडित बलदेवप्रसादजी मिश्रसे अति मनोहर गद्यमें प्रत्येक श्लोकका

श्लोकांक लगाकर इसका अनुवाद कराया है। जहांतहां—वेद,पुराण,इतिहास, दर्शनादि शास्त्रोंका सार करके टिप्पणियें लगायी गई हैं। प्रत्येक स्थानका वर्णन इतना स्पष्ट किया गया है कि,यात्री लोग अनायासही विना किसीकी सहायताके तीर्थस्थानोंका दर्शन कर सकते हैं। इसपर भी विशेषता यह है कि, अनुवादकने स्वयं शम्भल ग्राममें जाय (जहांपर कल्कि अवतार होगा) वहांके प्रसिद्ध २ स्थानोंको निहारकर सम्पूर्ण विस्तारित वृत्तान्त भूमिकामें सन्निवेशित किया है। अब अधिक न कहकर यही विनय है कि, एक बार इसका पाठ कर लेनेसे लोक परलोक दोनोंही बनजाते हैं। कौन ऐसा हिन्दु होगा जिसका हृदय पूर्ण सदानन्द ब्रह्मावतार कल्किजीके चरित्रको श्रवण कर द्रवीभूत न हो। प्रत्येक हिन्दू सन्तानको उचित है कि, इसकी एक एक प्रति ले करके हमें उत्साहित करें, कागज छापा सबही उत्तम है॥

आपका कृपापात्र—

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" मुद्रणालय कल्याण—मुंबई.
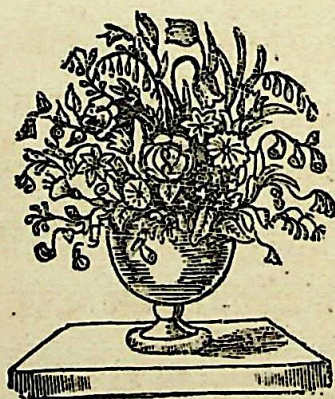
भूमिका ।

श्लोक—यद्दोर्दण्डकरालसर्पकवलज्वालाज्वलद्विग्रहा
नेतुः सत्करवालदण्डदलिता भूपाः क्षितिक्षोभकाः ।
शश्वत्सैन्धववाहनो द्विजजनिः कल्किः परात्मा हरिः
पायात्सत्ययुगादिकृत्स भगवान्धर्म्मप्रवृत्तिप्रियः ॥

सनातन धर्मावलम्बियोंमें इस बातका प्रचार है कि, अठारह महापुराण महाभारत अष्टादश उपपुराण श्रीवेदव्यासजीके ही बनाये हुए हैं। कोई कोई सज्जन सन्देह करते हैं कि, एक मनुष्यसे इतने ग्रंथोंका प्रणीत होना संभव नहीं है । विशेष बात वह लोग यह भी कहते हैं कि—" यदि उपरोक्त ग्रंथ एकही आदमीके बनाये हैं तो परस्पर उनमें मतभेद क्यों है ? एक आदमीने एक स्थानमें तो कुछ और कहा, व दूसरे स्थानमें उसके विरुद्ध कहने लगा, भला यह बात किस प्रकारसे संभव हो सकती है ? पुराणोंकी रचनाप्रणालीको देखकर ज्ञात होता है कि, यह एकही कविके बनाये हुए नहीं हैं। " आदि आदि, वास्तवमें यद्यपि साधारण मनुष्यके साथ भगवान् वेदव्यासजीकी तुल्यता नहीं दीजा सकती, तथापि जो लोग उपरोक्त युक्तियोंका अवलम्बन करके समस्त पुराणोंको वेदव्यासजीका बनाया हुआ नहीं बताते, उनका अनुमान अत्यन्त भ्रान्तिमूलक नहीं है ।

सत्ययुगादि युगोंके ब्राह्मणगण गुरुमुखसे चारों वेदोंको सुनकर कंठ कर लेतेथे । कुछ समय उपरान्त भगवान् वेदव्यासजीने देखा कि, युगानुसार मनुष्योंकी तीक्ष्णता और धारण शक्ति बराबर घटती चली जाती है, तब उन्होंने समस्त वेदोंको चार भागोंमें विभक्त करके एक एक भाग पढाया । यही कारण है जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद अलग अलग हुए । इन शिष्य गणोंनेभी पढे हुए वेदके अंशको फिर विभक्त करके अपने शिष्योंको दियाथा इसही भाँतिसे केवल एक सामवेदकी ही सहस्र शाखा हो गईं । भगवान् वेदव्यासजी केवल बेदका विभाग करके निश्चिन्त नहीं हुए । इन्होंने विचार किया कि, वेदरूपी अभेद्य कठोर शैलमालाको भेदकर ज्ञान-

रूपी अमूल्य महारत्नका संग्रह करना कलियुगके उत्पन्न हुए मनुष्योंकी सामर्थ्यसे बाहर होगा । अतएव उनके निमित्त, वेदरूप पर्वतके अन्तरमें स्थित हुए ज्ञानरूपी रत्नको संकलन करके उपाख्यानरूपी डोरेमें गूँथ दिया जाय तो वह उसको सरलतापूर्वक कंठमें धारण करलेंगे । इस प्रकारका विचार करके महर्षि वेदव्यासजीने वेदके अर्थोंको संग्रह करके उपाख्यानके मिषसे एक अपूर्व सरल ग्रंथ बनाया । इस ग्रंथके अनेक अंशोंमें प्राचीन, इतिवृत्तके रहनेसे यह पुराण संहिताके नामसे विख्यात हुआ । इस ग्रंथम चार लक्ष श्लोक थे ।

भगवान् वेदव्यासजीने अपने छः शिष्योंको यह पुराण संहिता पढाई । इन छः शिष्योंमेंसे तीन शिष्योंने इस पुराण संहिताका अवलम्बन करके पृथक् पृथक् तीन पुराण बनाये । ग्रंथकारोंके नामानुसार इन तीन पुराणोंका नाम सावर्णीसंहिता, सांख्यायनसंहिता और अकृतव्रणसंहिता हुआ । फिर इन चार पुराण संहिताओंसे १८ महापुराण और ३६ उपपुराण बने । परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि, उपपुराण ऋषियोंके बनाये हुए हैं। क्योंकि, नैमिषारण्यमें महर्षि शौनकजीके द्वादश वार्षिक यज्ञमें समस्त पुराण व उपपुराणोंका पाठ हुआ था ।

समस्त पुराण वेदव्यासजीके बनाये हैं इस बातके विख्यात होनेका यह कारण है कि, भगवान् वेदव्यासजीनेही पुराण संहिताको बनायाथा । फिर उनके शिष्योंने पुराण संहिताको अवलम्बन करके तीन पुराण बनाये। फिर उनके शिष्य प्रशिष्योंने इन चारों पुराणोंसे संग्रह करके १८ पुराण और उपपुराण प्रकाशित किये । भगवान् वेदव्यासजी पुराणके बनानेवाले और संतान ऋषिगण पुराणोंके संग्रह कर्ता हैं । संग्रह कर्ता महर्षियोंने संग्रह कार्यको साधारण समझकर अपने नामको प्रकाशित करनेकी आवश्यकता न जानकर पुराण शास्त्रके प्रवर्तक आदि गुरु भगवान् वेदव्यासजीकाही नाम लिख दिया। यद्यपि समस्त पुराण एकही महापुराणसे उत्पन्न हुए हैं, तथापि उनमें परस्परकी अनैक्यताका कारण यह है कि, किसी पुराणमें कोई

उपाख्यान विस्तारित रूपसे वर्णन किया गया है और किसी पुराणमें कोई उपाख्यान संक्षिप्त हुआ है, किसी पुराणमें कोई उपाख्यान छोडदिया गया है, किसी पुराणमें कोई उपदेश रूपकाकारकी भाँति उपाख्यान रूपसे प्रकाशित हुआ है, किसी पुराणमें वही उपदेश स्पष्टरूपसे प्रकाशित हो रहा है। यही कारण है जो पुराणोंमें परस्पर मतभेद पाया जाता है, परन्तु अनेक स्थलोंमें यहांतक एकता दिखाई देती है कि, कोई २ श्लोक सबही पुराणोंमें प्रायः एकरूपसे लिखा हुआ है। वर्त्तमान समयसे अनुमान ४४०० वर्ष पहिले महर्षि वेदव्यासजीने भारतवर्षको उज्ज्वल कियाथा * तदुपरान्त सौ वर्षके मध्यमेंही उनके शिष्य उपशिष्योंने पुराणोंको बनाया और यही पुराण

* भारतवर्षके मध्य हस्तिनापुरमें युधिष्ठिर, द्वारकामें श्रीकृष्ण, तपोवनमें वेदव्यास, यह तीनों महानुभाव एक समयमें विराजमान थे। महाराज विक्रमादित्यके सभासद महाकवि कालिदासजीने अपने बनाये हुए ज्योतिर्विदाभरण नामक ज्योतिष ग्रंथमें और ज्योतिःशास्त्र पारदर्शी महात्मा वराहजीने स्वप्रणीत बृहत्संहितामें लिखा है कि—" शतेषु षट्सु सार्द्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले। कलेर्गतेषु वर्षाणामभवन् कुरुपाण्डवाः ॥ " कलिके ६५३ वर्ष गत होनेपर कुरुक्षेत्रमें कौरव पाण्डवोंका घोर युद्ध हुआ। उपरोक्त दोनों ग्रन्थकारोंने उक्त समयको निरूपण करनेके लिये गणना की है कि—" आसन् मघासु मुनयः शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ। षड्द्विकपंचद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञो वै॥ " एकसौ वर्षके अन्तरमें सप्तर्षि मण्डल एक एक नक्षत्रमें गमन करता है। २२५ वर्षमें सप्तर्षि मण्डलकी एक राशि और १७०० वर्षमें एक भगण अर्थात् राशिचक्रका एक वार परिभ्रमण होता है। महाराज युधिष्ठिरजी जिस समयमें राज्य करते थे उस समयमें सप्तर्षिमंडल मघानक्षत्रमें था। महाराज विक्रमादित्यके संवत्सरका आरंभ होनेके समय यह सप्तर्षि मंडल पुष्यनक्षत्रमें था। इस लेखसे प्रमाणित होता है कि, महाराज युधिष्ठिरके राज्यसे लेकर महाराज विक्रमके शकारम्भतक प्रायः ढाई हजार वर्ष बीते हैं। विशेष बात यह है कि, महाराज विक्रमादित्यके संवत्का प्रचार होनेसे पहिले युधिष्ठिराब्द प्रचलित था। जिस समय महाराज विक्रमादित्यकी सभाके सभासद वराहजीने वृहत्संहिता बनाई तब युधिष्ठिराब्द २५२६ थे। इस समय संवत् १९५४ है। दोनोंका जोड ४४८० हुआ। अतएव प्रमाणित होता है कि, ४४८० वर्ष पहिले महाराज युधिष्ठिरका जन्म हुआ। राजतरंगिणी नामक काश्मीरके इतिहास ग्रंथमें इस विषयका प्रमाणभी दिया गया है। विशेषतः उसमें यहभी लिखा है कि, काश्मीरके गोनर्द नामक राजाने किसी समय मथुरापुरीको घेर लिया था। शेषमें देवताओंसे पराजित होकर वह अपनी राजधानीको लौट आया इस चढाईके ४। ५ वर्ष पीछे—

नैमिषारण्यमें पढे गये। भगवान् वेदव्यासजीके अन्तर्धान होनेपर एक वर्षके मध्यमेंही महर्षि शौनकजीने नैमिषारण्यमें द्वादश वार्षिक यज्ञानुष्ठानके समयमें समस्त पुराणोंको श्रवण किया।

जिस समयमें भली भाँतिसे कलिका प्रादुर्भाव होजायगा और जिस समय सूर्य, चंद्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि और राहु ये आठ ग्रह एक राशीपर आजांयगे, उसी समयमें भगवान् विष्णुजी कल्कि अवतार धारण कर, बौद्ध, म्लेच्छ, यवन और पाखण्डी लोगोंका संहार करके पुनर्वार धर्मात्मा महापुरुषोंको राज्यपर स्थापनकर दुबारा सतयुग और सनातन वैदिक धर्मकी अवतारणा करेंगे। यह समस्त बातें इस पुराणमें अतीत उपाख्यानकी भाँति वर्णित हुई हैं। होनहार बातोंको अतीतकी भाँतिसे वर्णन करना सब देशोंके धर्मशास्त्रकी रीति है। " उसने स्वर्गसे अपने पुत्रको पुकारा। " इस प्रकारकी भविष्यदुक्तियें बायबलमेंभी दिखाई देती हैं। मूल बात यह है कि, सिद्ध पुरुषगण होनहार बातोंकोभी अतीतकी समान देखते हैं।

कहीं २ ऐसा लिखा है कि, कल्किपुराणमें छः सहस्र श्लोक हैं परन्तु छः हजार श्लोक इसमें मिलते नहीं, इसही कारणसे किसी २ का मत है कि, यह

—बलदेव सेना सजायकर युद्ध करनेके लिये काश्मीरमें आया। पहले वैरकी याद करके गोनर्दको मारकर उसके शिशुकुमारको वहांका राज्य दिया। उस समयसे लेकर काश्मीरमें जितने राजा हुए हैं उन सबके राज्य-भोग-कालको जोडा जाय तो न्यूनाधिक ४५५० वर्ष होंगे। इस समय कलिके ४९९८ वर्ष बीते हैं। कुरु पाण्डवोंके युद्धकालमें स्वाब्दप ६५३ थे (?) इनको उपरोक्त संख्यामेंसे घटादिया जाय तो ४३४५ बचेंगे अतएव ज्ञात होता है कि ४३४५ वर्ष पहले कुरुपाण्डवोंका घोर संग्राम हुआ था। इस बातमें भी कुछ अनैक्य पाया जाता है कि, जिसका कारण निर्णय करना कठिन है परन्तु अनुमानसे इस प्रकार जाना जाता है कि, राजा युधिष्ठिरके और राजा विक्रमादित्यके जन्मकालसे उनका शक प्रचलित हुआ था। जिस समय महाराज विक्रमादित्यकी उमर ६० वर्षकी थी तब बृहत्संहिता बनी। जिस समय महाराज युधिष्ठिरकी आयु ७५ वर्षकी थी तब कुरुक्षेत्रमें युद्ध हुआ। दोनोंकी समष्टि १३५ वर्ष होती है। ४४८० वर्षमें १३५ घटादिये जांय तो ४३४५ रहते हैं, अतएव ४३४५ वर्ष पहिले कुरु पाण्डवोंका युद्ध हुआ था, ऐसा अनुमान किया जाता है।

कल्किपुराण सम्पूर्ण नहीं है। इस पुस्तकका शेष अंश विशेषतः इसका निर्घण्ट अध्याय पढनेसे इस बातमें कोई सन्देहही नहीं रहता। छः हजार श्लोकोंका होना लिखा तो है परन्तु १६ अक्षरका अर्थात् दो चरणकाभी तो श्लोक होसकता है "व्यास उवाच" इस पांच अक्षरके वाक्यको भी श्लोक कहाजाताहै।

यदि कल्किपुराणके इस अनुवादका पाठ करके धर्मजिज्ञासु मनुष्योंको कुछभी संतोष होगा तो मैं अपने समस्त परिश्रमको सार्थक समझूंगा।

जगदुपकारक माननीय सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजीको वारंवार धन्यवाद दिया जाताहै कि, जिन्होंने अपने व्ययसे इस ग्रंथको स्वकीय "श्रीवेंकटेश्वर" यंत्रालयमें मुद्रित कर हिन्दी हिन्दोस्थानपर अत्यन्त उपकार किया व सदाके लिये अपनी कीर्तिरूपी ध्वजाको शास्त्ररूपी दंडमें बांधकर देववत् अजर अमर होगये।

परम माननीय ज्वालाप्रसादजीमिश्रने सौहार्द प्रेमसे इस ग्रंथकी पाण्डुलिपिको आद्योपान्त देखकर शुद्ध कर दिया है इस कारण वारंवार उनके चरणकमलको प्रणाम किया जायगा।

उपसंहारमें अपने परममित्र लाला शालिग्रामजी वैश्य श्रीयुत ललताप्रसादजी शर्मा, श्रीयुत जयन्तिप्रसादजी उपाध्याय, बाबू किशनलालजी पर्वतवासी, बाबू हंसमिश्र एम्. ए. तथा बाबू रामलाल, श्रीमान् बाबू उदितनारायण लालजी वर्मा वकील गाजीपूर, शंकर दाजी शास्त्री पदे संपादक आर्यभिषक् बंबई—आदि महाशयोंको वारंवार धन्यवाद देकर भूमिकाको समाप्त करताहूं, उपरोक्त महाशयगण सम्पत्ति विपत्ति आदि सर्वकालमें मेरी सहायता किया करते तथा ग्रंथादि निर्माण करनेमें उत्साह दिलाया करते हैं किमधिकामिति॥

आश्विन कृष्ण ३, सोमवार संवत् १९५४	बलदेवप्रसाद मिश्र, दीनदारपुरा—मुरादाबाद.

कल्किपुराणकी विषयसूची ।

प्रथम अंश । प्रथम अध्याय ।

मंगलाचरण, सूतजीसे शौनकादि महर्षियोंका भविष्य प्रश्न । कल्कि-पुराणकी प्राप्तिका विवरण । कलिकी उत्पत्ति । कलि विवरण । कलिकालमें आचार भ्रंश । पृथ्वीसहित देवताओंका ब्रह्मलोकमें जाना । ब्रह्मलोक वर्णन ।

प्रथम अंश । द्वितीय अध्याय ।

ब्रह्माजीके समीपमें कलिके दोष कीर्त्तन । ब्रह्माजीके साथ देवताओंका गोलोकमें जाना । विष्णु समीपमें निवेदन । विष्णुयशाके गृहमें विष्णुका अवतार अङ्गीकार करना । विष्णुयशाकी पत्नी सुमतिका गर्भ । विष्णुके जन्मसे देवगणोंका हर्ष । विष्णुका चतुर्भुज मूर्ति त्यागकर मनुष्यरूप धारण करना । राम, कृप, व्यासजी आदिका कल्कि दर्शनके लिये जाना । कल्किका नाम-करण । कल्किके उपनयन कालमें पिताका उपदेश ।

प्रथम अंश । तृतीय अध्याय ।

कल्कि महाराजका गुरुकुलमें वास करनेके निमित्त यात्रा करना और जमदग्निके साथ समागम । कल्कि महाराजका वेदाध्ययन और धनुर्वेद शिक्षा । कल्कि महाराजका गुरु दक्षिणा दानकी अभिलाषा करना, कल्कि महाराजको विल्वोदकेश्वरका दर्शन और स्तव, हरपार्वतीका आविर्भाव और वरदान । शंकरजीसे कल्कि महाराजको तरवार तोता और अश्वकी प्राप्ति, कल्कि-महाराजका गृहप्रत्यागमन । कल्कि महाराजको आश्रम धर्मोपदेश ।

प्रथम अंश । चतुर्थ अध्याय ।

कल्कि महाराजका धर्म कथन । ब्राह्मण लक्षण, शुक कृत सिंहलद्वीप वर्णन, राजकन्या पद्माका विवरण, शिवके निकट पद्माको वर लाभ ।

प्रथम अंश। पंचम अध्याय।

पद्माका स्वयंवरोद्योग, आए हुये राजाओंको स्त्रीत्व प्राप्ति।

प्रथम अंश। षष्ठ अध्याय।

पद्माका विलाप, कल्कि महाराजकी आज्ञासे शुकका पद्माके समीप जाना, पद्मा शुक संवाद।

प्रथम अंश। सप्तम अध्याय।

विष्णुपूजा प्रकरण।

द्वितीय अंश। प्रथम अध्याय।

पद्मा समीपमें अच्युतावतार कथन, शुकका शंभलमें जाना, कल्कि शुक संवाद, कल्कि महाराजका सिंहल गमन।

द्वितीय अंश। द्वितीय अध्याय।

पद्माका कल्कि महाराजके पास जाना, पद्माको कल्किमहाराजका दर्शन। पद्मा और कल्कि महाराजका आलाप।

द्वितीय अंश। तृतीय अध्याय।

पद्माका विवाहाभिलाष करना, कल्कि दर्शनमें राजगणोंको पुरुषत्व-प्राप्ति, राजगण कृत कल्कि स्तव।

द्वितीय अंश। चतुर्थ अध्याय।

अनन्तका आना, अनन्तोपाख्यान।

द्वितीय अंश। पंचम अध्याय।

अनन्तको हंस साक्षात्कार।

द्वितीय अंश । षष्ठ अध्याय ।

कल्किमहाराजकी आज्ञासे शंभलमें विश्वकर्माका पुरी निर्माण करना । सस्त्रीक कल्कि महाराजका शंभलमें प्रत्यागमन, कल्कि महाराजकी सुतोत्पत्ति ।

द्वितीय अंश । सप्तम अध्याय ।

बौद्धोंके साथ संग्राम, जिनाविनाश, बौद्ध जय ।

तृतीय अंश । प्रथम अध्याय ।

म्लेच्छ जय । म्लेच्छकामिनियोंके साथ कल्किमहाराजका संग्राम ।

तृतीय अंश । द्वितीय अध्याय ।

वालखिल्य नामक ऋषियोंका आना, निकुम्भ दुहिताका उपाख्यान । कुथोदरी संहारके लिये कल्कि भगवान्की यात्रा । कुथोदरीवध ।

तृतीय अंश । तृतीय अध्याय ।

नारद प्रभृति महर्षियोंका आगमन, मरुके आत्मपरिचयके निमित्त सूर्य-वंश वर्णन । श्रीराम चरित्र, रावणवध, सीता परित्याग । सीताजीका भूतल, प्रवेश । रामचंद्रका स्वर्गारोहण ।

तृतीय अंश । चतुर्थ अध्याय ।

रामकी वंशावली और मरुकी उत्पत्ति विवरण, चंद्रवंशमें देवापि उत्पत्ति वर्णन । देवापि और मरुको दिव्यरथ प्राप्ति ।

तृतीय अंश । पंचम अध्याय ।

सत्ययुगका आगमन, मन्वन्तर वर्णन, कलिके साथ संग्रामोद्योग ।

तृतीय अंश। षष्ठ अध्याय।

कल्कि महाराजकी दिग्विजय यात्रा, धर्मके सहित कल्कि महाराजका आना, धर्मका आत्मनिवेदन, कलिके साथ कल्कि महाराजका संग्राम। मरु देवापि आदिका खश कांबोज बर्बर चीन आदिके सहित संग्राम।

तृतीय अंश। सप्तम अध्याय।

कलि सहचरगणोंका पराभव, कोक विकोक वध।

तृतीय अंश। अष्टम अध्याय।

कल्कि महाराजका भल्लाट नगरमें जाना, शशिध्वज राजाका समरोद्योग।

तृतीश अंश। नवम अध्याय।

मूर्च्छित कल्कि महाराजको लेकर शशिध्वजका गृह गमन।

तृतीय अंश। दशम अध्याय।

सुशान्ताका गीत,शशिध्वजकी कन्याके सहित कल्किमहाराजका विवाह।

तृतीय अंश। एकादश अध्याय।

शशिध्वजकी हरिभक्तिका कारण, शशिध्वजके पूर्वजन्मका वृत्तान्त कथन बथा भक्ति लक्षण।

तृतीय अंश। द्वादश अध्याय।

हरिभक्तव्यक्तिके संग्राम प्रभृतिका कारण।

तृतीय अंश। त्रयोदश अध्याय।

द्विविदोपाख्यान, कृष्ण अवतार वृत्तान्त।

तृतिय अंश। चतुर्दश अध्याय।

कल्कि महाराजका काञ्चन पुरीमें प्रवेश, विषकन्या संवाद, कल्कि महाराजके अनुचरोंका पृथक्पृथक् राज्याभिषेक, कल्कि महाराजका शंभलमें जाना, सत्ययुग प्रवृत्ति।

इति कल्किपुराणविषयसूची समाप्त ।

श्रीः ।

अथ कल्किपुराणविषयानुक्रमणिका ।

विषय.	पृष्ठांक.

समाप्तोऽयं तृतीयांशः ।

इति विषयानुक्रमणिका समाप्ता ॥

॥ श्रीः ॥

अथ

कल्किपुराणम् ।

प्रथमांशः ।

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सेन्द्रा देवगणा मुनीश्वरजना लोकाः सपालाः सदा
स्वं स्वं कर्म्म सुसिद्धये*प्रतिदिनं भक्त्या भजन्त्युत्तमाः ।
तं विघ्नेशमनन्तमच्युतमजं सर्व्वज्ञसर्व्वाश्रयं
वन्दे वैदिकतान्त्रिकादिविविधैः शास्त्रैः पुरो वन्दितम् ॥ १ ॥

देवराज इन्द्र,देवता, श्रेष्ठ महर्षि और लोकपालगण (१) अपने कार्यको सिद्ध करनेके लिये प्रतिदिन भक्तिके सहित जिसकी उपासना करते हैं, पूर्वकालमें जो देवता वैदिक तांत्रिकादि अनेक शास्त्रोंसे आराधित (पूजित) हुआ है, जो सर्वज्ञ अर्थात् सब कुछ जानता है, सबका आधार है, जिसका जन्म नहीं है, ऐसे समस्त विघ्नोंके नाश करनेवाले अविनाशी विष्णुजीकी वन्दना करताहूं ॥ १ ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ २ ॥

---

* यं सर्व्वार्थसुसिद्धये इत्येवं पाठः सङ्गच्छते ।

१ देवताविशेष । यह दश दिशाओंमें विराजमान रहकर सब लोगोंकी रक्षा करते हैं । अग्निपुराणमें लोकपालोंका नाम लिखा है । यथा–

इन्द्रो वह्निः पितृपतिर्निर्ऋतिर्वरुणोऽनिलः । धनदः शङ्करश्चैव लोकपालाः पुरातनाः ॥

इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति (अमरकोशमें नैर्ऋत कहा है), वरुण, पवन, कुबेर और महादेव, यह आठ जन क्रम२ से पूर्वादि दिशाओंके स्वामी हैं । कोई २ कहते हैं कि, ऊपर ब्रह्मा और नीचे अनन्त यह दो देवताभी लोकपाल हैं, इस प्रकार सब दश लोकपाल हैं । अग्निपुराण या अमरकोषमें इसका कोई वर्णन नहीं ।

नारायण (१) नरोत्तम नर (२) और सरस्वती देवीको नमस्कार

---

(१) विष्णुजीका नाम है । पुराणोंमें नारायण नामके अनेक तात्पर्य और व्याख्या दृष्टि आती हैं ॥ यथा–

आपो नारा इति प्रोक्ता आपौ वै नरसूनवः ।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ (विष्णुपुराण)

मनुमें पहले मतके अनुसार । यथा–

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १ ॥ (अ० १०)

नरशब्द जीव और ईश्वरका स्वामी शुद्ध स्वरूप ब्रह्मवाची है, आप् वा जल, उस ब्रह्मसे उत्पन्न हुआहै । साम विधान ब्राह्मणके प्रथम प्रपाठक–' ब्रह्म ह वा इदमग्र आसीत् । तस्य तेजो रसोऽतिरिच्यता ' यह वचन " जल नरसूनु " को प्रमाणित करता है । जल नरसे उत्पन्न होनेके कारण जलका दूसरा नाम नार हैं, (प्रलयसमयमें) नारायणजीने उस नारको अयन अर्थात् आश्रय कियाथा इस कारणसे उनका ' नारायण ' नाम हुआ ।

नारायण नामकी व्युत्पत्तिमेंभी मतभेद है, यहांपर ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके कुछ श्लोक लिखतेहैं–

सारूप्यमुक्तिवचनं नारेति च विदुर्बुधाः । यो देवोऽप्ययनं तस्य स च नारायणः स्मृतः ॥
नाराश्च कृतपापाश्चाप्ययनं गमनं स्मृतम् । यतो हि गमनं तेषां सोऽयं नारायणः स्मृतः ॥
नारं च मोक्षणं पुण्यमयनं ज्ञानमीप्सितम् । तयोर्ज्ञानं भवेद्यस्मात् सोऽयं नारायणः स्मृतः ॥
(श्रीकृष्णजन्म खण्ड, १०९ अध्याय)

(२) विष्णुजीके अवतारऋषि विशेष । विष्णु वा धर्मके ओरस और दक्षकी कन्या मूर्तिके गर्भसे नर नारायणका जन्म हुआ था । इन दोनोंने ऋषिरूपसे घोर तप किया था श्रीमद्भागवत ग्रंथमें कहा है–

धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नर इति स्वतपःप्रभावः ॥
(२ स्कन्ध– ७ अ० ७ श्लोक ।)

तुर्ये धर्मकलासर्गे नरनारायणावृषी । भूत्वाऽऽत्मोपशमोपेतमकरोद्दुश्चरं तपः ॥
(१ स्कं० ३ अ० ७ श्लोक)

दूसरे पुराणमें नर नारायणकी उत्पत्ति दूसरे प्रकारसे लिखी है । महादेवजीने शरभरूप धारण कर दांतकी नोकके प्रहारसे विष्णुजीकी नरसिंहमूर्तिके दो खण्ड किये; उनके नर भागसे नर और सिंह भागसे नारायण, यह दो दिव्यरूप ऋषि उत्पन्न हुए ।

कालिकापुराणमें लिखा है–

ततो देहपरित्यागं कर्तुं समभवद्यदा । तदा दंष्ट्राग्रभागेन नरसिंहं महाबलम् ॥
शरभो भगवान् भर्गो द्विधा मध्ये चकार ह । नरसिंहे द्विधाभूते नरभागेन तस्य तु ॥
नर एव समुत्पन्नो दिव्यरूपी महानृषिः । तस्य पंचास्यभागेन नारायण इति श्रुतः ॥
अभवत् स महातेजा मुनिरूपी जनार्दनः । नरो नारायणश्चोभौ सृष्टिहेतू महामती ॥
ययोः प्रभावो दुर्द्धर्षः शास्त्रे वेदे तपःसु च ॥ (अ० २९)–

करके जय (१) उच्चारण करना चाहिये ॥ २ ॥

यद्दोर्दण्डकरालसर्पकवलज्वलाज्वलद्विग्रहा
नेतुः सत्करवालदण्डदलिता भूपाः क्षितिक्षोभकाः ।
शश्वत् सैन्धववाहनो द्विजजनिः कल्किः परात्मा हरिः
पायात्सत्ययुगादिकृत्स भगवान् धर्म्मप्रवृत्तिप्रियः ॥ ३ ॥

जब राजालोग (बहुतसा अत्याचार करके) पृथ्वीकी शान्तिका नाश करेंगे, उस समय जिस देवताके बाहुरूप भयंकर भुजंगकी विषज्वालासे उन समस्त अत्याचार करनेवाले राजाओंके शरीर भस्म हो जायंगे और जिसकी तीक्ष्ण तरवारसे वह राजा मारे जायंगे, जो देवता ब्राह्मणवंशमें जन्म लेकर सिन्धुदेशके उत्पन्न हुए घोडेपर सवार हो (दुबारा) सत्यादि (२) युगोंकी अवतारणा करेंगे; वह परेसे परे, धर्मकी प्रवृत्तिको प्यार करनेवाले, कल्कि-रूपधारी भगवान् श्रीहरि सदा तुम्हारी रक्षा करें ॥ ३ ॥

–कोई २ नर शब्दसे अविद्यावच्छिन्न जीवको कहते हैं, जो उस अविद्यासे छूट गया है वही नरोत्तम है परन्तु ऐसे अर्थका विशेष कोई मूल या प्रमाण नहीं है । पहले दो विवरण दो श्रेष्ठ पुराणोंके मतानुसार हैं । पुराणका अर्थ करनेपर पुराणके मतके अनुसारही अर्थ करना चाहिये । ऐसे स्थानमें कपोलकल्पित मतकी प्रधानता नहीं है ॥

(१) रामायणमहाभारतादि इतिहास और १८ पुराण इत्यादि शास्त्रके पढनेसे संसारकी जय होती है; अर्थात् जीव जन्ममृत्युरूप संसाररूपी जंजीरसे छूट जाता है । इसी लिये उन शास्त्रोंका नाम जय है । भविष्यपुराणमें लिखाहै–

अष्टादश पुराणानि रामस्य चरितं तथा । कार्ष्णं वेदं पंचमं च यन्महाभारतं विदुः ॥
तथैव शिवधर्माश्च विष्णुधर्माश्च शाश्वताः । जयेति नाम तेषां च प्रवदन्ति मनीषिणः ॥
संसारजयनं ग्रन्थं जयनामानमीरयेत् ॥

इस विषयमें और मतभी दिखाई देता है । यथा–

चतुर्णां पुरुषार्थानामपि हेतौ जयोऽस्त्रियाम् ।

इसका भाव यह है कि, चार पुरुषार्थोंका जो कारण है, तिस पदार्थविशेषका नाम जय है । यह अर्थ ठीक मालूम नहीं होता ॥

(२) प्रथम सत्य, दूसरा त्रेता, तीसरा द्वापर और चौथा कलियुग है । पुराणमें कहा है–

चत्वारि भारते वर्षे युगानि ऋषयोऽब्रुवन् ।
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥ (मत्स्यपुराण ११८ अध्याय)

भागवतके मतसे १७२८००० वर्ष सत्ययुग, १२९६००० त्रेता, ८६४००० द्वापर और ४३२००० वर्ष कलियुगका परिमाण है । सत्यके बाद त्रेता, त्रेताके बाद द्वापर और-

इति सूतवचः श्रुत्वा नैमिषारण्यवासिनः ।
शौनकाद्या महाभागाः पप्रच्छुस्तं कथामिमाम् ॥ ४ ॥

नैमिषारण्यके रहनेवाले (१) शौनक (२) आदि उदारचरित महर्षि-

–द्वापरके पीछे कलियुगका आगमन हुआ है । सत्ययुग धर्ममय था, क्रमसे युग २ में धर्मकी हानि हुई है । कालिकालके पिछले भागमें एकवारही धर्मका लोप होगया । युगके बदलनेसे जगत्के नियम बिगडकर विध्वंस होजाते हैं, फिर नया संस्कार होता है । सत्ययुगमें धर्मके चार चरण, अर्थात् पूरी मूर्त्तिका पूर्ण विकाश है; त्रेतायुगमें तीन चरण, अर्थात् धर्मके अंगकी हानि होती है; द्वापरमें दो चरण, धर्मका आधा अंग लोप होगया है; कलियुगमें एक चरण रहा, सोभी सबल नहीं निर्बल है; यही धर्मकी पिछली गति है । इस प्रकार युग २ में धर्मकी हानि और युगका अदलबदल होता आयाहै ॥

(१) इस स्थानमें भगवान् विष्णुजीने एक निमेष (पलक मारते) में दानवोंको जीता इससेही इसका नैमिष नाम हुआ है । भगवान्ने गौरमुख ऋषिसे कहाथा कि–" मैंने इस वनके मध्य एक निमिषमें दानवोंकी अजीत सेनाको मारडाला । इस लिये यह नमिष नामसे प्रसिद्ध होगा। " वराहपुराणमें लिखा है–

एवं कृत्वा ततो देवो मुनिं गौरमुखं तदा । उवाच निमिषेनेदं निहतं दानवं बलम् ॥
अरण्येऽस्मिंस्ततस्त्वेतन्नैमिषारण्यसंज्ञितम् ॥

इत्यादि श्लोक कहे हैं । वायुपुराणमें नैमिष शब्दका और वृत्तान्त लिखा है और षकारके स्थानमें शकार हुआ है । यथा;–

एतन्मनोमयं चक्रं मया सृष्टं विसृज्यते । यत्रास्य शीर्यते नेमिः स देशस्तपसः शुभः ॥
इत्युक्त्वा सूर्यसंकाशं चक्रं सृष्ट्वा मनोरमम् । प्रणिपत्य महादेवं विससर्ज पितामहः ॥
तेऽपि हृष्टतरा विप्राः प्रणम्य जगतः प्रभुम् । प्रययुस्तस्य चक्रस्य यत्र नेमिर्विशीर्यते ॥
तद्वनं तेन विख्यातं निमिशं मुनिपूजितम् ॥

कूर्मपुराणमेंभी यह उपाख्यान लिखा हुआ है, केवल भाषाकी अलगता है । कूर्मपुराणमें नैमिषका षकार दिखाई देता है । निःसन्देह यह सबही एक स्थान है । इस उपाख्यानका संक्षिप्त भाव यह है–कि, पहले ब्रह्माजीने कहा कि, मैंने इस रमणीक चक्रको छोडादिया है, जहांपर चक्रकी नेमि थमजायगी, वही देश तपके लिये अनुकूल है । तिसकेही अनुसार जिज्ञासुलोग उस गतिवान् चक्रका अनुसरण करते २ देखेंगे कि, एक स्थानमें चक्रनेमि थमगई । वही नैमिषारण्य नामसे इन पुराणोंमें प्रसिद्ध हुआ है । पुराणोंके पढनेसे जाना जाता है कि, पहले नैमिषक्षेत्र परम पवित्र यज्ञका क्षेत्र था, पीछेसे तीर्थ गिना जानेलगा । नैमिषारण्य पुराणोंके विचार करनेका प्रधान केन्द्र हुआ । कूर्मपुराणके चालीसवें अध्यायमें नैमिषकी उत्पत्तिका वृत्तान्त कहा है ।

(२) शुनकमुनिका पुत्र ऋषिविशेष । यह प्रसिद्ध यज्ञ करनेवाला था और नैमिषारण्यमें वास करताथा । और २ ग्रंथोंमें शौनकका कुलपति नाम है । यह मुनि अन्नदानादि द्वारा दश हजार मुनियोंका पालन और अध्यापन करतेथे । शौनकजी ज्ञानवान् और अत्यन्त यज्ञ करनेवाले थे । जब वह बारह वर्षका यज्ञ करचुके, तब नैमिषक्षेत्रमें महाभारत कहा गयाथा ।

गण उग्रश्रवाके (१) यह वचन सुनकर उनसे पूछते हुए ॥ ४ ॥

हे सूत सर्व्वधर्म्मज्ञ लोमहर्षणपुत्रक ।
त्रिकालज्ञ पुराणज्ञ वद भागवतीं कथाम् ॥ ५ ॥

हे लोमहर्षणपुत्र (२) सूत ! तुम भूत, भविष्यत् और वर्तमान यह

---

(१) उग्रश्रवा पौराणिक था । यह जनक लोमहर्षण नामसे प्रसिद्ध था, इसने सूतवंशमें जन्म ग्रहण किया था । ब्राह्मणीके गर्भ और क्षत्रीके औरससे उत्पन्न प्रतिलोमज संकीर्ण जातिको ' सूत ' शब्दसे पुकारा जाता है । याज्ञवल्क्यसंहितामें लिखा है—

ब्राह्मण्यां क्षत्रियात् सूतः । (प्रथम अध्याय)

बलदेवजीके वरदानसे सूतका पुत्र उग्रश्रवा पुराणवक्ता हुआथा ।

(२) लोमहर्षण, कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीके विख्यात शिष्य थे । श्रीव्यासजीने प्रसन्न हो इनको अपने बनाये सब ग्रंथ देदिये । इसी कारण लोमहर्षण पुराणवक्ता हुये थे । लोमहर्षण सब जगह सूत नामसे प्रसिद्ध हैं । परन्तु यह उनके कुळका नाम है, ठीक नाम नहीं है । यदि ऐसा होता तो पुराणमें सूतपुत्र शब्दसे लोमहर्षणका विशेषण नहीं होता । लगभग सबही ग्रंथोंमें साधारण सूतशब्दसे इनका नाम लिया गया है, इस कारण बहुत इनका लोमहर्षण यही यथार्थ नाम समझते हैं । परन्तु इस सिद्धान्तकी कोई जड नहीं है, केवल भ्रम है । इस कल्किपुराणके तीसरे अंशके त्रयोदश अध्यायके मध्य २० श्लोकमें सूतपुत्र शब्दसे लोमहर्षणका विशेषण लगाया है—

तथा क्षेत्रे सूतपुत्रो निहतो लोमहर्षणः । बलरामास्त्रयुक्तात्मा नैमिषेऽभूत् स्ववाञ्छया ॥

जो सूत उनका असली नाम होता तो उसमें सूतपुत्र विशेषण नहीं लगाया जाता । अब इसका प्रमाण लीजिये कि, वह व्यासके शिष्य थे ।

प्रख्यातो व्यासशिष्योऽभूत् सूतो वै लोमहर्षणः । पुराणसंहितास्तस्मै ददौ व्यासो महामुनिः ॥
(विष्णुपुराण ३ अंश, ६ अध्याय १६ श्लो०)

इनका आदि नाम लोमहर्षण नहीं, उनके मुखसे पुराण कथा श्रवण करनेपर श्रोताओंको रोमाञ्च होजाताथा; इसी कारणसे उनका लोमहर्षण नाम हुआ । यह वृत्तान्त कूर्म, पुराणमें लिखाहै--

लोमानि हर्षयाञ्चक्रे श्रोतॄणां यः स्वभाषितैः । कर्मणा प्रथितस्तेन लोमहर्षणसंज्ञया ॥

बलरामजीके अस्त्र लगनेसे लोमहर्षणकी मृत्यु हुई । वह व्यासासनपर विराजमान होकर नैमिषवासी ऋषिलोगोंको पुराण श्रवण कराताथा, इसी समय तीर्थयात्रा करते २ बलदेवजी वहां आगये, सब ऋषिलोगोंने उठकर उनका आदर सत्कार किया। परंतु लोमहर्षण नहीं उठे । बलदेवजी लोमहर्षणको गर्वित समझकर क्रोधित हुए और कुशकी नोक मारकर उसका प्राणनाश किया । जब ऋषिलोगोंने उसे फिर जीवित करनेको कहा तब बलदेवजी बोले कि;--

यह लोमहर्षण फिर नहीं जीवित होगा । इसका पुत्र उग्रश्रवा आप लोगोंको पुराण श्रवण करावेगा । श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध ७ अध्यायके १३ । १५ । १९ । २७ श्लोकोंमें यह वृत्तान्त लिखाहै, इन बलदेवजीके वरसे उग्रश्रवा पुराणवक्ता हुए और तिसके अनुसार वही वक्ष्यमाण कल्किपुराणके वक्ता हुए हैं ॥

तीनों काल, सब प्रकारके धर्म और समस्त पुराणोंको जानते हो (अतएव) भगवान्‌की कथाको कहो ॥ ५ ॥

कः कलिः कुत्र वा जातो जगतामीश्वरः प्रभुः ।
कथं वा नित्यधर्म्मस्य विनाशः कलिना कृतः ॥ ६ ॥

कलि कौन है, वह कहां जन्मा था और किस प्रकारसे पृथ्वीका स्वामी हुआ, उसने किस प्रकारसे नित्यधर्मका नाश किया, सो कहो ॥ ६ ॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा सूतो ध्यात्वा हरिं प्रभुम् ।
सहर्षपुलकोद्भिन्नसर्व्वाङ्गः प्राह तान्मुनीन् ॥ ७ ॥

महर्षियोंके यह वचन सुनकर उग्रश्रवाने नारायणजीका ध्यान किया, हर्षमें भरजानेसे उनका सर्व शरीर पुलकायमान हुआ । उन्होंने महर्षियोंसे कहा कि ॥ ७ ॥

सूत उवाच ।

शृणुध्वमिदमाख्यानं भविष्यं परमाद्भुतम् ।
कथितं ब्रह्मणा पूर्व्वं नारदाय विपृच्छते ॥ ८ ॥

हे महर्षियो ! यह अत्यन्त विस्मयकारी होनहार उपाख्यान आप सुनें । पूर्वकालमें नारदजीके (यह वार्ता) पूछनेपर ब्रह्माजीने उनसे यह कहाथा॥८॥

नारदः प्राह मुनये व्यासायामिततेजसे ।
स व्यासो निजपुत्राय ब्रह्मराताय धीमते ॥ ९ ॥

नारदजीने अमित तेजस्वी व्यासजीसे (१) इस विषयको वर्णन किया । व्यासजीने अपने बुद्धिमान् पुत्र ब्रह्मरातसे यह कहाथा ॥ ९ ॥

---

(१) इन्होंने महाभारतकी रचना और वेदका विभाग किया । साधारण लोग वेदको नहीं समझ सकेंगे, इसी कारणसे वेदव्यासजीने वेदार्थका सार संग्रह करके इस अमृतमय महाभारतको बनाया । वेद व्यासजीका यथार्थ नाम कृष्णद्वैपायन है, वह वेदका विभाग करके व्यास, वेदव्यास इत्यादि नामको प्राप्त हुए । सांवरे थे, इस कारण कृष्ण और यमुनाके एक द्वीपमें जन्मनेके कारण द्वैपायन कहलाये । यह दो शब्द समष्टि और व्यष्टि दोनों भांतिसे ही व्यासबोधक हैं । व्यासजी चिरञ्जीवी हैं ।

स चाभिमन्युपुत्राय विष्णुरातायं संसदि ।
प्राह भागवतान्धर्मानष्टादशसहस्रकान् ॥ १० ॥

ब्रह्मरातने अभिमन्युके पुत्र विष्णुरातके समीप सभामें यह भागवत धर्म कीर्त्तन किया । उसमें १८००० श्लोक थे ॥ १० ॥

तदा नृपे लयं प्राप्ते सप्ताहे प्रश्नशेषितम् ।
मार्कण्डेयादिभिः पृष्टः प्राह पुण्याश्रमे शुकः ॥ ११ ॥

उस समय एक सप्ताह बीत जानेपर विष्णुरात राजाने लोकयात्राको पूरा किया; परन्तु तबभी प्रश्न पूरा नहीं हुआ (इसके उपरांत) मार्कण्डेय (१) आदि महर्षियोंके पुण्याश्रममें (इस भागवतधर्मका) शेष अंश पूछनेपर भगवान् शुकदेवजीने तिसको कहाथा ॥ ११ ॥

तत्राहं तदनुज्ञातः श्रुतवानस्मि याः कथाः ।
भविष्याः कथयामीह पुण्या भागवतीः शुभाः ॥ १२ ॥

शुकदेवजीकी अनुमति लेकर मैंने उस पुण्याश्रममें जो होनहार बातें सुनी थीं, यहांपर वही शुभदायी भागवत धर्म कहताहूं ॥ १२ ॥

ताः शृणुध्वं महाभागाः समाहितधियोऽनिशम् ।
गते कृष्णे स्वनिलयं प्रादुर्भूतो यथा कलिः ॥ १३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णजीके वैकुण्ठमें चलेजानेपर जिस प्रकार कलिकी उत्पत्ति हुई सो आपलोग सर्व प्रकारसे सावधान होकर तिसको श्रवण करें ॥ १३ ॥

प्रलयान्ते जगत्स्रष्टा ब्रह्मा लोकपितामहः ।
ससर्ज्ज घोरं मलिनं पृष्ठदेशात् स्वपातकम् ॥ १४ ॥

प्रलयकालके बीतजानेपर जगत्के उत्पन्न करनेवाले समस्त लोकके पितामह, पद्मयोनि ब्रह्माजीने अपने पीठसे अपने पातकको उत्पन्न किया ॥ १४ ॥

स चाधर्म्म इति ख्यातस्तस्य वंशानुकीर्त्तनात् ।
श्रवणात्स्मरणाल्लोकः सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १५ ॥

---

(१) मृकण्डमुनिके पुत्र, महर्षिविशेष । इनके बनाये हुए पुराणका नाम मार्कण्डेय-पुराण है यहभी चिरंजीवी हैं ।

वह पातक अधर्म नामसे प्रसिद्ध हुआ; उसके वंशका वर्णन, कीर्त्तन, श्रवण अथवा स्मरण करनेसे मनुष्योंके समस्त पाप छूट जाते हैं ॥ १५ ॥

अधर्म्मस्य प्रिया रम्या मिथ्या मार्ज्जारलोचना ।
तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी दम्भः परमकोपनः ॥ १६ ॥

अधर्मकी भार्या मिथ्या, मनको अत्यन्त रमानेवाली और बिल्लीकी समान नेत्रवाली हुई । तिसका दम्भ नामक पुत्र अत्यन्त तेजस्वी और स्वभावका क्रोधी हुआ ॥ १६ ॥

स मायायां भगिन्यां तु लोभं पुत्रं च कन्यकाम् ।
निकृतिं जनयामास तयोः क्रोधः सुतोऽभवत् ॥ १७ ॥

मिथ्याके माया नामक एक कन्या उत्पन्न हुई । दम्भने अपनी बहन मायाके गर्भसे लोभनामक पुत्र और निकृति नामक कन्या उपजाई । लोभ और निकृतिके संगसे क्रोधनामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १७ ॥

स हिंसायां भगिन्यां तु जनयामास तं कलिम् ।
वामहस्तधृतोपस्थं तैलाभ्यक्ताञ्जनप्रभम् ॥ १८ ॥

क्रोधके हिंसा नामक एक बहन जन्मी । उस हिंसाके औरससे कलिका जन्म हुआ । कलिने बांयें हाथमें उपस्थ (लिंग) धारण किया, इसके शरीरकी कान्ति तेल मिले हुए अंजनके पुंजकी समान काली हुई ॥ १८॥

काकोदरं करालास्यं लोलजिह्वं भयानकम् ।
पूतिगन्धं द्यूतमद्यस्त्रीसुवर्णकृताश्रयम् ॥ १९ ॥

कलिका उदर कागकी समान हुआ, वदन कराल, विलोल जीभ, अत्यन्त भयानक हुई । तिसके गन्धमें सडीहुई गन्ध निकलती है । जुआ, मद्य, स्त्री और सुवर्णमें कलिका वास हुआ ॥ १९ ॥

भगिन्यां तु दुरुक्त्यां स भयं पुत्रं च कन्यकाम् ।
मृत्युं स जनयामास तयोश्च निरयोऽभवत् ॥ २० ॥

इस कलिने दुरुक्ति नामक अपनी बहनके गर्भसे भयनामक पुत्र और मृत्यु नामक कन्या उपजाई। मृत्युके गर्भमें भयके औरससे निरयने जन्म लिया ॥ २० ॥

यातनायां भगिन्यां तु लेभे पुत्रायुतायुतम् ।
इत्थं कलिकुले जाता बहवो धर्म्मनिन्दकाः ॥ २१ ॥

निरयके एक यातना नामक बहन जन्मी। निरयने इस यातनाके गर्भसे कई हजार पुत्र उपजाये थे। इस प्रकार कलिके कुलमें बहुतसे धर्मनिन्दकोंने जन्म लियाथा ॥ २१ ॥

यज्ञाध्ययनदानादिवेदतन्त्रविनाशकाः ।
आधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयाश्रयाः ॥ २२ ॥

वह समस्त धर्मनिन्दक यज्ञ, स्वाध्याय और दान आदि धर्मके कार्योंको और वेद तंत्रादि धर्मशास्त्रको लोप करने लगे। उन्होंने आधि, व्याधि, जरा, ग्लानि, दुःख, शोक और भयमें अपना वास किया ॥ २२॥

कलिराजानुगाश्चेरुर्यूथशो लोकनाशकाः ।
बभूवुः कालविभ्रष्टाः क्षणिकाः कामुका नराः ॥ २३ ॥

कलिराजके सेवक लोक संसारको नाश करते हुए झुंडके झुंड (पृथ्वीमें) घूमने लगे। कलिके सेवकोंने समयके हेरफेरसे (पहली अवस्थासे) चलायमान हो क्षणभरमें होजानेवाला और कामपरायण मनुष्यदेह धारण किया॥२३॥

दम्भाचारदुराचारास्तातमातृविहिंसकाः ।
वेदहीना द्विजा दीनाः शूद्रसेवापराः सदा ॥ २४ ॥

वह अत्यन्त दम्भी और दुराचारी होकर माता पिताकी हत्या करने लगे, जिन्होंने ब्राह्मणयोनिमें जन्म लियाथा वह वेद शास्त्रको न जाननेवाले और अत्यन्त दरिद्री होकर सदा शूद्रजातिकी उपासना करते हुए (१) ॥२४॥

---

(१) वेद पढना द्विजातिके अवश्य करने कार्योंमें गिना जाताथा। यह ब्राह्मण जातिका प्रधान धर्म है। मनुजीने कहा है:—

कुतर्कवादबहुला धर्म्मविक्रयिणोऽधमाः ।
वेदविक्रयिणो व्रात्या रसविक्रयिणस्तथा ॥ २५ ॥
मांसविक्रयिणः क्रूराः शिश्नोदरपरायणाः ।
परदाररता मत्ता वर्णसङ्करकारकाः ॥ २६ ॥

वह अधर्मी लोग बहुतसे कुतर्कोंका विचार करते और धर्मको बेंचते, यथाकालमें उनका यज्ञोपवीत संस्कार न होता; इसलिये वह जातिसे निकाले जाकर पतित होते (१) वेद रस और मांसको बेंचकर (२)

—वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना । (मनु २ अ० १६५ श्लोक)
अर्थात्—द्विजातिको रहस्यसहित (मंत्र, ब्राह्मग और उपनिषत् समेत) समस्त वेद पढना चाहिये ।

वेद न पढनेवाला द्विजाति जातिसे भ्रष्ट होता है । मनुजी कहते हैं,—
योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् । स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥
(मनु २ अ० १६८)
अर्थात्—जो द्विजाति वेदको न पढकर और कहीं परिश्रम करता है वह वंशसहित जीते हुएही शूद्रपनको प्राप्त होजाताहै ।

शूद्रपनका प्राप्त होनाही पतितता है । यह होनहार अति उत्कट पापके बीचमें गिनी जाती ह । इसी कारण कलिके ब्राह्मणदोषके बीच यह वार्त्ता लिखी है ॥

(१) गर्भसे अष्टम वर्षमें ब्राह्मगका, ग्यारह वर्षमें क्षत्रीका और बारह वर्षमें वैश्यका उपवीत संस्कार करना चाहिये । विशेष कारणसे नियत समयके सिवाय और समयमेंभी उपवीतसंस्कारकी विधिका विधान था । ब्राह्मगका सोलह वर्ष, क्षत्रीका बाईस और वैश्यका चौबीस वषकी आयुतक उपवीतसंस्कारका समय है । इस समयके बीतजानेपर मनुष्य तिनको व्रात्य कहते और अत्यन्त नीच समझते हैं । मनुजीने कहा है,—
अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः । सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥
(मनु० २ अ० ६९)

ऐसा होना बहुत बुरा है । इसी कारण कलियुगके ब्राह्मणोंके लक्षणोंमें व्रात्य दोष गिना गया है ।

(२) वेद, मांस और रसका बेचना द्विजातिके लिये निषिद्ध है । मनुके तीसरे अध्यायमें " भृतकाध्यापको यश्च " इत्यादि स्थलमें वेदके बेचनेकी असाधुता दिखाई है । १५२ श्लोकमें " मांसविक्रयिणस्तथा " इत्यादि स्थलमें मांसके बेचनेकी और १५९ श्लोकमें 'रसविक्रयी ' इस स्थलमें रसके बेचनेका निषेध किया है । मनुके तीसरे अध्यायमें इसका वर्णन विस्तारसे लिखाहै ।

जीवन व्यतीत करते । वह क्रूर लोग इन्द्रियोंके चरितार्थ करने और पेटपूजा करनेमें भली भांति तत्पर हुए थे । मतवाले कलियुगके सेवक पराई स्त्रीका धर्म नाश करके अनेक प्रकारके वर्णसंकरोंको उत्पन्न करने लगे॥२५॥२६॥

ह्रस्वाकाराः पापसाराः शठा मठनिवासिनः ।
षोडशाब्दायुषः श्यालबान्धवा नीचसङ्गमाः ॥ २७ ॥

कलिके मनुष्योंका आकार अत्यन्त छोटा होगया, पापपरायण शठ मठमें वास करने लगे । मनुष्योंका जीवनकाल सोलह वर्ष नियत हुआ । कलियुगके सेवक सालेके साथ भायपन स्थापित करके असाधुके साथ रहते ॥ २७ ॥

विवादकलहक्षुब्धाः केशवेषविभूषणाः ।
कलौ कुलीना धनिनः पूज्या वार्द्धुषिका द्विजाः ॥ २८ ॥

झगडे और क्लेशमें चलायमान होते और केश, वेष सजानेमें ही अत्यन्त आसक्त हुएथे। कलिकालमें धनीलोग कुलीन और वार्धुषिक (१) ब्राह्मण पूज्य हुएथे ॥ २८ ॥

संन्यासिनो गृहासक्ता गृहस्थास्त्वविवेकिनः ।
गुरुनिन्दापरा धर्म्मध्वजिनः साधुवञ्चकाः ॥ २९ ॥

संन्यासी लोग गृहस्थ धर्ममें अनुरागी हुए, गृहस्थोंमें विचारशक्ति नहीं थी । मनुष्य गुरुजनोंकी निन्दा करते । धोखा देनेवाले धर्मकी ध्वजा धारण करके साधुओंको ठगते ॥ २९ ॥

---

(१) जो ब्राह्मण " वृद्धि " अर्थात् व्याजके धनसे जीविका निर्वाह करता है वह अत्यंत पापी है । विपत्तिके समय वृद्धि प्रयोगकी विधि थी तो, परंतु ब्राह्मण और क्षत्रीके लिये निषिद्ध थी । यद्यपि मनुके दशवें अध्यायके १७ श्लोकमें-" ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्धिं नैव प्रयोजयेत् " विधि साधारणतः नियत है और फिर थोडे सूदसे रुपयेके उधार देनेकी विधि लिखी है, तथापि वह घृणाकर है । यहांपर ' वार्धुषिक ' शब्द उनहींके लिये लिखा है जो सदाही सूद ग्रहण करते हैं ।

प्रतिग्रहरताः शूद्राः परस्वहरणादराः ।
द्वयोः स्वीकारमुद्वाहः शठे मैत्री वदान्यता ॥ ३० ॥
प्रतिदाने क्षमाऽशक्तौ विरक्तिः करणाक्षमे ।
वाचालत्वं च पाण्डित्ये यशोऽर्थे धर्म्मसेवनम् ॥ ३१ ॥

शूद्रलोग दानका प्रतिग्रह और दूसरेका सर्वस्व हरण करलेते। पुरुष और नारी इन दोनोंकी सम्मति विवाहके नामसे गिनी जाने लगी । शठोंके साथ लोग मित्रता करते । (प्रतिदानके समय दानशीलताका परिचय देते,) अपराधीके अपराधका दंड देनेमें असमर्थ होनेपर क्षमा दिखाते और दुर्बलके प्रति विरक्ति प्रकट कियाकरते । बहुत बोलनेसे पंडित गिने जाते, यशके प्राप्त करनेकी आशासे धर्मका विचार करते ॥ ३० ॥ ३१ ॥

धनाढ्यत्वं च साधुत्वे दूरे नीरे च तीर्थता ।
सूत्रमात्रेण विप्रत्वं दण्डमात्रेण मस्करी ॥ ३२ ॥

धनवान् पुरुष साधु गिगेजाते और दूर देशका जल तीर्थ समझकर पूजा जानेलगा, ब्राह्मणका लक्षण केवल यज्ञोपवीत रहगया और दंडका धारण करना संन्यासीका चिह्न हुआ ॥ ३२ ॥

अल्पसस्या वसुमती नदी तीरेऽवरोपिता ।
स्त्रियो वेश्यालापसुखाः स्वपुंसा त्यक्तमानसाः ॥ ३३ ॥

पृथ्वी थोडासा अन्न देनेलगी, जल न रहनेके कारण नदियें किनारेपर बहनेवाली हुईं । स्त्रियें वेश्याकी समान बातें करके सुखको अनुभव करने लगीं, अपने पतिके ऊपर तिनका अनुराग नहीं रहा ॥ ३३ ॥

परान्नलोलुपा विप्राश्चण्डालगृहयाजकाः ।
स्त्रियो वैधव्यहीनाश्च स्वच्छन्दाचरणप्रियाः ॥ ३४ ॥

ब्राह्मणलोग पराये अन्नके लिये ललचायकर चण्डालोंके यहां पुरोहिताई और पाधाई करनेलगे । स्त्रीजातिका विधवापन नहीं रहा, वह प्रिय समझकर स्वेच्छाचार करने लगीं ॥ ३४ ॥

चित्रवृष्टिकरा मेघा मन्दसस्या च मेदिनी ।
प्रजाभक्षा नृपा लोकाः करपीडाप्रपीडिताः ॥ ३५ ॥

बादलोंने विचित्र भावसे वर्षाका करना आरम्भ किया, (इस कारण) पृथ्वीपर नाजकी उपज मन्दी होगई । कलियुगके राजा प्रजाको भक्षण करने लगे, करके बोझसे प्रजा पीडित हुई ॥ ३५ ॥

स्कन्धे भारं करे पुत्रं कृत्वा क्षुब्धाः प्रजाजनाः ।
गिरिदुर्गं वनं घोरमाश्रयिष्यन्ति दुर्भगाः ॥ ३६ ॥

अभागी प्रजा अत्यन्त कातर हो कन्धेपर बोझा और हाथसे पुत्रको पकड दुर्गमपर्वत और गहन वनमें आश्रय ग्रहण करनेलगी ॥ ३६ ॥

मधुमांसैर्मूलफलैराहारैः प्राणधारिणः ।
एवं तु प्रथमे पादे कलेः कृष्णविनिन्दकाः ॥ ३७ ॥

मधु, मांस और फल मूल आहार करके उनकी जीविकाका निर्वाह होने लगा । कलियुगके प्रथम चरणमें मनुष्योंकी यह दशा हुई, तिस कालमें जन साधारण श्रीकृष्णजीकी निन्दा करने लगे ॥ ३७ ॥

द्वितीये तन्नामहीनास्तृतीये वर्णसङ्कराः ।
एकवर्णाश्चतुर्थे च विस्मृताच्युतसत्क्रियाः ॥ ३८ ॥

परन्तु कलिके दूसरे चरणमें लोग श्रीकृष्णजीके नामकाभी उच्चारण नहीं करते । कलिके तीसरे चरणमें वर्णसङ्करकी उत्पत्ति हुई । कलियुगके चौथे चरणमें मनुष्य जातिका एक वर्ण होगया और विष्णुजीकी आराधना भुलादी गई ॥ ३८ ॥

निःस्वाध्याय-स्वधा-स्वाहा वौषडोंकारवर्जिताः ।
देवाः सर्वे निराहारा ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ३९ ॥

स्वाध्याय और स्वधा, स्वाहा, वषट् व ओंकारादि अन्तर्हित हुए इस

कारण समस्त देवता आहाररहित होगये (१) वह उपायहीन हो ब्रह्माकी शरण ग्रहण करते हुए ॥ ३९ ॥

धरित्रीमग्रतः कृत्वा क्षीणां दीनां मनस्विनीम् ।
ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं वेदध्वनिनिनादितम् ॥ ४० ॥

देवता लोग दुर्बल दीन और श्रेष्ठ चिन्ता करनेवाली पृथ्वीको आगे करके ब्रह्मलोकमें गये । तहांपर देखा कि ब्रह्मलोक वेदके गानसे शब्दायमान हो रहाहै ॥ ४० ॥

यज्ञधूमैः समाकीर्णं मुनिवर्य्यनिषेवितम् ।
सुवर्णवेदिकामध्ये दक्षिणावर्त्तमुज्ज्वलम् ॥ ४१ ॥
वह्नियूपांकितोद्यान-वन-पुष्प-फलान्वितम् ।
सरोभिः सारसैर्हंसैराह्वयन्तमिवातिथिम् ॥ ४२ ॥
वायुलोललताजालकुसुमालिकुलाकुलैः ।
प्रणामाह्वान-सत्कार-मधुरालापवीक्षणैः ॥ ४३ ॥

चारों ओर यज्ञका धुंआ उठ रहाहै, महर्षि लोग बैठे हुएहैं । सुवर्णकी वेदीके बीचमें प्रकाशित, दक्षिणावर्त्त नामक (२) अग्नि जल रहाहै, बगीचोंमें फूल, फल और जल विराजमान हो रहाहै, तहांपर यज्ञके खंभ खडेहुए हैं । उस स्थानमें भँवरे फूली हुई लतामेंसे शहतको पीरहे थे, पवनके झोकेसे वे उडने लगे, सरोवरमें सारस और हंस तिससे आकुल हो

---

(१) याग यज्ञका अनुष्ठान करनेसे अग्निमें होम किया जाता है । उस समय इन्द्रादि देवताओंके लिये नाम लेकर आहुति देनेसे देवता लोग उस द्रव्यको भोजन करते हैं। कलिकालमें मनुष्योंके धर्म भ्रष्ट होनेसे याग यज्ञ रहित हुए। कोई द्रव्यदान नहीं करता इस कारण देवता तृप्त नहीं होते ।

(२) दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय यह तीन अग्नि हैं । आर्य लोग अग्निके उपासक थे । गृहस्थ सदाही बराबर जिस अग्निको घरमें रखते हैं, उसका नाम गार्हपत्य है । उस गार्हपत्य अग्निसे अथवा किसी यज्ञकी अग्निसे उद्धृत करके जिसको दक्षिणभागमें स्थापित किया जाता है तिसको दक्षिणाग्नि कहते हैं । अग्निसे उद्धृत करके होमके लिये जो अग्नि संस्कार किया जाता है तिसको आहवनीय कहते हैं । वैदिक समयमें इन तीनों अग्नियोंकी पूजा होती थी । अबभी यज्ञादिमें अग्निकी स्थापना की जाती है ।

चिल्ला रहे हैं; तिससे ऐसा जान पडता है मानो सरोवर हंस और सारसके शब्दके छलसे पथिक लोगोंको पुकारता हुआ प्रणाम, आह्वान, सत्कार, मीठी बातचीत करके देखता है ॥ ४१–४३ ॥

तद्ब्रह्मसदनं देवाः सेश्वराः क्लिन्नमानसाः ।
विविशुस्तदनुज्ञाता निजकार्य्यं निवेदितुम् ॥ ४४ ॥

उन देवता लोगोंने जिनके हृदय शोकाकुल हो रहेथे, और देवताओंके स्वामी इन्द्रने ब्रह्माजीकी अनुमतिके अनुसार अपना दुःख निवेदन करनेके लिये उस ब्रह्मभवनमें प्रवेश किया ॥ ४४ ॥

त्रिभुवनजनकं सदासनस्थं सनक-सनन्दन-सनातनैश्च सिद्धैः ।
परिसेवितपादकमलं ब्रह्माणं देवता नेमुः ॥ ४५ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये कलिविवरणं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सनक, सनन्दन, सनातनादि सिद्ध महर्षिलोग जिनके चरणकमलकी आराधना करते हैं––

दोहा–योगासन आसीन प्रभु, त्रिभुवन कारणकाम ।
ता विधिको सब विबुधगण, लगे करण प्रणाम ॥ ४५ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां भविष्ये कलिविवरणं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

प्रथमांशः ।

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सूत उवाच ।

उपविष्टास्ततो देवा ब्रह्मणो वचनात्पुरः ।
कलेर्दोषाद्धर्म्महानिं कथयामासुरादरात् ॥ १ ॥

सूतजी बोले–देवता, ब्रह्मभवनमें प्रवेश करके ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार उनके सन्मुख बैठे; और आदरसहित उनसे यह वृत्तान्त निवेदन करते हुए कि, कलिके दोषसे धर्मका नाश होरहाहै ॥ १ ॥

दवानां तद्वचः श्रुत्वा ब्रह्मा तानाह दुःखितान् ।
प्रसादयित्वा तं विष्णुं साधयिष्याम्यभीप्सितम् ॥ २ ॥

ब्रह्माजीने उनका यह वचन सुन व्याकुलहृदय हो देवताओंसे कहा कि "हम विष्णुजीकी आराधना करके तुम्हारी मनोकामनाको पूर्ण करेंगे" ॥ २ ॥

इति देवैः परिवृतो गत्वा गोलोकवासिनम् ।
स्तुत्वा प्राह पुरो ब्रह्मा देवानां हृदयेप्सितम् ॥ ३ ॥

वह यह कहकर देवताओंको साथ ले वैकुण्ठमें निवास करिवेवारे श्रीनारायणजीके निकट जातेभये और विष्णुजीकी आराधना करके देवताओंने उन नारायणजीसे अपने मनकी बात निवेदन करी ॥ ३ ॥

तच्छ्रुत्वा पुण्डरीकाक्षो ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ।
शम्भले विष्णुयशसो गृहे प्रादुर्भवाम्यहम् ॥
सुमत्यां मातरि विभो कन्यायां त्वन्निदेशतः ॥ ४ ॥

पद्मपलाशलोचन (कमलदलकी समान नेत्रवाले) मधुसूदन देवताओंकी प्रार्थनाको श्रवण कर कहते भये—" हे विभो ! मैं तुम्हारे कहे अनुसार शम्भलनगरके मध्य विष्णुयशके गृहमें सुमति नामक कन्याके गर्भसे जन्म ग्रहण करूंगा ॥ ४ ॥

चतुर्भिर्भ्रातृभिर्देव करिष्यामि कलिक्षयम् ।
भवन्तो बान्धवा देवाः स्वांशेनावतरिष्यथ ॥ ५ ॥

हे देव ! हम चारों भ्राता मिलकर कलिका संहार करेंगे । तुम सब जन हमारे बान्धव बन अपने २ अंशसे पृथ्वीपर अवतार लेंगे ॥ ५ ॥

इयं मम प्रिया लक्ष्मीः सिंहले संभविष्यति ।
बृहद्रथस्य भूपस्य कौमुद्यां कमलेक्षणा ॥
भार्य्यायां मम भार्य्यैषा पद्मानाम्नी जनिष्यति ॥ ६ ॥

यह हमारी परमप्यारी भार्या लक्ष्मीजी सिंहलदेशीय बृहद्रथ राजाकी कौमुदी नामक रानीके गर्भसे पद्मा नाम धारण करके जन्म लेगी ॥ ६ ॥

यात यूयं भुवं देवाः स्वांशावतरणे रताः ।
राजानौ मरुदेवापी स्थापयिष्याम्यहं भुवि ॥ ७ ॥

हे देवताओ ! तुम अपने २ अंशसे अवतार ले पृथ्वीपर जाओ । मैं मरु और देवापि नामक दो राजाओंको पृथ्वीपर स्थापित करता हूं ॥ ७ ॥

पुनः कृतयुगं कृत्वा धर्म्मान् संस्थाप्य पूर्ववत् ।
कलिव्यालं सन्निरस्य प्रयास्ये स्वालयं विभो ॥ ८ ॥

हे ब्रह्मन् ! मैं फिर सतयुगको उतारकर धर्मको स्थापन करूंगा, फिर कलिरूपी सर्पका नाश करके अपने धामको लौट आऊंगा " ॥ ८ ॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य ब्रह्मा देवगणैर्वृतः ।
जगाम ब्रह्मसदनं देवाश्च त्रिदिवं ययुः ॥ ९ ॥

भगवान् कमलानाथके यह वचन सुनकर देवताओंसे घिरे हुए ब्रह्माजी ब्रह्मलोकको जातेभये और देवतालोग स्वर्गको लौट आये ॥ ९ ॥

महिमां स्वस्य भगवान्निजजन्मकृतोद्यमः ।
विप्रर्षे शम्भलग्राममाविवेश परात्मकः ॥ १० ॥

हे विप्रर्षे ! परमात्मस्वरूप भगवान् विष्णुजी महिमाके बलसे जन्म लेनेके लिये उद्यत हो शम्भलग्राममें प्रवेश करते हुए ॥ १० ॥

सुमत्यां विष्णुयशसा गर्भमाधत्त वैष्णवम् ।
ग्रह-नक्षत्र-राश्यादि-सेवितश्रीपदाम्बुजम् ॥ ११ ॥

उन्होंने विष्णुयशाके औरससे सुमतिके गर्भमें वैष्णवगर्भका आधान किया, ग्रह नक्षत्र और राशि आदि उन (गर्भस्थभ्रूणरूप विष्णु) के चरण-कमलकी सेवा करने लगे ॥ ११ ॥

सरित्समुद्रा गिरयो लोकाः सस्थाणुजङ्गमाः ।
सहर्षा ऋषयो देवा जाते विष्णौ जगत्पतौ ॥ १२ ॥

जगत्के स्वामी श्रीपतिने जब (मानवगर्भमें) जन्म लिया तब नद, नदी, सागर, भूधर (पर्वत) आदि स्थावर जंगम सब लोक और महर्षिगण अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ १२ ॥

बभूवुः सर्व्वसत्त्वानामानन्दा विविधाश्रयाः ।
नृत्यन्ति पितरो हृष्टास्तुष्टा देवा जगुर्यशः ॥ १३ ॥

सम्पूर्ण जीवहि अनेक प्रकारसे आनन्दको प्रगट करनेलगे । पितृलोग मारे आनन्दके नृत्य करने लगे, सन्तुष्ट होकर देवतालोग विष्णुजीका यश गाने लगे ॥ १३ ॥

चक्रुर्वाद्यानि गन्धर्व्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ १४ ॥

गन्धर्वलोक बाजा बजाने लगे, अप्सराओंने नाचना आरम्भ किया॥ १४॥

द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य माधवे मासि माधवम् ।
जातं ददृशतुः पुत्रं पितरौ हृष्टमानसौ ॥ १५ ॥

वैशाखमासमें शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिके दिन माधवने (मनुष्यरूपसे) पृथ्वीपर अवतार लिया । उनके पिता विष्णुयशाने और माता सुमतिने पुलकित हृदयसे पुत्रको देखा ॥ १५ ॥

धातृमाता महाषष्ठी नाभिच्छेत्री तदम्बिका ।
गङ्गोदकक्लेदमोक्षा सावित्री मार्ज्जनोद्यता ॥ १६ ॥

महाषष्ठी (१) विष्णुजीकी धात्री हुई और भगवती अम्बिका (२) ने उनके नालको काटा । भगवती भागीरथी (३) ने अपने जलसे

(१) दुर्गा देवीकी एक मूर्त्तिका नाम है। महाषष्ठी बालकोंकी रक्षा करती है। योगिनीतंत्रमें- "महाषष्ठीरूपेण बालकं रक्ष रक्ष-" इत्यादि महाषष्ठीके कवच मंत्रसे इसका प्रमाण मिलता है।

(२) दुर्गाका एक नाम है।

(३) विष्णुजीके चरणकमलसे उत्पन्न होकर गंगाजी पृथ्वीपर प्रगट हुई थीं । सूर्यवंशमें सगर नामक एक राजा हुआ, वह सदा बहुतसे अश्वमेध यज्ञ किया करता था । इन्द्रने देखा कि, यह राजा यज्ञोंके फलसे इन्द्रासनका अधिकारी हा जायगा इस कारण पिछला यज्ञ विगाडनेको इन्द्रने यज्ञीय तुरंगको चुरालिया । सगरके ६०००० पुत्रोंने बहुतेरा खोजा परन्तु अश्वका पता न लगा, फिर इन सब पुत्रोंने पृथ्वी खोदकर पातालमें जाकर देखा कि, एक तेजस्वी ऋषिके निकट यज्ञका घोडा बँधा है, इन्द्रजीने वह घोडा चुराकर पातालमें महर्षि कपिलके निकट बाँध दिया था । सगरके पुत्र कपिलदेवजीके प्रभावको नहीं जानते थे इस कारण उनको साधारण चोर समझकर बुरा भला कहने लगे । तब महर्षिजीका ध्यान छूट गया, उन्होंने क्रोधित हो अपने नेत्रोंकी अग्निसे सगरके साठ हजार पुत्रोंको भस्म कर दिया। फिर कालक्रमसे सगरवंशमें भगीरथ नाम एक कुमार उत्पन्न हुआ । कपिलजीके शापसे भस्म हुए अपने पूर्वजोंका उद्धार करनेको भगीरथने महातप करके गंगाजीको पृथ्वीपर उतारा । भगीरथ गंगाजीको लाये थे, इसी कारण इनका नाम भागीरथी हुआ ॥

(मनुष्यरूपी हरिके) गर्भ क्लेदको दूर किया, सावित्री (१) देवी उनके गात्रको मार्जन करनेका उद्योग करने लगीं ॥ १६ ॥

तस्य विष्णोरनन्तस्य वसुधाऽधात्पयःसुधाम् ।
मातृका माङ्गल्यवचः कृष्णजन्मदिने यथा ॥ १७ ॥

जिस दिन भगवान् विष्णुजीने कृष्णरूपसे अवतार लियाथा, उसही दिनके समान जब अनन्तरूप विष्णुजीने कल्कि अवतार धारण किया, तब भगवती वसुमती (पृथ्वी) ने दुग्धरूप सुधाधारा धारण की, मातृका नामक देवी (२) उनको मंगलकारी आशीर्वाद देने लगी ॥ १७ ॥

ब्रह्मा तदुपधार्य्याशु स्वाशुगं प्राह सेवकम् ।
याहीति सूतिकागारं गत्वा विष्णुं प्रबोधय ॥ १८ ॥

इस विषयको जानकर (कि विष्णुजीने चतुर्भुजरूपसे शम्भलग्राममें अवतार लिया है) ब्रह्माजीने शीघ्र चलनेवाले अपने सेवक पवनको आज्ञा दी कि " हे पवन ! तुम विष्णुजीके सौरी गृहमें जाओ और विष्णुजीसे कह आओ कि ॥ १८ ॥

चतुर्भुजमिदं रूपं देवानामपि दुर्लभम् ।
त्यक्त्वा मानुषवद्रूपं कुरु नाथ विचारितम् ॥ १९ ॥

---

(१) सावित्री सन्ध्याकी मूर्त्तिका नाम है ॥ व्यासजी कहते हैं-
गायत्री नाम पूर्वाह्णे सावित्री मध्यमे दिने । सरस्वती च सायाह्ने सैव सन्ध्या त्रिधा स्मृता ॥
पूर्वाह्णमें सन्ध्याकी मूर्त्ति गायत्री है, मध्याह्नमें सावित्री और सायाह्नमें सरस्वती है । तीन समयमें सन्ध्याके यह तीन रूप कहे गये । संध्याकी मध्याह्न मूर्ति, सविताकी (सूर्यकी) द्योतक है, इसीलिये मध्याह्नमूर्तिका नाम सावित्री हुआहै । यथा;-
सवितृद्योतनात्सैव सावित्री परिकीर्तिता ॥ (व्यासः)
द्विजातियोंके लिये सन्ध्या है, तिसके मन्त्रमें सावित्रीकी मूर्तिका वर्णन है ॥
मध्याह्ने विष्णुरूपां च तार्क्ष्यस्थां पीतवाससीम् । युवतीं च यजुर्वेदां सूर्यमंडलसंस्थिताम् ॥

(२) मार्कण्डेय पुराणमें लिखा है कि, जब चण्डीमूर्त्ति भगवतीने युद्ध किया, तब ब्रह्मा, महादेव, कार्त्तिकेय, विष्णु और इन्द्रकी शक्तियें इन देवताओंके शरीरसे निकलकर चंडिकाजीके पीछे हुईं । ब्रह्माकी शक्ति ब्रह्माणी, शिवकी माहेश्वरी, विष्णुजीके वाराह अवतारकी शक्ति वाराही, नृसिंह मूर्त्तिकी शक्ति नारसिंही और इन्द्रकी शक्ति ऐन्द्री, यह सब चलीं । यह मातृका नामसे प्रसिद्ध हैं और देवताओंमें गिनी जाती हैं । वाराहपुराणमें मातृकाओंकी उत्पत्तिका वृत्तान्त विस्तारसे लिखाहै ।

हे नाथ ! आपकी चतुर्भुज मूर्तिका दर्शन पाना देवताओंके लिये भी सुलभ (सरल) नहीं है; इस कारण चतुर्भुज मूर्तिको छोडकर, साधारण मनुष्यकी समान मूर्ति धारण करलेनेसे विचार ठीक होगा " ॥ १९ ॥

इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा पवनः सुरभिः सुखम् ।
सशीतः प्राह तरसा ब्रह्मणो वचनादृतः ॥ २० ॥

शीतल सुरभि पवनने यत्नके सहित, ब्रह्माजीके यह वचन सुनकर शीघ्र (विष्णुजीसे) तिनको निवेदन किया ॥ २० ॥

तच्छ्रुत्वा पुण्डरीकाक्षस्तत्क्षणाद्द्विभुजोऽभवत् ।
तदा तात्पितरौ दृष्ट्वा विस्मयापन्नमानसौ ॥ २१ ॥

ब्रह्माजीके कहनेके अनुसार विष्णुजीने तत्काल दो भुजावाली मूर्तिको धारण किया । उस समयमें (चार भुजावाले पुत्रको दो भुजावाला होता देखकर) तिनके पिता माताका हृदय विस्मयरससे भरगया ॥ २१ ॥

भ्रमसंस्कारवत्तत्र मेनाते तस्य मायया ।
ततस्तु शम्भलग्रामे सोत्सवा जीवजातयः ॥
मंगलाचारबहुलाः पापतापविवर्जिताः ॥ २२ ॥

परन्तु उन्होंने विष्णुजीके मायासे मोहित होकर अपने मनमें समझा कि, हमने भ्रमके वशसे दो भुजावाले पुत्रको चारभुजावाला देखा था । इसके उपरान्त सब जीवोंने शम्भलग्राममें उत्सव करना आरंभ किया; तिनके पाप ताप लोप होगये । सबही अनेक प्रकारके मंगल करने लगे ॥ २२ ॥

सुमतिस्तं सुतं लब्ध्वा विष्णुं जिष्णुं जगत्पतिम् ।
पूर्णकामा विप्रमुख्यानाहूयादाद्गवां शतम् ॥ २३ ॥

उन जगत्पति जिष्णु विष्णुजीको पुत्र पायकर सुमति चरितार्थ हुई । सुमतिने ब्राह्मणोंको नेवता देकर सौ गायें दान दीं ॥ २३ ॥

हरेः कल्याणकृद्विष्णुयशाः शुद्धेन चेतसा ।
सामर्ग्यजुर्भिर्द्विजाग्र्यैस्तन्नामकरणे रतः ॥ २४ ॥

नारायणजीका कल्याण चाहनेकी कामनासे शुद्ध हृदयसे ऋक्, यजु, और सामवेदके जाननेवाले प्रधान २ ब्राह्मणोंसे उनके नामकरणका उद्योग कराया ॥ २४ ॥

तदा रामः कृपो व्यासो द्रौणिर्भिक्षुशरीरिणः ।
समायाता हरिं द्रष्टुं बालकत्वमुपागतम् ॥ २५ ॥

उस काल परशुराम (१) और कृपाचार्य (२),

---

(१) परशुराम भगवान्का १६ वां अवतार है । भागवतके दूसरे स्कन्धके दूसरे अध्यायमें कहा है—

अवतारे षोडशमे पश्यन्ब्रह्मद्रुहो नृपान् । त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ॥

कालिकापुराणके ८५ अध्यायमें वर्णन है कि, महातपस्वी जमदग्निजीने स्वयं जीतकर विदर्भराजकी पुत्री रेणुकासे विवाह किया । उनके रुमण्वान्, सुषेण, विश्व और विश्वावसु नामक चार पुत्र हुए । एक समय समस्त देवताओंने कार्त्तवीर्यका वध करनेको विष्णुजीकी प्रार्थना की । उनकी प्रार्थना स्वीकार करके भगवान्ने जमदग्निके औरससे रेणुकाके गर्भमें जन्म लिया । उनहीके साथ एक सहज कुठार (परशा) उत्पन्न हुआ । इस परशुको परशुरामजीने कभी नहीं छोडा । माता क्षत्राणी और पिताके तपस्वी ब्राह्मण होनेसे परशुरामजीमें दोनों धर्म वर्त्तमानथे । ब्राह्मणके समान तपस्वी, वेदवित् और क्षत्रीकी समान शस्त्रपारदर्शी और वीरधर्मवाले हुए थे, इन्होंने पिताजीकी आज्ञासे परम पूजनीय अपनी माताका भी शिर काट डाला था । यह अमर हैं ।

(२) महर्षि गौतमजीके शरद्वान् नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ । उसके साथही धनुष बाणभी प्रसूत हुआथा । शरद्वान् वेदको तो ऐसा बहुत नहीं जानताथा, परन्तु धनुर्वेदमें भली भाँति उसकी चतुरता देखी जातीथी । उसने तप करके अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र पाये उसकी धनुर्विद्या और तपकी शक्तिको देखकर इन्द्र अत्यन्त भीत हुआ और समाधि डिगानेको जानपदी नामक देवताओंकी कन्या पठाई । शरद्वान्के आश्रममें आयकर जानपदी उनको लुभाने लगी; उस एकवसना सुन्दरीको देखकर शरद्वान् मोहित हुए । उनके हाथसे बाणसहित धनुष छूटकर पृथ्वीपर गिरपडा । धीरताके छूट जानेकी शंकासे वह उस आश्रमको, अप्सराके हाथसे छूटे हुए धनुषबाणको और मृगचर्मको छोडकर वहांसे चले आये । जानपदीको देखकर उनका वीर्य गिरगयाथा, परन्तु उन्होंने जाना नहीं । उस अमोघ वीर्यसे एक जोडा बालक उत्पन्न हुआ । राजा शान्तनु शिकार खेलनेके लिये वनमें आये थे । उनके एक सेवकने वनमें धनुषबाण और मृगचर्मको निहार निकट आनकर देखा कि, वहां बालकोंका एक जोडा है । राजा शान्तनु यह समाचार पाय इन बालकोंको अपनी राजधानीमें ले गये और पुत्रकी समान लालन पालन करने लगे । कृपाकरके ले आयेथे इसलिये कृपनाम रक्खा । तहांपर धनुर्वेद और अनेक शास्त्रोंमें पारदर्शी हो कृपने आचार्यकी पदवीको पाया । कुरुक्षेत्रके युद्धमें कृपाचार्य कौरवोंकी ओर थे । महाभारतके आदिपर्वमें १३० अध्यायके मध्यमें इनका वृत्तान्त विस्तारसे लिखा है । भागवतके ९ वें स्कन्ध २१ अध्यायमें भी कृपाचार्यका वृत्तान्त लिखा है ॥

अश्वत्थामा (१) और व्यासजी भिखारीका रूप धारण करके बालकरूपी विष्णुजीके देखनेको (विष्णुयशाके घरपर) आये ॥ २५ ॥

तानागतान्समालोक्य चतुरः सूर्य्यसन्निभान् ।
हृष्टरोमा द्विजवरः पूजयाञ्चक्र ईश्वरान् ॥ २६ ॥

ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ विष्णुयशाने सूर्यके समान तेजस्वी प्रधान चार पाहुनोंको देखकर उनकी पूजा की । विष्णुयशाके रोमांच हो आया ॥ २६ ॥

पूजितास्ते स्वासनेषु संविष्टाः स्वसुखाश्रयाः ।
हरिं क्रोडगतं तस्य ददृशुः सर्व्वमूर्त्तयः ॥ २७ ॥

सर्व मूर्त्तियोंके धारणकरनेकी सामर्थ्य रखनेवाले महर्षियोंने पूजित हो सुखसहित अपने २ आसनपर बैठकर देखा कि, भगवान् हरि पिताजीकी गोदीमें हैं ॥ २७ ॥

तं बालकं नराकारं विष्णुं नत्वा मुनीश्वराः ।
कल्किं कल्कविनाशार्थमाविर्भूतं विदुर्बुधाः ॥ २८ ॥

शास्त्रके जाननेवाले महर्षियोंने नरमूर्त्ति बालक विष्णुजीको देखकर प्रणाम किया और समझगये कि, इन्होंने (पृथ्वीके) कलंकका नाश करनेके लिये कल्किरूपसे अवतार लिया है ॥ २८ ॥

नामाकुर्व्वंस्ततस्तस्य कल्किरित्यभिविश्रुतम् ।
कृत्वा संस्कारकर्म्माणि ययुस्ते हृष्टमानसाः ॥ २९ ॥

उन्होंने इसी कारणसे और नाम न रखकर तिनका विख्यात कल्किनाम रक्खा और विधिपूर्वक जातकर्मसंस्कार करके प्रसन्न हो वहांसे चले गये १९॥

---

(१) द्रोणाचार्यका पुत्र, भारतप्रसिद्ध वीरविशेष । महाभारतके आदिपर्वमें कहा है- शारद्वतीं ततो भार्यां कृपीं द्रोणोऽन्वविन्दत । अग्निहोत्रे च धर्मे च दमे च सततं रताम् ॥ अलभद्गौतमी पुत्रमश्वत्थामानमेव च । स जातमात्रो व्यनदद्यथैवोच्चैश्श्रवा हयः ॥ तच्छ्रुत्वाऽन्तर्हितं भूतमन्तरिक्षस्थमब्रवीत् । अश्वस्येवास्य गमनं नदतः प्रदिशो गतम् ॥ अश्वत्थामैव बालोऽयं तस्मान्नाम्ना भविष्यति ॥ (१३० अध्याय ।)

इसका भावार्थ यह है,-द्रोणके औरससे कृपीके गर्भमें अश्वत्थामाका जन्म हुआ । जन्मके समय यह उच्चैःश्रवाकी समान हिनहिनाया । तब आकाशवाणी हुई कि, इस अश्वके समान विक्रमवाले बालकका नाम अश्वत्थामा होवै तबसे द्रोणाचर्यके पुत्रका नाम अश्वत्थामा हुआ । यह चिरंजीवी हैं ॥

ततः स ववृधे तत्र सुमत्या परिपालितः ।
कालेनाल्पेन कंसारिः शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ ३० ॥

संस्कार होनेके पीछे कंसारि हरि सुमतिके लालन पालन करनेसे कालके क्रमसे ऐसे बढने लगे जैसे शुक्लपक्षका चंद्रमा ॥ ३० ॥

कल्केर्ज्येष्ठास्त्रयः शूराः कविप्राज्ञसुमन्त्रकाः ।
पितृमातृप्रियकरा गुरुविप्रप्रतिष्ठिताः ॥ ३१ ॥
कल्केरंशाः पुरो जाताः साधवो धर्म्मतत्पराः ।
गार्ग्यभर्ग्यविशालाद्या ज्ञातयस्तदनुव्रताः ॥ ३२ ॥

इन कल्किजीके जन्मसे पहले इनके तीन भ्राता और उत्पन्न होचुकेथे जिनके नाम कवि, प्राज्ञ और सुमंत्रक थे। यहभी मातापिताके प्रियकारी, ब्राह्मण और गुरुकी प्रतिष्ठाके भाजन थे। धर्ममें तत्पर गार्ग्य, भर्ग्य और विशालादिने जो कि, कल्किजीके अनुगत और साधुथे इन्होंने हरिके अंशसे कल्किजीके वंशमें तिनकी (हरिकी) जातिके मध्य जन्म लिया था ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

विशाखयूपभूपालपालितास्तापवर्ज्जिताः ।
ब्राह्मणाः कल्किमालोक्य परां प्रीतिमुपागताः ॥ ३३ ॥

इस विशाखयूप राजाने उनका प्रतिपालन कियाथा, वह ब्राह्मणलोग कल्किजीको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए, तिनका शोक ताप लोपहोगया ३३॥

ततो विष्णुयशाः पुत्रं धीरं सर्व्वगुणाकरम् ।
कल्किं कमलपत्राक्षं प्रोवाच पठनादृतम् ॥ ३४ ॥

कुछ कालके पीछे धीरचरित, सर्वगुणशाली, कमलदलके समान नेत्रवाले पुत्रको विद्या पढनेके योग्य देखकर विष्णुयशाने कहा ॥ ३४ ॥

तात ते ब्रह्मसंस्कारं यज्ञसूत्रमनुत्तमम् ।
सावित्रीं वाचयिष्यामि ततो वेदान्पठिष्यसि ॥ ३५ ॥

"हे तात ! मैं तुम्हारा यज्ञसूत्ररूप प्रधान ब्रह्मसंस्कार करूंगा फिर तुम चारों वेद पढियो " ॥ ३५ ॥

कल्किरुवाच ।

को वेदः का च सावित्री केन सूत्रेण संस्कृताः ।
ब्राह्मणा विदिता लोके तत्तत्त्वं वद तात माम् ॥ ३६ ॥

कल्किजी बोले—हे पिता ! वेद क्या है ? सावित्री क्या है ? किस प्रकारके सूत्रसे संस्कारित होनेपर मनुष्य संसारमें ब्राह्मण नामसे विदित होताहै; सो हमसे कहो ॥ ३६ ॥

पितोवाच ।

वेदो हरेर्वाक् सावित्री वेदमाता प्रतिष्ठिता ।
त्रिगुणं च त्रिवृत्सूत्रं तेन विप्राः प्रतिष्ठिताः ॥ ३७ ॥

कल्किजीके पिता बोले—हरिका वाक्यही वेद है, उस वेदकी प्रतिष्ठा करनेवाली जननी सावित्री है । तिगुने सूत्रको तिगुना करके पहरनेसे विप्र नामसे विदित होताहै ॥ ३७ ॥

दशयज्ञैः संस्कृता ये ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ।
तत्र वेदाश्च लोकानां त्रयाणामिह पोषकाः ॥ ३८ ॥

जिन ब्राह्मणोंके दशविध संस्कार होगये हैं; उन वेदवादी ब्राह्मणोंके (निकट) त्रिलोकीकें रक्षा करनेवाले वेद रक्षित होते हैं ॥ ३८ ॥

यज्ञाध्ययनदानादितपःस्वाध्यायसंयमैः ।
प्रीणयन्ति हरिं भक्त्या वेदतन्त्रविधानतः ॥ ३९ ॥

वह वेद और तंत्र शास्त्रकी विधिके अनुसार यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, स्वाध्याय और संयमादिसे भक्तिपूर्वक विष्णुजीको प्रसन्न करते हैं ॥ ३९ ॥

तस्माद्यथोपनयनकर्म्मणाऽहं द्विजैः सह ।
संस्कर्त्तुं बान्धवजनैस्त्वामिच्छामि शुभे दिने ॥ ४० ॥

मैंने इसी कारणसे ब्राह्मण और कुटुम्बवालोंके साथ मिलकर शुभदिनमें तुम्हारे उपयुक्त उपनयन संस्कार करनेका अभिलाष किया है ॥ ४० ॥

पुत्र उवाच ।

के च ते दश संस्कारा ब्राह्मणेषु प्रतिष्ठिताः ।
ब्राह्मणाः केन वा विष्णुमर्च्चयन्ति विधानतः ॥ ४१ ॥

कल्किजी बोले–ब्राह्मणके लिये जो दश संस्कार (१) कहे हैं, वह दशविध संस्कार क्या है ? और ब्राह्मणलोग कैसे विधानसे विष्णुजीकी आराधना करते हैं ॥ ४१ ॥

पितोवाच ।

ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातो गर्भाधानादिसंस्कृतः ।
सन्ध्यात्रयेण सावित्रीपूजा-जप-परायणः ॥ ४२ ॥

जिसने ब्राह्मणके औरससे ब्राह्मणीके गर्भमें जन्म लियाहै, फिर जिसके गर्भाधानादि संस्कार हुए हैं, जो त्रिसन्ध्यामें सावित्रीका जप और पूजाका अनुष्ठान करताहै ॥ ४२ ॥

---

(१) प्रथम विवाह; ब्रह्मचर्य पालन और विद्या पढनेक उपरान्त विवाहसंस्कार होता था । दूसरा गर्भाधान; विवाहके पीछे शास्त्रकी विधिके अनुसार मंत्रसम्मत अनुष्ठानके साथ, विवाहिता स्त्रीसे सहवास करके गर्भसंचार किया जाता है । गर्भसंचारके पहले ऐसा जो अनुष्ठान विहित है तिसको गर्भाधान कहते हैं । तीसरा पुंसवन;–जब गर्भ तीन मासका होजाता है तब गर्भस्पन्दनके पहले यह मंगलकार्य किया जाता है । चौथा सीमन्तोन्नयन;–गर्भके चौथ, छठे अथवा आठवें मासके मध्यमें यह संस्कार करना चाहिये । पांचवाँ जातकर्म;–सन्तानके उत्पन्न होनपर पिता शास्त्रकी विधिके अनुसार विधिपूर्वक जो कार्य करताहै तिसका नाम जातकर्म है । छठा नामकरण;–पुत्रका नाम रखना । शास्त्रमें किस जातिका कैसा अर्थ सूचक नाम रखना चाहिये, सोभी लिखाहै । सातवां अन्नप्राशन;–पुत्रको अन्नका भोजन कराया जाता है । अबतक यह संस्कार सनातनधर्मावलम्बियोंमें दृढ है । आठवां चूडाकरण–अन्नप्राशनके पीछे बालकके मस्तकपर वर्णके अनुसार केश रक्खे जाते हैं और इस अवसरपर यज्ञभी होताथा । इस उत्सवका उद्देश चूडा अर्थात् शिखाकी रचना, इस कारण यह चूडाकरणके नामसे प्रसिद्ध हुआ । नववां उपनयन,–विधिपूर्वक यज्ञादि करके यज्ञोपवीत देनेका नाम उपनयन है । विना इस संस्कारके हुए ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य जातिमें नहीं गिने जाते । उपनयनके पीछे इनकी द्विजसंज्ञा होतीहै । अर्थात् एकवार मनुष्यरूप जन्म हुआथा, फिर वर्ण रूप जन्म हुआ । दशम समावर्त्तन;–उपनयनके पीछे ब्रह्मचर्य अवलम्बन करके गुरुके यहां विद्या पढनी होतीथी, फिर गुरुके यहांसे आकर गृहस्थाश्रमका पालन करना पडताथा, गुरुगृहसे लौट आनेके अवसरपर जो संस्कार होताथा, तिसको समावर्त्तन कहते हैं॥

तपस्वी सत्यवाग्धीरो धर्मात्मा त्राति संसृतिम् ।
विष्णवर्च्चनमिदं ज्ञात्वा सदानन्दमयो द्विजः ॥ ४३ ॥

जो तप करता है, जो सत्यवादी और धीर है; वह धर्मात्मा ब्राह्मण विष्णुजीकी इस पूजापद्धतिको जानकर सदा विमल आनन्द अनुभव करता है और संसारकी रक्षा करता है ॥ ४३ ॥

पुत्र उवाच ।

कुत्रास्ते स द्विजो येन तारयत्यखिलं जगत् ।
सन्मार्गेण हरिं प्रीणन् कामदोग्धा जगत्त्रये ॥ ४४ ॥

कल्किजी बोले—जो ब्राह्मण साधुमार्गमें चलकर हरिकी प्रसन्नता प्राप्त करता और त्रिलोकीका मनोरथ पूर्ण करता और समस्त भुवनका उद्धार करता है, ऐसा ब्राह्मण कहां रहता है ? ॥ ४४ ॥

पितोवाच ।

कलिना बलिना धर्म्मघातिना द्विजपातिना ।
निराकृता धर्म्मरता गता वर्षान्तरान्तरम् ॥ ४५ ॥

कल्किजीके पिता बोले;—बलवान् कलि सदा सनातनधर्मका नाश और ब्राह्मणोंकी हत्या करताहै; धर्ममें रत हुए ब्राह्मण लोक कलिके अत्याचारसे पीडित होकर दूसरे वर्षोंमें (१) चले गये हैं ॥ ४५ ॥

---

(१) पुराणोंमें भूगोलका वृत्तान्त है । पौराणिक भूगोलमें लिखा है कि, पृथ्वीमें सात-द्वीप हैं, एक एक द्वीपका विभाग एक एक वर्ष कहाताहै । जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर यह सात द्वीप हैं यथा—

जम्बूप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलिश्चापरो द्विज । कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः ॥
(विष्णुपुराण, २ अंश, २ अध्या० ५ श्लो०)

भारतवर्षमें जम्बूद्वीप है । यहांके वर्णनसे ऐसा ज्ञात होताहै कि, शम्भलग्राम सम्भवतः और अनुमानतः भारतवर्षका एक अंग है । बस इस उपलक्षमें " वर्षान्तरमें " ऐसा कहनेसे भारतवर्षके अतिरिक्त और कोई वर्ष समझना चाहिये । तिसके अनुसार जम्बूद्वीपका वर्ष विभाग होताहै—

भारतं प्रथमं वर्षं ततः किम्पुरुषं स्मृतम् । हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विज ॥
रम्यकं चोत्तरे वर्षं तस्यैवानु हिरण्मयम् । उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा ॥
(विष्णुपुराण, २ अंश, २ अ० १२, १३ श्लो०)

भारत, किम्पुरुष, हरि, रम्यक, हिरण्मय और कुरु, यह छः वर्ष जम्बूद्वीपके ६ अंश वा विभाग हैं ॥

ये स्वल्पतपसो विप्राः स्थिताः कलियुगान्तरे ।
शिश्नोदरभृतोऽधर्म्मनिरता विरतक्रियाः ॥ ४६ ॥

कलियुगमें जो कुछ थोडे तपवाले ब्राह्मण शेष रहे हैं, वह भी अधर्ममें निरत, उदरसेवा व इन्द्रियसुखमें व्याप्त होकर (जो ब्राह्मणोंको चाहिये) क्रियाका अनुष्ठान नहीं करते ॥ ४६ ॥

पापसारा दुराचारास्तेजोहीनाः कलाविह ।
आत्मानं रक्षितुं नैव शक्ताः शूद्रस्य सेवकाः ॥ ४७ ॥

इस कलिकालमें ब्राह्मणोंमें तेज नहीं है, सदाचार नहीं और अपनी रक्षा करनेकी शक्ति नहीं है, पापही उन लोगोंका सार हो गया है, वह शूद्रोंकी सेवा करते हैं ॥ ४७ ॥

इति जनकवचो निशम्य कल्किः कलिकुलनाशमनोऽभिलाषजन्मा ।
द्विजनिजवचनैस्तदोपनीतो गुरुकुलवासमुवास साधुनाथः ॥ ४८ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये कल्किजन्मोपनयनं नाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

पिताजीके ऐसे वचन सुनकर साधुओंमें श्रेष्ठ कल्किजीके मनमें कलिके कुलका नाश करनेकी अभिलाषा हुई । तब ब्राह्मणोंने अपने २ वचनके अनुसार उनका उपनयनसंस्कार किया । फिर कल्किजी गुरुकुलमें वास करनेको चले गये (१) ॥ ४८ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये बल० भाषाटी० कल्किजन्मोपनयनं
नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

(१) उपनयनसंस्कारके पीछे गुरुकुलमें वास करके ब्रह्मचर्य करनेका नियम था; यथा—
अथ ब्रह्मचारिणां गुरुकुले वासः ॥ (विष्णुस्मृति, २ अ० ।) ब्रह्मचारी गुरुकुलमें वास करे ।

लघुहारीतसंहितामें कहा है—

उपनीतो माणवको वसेद् गुरुकुलेषु वा । गुरोः कुले प्रियं कुर्यात्कर्मणा मनसा गिरा ।
(२ अ०)

अर्थात् जिस मनुष्यका उपनयन संकार होगया है, वह गुरुकुलमें वास करे और मन वचन कायसे गुरुकुलको प्रसन्न करे ।

गुरुकुलमें वास करना ब्रह्मचारीका अवश्य कर्त्तव्य कर्म है अथवा यह धर्ममें गिना जाता था समयके हेर फेरसे सबमें फेर पडगया ।

प्रथमांशः ।

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सूत उवाच ।

ततो वस्तुं गुरुकुले यान्तं कल्किं निरीक्ष्य सः ।
महेन्द्राद्रिस्थितो रामः समानीयाश्रमं प्रभुः ॥ १ ॥

* महेंद्रपर्वत पर रहनेवाले भगवान् परशुरामजीने देखा कि, कल्किजी गुरुकुलमें वास करनेके लिये जाते हैं । परशुरामजीने कल्किको अपने आश्रममें लायकर ॥ १ ॥

प्राह त्वां पाठयिष्यामि गुरुं मां विद्धि धर्म्मतः ।
भृगुवंशसमुत्पन्नं जामदग्न्यं महाप्रभुम् ॥ २ ॥
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञं धनुर्वेदविशारदम् ।
कृत्वां निःक्षत्रियां पृथ्वीं दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ॥ ३ ॥
महेंद्राद्रौ तपस्तप्तुमागतोऽहं द्विजात्मज ।
त्वं पठात्र निजं वेदं यच्चान्यच्छास्त्रमुत्तमम् ॥ ४ ॥

कहा कि, मैं तुम्हारा अध्यापक बनूंगा, मैंने भृगुवंशमें जमदग्निके औरससे जन्म ग्रहण किया है, वेदवेदाङ्गका तत्त्व जानताहूं, धनुर्वेदमें विशारद हुआहूं । हमको तुम धर्मके प्रमाणसे प्रभावशाली गुरु समझो ।

---

* महेन्द्रपर्वत । यह पर्वत भारतवर्षके सात कुलाचलेंमेंसे एक है । यथाः-
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः । विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥
(वि० पु० २ अं० ३ अ०)
" महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षवानपि । विन्ध्यश्च परियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥
(महा० भीष्म० ९ अ०)
महेन्द्रपर्वतसे त्रिमासा, ऋषिकुल्यादि नदियें उत्पन्न हुई हैं, यथा;-
त्रिमासा ऋषिकुल्याद्या महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः॥ (वि० पु० २ अं० ३ अ० ८)

पुरुषोत्तमक्षेत्रमें ऋषिकुल्या नामक एक नदी है । यह नदी गोन्दवन देशकी पर्वतमालासे उत्पन्न हुई है । इस स्थानसे महेन्द्रमाली नामक जो पर्वत श्रेणी विख्यात है, वही पौराणिक महेन्द्रपर्वत है । यह पर्वतमाला उडियाके उत्तर सरकारके गंजामसे गोन्दवन-तक फैली हुई है ।

हे ब्राह्मणकुमार ! मैंने सारी पृथ्वीको क्षत्रियहीन करके ब्राह्मणोंको दक्षिणामें देदी; तदुपरान्त तप करनेको महेन्द्रपर्वतपर आयाहूं । हे वत्स ! तुम यहां वेद पढो कि, जो ब्राह्मणको पढना उचित है या और जिस उत्तम शास्त्रको पढना चाहो उसे पढो ॥ २–४ ॥

इति तद्वच आश्रुत्य सम्प्रहृष्टतनूरुहः ।
कल्किः पुरो नमस्कृत्य वेदाधीती ततोऽभवत् ॥ ५ ॥

परशुरामजीके यह वचन सुनकर कल्किजी आनन्दसे पुलकित हुए और तिनको नमस्कार करके प्रथम वेद पढने लगे ॥ ५ ॥

सांगं चतुःषष्टिकलं धनुर्वेदादिकं च यत् ।
समधीत्य जामदग्न्यात्कल्किः प्राह कृताञ्जलिः ॥ ६ ॥

परशुरामजीसे चौंसठकला (१),

---

(१) पूर्वकालमें शिल्पविद्याको ' कला ' कहतेथे । ६४ कला हैं । १ गीत । २ वाद्य (बाजा) । ३ नाचना । ४ नाटय । ५ लेख्य । ६ विशेषकच्छेद्य;–चन्दन और कुंकुम आदिसे शरीरके चीतनेका रोजगार । ७ तण्डुल–कुसुम–बलिविकार;–पूजा और यज्ञादिके समय नैवेद्यादिकी रचना; फूल आदिके संस्थान करनेका व्यवसाय । ८ पुष्पास्तरण;–फूलोंकी सेज और फूलोंके गहने आदिका बनाना । ९ दशनवसनाङ्गराग;–दांत, वस्त्र और अंग रँगनेकी विद्या या व्यवसाय । १० मणिभूमिकर्म;–पत्थरसे मूर्ति आदिका बनाना, भास्कर विद्या । ११ शयनरचना;–खाट आदि शयनकी सामग्रीके बनानेका व्यवसाय । १२ उदक-वाद्य;–जलमें बाजा बजानेकी कौशल । कदाचित् कोई ऐसा बाजा होगा, जैसे आज-कल जलतरंग बजताहै । १३ उदकघात;–कहते हैं कि, दुर्योधन जलस्तम्भमें छिपा हुआथा, यह वही जलस्तम्भ बनानेकी कौशल है । १४ चित्रयोग;–बाजीगरी । १५ मालाग्रन्थन विकल्प;–माला गुंथनेकी विचित्रता और कौशल । १६ शेखरापीडयोजना;–शेखर (शिर-स्त्राण, टोपी) और तिसके भूषण बनानेकी रीति । १७ नेपथ्ययोग;–अभिनयका उद्योग करना, अभिनयके भूषणादि इस शिल्पके अंग हैं । १८ कर्णपत्र भंग;–पूर्वकालमें कामिनी-गण तिलक रचना करतीथीं, उनहींको यह विद्या सीखनी पडतीथी । १९ गन्धयुक्ति;–सुगन्धित वस्तुओंके बनानेकी रीति । २० भूषणयुक्ति;–गहने बनानेकी पद्धति । २१ इन्द्र-जाल;–जादूका तमाशा । २२ कोचुमारयोग;–जाल करनेका उपाय सीखना जालसाजी । २३ हस्तलाघव;–हाथकी सफाईसे किसी कामको दिखाकर कुछ पैदा करनेका मार्ग, कदा-चित् यहभी एक प्रकारकी बाजीगरी है । २४ चित्रभक्ष्यक्रिया;–चमत्कार और अनेक प्रका-रके खाद्यद्रव्य बनानेकी रीति । २५ पानकरसयोग;–आम आदि फलोंका आचार और सुरा आदि रसोंके बनानेकी रीति । २६ सूची–वयनकर्म;–दरजी और जुलाहेका पेशा । २७ सूत्रक्रीडा;–चालाकी करके डोरीसे पुतलीको नचाकर जीविका निर्वाह करना । २८ प्रहे-

लिका;–कहानी । २९ प्रतिमाला;–एक वस्तुके समान दूसरी वस्तुके बनानेकी चतुरता । ३० दुर्वचनयोग;–जिन वाक्योंके अर्थको सर्व साधारण नहीं समझसकते, उन वाक्योंके अर्थ करनेकी विद्या । ३१ पुस्तक वाचन;–अतिशीघ्र विलुप्त वर्णोंको मिलाकर पुस्तकका पढना, और अनेक प्रकारके अक्षरोंका पढसकना । ३२ नाटिकाख्यायिकाप्रदर्शन;–ज्ञात होता है कि, रासधारियोंकी समान कोई पेशा होगा । ३३ काव्यसमस्यापूरण;–काव्यके अथवा श्लोकके एक अंशको कहकर दूसरे सब अंशोंके पूरण करनेको कहना, तत्काल तिसके पूरण करनेकी सामर्थ्य वा विद्या । जैसे आजकल अम्बिकादत्तजी व्यास साहित्याचार्य और भारतमार्तण्ड आशुकवि श्रीगट्टूलालजी हैं । ३४ पट्टिकावरत्राबाणविकल्प;–पशुओंके साज बनाना और युद्धके अस्त्र बनानेकी विद्या । ३५ तर्कुकर्म;–भ्रमियंत्र (चरखा कातनेका तकुआ) और तिसकी सूक्ष्म शलाकाका नाम तर्कु (तकुआ) है, तिससे बहुतसे सूत बनते हैं । ३६ तक्षणक्रिया;–सूतकारके काम । ३७ वास्तु विद्या;–थवई, राजगिरी, घर तैयार करनेका काम, बृहत्संहितामें इसका भली भांति वर्णन है । ३८ रूपरत्नपरीक्षा;–हीरा आदि जवाहरातोंका और चांदी सोनेकी परीक्षाका काम । ३९ धातुवाद;–सुवर्णादि धातुओंसे स्वाद अलग करने और बनानेकी रीति । ४० मणिराग रंजन;–मणिके रंगकी परीक्षा और निर्मल करना । ४१ आकरविज्ञान;–आकर (खान) विषयके ज्ञानका होना । ४२ वृक्षायुर्वेद;–इसको उद्भिद विद्याकी पराकाष्ठा कहा जाता है, किस प्रकारसे वृक्षोंकी उन्नति होगी वृक्षायुर्वेदका यही उद्देश है । बृहत्संहिता देखो । ४३ मेष कुक्कुट लावक युद्ध विधि;–मेंढें, मुरगे और बटेर आदि जन्तुओंको परस्पर लडाकर जीविकाका उपाय करना । ४४ शुकसारिका पालन;–पक्षियोंको बोली सिखानेकी कौशल । ४५ उत्सादनकर्म;–चालाकीसे शत्रुके वासस्थानका नाश करना । ४६ केशमार्जनकौशल;–केशोंकी कारीगरी, यह कला आजकल नाई लोगोंपर है । ४७ अक्षरमुष्टिसंख्याकथन;–सांकेतिक लिपि पढनेकी विद्या । ४८ म्लेच्छतर्कविकल्प;–म्लेच्छ भाषा और म्लेच्छ शास्त्रके ज्ञानका होना । ४९ देशभाषा विज्ञान;–नानादेशीय भाषाओंका जानना । ५० पुष्पशाकटिकानिर्मितज्ञान;–इस समय इस विद्याका अर्थ या विषय नहीं जाना जा सकता । ५१ यन्त्रमातृका;–कलके कवजे बनानेकी विद्या । ५२ धारणमातृका;–कवच, पूजाकी सामग्री, कवचकी समान यंत्र और तंत्रमें कहे हुए यंत्रोंका बनाना । ५३ सम्पाद्यकर्म;–नकली मणिरत्नका बनाना और तिनके नकलीपनका निर्णय । ५४ मानसिककाव्यक्रिया;–मनका भाव आकार इशारेसे प्रकाश करनेकी विद्या । ५५ कोष छन्दोविज्ञान;–शब्दशास्त्र विद्या । ५६ क्रिया विकल्प अनेक उपायोंसे काम करना सीखना । ५७ छलितक योग;–दूसरेसे छल करनेकी चालाकी । यह भी एक प्रकारकी बाजीगरी है । ५८ वस्त्र गोपनक;–इसका अर्थ नहीं जाना-जाता । ५९ द्यूतप्रभेद;–अनेक प्रकारका जुआ खेलना । आकर्षण क्रीडा, इसके विषयको जाननेका उपाय नहीं है । ६१ बालक्रीडनक;–बच्चोंके लिये खिलौना बनानेकी रीति । ६२ वैयासकी विद्या । ६३ वैजयिकी विद्या । ६४ वैनायकी विद्या । इन तीन शिल्पोंका वृत्तान्त नहीं जाना जासकता ।

पंडित कालीवर वेदान्तवागीशने जो ६४ कलाका वर्णन लिखाहै और शुक्रनीति पुस्तकमें जो वृत्तान्त लिखा है, तिसके अनुसार यह विवरण लिखा गया है । शुक्रनीतिके ४ चतुर्थ अध्यायके तीसरे प्रकरणमें मधुसूदनसरस्वतीकृत महिम्नस्तोत्रकी हरिहरटीकामें और वात्स्यायनके कामसूत्रकी टीकामें ६४ कलाका वृत्तान्त लिखाहै ॥

साङ्ग (१) वेद और धनुर्वेद (२) पढकर उनको हाथ जोडकर बोले॥ ६॥

(१) ऋक्, यजुः, साम और अथर्व यह चार वेद इन चारोंके ६ अंग हैं। यथा,--
शिक्षा व्याकरणं कल्पो निरुक्तं ज्योतिषं तथा। छन्दः षडङ्गानीमानि वेदानां कीर्तितानि हि॥
(शुक्रनीति ४ अध्याय, तीसरा प्रकरण, २८ श्लोक)

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गणः। छन्दोविचितिरित्येतैः षडङ्गो वेद उच्यते॥
शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द यह ६ विषय वेदके अंग हैं॥

जिससे अकारादि वर्णमालाका उच्चारण स्थान और प्रयत्नका बोध होवै तिसको शिक्षा कहते हैं। कल्प, यागक्रियाका उपदेश करनेवाला शास्त्र है। जिससे साधुशब्दकी व्युत्पत्ति होती है सो व्याकरण है। निरुक्त पांच प्रकारके हैं यथा,--

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्॥

जिस शास्त्रमें ग्रहनक्षत्रोंकी गणना और संचार फलादिका विचार होता है तिसका नाम ज्योतिष है। श्रुतिविहित छन्दः छन्दोविचिति वा छन्द नामसे प्रसिद्ध है। नियमबद्ध, मात्रा वा ह्रस्व लघु स्वर विशिष्ट रचना छन्द या पद्य नाम कही है।

(२) धनुर्वेद। चार वेदोंके समान चार उपवेद हैं यथा,--आयुर्वेद (चिकित्सा शास्त्र) धनुर्वेद (युद्धशास्त्र) गान्धर्ववेद (संगीतशास्त्र) अर्थशास्त्र (व्यवहारशास्त्र)। भगवान् विश्वामित्रजी धनुर्वेद नामक उपवेदके बनानेवाले हैं। इस उपवेदके चार भाग हैं। तिसमें प्रथमपादका नाम दीक्षापाद, दूसरेका नाम संग्रहपाद, तीसरेका नाम सिद्धपाद और चौथेका नाम प्रयोगपाद है। दीक्षापादमें आयुधके लक्षण और अधिकार निरूपण। यह आयुधभी चार भागोंमें विभक्त है यथा मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त और यंत्रमुक्त। चक्रादिका नाम मुक्त है, खङ्गादि अमुक्त, शल्यादि मुक्तामुक्त और बाणादिका नाम यंत्रमुक्त है। जो मुक्त श्रेणीमें हैं तिनका नाम अस्त्र है; जो अमुक्त हैं तिनका नाम शस्त्र है। दूसरे पादमें सर्व प्रकारके शस्त्र तिस विद्यामें पारदर्शी गुरुके लक्षण और शस्त्रग्रहण करनेकी रीतिको दिखाया है। तीसरे पादमें शस्त्रग्रहण करनेके पीछे तिन सबका वारंवार अभ्यासादि कई कार्य नियत हैं। चौथे पादमें देवप्रसादलब्ध सिद्धास्त्रका प्रयोग वृत्तान्त है।

"आयुर्वेदो धनुर्वेदो गन्धर्ववेदोऽर्थशास्त्रं चेति चत्वार उपवेदाः। धनुर्वेदः पादचतुष्टयात्मको विश्वामित्रप्रणीतः। तत्र प्रथमो दीक्षापादः, द्वितीयः संग्रहपादः, तृतीयः सिद्धिपादः, चतुर्थः प्रयोगपादः। प्रथमे पादे धनुर्लक्षणमधिकारिनिरूपणं च कृतम्। अत्र धनुःशब्दश्चापे रूढोऽपि धनुर्विधायुधे प्रवर्तते। तच्चतुर्विधं मुक्तम्, अमुक्तं,मुक्तामुक्तं, यंत्रमुक्तं च। मुक्तं चक्रादि, अमुक्तं खङ्गादि, मुक्तामुक्तं शल्यावान्तरभेदादि, यंत्रमुक्तं शरादि। तत्र मुक्तमस्त्रमुच्यते, अमुक्तं शस्त्रमित्युच्यते। तदपि ब्राह्म–वैष्णव-पाशुपत-प्राजापत्याग्नेयादिभेदादनेकविधम्। एवं साधिदैवत्येषु समंत्रकेषु चतुर्विधायुधेषु येषामधिकारं क्षत्रियकुमाराणां तदनुयायिनां च ते सर्वे चतुर्विधाः पदातिरथगजतुरगारूढाः दीक्षाभिषेकशकुनमंगलकरणादिकं च सर्वमपि प्रथमे पादे निरूपितम्। सर्वेषां शस्त्रविशेषाणामाचार्यस्य च लक्षणपूर्वकं संग्रहणप्रकारो दर्शितो द्वितीयपादे। गुरुसम्प्रदायसिद्धानां शस्त्रविशेषाणां पुनःपुनरभ्यासो मंत्रदेवतासिद्धिकरणमपि निरूपितं तृतीयपादे। एवं देवतार्चनाभ्यासादिभिः सिद्धानामस्त्रविशेषाणां प्रयोगश्चतुर्थपादे निरूपितः।"

(मधुसूदनपंडितविरचित प्रस्थानभेद।)

दक्षिणां प्रार्थय विभो या देया तव सन्निधौ ।
यया मे सर्व्वसिद्धिः स्याद्या स्यात्त्वत्तोषकारिणी ॥ ७ ॥

हे गुरुदेव ! आपको जो दक्षिणा देनी होगी और जो दक्षिणा आपको प्रसन्न करसके; सो बताइये । तब हमारा समस्त प्रयोजन सिद्ध होगा ॥७॥

राम उवाच ।

ब्रह्मणा प्रार्थितो भूमन् कलिनिग्रहकारणात् ।
विष्णुः सर्व्वाश्रयः पूर्णः स जातः शम्भले भवान् ॥ ८ ॥

परशुरामजी बोले;—हे भूमन् ! भगवान् ब्रह्माजीने जो कलिका-निग्रह करनेके लिये सनातन पूर्णभगवान्के समीप प्रार्थना की थी, सो आप वही विष्णुजी शम्भलग्राममें जन्मे हैं ॥ ८ ॥

मत्तो विद्यां शिवादस्त्रं लब्ध्वा वेदमयं शुकम् ।
सिंहले च प्रियां पद्मां धर्म्मान् संस्थापयिष्यसि ॥ ९ ॥

आप हमसे विद्या, शिवजीसे अस्त्र, वेदमय शुक और सिंहल देशसे अपनी प्यारी भार्याको पायकर (संसारमें) धर्मका स्थापन करोगे ॥ ९ ॥

ततो दिग्विजये भूपान् धर्म्महीनान् कलिप्रियान् ।
निगृह्य बौद्धान् देवापिं मरुं च स्थापयिष्यसि ॥ १० ॥

वयमेतैस्तु सन्तुष्टाः साधुकृत्यैः सदक्षिणाः ।
यज्ञं दानं तपः कर्म करिष्यामो यथोचितम् ॥ ११ ॥

तदुपरान्त आप दिग्विजय करके धर्मरहित कलिके प्यारे राजा व बौद्धोंका नाश करके मरु और देवापिको (धर्मराज्यमें) स्थापित करोगे । तुम्हारे इस साधुकार्यके अनुष्ठानसेही हम संतुष्ट होंगे, सोई हमारी दक्षिणा होगी । क्योंकि इस प्रकार हो जानेसे हम विघ्नरहित हो यज्ञ, दान और तपादि कर्मोंका अनुष्ठान करसकेंगे ॥ १० ॥ ११ ॥

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा नमस्कृत्य मुनिं गुरुम् ।
बिल्वोदकेश्वरं देवं गत्वा तुष्टाव शङ्करम् ॥ १२ ॥

कल्किजीने यह सुनकर अपने गुरु परशुरामजीको प्रणाम किया और बिल्वोदकेश्वर नामक महादेवजीके समीप जायकर ॥ १२ ॥

पूजयित्वा यथान्यायं शिवं शान्तं महेश्वरम् ।
प्रणिपत्याशुतोषं तं ध्यात्वा प्राह हृदि स्थितम् ॥ १३ ॥

उनकी स्तुति करने लगे । उन्होंने विधिपूर्वक शान्त और मंगलकारी महादेवजीकी पूजा करके उनको प्रणाम किया और उन हृदयविहारी शीघ्र प्रसन्न होनेवाले (शिव) का ध्यान करके बोले ॥ १३ ॥

कल्किरुवाच ।

गौरीनाथं विश्वनाथं शरण्यं भूतावासं वासुकीकण्ठभूषम् ।
त्र्यक्षं पञ्चास्यादिदेवं पुराणं वन्दे सान्द्रानन्दसन्दोहदक्षम् ॥ १४ ॥

हे देव ! हे गौरीनाथ ! तुम विश्व (संसार) के स्वामी हो, तुम सर्व प्राणियोंमें विराजमान हो; वासुकी नाग तुम्हारे कंठका भूषण है, हे पंचवदन ! हे त्रिलोचन ! तुमही वह प्रथम आदि देवता हो, तुमही सांद्रानन्द-समवायके विधाता हो, तुमको वन्दन करताहूं ॥ १४ ॥

योगाधीशं कामनाशं करालं गङ्गासङ्गक्लिन्नमूर्द्धानमीशम् ।
जटाजूटाटोपरिक्षिप्तभावं महाकालं चन्द्रभालं नमामि ॥ १५ ॥

हे महादेव ! तुम योगके अधिपति हो, तुम काम्यकर्मके (वा कामदवका) नाश करनेवाले हो, हे करालदर्शन ! हे परमेश ! तुम्हारा शिर गंगाजीकी तरंग (रूपी) मालासे विधौत होताहै, जटाजूटमें ऐसा भाव दिखाई देता है कि, कुछ कहा नहीं जाता। तुम्हारे माथेपर चंद्रमाकी कला विराजमान है, हे महाकाल ! मैं तुमको नमस्कार करताहूं ॥ १५ ॥

श्मशानस्थं भूतवेतालसंगं नानाशस्त्रैः खड्गशूलादिभिश्च ।
व्यग्रात्युग्रा बाहवो लोकनाशे यस्य क्रोधोद्भूतलोकोऽस्तमेति॥१६॥

तुम भूत और वेतालोंके साथ श्मशानमें वास करते हो, अनेक प्रकारके शस्त्र और खड्ग (१) शूल (२) आदि शस्त्र तुम्हारी शोभाको बढाते हैं, प्रलयके समय तुम्हारे कोप (रूप) अग्निसे संसार भस्म होकर नष्ट हो जाताहै ॥ १६ ॥

यो भूतादिः पञ्चभूतैः सिसृक्षुस्तन्मात्रात्मा कालकर्म्मस्वभावैः ।
प्रहृत्येदं प्राप्य जीवत्वमीशो ब्रह्मानन्दो रमते तं नमामि ॥ १७ ॥

तुम भूतादि (३) और तन्मात्र स्वरूप (४), पंचभूत करके कालकर्म और

---

१ एक प्रकारका अस्त्र । ब्रह्माकी यज्ञाग्निसे खड्गका जन्म हुआ । ब्रह्माजीने यह खड्ग महादेवजीको दिया, महादेवजीने विष्णुजीको, विष्णुजीने मरीचिको, मरीचिने महर्षियोंको और महर्षियोंने यह खड्ग इन्द्रको दिया । इस प्रकार क्रम २ से हथवदल होकर यह कृपाचार्यके पास आया । कृपाचार्यने पाण्डवोंको दिया । क्रमानुसार तहांसे खड्गका बहुत प्रचार हुआ, ऐसा प्रवाद संस्कृत शास्त्रमें देखा जाता है ।

शब्दकल्पद्रुम नामक कोषमें खड्ग सम्बन्धीय एक वचन उद्धृत हुआ है । बृहन्नन्दिकेश्वर-पुराणकी दुर्गोत्सवपद्धतिके प्रकरणमें यह वाराहीतंत्रका वचन खड्ग वंदनाके प्रसंगमें उद्धृत हुआ है । इसमें खड्गके आठ आदि नाम हैं । यथा–

असिर्विसनसः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः । श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपालो नमोऽस्तु ते ।
इत्यष्टौ तव नामानि स्वयमुक्तानि वेधसा ॥

असि, विसनस, खड्ग, तीक्ष्णधार, दुरासद, श्रीगर्भ, विजय और धर्मपाल, यह आठ नाम तलवारके हैं । यह नाम ब्रह्माजीने रक्खे हैं । इन आठ नामोंके सिवाय असिके औरभी बहुतसे पर्याय दिखाई देते हैं । परन्तु उपाख्यानके साथ इन्हीं नामोंका सम्बन्ध है, इस कारण यह यहां लिखे गये ।

(२) प्राचीन युद्धके लायक एक अस्त्र । शूल अबतक दिखाई देता है और प्राचीन २ अस्त्रोंकी समान अबतकभी इसका नाम लोप नहीं हुआ है ।

(३) पृथ्वी, जल, तेज, पवन और आकाश, यही पंचभूत हैं । इन पंचभूतका आदि-कारण अहंकार स्वरूप है । सात्त्विक, राजस और तामस यह त्रिविध अहंकार है । तिनमें तामस अहंकारसे इन पंचभूतकी सृष्टि हुई है । यह सांख्यका मत है । इसके अनुसारही यहांपर पंचभूतका आदिकारण अर्थात् सांख्यमतके अनुसार तामस अहंकार है, बस इस कल्किपुराणके मतसे वह तामस अहंकारावच्छिन्न चैतन्यही महादेव हैं । वेदांतके मतसे "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः" इत्यादि श्रुतिके अनुसार पंचभूतकी आदि अर्थात् सृष्टिका कारण ब्रह्मस्वरूप है ।

(४) शब्द, स्पर्श, रूप, रस और, गन्धको पंच तन्मात्रा कहते हैं । तेषां पंचभूतानां मात्रा (सूक्ष्मावयवाः) इस अर्थसे तन्मात्र; अर्थात् उस पंचभूतका सूक्ष्म अवयव । आकाशका सूक्ष्म अवयव शब्द, तेजका सूक्ष्म अवयव रूप है, जलका सूक्ष्म अवयव रस और पृथ्वीका सूक्ष्म अवयव गन्ध है । महादेवजी उसही तन्मात्रस्वरूपमें वर्णित हुए हैं । इसका भाव यह है, तुमही शब्दस्वरूप, स्पर्शस्वरूप, रूपस्वरूप, रसस्वरूप और गन्धस्वरूप हो, अतएव तुम तन्मात्रात्मा हो ।

स्वभावके अनुसार (प्रपंचकी) सृष्टि करते हो, फिर इस सबको हरण करके जीवत्वको प्राप्त हो ब्रह्मानंदको भोग करते हो, तुमको नमस्कार करताहूं॥ १७॥

स्थितौ विष्णुः सर्व्वजिष्णुः सुरात्मा लोकान् साधून् धर्म्मसेतून् बिभर्ति । ब्रह्माद्यांशे योऽभिमानी गुणात्मा शब्दाद्यङ्गैस्तं परेशं नमामि ॥ १८ ॥

तुम जगत्को पालनेके लिये सर्व जिष्णु विष्णुरूप धारण करके धर्मके सेतुस्वरूप साधुओंकी रक्षा करते हो, तुम सगुण होकर आकाशादि (१) अवयवसे ब्रह्मादिक अंशाभिमानी (२) होते हो, तुम परम देवता हो। तुमको नमस्कार करता हूं ॥ १८ ॥

यस्याज्ञया वायवो वान्ति लोके ज्वलत्यग्निः सविता याति तप्यन्। शीतांशुः खे तारकैः सग्रहैश्च प्रवर्त्तते तं परेशं प्रपद्ये ॥ १९ ॥

तुम्हारी आज्ञासे संसारमें वायुका प्रवाह प्रवाहित होरहा है, अग्नि प्रज्वलित होरही है, सूर्यनारायण ताप देतेहुए (अपनी कक्षाके मार्गमें) भ्रमण करते हैं, तुम्हारीही आज्ञासे आकाशमें ग्रह नक्षत्र और चंद्रमाका उदय होता है, तुम परमदेवता हो, तुम्हारा आश्रय ग्रहण करता हूं ॥ १९ ॥

यस्याश्वासात् सर्व्वधात्री धरित्री देवो वर्षत्यम्बु कालः प्रमाता।

---

(१) आकाशका गुण शब्द है। शब्द ब्रह्ममूर्ति है। विष्णुपुराणके श्लोक– काव्यालापाश्च ये केचिद्गीतकान्यखिलानि च। शब्दमूर्तिधरस्यैतद्वपुर्विष्णोर्महात्मनः॥१।२२।८३॥

यहांपर विष्णु शब्दगुण आकाशमूर्ति हुयेथे, यही कहा जाता है। जान पडता है कि, हरि हर और ब्रह्मा यह तीन देवता अंशसे भिन्न हैं, परन्तु एकही भगवान्की त्रिधा विभिन्न त्रिमूर्त्तिमात्र हैं। इसी कारणसे महादेवजी शब्दगुणसे कीर्त्तित हुएहैं। जब तीनों मूर्तिही एक हैं तब एक अंशके गुण दूसरे अंशमें आरोपित होनेसे दूषण नहीं होसकता।

(२) रजोगुणाश्रय विष्णु, सत्त्वगुणाश्रय ब्रह्मा और तमोगुणाश्रय महादेव यह तीनों मूर्तिही सगुण हैं। यहांपर कहाजाता है। तुमनेही ब्रह्मरूपसे शब्दमूर्ति धारण कीथी, इस कारण तुम्हारा भेद नहीं है; तुमही परात्पर हो।

मेरुर्मध्ये भुवनानां च भर्त्ता तमीशानं विश्वरूपं नमामि ॥ २० ॥

तुम्हारी आज्ञासे पृथ्वीदेवी सर्वधात्री होकर सबको वहन करती है, जिस समय आवश्यकता होती है उसी समय देव जल वर्षाता है, समस्त भुवनके मध्यमें स्थित होकर सुमेरुपर्वत पृथ्वीको धारण करता है, तुम विश्वरूप हो, हे ईशान ! तुमको नमस्कार है ॥ २० ॥

इति कल्किस्तवं श्रुत्वा शिवः सर्व्वात्मदर्शनः ।
साक्षात् प्राह हसन्नीशः पार्वतीसहितोऽग्रतः ॥ २१ ॥
कल्केः संस्पृश्य हस्तेन समस्तावयवं मुदा ।
तमाह वरय प्रेष्ठ वरं यत्तेऽभिकांक्षितम् ॥ २२ ॥

इस प्रकारसे कल्किजीका स्तोत्र सुनकर, सर्वज्ञमहादेवजी पार्वतीके साथ उनके आगे प्रगट हुए । महादेवजी हर्षित हो कल्किजीके शरीरपर हाथ फेर मुस्कुराते हुए कहने लगे । हे श्रेष्ठ ! जो अभिलाषा हो सो वर मांगो ॥ २१ ॥ २२ ॥

त्वया कृतमिदं स्तोत्रं ये पठन्ति जना भुवि ।
तेषां सर्वार्थसिद्धिः स्यादिह लोके परत्र च ॥ २३ ॥

तुमने जो स्तोत्र रचा, पृथ्वीपर जो मनुष्य इसको पढेंगे, उनके इस लोक और परलोकमें सब अर्थ सिद्ध होंगे ॥ २३ ॥

विद्यार्थी चाप्नुयाद्विद्यां धर्म्मार्थी धर्म्ममाप्नुयात् ।
कामानवाप्नुयात् कामी पठनाच्छ्रवणादपि ॥ २४ ॥

इस स्तोत्रके पढने या श्रवण करनेसे विद्यार्थीको विद्याकी प्राप्ति और कामनावालेकी कामना पूर्ण होती है, धर्मको चाहनेवाला धर्म पाता है ॥ २४ ॥

त्वं गारुडमिदं चाश्वं कामगं बहुरूपिणम् ।
शुकमेनं च सर्व्वज्ञं मया दत्तं गृहाण भोः ॥ २५ ॥

हे कल्कि ! यह शीघ्र गमनकारी, अनेक रूप धारण करनेवाला गारुड अश्व और यह सर्वज्ञ तोता (शुक) तुमको देताहूं, ग्रहण करो ॥ २५ ॥

सर्व्वशास्त्रास्त्रविद्वांसं सर्ववेदार्थपारगम् ।
जयिनं सर्व्वभूतानां त्वां वदिष्यन्ति मानवाः ॥ २६ ॥

मनुष्य तुमको सब प्रकारके शास्त्र और शस्त्रमें निपुण, चारों वेदोंमें पारदर्शी और सर्व प्राणियोंका जीतनेवाला बतावेंगे ॥ २६ ॥

रत्नत्सरुं करालं च करवालं महाप्रभम् ।
गृहाण गुरुभारायाः पृथिव्या भारसादनम् ॥ २७ ॥

यह रत्नत्सरु (१) महा प्रभावाली कराल करवाल (खड्ग) बडे भारवाली पृथ्वीके भारको हरेगी, अहो ! तुम इसकोभी ग्रहण करो ॥ २७ ॥

इति तद्वच आश्रुत्य नमस्कृत्य महेश्वरम् ।
शम्भलग्राममगमत् तुरगेण त्वरान्वितः ॥ २८ ॥

महादेवजीके यह वचन सुन कल्किजीने उनको नमस्कार किया और घोडेपर सवार हो शीघ्रतासे शम्भल ग्राममें चले गये ॥ २८ ॥

पितरं मातरं भ्रातॄन् नमस्कृत्य यथाविधि ।
सर्व्वं तद्वर्णयामास जामदग्न्यस्य भाषितम् ॥ २९ ॥

वहांपर सदाकी विधिके अनुसार माता, पिता और भ्राताओंको नमस्कार करके जमदग्निके पुत्र परशुरामके उन सब वाक्योंका वर्णन किया ॥२९॥

शिवस्य वरदानं च कथयित्वा शुभाः कथाः ।
कल्किः परमतेजस्वी ज्ञातिभ्योऽप्यवदन्मुदा ॥ ३० ॥

और महादेवजीके वरदानका शुभ वृत्तान्तभी कहा । फिर अपनी जातिके लोगोंसे परम तेजस्वी कल्किजी आनन्दित हृदयसे कहने लगे ॥ ३० ॥

---

(१) खड्गकी मुष्टिका दूसरा नाम त्सरु है; जहांपर हाथसे तलवार पकडी जाती है वही त्सरु है । जिस खड्गकी त्सरु रत्नकी बनी होती है, तिसको " रत्नत्सरु " कहते हैं ।

गार्ग्यभर्ग्यविशालाद्यास्तच्छ्रुत्वाऽऽनन्दिताः स्थिताः ।
कथोपकथनं जातं शम्भलग्रामवासिनाम् ॥ ३१ ॥

गार्ग्य, भर्ग्य और विशालादि कल्किजीके जातिवाले इस वृत्तान्तको सुनकर अत्यन्त आनन्द प्राप्त करते हुए। शम्भलग्रामके रहनेवाले इस वृत्तान्तको कहने सुनने लगे ॥ ३१ ॥

विशाखयूपभूपालः श्रुत्वा तेषां च भाषितम् ।
प्रादुर्भावं हरेर्मेने कलिनिग्रहकारकम् ॥ ३२ ॥

उन (शम्भलवासियों) के वचन सुनकर राजा विशाखयूपने समझा कि श्रीहरिजीने कलिका निग्रह करनेके लिये (पृथ्वीपर) अवतार लियाहै ॥ ३२॥

माहिष्मत्यां निजपुरे यागदानतपोव्रतान् ।
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् शूद्रानपि हरेः प्रियान्॥ ३३ ॥

अपनी पुरी * माहिष्मती नगरीमें याग, दान, तप और व्रतादि कराने लगा; ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रगण हरिके प्यारे हुए ॥ ३३ ॥

स्वधर्म्मनिरतान् दृष्ट्वा धर्मिष्ठोऽभून्नृपः स्वयम् ।
प्रजापालः शुद्धमनाः प्रादुर्भावाच्छ्रियः पतेः ॥ ३४ ॥

(तिन सबको) अपने २ धर्ममें निरत देखकर राजा विशाखयूपने आपभी धर्मके मार्गका अवलम्बन किया और लक्ष्मीनाथके उत्पन्न होनेसे शुद्ध हृदयवाला हो प्रजाको पालन करने लगा ॥ ३४ ॥

अधर्म्मवंश्यास्तान् दृष्ट्वा जनान् धर्म्मक्रियापरान् ।
लोभानृतादयो जग्मुस्तद्देशाद्दुःखिता भयम् ॥ ३५ ॥

लोभ और अनृत आदि अधर्मके वंशवाले माहिष्मती नगरीके रहवासियोंको धर्मपरायण देख हृदयमें अत्यन्त दुःखी हो तहांसे चलेगये ॥ ३५ ॥

* माहिष्मतीनगरी नर्मदाके तीरपर बसी है । आजकल इसका नाम चुलीमहेश्वर है। महाराज कार्तवीर्य्यार्जुनकी यही राजधानी थी । (हरिवंश)

जैत्रं तुरगमारुह्य खड्गं च विमलप्रभम् ।
दंशितः सशरं चापं गृहीत्वाऽगात् पुराद्बहिः ॥ ३६ ॥

खड्ग और धनुषबाणको ले जयके अनुकूल शिवजीके दिये हुए घोडेपर सवार हो कल्किजी माहिष्मती पुरीके बाहिरीभागमें गमन करतेहुए ॥ ३६ ॥

विशाखयूपभूपालः प्रायात् साधुजनप्रियः ।
कल्किं द्रष्टुं हरेरंशमाविर्भूतं च शम्भले ॥ ३७ ॥

साधुजनवत्सल, राजा विशाखयूप विष्णुजीके अंशसे शम्भलग्राममें कल्किजीका अवतार देखनेके लिये प्रस्थान करता हुआ ॥ ३७ ॥

कविं प्राज्ञं सुमन्तुं च पुरस्कृत्य महाप्रभम् ।
गार्ग्य-भर्ग्य-विशालैश्च ज्ञातिभिः परिवारितम् ॥ ३८ ॥

महाप्रभावाले कवि, प्राज्ञ और सुमंतु कल्किजीके पीछे स्थित हैं, गार्ग्य भर्ग्य और विशालादि जातिवाले तिनको घेरे हुए हैं ॥ ३८ ॥

विशाखयूपो ददृशे चन्द्रं तारागणैरिव ।
पुराद्बहिः सुरैर्यद्वदिन्द्रमुच्चैःश्रवःस्थितम् ॥ ३९ ॥

विशाखयूपराजाने उनको ऐसे देखा मानो, तारोंसे युक्त चन्द्रमा अथवा उच्चैःश्रवा अश्वपर सवार हुआ इन्द्र देवताओंसे युक्त है ॥ ३९ ॥

विशाखयूपोऽवनतः संप्रहृष्टतनूरुहः ।
कल्केरालोकनात् सद्यः पूर्णात्मा वैष्णवोऽभवत् ॥ ४० ॥

विशाखयूप नव गया, प्रीतिके उदय होनेसे उसके रोमाञ्च हो आये । कल्किजीने उसपर दृष्टि डाली, वह (उस दृष्टिसे पवित्र हो) तत्काल पूर्णात्मा वैष्णव होगया ॥ ४० ॥

सह राज्ञा वसन् कल्किः धर्म्मानाह पुरोदितान् ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशामाश्रमाणां समासतः ॥ ४१ ॥

कल्किजी राजाके साथ रहने लगे । ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और आश्रम-धर्मको संक्षेपसे जो कल्किजीने कहा सो आगे कहा जाता है ॥ ४१ ॥

कल्किरुवाच ।

ममांशान्कलिविभ्रष्टानिति मज्जन्मसङ्गतान् ।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां मां यजस्व समाहितः ॥ ४२ ॥

कल्किजीने कहा—हमारे अंश कलिके पापसे भ्रष्ट हुए थे, हमारे जन्म लेनेपर (हमारे सहित धर्ममार्गमें) मिले हैं। तुम राजसूय और अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करके उनकी और हमारी उपासना करो ॥ ४२ ॥

अहमेव परो लोको धर्मश्चाहं सनातनः ।
कालस्वभावसंस्काराः कर्म्मानुगतयो मम ॥ ४३ ॥

मैं ही परलोक हूं, मैं ही सनातन धर्म हूं; काल, स्वभाव और संस्कार हमारे ही कर्मके अनुगत हैं ॥ ४३ ॥

सोमसूर्य्यकुले जातौ देवापिमरुसंज्ञकौ ।
स्थापयित्वा कृतयुगं कृत्वा यास्यामि सद्गतिम् ॥ ४४ ॥

चंद्रवंशमें उत्पन्न हुआ देवापि और सूर्यवंशीय मरु इन दोनों राजाओंको धर्म राज्यपर स्थापित करके और सतयुगको प्रवर्त्तित करके श्रेष्ठगति ग्रहण करूंगा ॥ ४४ ॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा राजा कल्किं हरिं प्रभुम् ।
प्रणम्य प्राह सद्धर्म्मान् वैष्णवान् मनसेप्सितान् ॥ ४५ ॥

भगवान् कल्किजीकी यह उक्ति सुनकर राजा विशाखयूपने उनको प्रणाम किया और जैसी अभिलाषा हुई वैसे साधु वैष्णव धर्मविषयक (प्रश्नका) प्रसंग करने लगा ॥ ४५ ॥

इति नृपवचनं निशम्य कल्किः कलिकुलनाशनवासनावतारः ।
निजजनपरिषद्विनोदकारी मधुरवचोभिराह साधुधर्म्मान् ॥ ४६ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये कल्किवरलाभनामक-
स्तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

कलिके कुलका नाश करनेकी अभिलाषासे कल्किजीने पृथ्वीपर अवतार लिया था। वह विशाखयूपका वैष्णव धर्म सम्बन्धीय प्रश्न विष-

यक वचन सुनकर परिजन और परिषद लोगोंका चित्त प्रमुदित करनेको मधुर वचनसे साधु धर्मकी व्याख्यान करगे लगे ॥ ४६ ॥

इति श्रीकल्किपुराणे ऽनुभागवते भविष्येवल० भाषाटी० कल्किवरलाभनाम ऋस्तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

प्रथमांशः ।

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सूत उवाच ।

ततः कल्किः सभामध्ये राजमानो रविर्यथा ।
बभाषे तं नृपं धर्म्ममयो धर्म्मान् द्विजप्रियान् * ॥ १ ॥

सूतजी बोले—इसके उपरान्त धर्ममय कल्किजी विशाखयूपकी सभामें सूर्यके समान विराजमान होकर तिससे ब्राह्मणजातिकी प्यारी धर्मकथा कहने लगे ॥ १ ॥

कल्किरुवाच ।

कालेन ब्रह्मणो नाशे प्रलये मयि सङ्गताः ।
अहमेवासमेवाग्रे नान्यत्कार्यमिदं मम ॥ २ ॥

कल्किजी बोले;—काल करके प्रलय होगी, तब ब्रह्माण्डका नाश होजायगा, तिस समय पदार्थ मुझमेंही लीन होरहेंगे, (१) सृष्टिके पहले

---

* द्विजोत्तमान् इति पाठान्तरम् ।

(१) सृष्टिसे पहले और प्रलयके पीछे प्रकृति सूनी होकर अन्धकारसे ढकी हुईथी । ऋग्वेद ८ अष्टक, १० मंडल, ११ अध्याय, १२९ सूक्तके ३ ऋक्में इस अवस्थाका प्रकाशित चित्र दिखलाई देता है यथा;—

तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रे प्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।
तुच्छे नाभ्वपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिना जायतैकम् ॥

अर्थात् सृष्टिसे पहले प्रकृति अंधकारसे ढकी, जाननेके अयोग्य और सर्वतः जलमयथी । जो कार्य सूक्ष्मरूपसे मायामें अनुप्रविष्ट था, ज्ञानमयपरब्रह्मकी इच्छा शक्तिके प्रभावसे वह कार्य, कारणसे अलग प्रकट हुआ ।

महर्षि मनुजीने इस श्रुतिका अवलम्ब ग्रहण करके कहा है;—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ (मनु० १ अ० ५ श्लो०)

अर्थात् यह जगत् तमोगुणमें लीन था; प्रत्यक्ष परिदृश्यमान नहीं था; अनुमानसे भी अगोचर था । (इससे) समस्त संसार निद्रितकी नांई जान पडताथा, सृष्टिके आरम्भमें संसारकी ऐसी अवस्था थी ।

केवल (१) मैंही वर्त्तमान था और कुछभी नहीं था । यह समस्त मेरीही सृष्टि है ॥ २ ॥

प्रसुप्तलोकतन्त्रस्य द्वैतहीनस्य चात्मनः ।
महानिशान्ते रन्तुं मे समुद्भूतो विराट् प्रभुः ॥ ३ ॥

जब समस्त लोकतंत्र (संसार) सो रहा था; जब केवल परब्रह्मके सिवाय इस जगत्में दूसरे पदार्थका अस्तित्व नहीं था उस महानिशाके बीतनेके समय सृष्टिरूप क्रीडाके लिये, हमारी सर्वशक्तिमान् विराट् मूर्त्तिकी अवाई हुई थी ३

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
तदङ्गजोऽभवद्ब्रह्मा वेदवक्त्रो महाप्रभुः ॥ ४ ॥

तिन विराट् पुरुषके सहस्र मस्तक, सहस्रनेत्र और सहस्र चरण थे (२);

---

(१) सृष्टिसे पहले इस प्रत्यक्ष–परिदृश्यमान जगत्में ब्रह्मके सिवाय और किसी पदार्थका अस्तित्व नहीं था । सामविधान ब्राह्मणमें कहा है;–

ब्रह्म हवा इदमग्र आसीत् ॥ (प्रथमः प्रपाठकः) ॥

अर्थात्; सृष्टिसे पहले केवल एक ब्रह्मही विद्यमान था । ऋग्वेदके ऐतरेय उपनिषद्में लिखा है;–

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् । नान्यत् किञ्चन मिषत् ॥ (प्रथमः खण्डः) ॥

अर्थात् जगत्की सृष्टिसे पहले केवल एक सर्वशक्तिमान् आत्माही विद्यमान था । इस परिदृश्यमान जगत्का आस्तित्व नहीं था ।

यह आत्माही परब्रह्म है । जब जगत्का बीज कारण जलमें ढका हुआ और निहित था तब केवल एक परब्रह्मही इस सीमारहित जगत्में विराजमान था ॥

(२) जब प्रकृति तमोगुणसे ढकी हुई थी, पृथ्वीका अंकुरभी नहीं उगा, तब सृष्टिके कारण स्वरूप अचिन्त्य–शक्ति विराट् पुरुषकी अवाई हुई । ऋग्वेद १० मंडल ८ अष्टक ३ अध्याय १० सूक्तके प्रथम ऋक्में विराट्मूर्तिका विषय वर्णित हुआ है । यथा–

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥

अर्थात् उस विराट् पुरुषके अनन्त मस्तक अनन्त लोचन और अनन्त चरण हैं । वह पृथ्वीको व्याप्त करके और इस परिमित पृथ्वीको अतिक्रम करके सर्व भावसे अनेकत्वरूपसे विराजित हो रहे हैं ॥

विराट् पुरुषकी सत्त्वाख्य शक्तिही तिसका यथार्थ स्वरूप है । वही एक सृष्टि, अनन्तसृष्टिमें प्रवेशित हो अनन्त मस्तक, अनन्त लोचन और अनन्त पद, इस प्रकार अनन्त भागमें विभक्त हुई है । यह लोग ज्ञाननेत्रकी परिपाकावस्थामें पूर्ण परब्रह्मको इस विराट् मूर्तिरूपसेभी छोटा करना नहीं चाहता; इसी कारणसे वेद-पुरुष कहते हैं " परब्रह्म " इस विराट् मूर्तिकी अपेक्षा भी अनन्त है । यह बात " अत्यतिष्ठद्दशांगुलम् "–इस पदसे भली भांति व्यक्त होती है ।

यहांपर विष्णुजीही उस परब्रह्म स्वरूपसे वर्णित हुए हैं । तिनका पूर्ण अंशही विराट् पुरुष है, इस विषयको व्यक्त करनाही इस स्थलका उद्देश है ।

तिनके विराट् अवयव (अंग)से वेदमुख भगवान् ब्रह्माजीकी उत्पत्ति हुई ॥ ४ ॥

जीवोपाधेर्ममांशाच्च प्रकृत्या मायया स्वया ।
ब्रह्मोपाधिः स सर्व्वज्ञो मम वाग्वेदशासितः ॥ ५ ॥
ससर्ज्ज जीवजातानि कालमायांशयोगतः ।
देवा मन्वादयो लोकाः सप्रजापतयः प्रभुः ॥ ६ ॥

उन ब्रह्माकी उपाधिवाले सर्वज्ञ पुरुषने हमारे अंशसे प्रकृति वा अपनी माया करके काल मायाके अंशको मिलाकर जीव जातिको उत्पन्न किया है (१), इस प्रकारसे मनु आदि मनुष्य और प्रजापतियोंकी सृष्टि हुईथी (२) ॥ ५ ॥ ६ ॥

गुणिन्या माययांशा मे नानोपाधौ ससर्ज्जिरे ।
सोपाधय इमे लोका देवाः सस्थाणुजंगमाः ॥ ७ ॥

हमारेही अंशसे सत्त्व, रज और तमोगुणमयी माया करके अनेक प्रकारकी उपाधिसे विभक्त हो इन सोपाधि देव, मानव स्थावर और जंगमकी सृष्टि हुई है ॥ ७ ॥

ममांशा मायया सृष्टा यतो मय्याविशँल्लये ।
एवंविधा ब्राह्मणा ये मच्छरीरा मदात्मिकाः ॥ ८ ॥

---

(१) सत्, रज और तमोगुणकी साम्यावस्थाही प्रकृति है, जब काल इस त्रिगुणात्मिका प्रकृतिको विक्षोभित करता है, तब तिसके गुणमें विषमता उत्पन्न होती है, विषमता होनेसे सृष्टिका आरंभ होता है, इस प्रकारसे प्रथम महत्तत्त्वकी सृष्टि हुई है। मायांशका अर्थ कर्म है। स्थावर, जंगम भूतादिकी सृष्टि उस मायांश वा कर्मके सापेक्ष है अर्थात् जो जैसे कर्मकी (योनिजनक) वासना करता है, तिसको वैसीही योनि मिलती है । जैसे, व्याघ्र व्याघ्रत्वयोनिजनक वासना-निबन्धन व्याघ्रयोनिको पाता है-इत्यादि ॥

(२) स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि, इन्द्रसावर्णि यह चौदह मनु हैं। मनुस्मृतिमें प्रजापतियोंका नाम लिखा है । यथा;-

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
प्रचेतसं वशिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥ (मनु० १ अ० ३५ श्लो०)

मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य पुलह, क्रतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु और नारद यह १० प्रजापति हैं । इन प्रजापतियोंसे सृष्टिकी बहुतायत हुई है ।

हमारा जो अंश मायाके बलसे सृष्टिके बलसे आरम्भसमयमें ही उत्पन्न हुआथा, सो फिर प्रलयसमयमें हममेंही प्रविष्ट होगा । तैसेही ब्राह्मण मेरे शरीरस्वरूप व आत्मस्वरूप हैं ॥ ८ ॥

मामुद्धरन्ति भुवने यज्ञाध्ययनसत्क्रियाः ।
मां प्रसेवन्ति शंसन्ति तपोदानक्रियास्त्विह ॥ ९ ॥

जो यज्ञ, अध्ययन आदि श्रेष्ठकार्य करते और मेरा उद्धार करते हैं। जो तप और दानादि कर्मसे हमारी सेवा करते और हमारा नाम ग्रहण करते और मुझको स्मरण करतेहैं ॥ ९ ॥

स्मरन्त्यामोदयन्त्येव नान्ये देवादयस्तथा ।
ब्राह्मणा वेदवक्तारो वेदा मे मूर्त्तयः[1] पराः ॥ १० ॥

वेद हमारी पूर्ण मूर्ति है, तिसी निमित्तसे वेदवादी ब्राह्मण लोग हमको जैसे स्मरण करते हैं, और जिस प्रकार प्रमुदित करतेहैं, देवता लोग अथवा और कोई वैसा नहीं करसकता ॥ १० ॥

तस्मादिमे ब्राह्मणजास्तैः पुष्टास्त्रिजगज्जनाः ।
जगन्ति मे शरीराणि तत्पोषे ब्राह्मणो वरः ॥ ११ ॥

इसी कारणसे चार वेद ब्राह्मणद्वारा प्रकाशित हुए, उन्हीं(ब्राह्मणप्रचारित) वेदोंसे यह त्रिजगत् परिपुष्ट होरहाहै । जगत् मेराही शरीर है, बस ब्राह्मणलोगही मेरे शरीरको पुष्ट करनेके प्रधान साधन हैं ॥ ११ ॥

तेनाहं तान्नमस्यामि शुद्धसत्त्वगुणाश्रयः ।
ततो[2] जगन्मयं पूर्वं मां सेवन्तेऽखिलाश्रयाः ॥ १२ ॥

इसी कारणसे मैं शुद्ध सत्त्वगुणका अवलम्बन करके ब्राह्मणोंको नमस्कार करताहूं । मेरे नमस्कार करनेके उपरान्त अखिलाश्रय ब्राह्मण लोगभी पूर्ण जगन्मय समझकर हमारी सेवा करतेहैं ॥ १२ ॥

---

१ वेदात्ममूर्त्तयः परा इति वा पठनीयम् । २ ततो जगन्मयं पूर्णम् वा पाठः ।

विशाखयूप उवाच ।

विप्रस्य लक्षणं ब्रूहि त्वद्भक्तिः का च तत्कृता ।
यतस्तवानुग्रहेण वाग्बाणा ब्राह्मणाः कृताः ॥ १३ ॥

विशाखयूपने कहा—हे देव! ब्राह्मणके लक्षण क्या हैं? आपके अनुग्रहसे ब्राह्मणोंका वाक्यही बाणस्वरूप हुआ है । (अतएव) वे आपकी कैसी भक्ति करते हैं, कहिये ॥ १३ ॥

कल्किरुवाच ।

वेदा मामीश्वरं प्राहुरव्यक्तं व्यक्तिमत्परम् ।
ते वेदा ब्राह्मणमुखे नानाधर्म्मे प्रकाशिताः ॥ १४ ॥

कल्किजी बोले—मुझको चारों वेद अव्यक्त व्यक्तिमत् और परात्पर ईश्वर कहते हैं; वह वेद ब्राह्मणमुखसे अनेक धर्ममें प्रचारित होता है ॥ १४ ॥

यो धर्म्मो ब्राह्मणानां हि सा भक्तिर्मम पुष्कला ।
तयाऽहं तोषितः श्रीशः सम्भवामि युगे युगे ॥ १५ ॥

ब्राह्मणोंके लिये जैसा धर्म कहा वह धर्माचरणही मेरे प्रति गाढी भक्तिका होना विदित करता है; मैं उस भक्तिसे प्रसन्न हो लक्ष्मीपतिरूपसे युग २ में अवतार लेताहूं ॥ १५ ॥

ऊर्द्ध्वं तु त्रिवृतं सूत्रं सधवानिर्मितं शनैः ।
तन्तुत्रयमधोवृत्तं यज्ञसूत्रं विदुर्बुधाः ॥ १६ ॥

पंडित लोग कहते हैं कि, ब्राह्मणोंकी सुहागन कन्यायें पहले धीर भावसे सूतको तिगुना करें, तदुपरान्त उस सूतको फिर तिगुना करनेसे यज्ञसूत्र बनजाता है ॥ १६ ॥

त्रिगुणं तद्ग्रन्थियुक्तं वेदप्रवरसंमितम् ।
शिरोधरान्नाभिमध्यात्पृष्ठार्द्धपरिमाणकम् ॥ १७ ॥

वेद और प्रवरका वर्णन करके उस तिगुने यज्ञसूत्रमें गांठ लगावे । सो पहरनेसे तिससे गर्दनसे नाभितक पृष्ठके अर्धभागतक होगा ॥ १७ ॥

यजुर्विदां नाभिमितं सामगानामयं विधिः।
वामस्कन्धेन विधृतं यज्ञसूत्रं बलप्रदम् ॥ १८ ॥

यजुर्वेदी ब्राह्मणोंके लिये ऐसा यज्ञोपवीत कहा है; सामवेदी ब्राह्मणका यज्ञोपवीत नाभितक होताहै। बांये कन्धेमें यज्ञोपवीत धारण करनेसे बलको दान करता है ॥ १८ ॥

मृद्भस्मचन्दनाद्यैस्तु धारयेत्तिलकं द्विजः।
भाले त्रिपुंड्रं कर्म्मांगं केशपर्य्यन्तमुज्ज्वलम् ॥ १९ ॥

ब्राह्मणको उचितहै कि, मिट्टी, भस्म, चन्दनादिसे तिलक और पुण्ड्र धारण करे। उज्ज्वल पुण्ड्र धर्मकर्मका अंगस्वरूप है, सो केशतक खिंचताहै॥१९॥

पुण्ड्रमङ्गुलिमानं तु त्रिपुंड्रं तत्त्रिधा कृतम्।
ब्रह्मविष्णुशिवावासं दर्शनात् पापनाशनम् ॥ २० ॥

एक अंगुल चौडा पुण्ड्र हो, ऐसे तीन पुण्ड्र एक साथ हों तो तिसको त्रिपुण्ड्र कहते हैं। त्रिपुण्ड्रमें ब्रह्मा विष्णु और महादेवजीका बास रहता है, तिसके दर्शन करनेसे पापका नाश होता है ॥ २० ॥

ब्राह्मणानां करे स्वर्गो वाचि वेदाः करे हरिः।
गात्रे तीर्थानि रागाश्च नाडीषु प्रकृतिस्त्रिवृत् ॥ २१ ॥

ब्राह्मणोंके वाक्यमें वेद, हाथमें हरि और स्वर्ग, शरीरमें तीर्थ और प्रीति, नाडियोंमें त्रिवृत प्रकृति (१) ॥ २१ ॥

सावित्री कण्ठकुहरा हृदयं ब्रह्मसंज्ञितम्।
तेषां स्तनान्तरे धर्म्मः पृष्ठोऽधर्म्मः प्रकीर्त्तितः ॥ २४ ॥

और कण्ठमें सावित्री विराजमान है, तिनका हृदय ब्रह्मस्वरूप है; कहते हैं कि, तिनके दोनों स्तनोंके बीच हृदयमें धर्म और पीठपर अधर्म वर्त्तमान है२२।

भूदेवा ब्राह्मणा राजन् पूज्या वन्द्याः सदुक्तिभिः।
चतुराश्रम्यकुशला मम धर्म्मप्रवर्त्तकाः ॥ २३ ॥

---

(१) मिले हुए तेज, जल और अन्नकोही त्रिवृत् प्रकृति कहते हैं। यथा-तासां त्रिवृत-मेकैकां करवाणि। (छान्दोग्य उपनिषत्)

हे राजन् ! पृथिवीके देवता ब्राह्मणलोग चारों आश्रमोंके (१) धर्ममें निपुण हैं और हमारे (सनातन) धर्मके प्रवर्त्तक हैं, (अतएव) श्रेष्ठ उक्तिसे तिनकी पूजा और वन्दना करना कर्त्तव्य है ॥ २३ ॥

बालाश्चापि ज्ञानवृद्धास्तपोवृद्धा मम प्रियाः ।
तेषां वचः पालयितुमवताराः कृता मया ॥ २४ ॥

ज्ञानमें बडे और तपस्यामें बडे ब्राह्मणके बालक हमको अत्यन्त प्यारे हैं; तिनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये मैं अवतार लेता हूँ ॥ २४ ॥

महावाक्यं ब्राह्मणानां सर्व्वपापप्रणाशनम् ।
कलिदोषहरं श्रुत्वा मुच्यते सर्व्वतो भयात् ॥ २५ ॥

ब्राह्मणोंके महावाक्यका श्रवण करनेसे सर्व प्रकारके पापोंका नाश हो जाता है, कलिदोष दूर होताहै और सर्व प्रकारके भय चले जाते हैं ॥२५॥

इति कल्किवचः श्रुत्वा कलिदोषविशातनम् ।
प्रणम्य तं शुद्धमनाः प्रययौ वैष्णवाग्रणीः ॥ २६ ॥

कलिके दोषका नाश करनेवाले कल्किजीके वचन सुनकर, शुद्ध हृदय-वाला वैष्णव शिरमौर विशाखयूप उनको प्रणाम करके चलागया ॥ २६ ॥

गते राजनि सन्ध्यायां शिवदत्तशुको बुधः ।
चरित्वा कल्किपुरतः स्तुत्वा तं पुरतः स्थितः ॥ २७ ॥
तं शुकं प्राह कल्किस्तु सस्मितं स्तुतिपाठकम् ।
स्वागतं भवता कस्माद्देशात् किं खादितं ततः ॥ २८ ॥

विशाखयूप राजाके चले जानेपर परम विद्वान् शिवदत्त शुक इधर उधर घूम घामकर सन्ध्याके समय कल्किजीके सामने आया और उनकी स्तुति करने लगा । शुकके स्तोत्र पढनेको सुन, कल्किजीने मुसकायकर कहा, ' हे शुक ! ? तुम्हारा मंगल है तुम किस देशसे क्या आहार करके आये हो, सो कहो '॥ २७ ॥ २८ ॥

---

(१) ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, भिक्षुक, यह चार आश्रम हैं ।

शुक उवाच ।

श्रृणु नाथ वचो मह्यं कौतूहलसमन्वितम् ।
अहं गतश्च जलधेर्मध्ये सिंहलसंज्ञके ॥ २९ ॥

शुक बोला;-हे देव ! मुझसे एक कौतुकयुक्त वाक्य श्रवण कीजिये । समुद्रके जलमें सिंहल नामक * एक द्वीप है, जहाँ मैं गयाथा ॥ २९ ॥

---

* सिंहलद्वीप-विलायतके पंडितलोग वर्तमान सिंहलद्वीपको लंका कहते हैं, परन्तु यह उचित नहीं कहाजासकता । क्योंकि वाल्मीकिरामायणमें देखा जाता है कि, महावीर हनूमान्जी समुद्रके किनारेपर स्थित महेन्द्रपर्वतपर चढ, छलांग मार, शतयोजनके समुद्रको उतर, लंकाद्वीपके सुवेल पर्वतपर पहुँचे थे । परन्तु महेन्द्र पर्वत मद्रासके बहुत उत्तरमें है और सिंहलद्वीप भारतवर्षकी सर्व दक्षिण-पूर्व दिशामें समुद्रके बीच स्थित हैं, इससे जाना जाता है कि, वर्त्तमान सिंहलद्वीप, रामायणका प्राचीन लंकाद्वीप नहीं है ।

ज्योतिषतत्त्व ग्रंथमें लिखा है-

दक्षिणेऽवन्तिमाहेन्द्रमलया ऋष्यमूककः ।
चित्रकूटमहारण्यकाञ्चीसिंहलकोङ्कणाः ॥

दक्षिणमें अवन्ति, माहेन्द्र, मलय, ऋष्यमूक, चित्रकूट, महारण्य (दण्डकारण्य वा जनस्थान), कांची, सिंहल और कोंकण देश हैं ।

म्याक्क्रिन्डल साहब कहते हैं कि, प्रथममें सिंहलद्वीपका नाम लंका था, फिर ताम्रोवेणी (संस्कृत) ताम्रपर्णी हुआ । साहब कहते हैं कि, ग्रीक भौगोलिक फिनिर्नेग्रस द्वीपको अन्तिच् थोनोस् (Vntiehthonos) कहा है । ग्रीक अन्तिच् थोनोस् संस्कृत अन्तस्थान होसकता है । क्योंकि, प्लिनिने इस द्वीपके स्थित होनेमें कहा है कि, यह पृथ्वीके विपरीत अंशमें अर्थात् शेष अंशमें स्थित है । ग्रीकवीर अलेकजेण्डरके समय इस द्वीपकी स्थितिका विषय भली भांति ज्ञात हुआथा । तव इस द्वीपको ताम्रोवेणी कहतेथे । मेगास्थिनिसके मतसेभी इसका नाम ताम्रोवेणी और एक नदीसे दो भागमें विभक्त है । इसने इस द्वीपको पलयिगोनि (Palaegoni) कहाहै । इनके मतानुसार इस द्वीपमें भारतवर्षकी अपेक्षा अधिक सुवर्ण और बडे २ मोती उत्पन्न होते हैं । मिशरदेशके भौगोलिक टलेंमीके मतसे इस द्वीपका प्राचीन नाम सिमौन्दन (Simsundon) और पीछेका नाम ताम्रोवेणी है । और पेरीप्लेस नामक ग्रंथकारके मतसे इसका पुराना नाम ताम्रोवेणी है । तिसके समयमें इसका नाम पलाइ सिमौन्दन (Palai Simounpon) था । परन्तु प्लिनिके मतसे इस द्वीपकी राजधानीका नाम है और जिस नदीके तटपर यह राजधानी थी, तिसका नाम पलाइसमुन्दस (Palaesimundus) था, इस कारण पेरीप्लस रचयिताका सिद्धांत भ्रमपूर्ण है । क्रम क्रमसे यह द्वीप सालिकी, सिरेन्दीवस सिरलेदीव, सिरेन्दीव, जीलन, सइलन, फिर सइलनसे वर्त्तमान सिलोन (Ceylon) हुआ (Ptotemy's Ancient India, P. P. 251-252)

यथावृत्तं द्वीपगतं तच्चित्रं श्रवणप्रियम् × ।
बृहद्रथस्य नृपतेः कन्यायाश्चरितामृतम् ॥ ३० ॥

सिंहलकी समस्त घटना बडीही अचरजवाली है। सिंहलद्वीपके स्वामी राजा बृहद्रथका बेटीका चरितामृत अत्यन्त श्रुतिमधुर है ॥ ३० ॥

कौमुद्यामिह जाताया जगतां पापनाशनम् ।
चरितं सिंहले द्वीपे चातुर्वर्ण्यजनावृते ॥ ३१ ॥

तिसके सुननेसे संसारके पाप ढेर नाश हो जाते हैं। इस कन्याने कौमुदी-नामक बृहद्रथकी रानीके गर्भसे जन्म ग्रहण किया है । सिंहलमें ब्राह्मण क्षत्री आदि चारों जातिकी (१) बस्ती है ॥ ३१ ॥

प्रासाद-हर्म्य-सदन-पुर-राजिविराजिते ।
रत्न-स्फाटिक-कुडयादिस्वर्लताभिर्विभूषिते + ॥ ३२ ॥

उस नगरमें प्रासाद, अटारी, गृह, पुरादि विराजमान हैं । गृहभूमि

× चरित्रं श्रवणप्रियम् । इति पुस्तकान्तरस्य पाठः ।

(१) ऋग्वेदसंहिताके १० मंडल ८ अष्टक ७ अ० ९० सूक्तके १२ ऋक्में ब्राह्मणादि जातिकी उत्पत्तिका वृत्तान्त है । यथा–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽअजायत ॥

अर्थात् इन प्रजापतिके मुखसे ब्राह्मण उत्पन्न हुए, दोनों बाहुओंसे क्षत्रियोंकी उत्पत्ति हुई, दोनों ऊरुसे वैश्य और दोनों पांवसे शूद्र उत्पन्न हुए।

चार वर्णोंकी उत्पत्तिका यह वृत्तान्त अत्यन्त पुराना है । आपस्तम्बीय धर्म-सूत्र अति-प्राचीन ग्रंथ है। उस आपस्तम्बने कहा है–

चत्वारो वर्णा ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्राः ।
(आपस्तम्ब, तृतीय सूत्र)

मनुजी कहते हैं—

लोकानां च विवृद्धयर्थं मुखबाहूरुपादतः। ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्त्तयत्॥
(मनु० १ अ० ३१ श्लोक)

अर्थात् प्रजापतिने लोकवृद्धिके लिये मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षत्रिय, ऊरुसे वैश्य और पादसे शूद्रकी सृष्टि की ।

ब्राह्मण शास्त्रजीवी, क्षत्री शस्त्रजीवी, वैश्य कृषिजीवी और शूद्रजाति इन तीनों वर्णोंकी सेवा करती थी ।

+ स्वर्लताभिर्विराजिते। इत्यपरे पठन्ति ।

स्फटिक और रत्नसे युक्त है, स्थानस्थानमें स्वर्णमयी छायाने तिसको विभूषित कर रक्खा है ॥ ३२ ॥

स्त्रीभिरुत्तमवेषाभिः पद्मिनीभिः समावृते ।
सरोभिः सारसैर्हंसैरुपकूलजलाकुले ॥ ३३ ॥

श्रेष्ठ वेषवाली पद्मिनी (१) कामिनियें तहाँपर रहती हैं। सरोवरके किनारोंपर हंस सारस आदि जलचर पक्षी किलोलें कर रहे हैं ॥ ३३ ॥

भृङ्गरंगप्रसंगाढये पद्मैः कह्लारकुन्दकैः × ।
नानाम्बुजलताजालवनोपवनमण्डिते ॥ ३४ ॥

सिंहल देशमें अनेक प्रकारके पद्म, लताजाल, वन और उपवनसे मंडित होरहे हैं, तहाँपर कमल काँई कुन्द आदि कुसुमसे भृंगगणोंके रंगमय प्रसंगसे परमरमणीय भाव उत्पन्न होरहा है ॥ ३४ ॥

देशे बृहद्रथो राजा महाबलपराक्रमः ।
तस्य पद्मावती कन्या धन्या रेजे यशस्विनी ॥ ३५ ॥

महाबलवान् बृहद्रथ सिंहल देशका स्वामी है, पद्मावतीनामक प्रशंसाके योग्य यशवाली कन्या तिसकी बेटी है ॥ ३५ ॥

भुवने दुर्लभा लोकेऽप्रतिमा वरवर्णिनी ।
काम-मोह-करी चारु-चरित्रा चित्र-निर्मिता ॥ ३६ ॥

त्रिलोकीमें उस त्रिभुवनदुर्लभ श्रेष्ठमुखवालीकी उपमा नहीं है, तिसका चरित्र अत्यन्त रमणीय है, विधाताने अतिश्रेष्ठ चतुराईसे उसको बनायाहै जान पडताहै कि, तिसको देखनेसे कामदेवका मनभी मोहित होजाता है ॥ ३६ ॥

---

(१) कामशास्त्रमें पद्मिनीके लक्षण कहे हैं:-कविकुलतिलक जयदेवजीने रतिमंजरीनामक पुस्तकमें कहा है-

भवति कमलनेत्रा नासिका क्षुद्ररन्ध्रा अविरलकुचयुग्मा चारुकेशी कृशाङ्गी ।
मृदुवचनसुशीला गीतवाद्यानुरक्ता भवति कमलनेत्रा पद्मिनी पद्मगन्धा ॥
(रतिमंजरी, ९ श्लोक)

× कह्लारहल्लकैः । इति वा पाठथम् ।

शिवसेवापरा गौरी यथा पूज्या सुसम्मता ।
सखीभिः कन्यकाभिश्च जपध्यानपरायणा ॥ ३७ ॥

भगवती गौरी जिस प्रकार शिवजीकी सेवा करती हैं, वैसेही पूजनीया सुसम्मता पद्मावती सखी और कन्याओंके साथ जप और ध्यान किया करती हैं ॥ ३७ ॥

ज्ञात्वा तां च हरेर्लक्ष्मीं समुद्भूतां वराङ्गनाम् × ।
हरः प्रादुरभूत्साक्षात्पार्व्वत्या सह हर्षितः ॥ ३८ ॥

महादेव और पार्वतीजीने जाना कि, विष्णुजीकी प्यारी लक्ष्मीजी श्रेष्ठ-मुखवाली पद्मावतीके रूपसे पृथ्वीपर अवतरी हैं, वे हर्षित चित्तसे पद्मा-वतीके सामने प्रगट हुए ॥ ३८ ॥

सा तमालोक्य वरदं शिवं गौरीसमन्वितम् ।
लज्जिताऽधोमुखी किञ्चिन्नोवाच पुरतः स्थिता ॥ ३९ ॥

महादेव और पार्वतीजीको निहारकर पद्मावतीने लाजसे शिर नीचे कर लिया और उनके सोंही मौन होकर खडी रही ॥ ३९ ॥

हरस्तामाह सुभगे तव नारायणः पतिः ।
पाणिं ग्रहीष्यति मुदा नान्यो योग्यो नृपात्मजः ॥ ४० ॥

महादेवजीने तिससे कहा—हे सुभगे ! तुम्हारे पति नारायणजी हर्षसहित तुम्हारा पाणिग्रहण करेंगे और कोईभी राजकुमार तुम्हारे (विवाहके) योग्य नहीं है ॥ ४० ॥

कामभावेन भुवने ये त्वां पश्यन्ति मानवाः ।
तेनैव वयसा नार्य्यो भविष्यन्त्यपि तत्क्षणात् ॥ ४१ ॥

जगत्में जो मनुष्य तुमको कामभावसे देखेगा, वह तत्काल अपने पुरुष जन्मकी वयसके अनुसार तैसेही नारीरूपको प्राप्त होगा ॥ ४१ ॥

× वराननाम् । इत्यपरे पठन्ति ।

देवासुरास्तथा नागा गन्धर्व्वाश्चारणादयः ।
त्वया रन्तुं यथाकाले भविष्यन्ति किल स्त्रियः ॥ ४२ ॥

देव, असुर, नाग ,गन्धर्व, चारणादि जो कोई तुम्हारे साथ रमण करनेकी अभिलाषा करेगा वह तत्काल निश्चय स्त्री होजायगा ॥ ४२ ॥

विना नारायणं देवं त्वत्पाणिग्रहणार्थिनम् ।
गृहं याहि तपस्त्यक्त्वा भोगायतनमुत्तमम् ॥ ४३ ॥

सिवाय एक नारायणजीके तुम्हारे करपल्लवकी प्रार्थना करनेवाले सबही इस अवस्थाको प्राप्त होंगे । तपको जलांजलि देकर घरको जाओ । भोगके योग्य उत्तम शरीरको ॥ ४३ ॥

मा क्षोभय हरेः पत्नि कमले विमलं कुरु ।
इति दत्त्वा वरं सोमस्तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥ ४४ ॥

हे विष्णुविलासिनी कमले ! क्षुब्ध न करो; विमल करो । भगवान् (शशाङ्कशेखर) पार्वतीके साथ महादेवजी पद्मावतीको यह वर देकर तिस स्थानमेंही अन्तर्द्धान हुए ॥ ४४ ॥

हरवरमिति सा निशम्य पद्मा समुचितमात्ममनोरथप्रकाशम् ।
विकसितवदना प्रणम्य सोमं निजजनकालयमाविवेश रामा ॥ ४५ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये हरवरप्रदानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अपने मनोरथके अनुसार अभिलषित वरदानका वचन सुनकर पद्माने उनको प्रणाम किया । हर्षसे उनका वदनमण्डल प्रफुल्ल होगया । फिर वह रामा अपने पिताके गृहमें चलीगई ॥ ४५ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां हरवरप्रदानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

प्रथमांशः ।

पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

शुक उवाच ।

गते बहुतिथे काले पद्मां वीक्ष्य बृहद्रथः ।
निरूढयौवनां पुत्रीं विस्मितः पापशङ्कया ॥ १ ॥

शुकने कहा कि, बहुत दिन बीतनेपर पद्मावतीने यौवनकी सीमापर पांव रक्खा, राजा बृहद्रथ कन्याको युवती निहार पापकी शंकासे चिन्ता करने लगा (१) ॥ १ ॥

कौमुदीं प्राह महिषीं पद्मोद्वाहेऽत्र कं नृपम् ।
वरयिष्यामि सुभगे कुलशीलसमन्वितम् ॥ २ ॥

उसने अपनी रानी कौमुदीसे कहा—हे सुभगे ! पद्माके विवाहके लिये श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुए किस शीलवान् राजाको वरण करूं ?॥ २ ॥

सा तमाह पतिं देवी शिवेन प्रति भाषितम् ।
विष्णुरस्याः पतिरिति भविष्यति न संशयः ॥ ३ ॥

पहले महादेवजीने जैसा कहाथा, देवी कौमुदीने तिसके अनुसार बृहद्रथसे कहा; इसमें सन्देह नहीं कि, भगवान् लक्ष्मीपति पद्माका पाणिग्रहण करेंगे ३॥

इति तस्या वचः श्रुत्वा राजा प्राह कदेति ताम् ।
विष्णुः सर्व्वगुहावासः पाणिमस्या ग्रहीष्यति ॥ ४ ॥

रानीके यह वचन सुनकर राजाने पूछा, सबके हृदयमें विहार करनेवाले हरि कितने दिनके पीछे पद्माका पाणिग्रहण करेंगे ? ॥ ४ ॥

---

(१) जो पिताके घरमें कन्या रजस्वला हो तो पिता माताको पाप लगता है । जो कन्याके सत्पात्र न मिले और कन्याको विवाहकी आभिलाषा न हो तो दूसरी बात है । जो कन्याके मनमें विवाहकी अभिलाषा हो व सत्पात्रभी मिले और तिस समय जो पिता माता कन्याका विवाह न करें तो जितनीवार कन्या रजस्वला हो, उतनीही वार पिता माता जीवहत्याके भागी होते हैं । प्रमाण—

यावत्तु कन्यामृतवः स्पृशन्ति तुल्यैः सकामामपि याच्यमानाम् ।
तावन्ति भूतानि हतानि ताभ्यां मातापितृभ्यामिति धर्मवादः ॥

राजा बृहद्रथने पद्मावतीको यौवनशालिनी देखकर इस जीवहत्या पापकी शंका की थी ।

न मे भाग्योदयः कश्चिद्येन जामातरं हरिम्।
वरयिष्यामि कन्यार्थे वेदवत्या मुनेर्यथा ॥ ५ ॥

हे कौमुदि ! हमारा ऐसा कोईभी सौभाग्य उदय नहीं हुआ है कि, कन्याके निमित्त परात्पर हरिको जामातृरूपसे वरण कर सकूंगा। तपस्वीकी पुत्री वेदवती जैसे स्वयंवर सभामें (१) आईथी ॥ ५ ॥

इमां स्वयंवरां पद्मां पद्मामिव महोदधेः।
मथनेऽसुरदेवानां तथा विष्णुर्ग्रहीष्यति ॥ ६ ॥

वैसेही मैं पद्माको स्वयंवरकी सभामें लाऊंगा, जब देवता और असुर-लोगने समुद्रको मथा, तब महासागरसे कमलासना पद्माकी उत्पत्ति हुई, वहांपर श्रीहरिने जैसे उसको ग्रहण किया था (स्वयंवरक्षेत्रसे) हमारी बेटी पद्माको भी आप वैसेही ग्रहण करेंगे ॥ ६ ॥

इति भूपगणान्भूपः समाहूय पुरस्कृतान्।
गुणशीलवयोरूपविद्याद्रविणसेवितान् ॥ ७ ॥

यह विचारके राजा बृहद्रथने, गुणशाली, शीलसम्पन्न, रूपवान्, तरुण

---

(१) प्राचीन कालके आर्य राजाओंमें स्वयंवरकी रीति थी। कन्याके सम्बन्धी, समस्त राजाओंको स्वयंवरके लिये नेवता देतेथे। जब राजा लोग स्वयंवरमें आते तो कन्या उनमेंसे प्रत्येक राजाके निकट जाय उसके रूपको देखतीथी। कन्याकी सहेलियें राजाओंके गुणोंका बखान करतीथीं। रूप गुणको देख सुनकर कन्या जिस पात्रको चाहती उसहीके गलेमें माला डालकर अपनी कामनाको निवेदन करती। तदुपरान्त विधिविधानसे विवाह होजाता था। दूसरे प्रकारके विवाहमें कन्या सम्बन्धी लोग वरको नियत करते हैं परन्तु इस विवाहमें कन्या स्वयं मनमाना पात्र ग्रहण करलेती हैं, यही कारण है, इस विवाहका नाम स्वयंवर है। प्राचीनग्रंथोंमें इसका बहुतसा वृत्तान्त पाया जाता है। द्रौपदी, इन्दुमती आदि-काभी स्वयंवर हुआ था। दमयन्तीके स्वयंम्वरकाभी उद्योग हुआ था और २ सम्प्रदायोंमेंभी कभी २ स्वयंवर होता रहा। इस कल्किपुराणमेंही उदाहरणकी भाँति वेदवतीके स्वयंवरका नाम है। सबसे पिछला स्वयंवर महाराजाधिराज कान्यकुब्जाधिपति जयचन्द्रने किया, जिसमें महाराज पृथ्वीराजकी सुवर्णकी मूर्त्ति बनाई थी और इस अपमानसे क्रोधित हो पृथ्वीराज संयोगिताको हरण करके लेगयेथे। बस यहींपरसे हिन्दोस्थानमें यवन लोगोंके आनेका बीज बोया गयाथा। कभी २ स्वयंवरमें डाहके मारे युद्धभी होजाताथा। इसका प्रमाण महाभारतादि पुराण और रघुवंशादि काव्यमें पाया जाता है। मालूम होता है कि, झगडोंके कारणसेही स्वयंवरकी रीति लोप होगई।

अवस्थावाले, विद्वान् और धनवान् राजाओंको सन्मानके साथ नेवतादिया ७

स्वयंवरार्थं पद्मायाः सिंहले बहुमङ्गले ।
विचार्य्य कारयामास स्थानं भूपनिवेशनम् ॥ ८ ॥

पद्माके स्वयंवरार्थ सिंहलदेशमें अनेक प्रकारके मंगलाचार होनेलगे । राजा बृहद्रथने राजाओंके ठहरनेको यथायोग्य स्थान नियत किये ॥ ८ ॥

तत्रायाता नृपाः सर्वे विवाहकृतनिश्चयाः ।
निजसैन्यैः परिवृताः स्वर्णरत्नविभूषिताः ॥ ९ ॥

विवाहकी चाहना करनेवाले राजालोग सुवर्ण और रत्न विभूषणों (१) से विभूषित और सेनाको ले सिंहलदेशमें आगमन करने लगे ॥ ९ ॥

रथान् गजानश्ववरान् समारूढा महाबलाः ।
श्वेतच्छत्रकृतच्छायाः श्वेतचामरवीजिताः ॥ १० ॥

---

(१) पूर्वकालके समय हिन्दोस्थानमें शिल्पकी बडी उन्नतिथी, जिसका विचार करनेसे आभूषणोंके बनानेकी विचित्रताके प्रमाण मिलते हैं । रत्नरहस्य नामक ग्रंथमें आभूषणोंका वृत्तान्त लिखा है । रत्नरहस्यकारने इस वृत्तान्तको हेमकोश और तिसकी टीका, अमरविवेक, मानसोल्लास आदि प्राचीन संस्कृत ग्रंथोंमें संगृहीत किया है । उसही रत्नरहस्यसे उद्धृत करके हम कुछ विषय यहांपर लिखते हैं । यथा—

प्रथम शिरके आभूषण,-गर्भक, ललामक, बालपाश, पारितथ्य, हंसतिलक, दुण्डक-चूडामण्डन, चूडिका और लम्बन, यह आठ आभूषण शिरके हैं । १ कर्णाभरण—मुक्ताकण्टक, द्विराजिक, त्रिराजिक, स्वर्णमध्य, वज्रगर्भ, भूरिमण्डल, कुन्तल, कर्णपूर (कर्नफूल), कर्णिका, शृंखल, कर्णेन्दु यह ग्यारह कानोंके भूषण हैं । २ ललाटिका—पत्रश्यामा और लल्लाटिका । ३ कंठके भूषण—ललन्तिका, प्रालम्बिका, उरःसूत्रिका, मुक्तावली, देवच्छन्द, गुच्छ, गुच्छार्द्ध, गोस्तन, अर्द्धहार, मानवक, एकावली, नक्षत्रमाला, सारिका और वज्रकंकलिका यह चौदह गलेमें पहरनेके भूषण हैं । ४ उरोभूषण—पदक और बन्धुक यह दो उरके भूषण हैं । ५ बाहुभूषण-केयूर, अंगद, पंचका, कटक, वलय (खण्डुए) और कंकण, यह छः बाहुभूषण हैं । ६ उंगलीके गहने—द्विहीरक, वज्र, रविमण्डल, नन्द्यावर्त, नवरत्न, वज्रवेष्टित, विहीरक, शुक्तिमुद्रिका, अंगुलिमुद्रिका, मुद्रामुद्रिका यह दश उंगलियोंके भूषण हैं । ७ कटिभूषण—कांचा, मेखला, रसना, कलाप, कांचीजल और शृंखल यह छः हैं । ८ पादभूषण—पादचूड, पादकटक, पाद, पद्मकिंकिणि, पादकण्टक, मुद्रिका यह छः हैं । और भी दो चार गहने हैं, पुस्तकके बढजानेसे उनका विस्तारित वृत्तान्त नहीं लिखा । जहांपर जैसे भूषणका नाम प्रसंगमें आजायगा, वहांपर तिनके बनानेकी रीति और आकृतिका वृत्तान्त लिखेंगे ।

वह महाबलवान् राजालोग रथ, हाथी और घोडोंपर सवार होकर तहां उपस्थित हुए। श्वेतच्छत्र उनको छायादान करने लगा, (परिजन गण) श्वेतचामरसे बयार करने लगे ॥ १० ॥

शस्त्रास्त्रतेजसा दीप्ता देवाः सेन्द्रा इवाभवन् ।
रुचिराश्वः सुकर्म्मा च मदिराक्षो दृढाशुगः ॥ ११ ॥

अस्त्र और शस्त्रराजिकी दीप्तिसे वे राजालोग देवताओंके साथ हुए इन्द्रके समान जानपडने लगे। रुचिराश्व, सुकर्मा, मदिराक्ष, दृढाशुग ॥ ११ ॥

कृष्णसारः पादरश्च जीमूतः क्रूरमर्दनः ।
काशः कुशाम्बुर्वसुमान् कङ्कः क्रथनसञ्जयौ ॥ १२ ॥

कृष्णसार, पादर, जीमूत, क्रूरमर्दन, काश, कुशाम्बु, वसुमान्, कंक, क्रथन, संजय ॥ १२ ॥

गुरुमित्रः प्रमाथी च विजृम्भः सृञ्जयोऽक्षमः × ।
एते चान्ये च बहवः समायाता महाबलाः ॥ १३ ॥

गुरुमित्र, प्रमाथी, विजृम्भ, सृञ्जय, अक्षम आदि व और और पराक्रमी राजालोग सिंहलदेशमें इकट्ठे हुए थे ॥ १३ ॥

विविशुस्ते रङ्गगताः स्वस्वस्थानेषु पूजिताः ।
वाद्यताण्डवसंहृष्टाश्चित्रमाल्याम्बराधराः × ॥ १४ ॥

वे राजालोग विचित्रमाला और वस्त्र धारण करके रंगभूमिमें आये और (आदरसहित) पूजित हो अपने २ आसनपर बैठ गये । (तिनके चित्तको प्रसन्न करनेके लिये) नाच होनेलगा, बाजे बजने लगे ॥ १४ ॥

नानाभोगसुखोद्रिक्ताः कामरामा रतिप्रदाः ।
तानालोक्य सिंहलेशः स्वां कन्यां वरवर्णिनीम् ॥ १५ ॥

रमणीय चारित्रवाले राजालोग भोग और सुखके भोगनेमें आसक्त और सबके प्रसन्न करनेवाले थे, सिंहलके महाराजने उनको देखकर श्रेष्ठ वर्णवाली अपनी कन्याको बुलाया ॥ १५ ॥

× सञ्जयोऽक्षमः । इति वा पाठः । × चित्रमाल्याम्बराम्बरा इति कचित् पाठः ।

गौरीं चन्द्राननां श्यामां तारहारविभूषिताम् ।
मणिमुक्ताप्रवालैश्च सर्व्वाङ्गालंकृतां शुभाम् ॥ १६ ॥

जो कि गौरी, चन्द्रमुखी, श्यामा थी, पद्मावतीका सब शरीर मणि, मोती और मूंगोंसे सजाथा । वह परमरमणीय हारसे विभूषित थी ॥ १६ ॥

किं मायां मोहजननीं किं वा कामप्रियां भुवि ।
रूपलावण्यसम्पत्त्या न चान्यामिह दृष्टवान् ॥ १७ ॥

मुझको जान पडने लगा कि, पद्मावती क्या मोहमयी माया है ? अथवा कामदेवके मनको मोहनेवाली रति पृथ्वीपर आगई है ? ऐसी रूप लावण्य-वाली मैंने दूसरी नहीं देखी ॥ १७ ॥

स्वर्गे क्षितौ वा पाताले ऽप्यहं सर्व्वत्रगो यदि ।
पश्चाद्दासीगणाकीर्णां सखीभिः परिवारिताम् ॥ १८ ॥

हे देव ! यद्यपि मैं स्वर्ग, मृत्यु व पाताल सबमेंही घूमाहूं । पीछे उसके दासियां थीं, सखी उसको घेरे हुएथीं ॥ १८ ॥

दौवारिकैर्वैत्रहस्तैः शासितान्तःपुराद्बहिः ।
पुरो बन्दिगणाकीर्णां प्रापयामास तां शनैः ॥ १९ ॥

बेंत लिये हुए पौरिये राजा बृहद्रथके अन्तःपुरको शासन करते थे। सभास्थानके अगले भागमें बन्दिगण (१) खडे हुए थे, तहांपर राजकुमा-रीने धीरे धीरे प्रवेश किया ॥ १९ ॥

---

(१) वैश्य पुरुषके औरससे और क्षत्रियाणीके गर्भसे जिनका जन्म होता है, तिनको मागधजाति कहते हैं । यथा—

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः । वैश्यान्मागधवैदेहौ राजविप्रांगनासुतौ ॥
(मनु० १० अ० ११ श्लोक)

अर्थात् क्षत्रीके औरससे ब्राह्मणीके गर्भसे उत्पन्न हुई सन्तान सूतजाति है, वैश्यपुरुषसे क्षत्राणीके गर्भमें उत्पन्न हुई सन्तान मागधजाति है और वैश्यसे ब्राह्मणीके गर्भमें उत्पन्न हुई सन्तान वैदेहजाति कहाती है ।

बन्दीगण यह मागधजाति है । यह युद्धके समय, या किसी उत्सवके समय और राजसभामें राजाओंका यश गाया करते थे । राजपूतानेके चारण अनेक अंशमें (जातिमें नहीं) तिनके समान कहे जा सकते हैं । राजा या अमीर उमरावोंकी स्तुति करके कुछ धन पैदा कर वे अपना निर्वाह करते हैं । आजकल श्राद्धशान्तिके समय जो पात्रान्न भोजन करते हैं और नियत हुए दानको ग्रहण करते हैं, वंशका गुण गाते हैं, वही यह मागध होसकते हैं, आजकल चलित भाषामें इनको " भाट " कहते हैं ।

नूपुरैः किङ्किणीभिश्च क्वणन्तीं जनमोहिनीम् ।
स्वागतानां नृपाणां च कुलशीलगुणान् बहून् ॥ २० ॥

उस संसारमोहिनीके नूपुरकी ध्वनि और किंकिणीकी ध्वनि सुनाई आनेलगी । आये हुए राजाओंके वहुत प्रकारसे कुलशील–॥ २० ॥

शृण्वन्ती हंसगमना रत्नमालाकरग्रहा ।
रुचिरापांगभंगेन प्रेक्षन्ती लोलकुण्डला ॥ २१ ॥

सुनतीहुई, हंसके समान चलनेवाली पद्मावती हाथमें रत्नकी माला ग्रहण करके मनोहर अपांगोंको चलायमान करके राजाओंको निहारने लगी, उसके कानोंमें पडे हुए कुण्डल हिलने लगे ॥ २१ ॥

नृत्यत्कुन्तलसोपानगण्डमण्डलमाण्डिता ।
किञ्चित्स्मेरोल्लसद्वक्त्रदशनद्योतदीपिता ॥ २२ ॥

केशकुन्तलके हिलनेसे गर्दन अपूर्व शोभासे शोभायमान हुई, मन्द मुसकानकी प्रभासे पद्माका वदन विकासित और दशनकान्ति प्रभासित होने लगी ॥ २२ ॥

वेदीमध्याऽरुणक्षौमवसना कोकिलस्वना ।
रूपलावण्यपण्येन क्रेतुकामा जगत्त्रयम् ॥ २३ ॥

उसकी कमर वेदीकी समान पतली है । वह कोकिलकी समान बोलने-वाली, लाल रंगके रेशमीन कपडे पहिर रही थी, तब ऐसा ज्ञात हुआ कि, वह रूप लावण्यरूपी सौदे (पण्य) से त्रिलोकीको मोल लेनेकी अभिलाषा किये हैं ॥ २३ ॥

समागतां तां प्रसमीक्ष्य भूपाः संमोहिनीं कामविमूढचित्ताः ।
पेतुः क्षितौ विस्मृतवस्त्रशस्त्रा रथाश्वमत्तद्विपवाहनास्ते ॥ २४ ॥

जो राजालोग रथ, घोडे और मतवाले हाथियोंकी पीठपर चढकर भ्रमण करते थे, वे उस मनमोहिनी कामिनीको देखकर कामदेवके वश हुए, उनका चित्त विह्वल होगया उनके वस्त्र और अस्त्र शस्त्र खुलकर पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ २४ ॥

तस्याः स्मरक्षोभनिरीक्षणेन स्त्रियो बभूवुः कमनीयरूपाः।
बृहन्नितम्बस्तनभारनम्राः सुमध्यमास्तत्स्मृतिजातरूपाः ॥२५॥

वे (राजालोग) काममोहित होकर काममय नेत्रोंसे पद्माको देखने लगे थे, इस कारण (उन्होंने) बडे नितम्बवाली, दो स्तनोंवाली, श्रेष्ठ कमरकी स्त्रीका कमनीय शरीर धारण किया उनके स्मृतिरूपी वस्त्रपर जैसी रमणीय मूर्तिकी छाया पडीथी, उनकी मूर्ति वैसेही होगई ॥ २५ ॥

विलासहासव्यसनातिचित्राः कान्ताननाः शोणसरोजनेत्राः।
स्त्रीरूपमात्मानवेक्ष्य भूपास्तामन्वगच्छन्विशदानुवृत्त्या ॥ २६ ॥

उन्होंने विलास हास्य और व्यसन चतुरताको प्राप्त किया, उनके नेत्र कमलकी पंखडीके समान शोभायमान हुए, वदनमंडलपर कमनीयकान्ति प्रफुल्ल होगई। अपने स्त्रीरूपको देखकर राजालोग प्रसन्न हो सहेलीके वेशसे तिसके पीछे पीछे चलने लगे ॥ २६ ॥

अहं वटस्थः परिधर्षितात्मा पद्माविवाहोत्सवदर्शनाकुलः।
तस्या वचोऽन्तर्हृदि दुःखितायाः श्रोतुं स्थितः स्त्रीत्वमितेषु तेषु२७॥

हे देव ! पद्माके विवाहका उत्सव देखनेकी अभिलाषासे मैं निकटके एक वटवृक्षपर बैठाथा, इस बातके देखनेसे मुझको अत्यन्त दुःख होने लगा। जब राजाओंने रमणीय स्त्री मूर्ति धारण की ॥ २७ ॥

जहीहि कल्के कमलाविलापं श्रुतं विचित्रं जगतामधीश।
गते विवाहोत्सवमङ्गले सा शिवं शरण्यं हृदये निधाय ॥ २८ ॥

तब अत्यन्त दुःखित होकर पद्मा विलाप करने लगी। हे कल्के ! मैं उसके सुननेके लिये बैठा रहाथा। हे जगत्के स्वामिन् ! मंगलमय विवाहोत्सवके अंत होजानेपर पद्मावती मनसे शरण देनेवाले महादेवजीका ध्यान करके जैसी संतापित हुईथी, सो मैंने उस कमलाके विलापको सुनाहै, तिसको आप सुनैं॥ २८॥

तान् दृष्ट्वा नृपतीन् गजाश्वरथिभिस्त्यक्तान्सखीत्वं गतान्×
स्त्रीभावेन समन्विताननुगतान् पद्मां विलोक्यान्तिके।

× गजाश्वरथिभिस्त्यक्त्वा सखित्वं गतान् इति पाठान्तरम्।

दीना त्यक्तविभूषणा विलिखती पादाङ्गुलैः कामिनी
शं कर्त्तुं निजनाथमीश्वरवचस्तथ्यं हरिं साऽस्मरत् ॥ २९ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये पद्मास्वयंवरे भूपतीनां स्त्रीत्वकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पद्माने देखा कि, राजालोग मुझको देखकर हाथी घोडे रथोंको छोड स्त्रीरूपको धारण करते हुए और सहेली बन निकटही चलने लगे। तब वह दीनभावसे गहनोंको उतार पांवकी उंगलीसे पृथिवीको कुरेदने लगी (१) फिर महादेवजीके वरको सफल करनेकी वासनासे संसारके ईश्वरको पति-भावसे ध्यान करना उचित आरम्भ करती हुई ॥ २९ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये बलदेव० भाषाटी० पद्मास्वयंवरे भूपतीनां स्त्रीत्वकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

प्रथमांशः ।

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

शुक उवाच ।

ततः सा विस्मितमुखी पद्मा निजजनैर्वृता ।
हरिं पतिं चिन्तयन्ती प्रोवाच विमलां स्थिताम् ॥ १ ॥

शुक बोला—इसके उपरान्त पद्मावती (अपने) पति श्रीहरिकी चिन्ता करने लगी; उसके मुखपर विस्मय भावके चिह्न दिखाई देने लगे। पद्माकी सहेली (उसका इस प्रकार भावान्तर देख) निकट आई, तब वह विमला-नामक सहेलीसे (पुकारकर) कहने लगी॥ १ ॥

---

(१) अंगूठेसे पृथ्वीका कुरेदना आदि अनुरागिणी नायिकाके अनुरागका लक्षण है यथा—
अंगुष्ठाग्रेण लिखति सकटाक्षं निरीक्षते। दशति स्वाधरं चापि ब्रूते प्रियमधोमुखी ॥
(साहित्यदर्पण, ३ परिच्छेद)
अर्थात् (नायिका) अंगूठेके पृथ्वीको कुरेदै, कटाक्षके साथ देखे, अपने अधर काटे और मुख नीचेको नवाय प्रीतमके साथ बात करती है।
यहांपर पद्मावतीके अनुरागका लक्षण प्रगट हुआ है, ऐसा निर्देश किया है।

पद्मोवाच ।

विमले किं कृतं धात्रा ललाटे लिखनं मम ।
दर्शनादपि लोकानां पुंसां स्त्रीभावकारकम् ॥ २ ॥

पद्मा बोली—हे विमले ! क्या विधाताने हमारे भाग्यमें यही लिखा है कि, पुरुष हमको देखतेही स्त्री होजाय ॥ २ ॥

ममापि मन्दभाग्यायाः पापिन्याः शिवसेवनम् ।
विफलत्वमनुप्राप्तं बीजमुप्तं यथोषरे ॥ ३ ॥

हे सखि ! मैं अत्यन्त हतभागिनी और दुराचारिणी हूं, इससेही, जैसे मरुभूमिमें बीज बोनेसे कोईभी फल नहीं होता, वैसेही हमारी की हुई शिवकी उपासना विफल होगई ॥ ३ ॥

हरिर्लक्ष्मीपतिः सर्व्वजगतामाधिपः प्रभुः ।
मत्कृतेऽप्यभिलाषं किं करिष्यति जगत्पतिः ॥ ४ ॥

परात्पर हरि त्रिभुवनके परिपालक हैं; वह त्रिभुवनके स्वामी, भगवान् कमलापति क्या हमारे प्रति अभिलाष करेंगे ? ॥ ४ ॥

यदि शम्भोर्वचो मिथ्या यदि विष्णुर्न मां स्मरेत् ।
तदाऽहमनले देहं त्यक्ष्यामि हरिभाविता ॥ ५ ॥

जो महादेवजीका वाक्य मिथ्या होजाय, जो विष्णुजी हमको स्मरण न करैं तो मैं श्रीहरिका ध्यान करते करते अग्निकुण्डमें जीवनको समर्पण करदूंगी ॥ ५ ॥

क्व चाहं मानुषी दीना क्वाऽऽस्ते देवो जनार्दनः ।
निगृहीता विधात्राऽहं शिवेन परिवञ्चिता ॥ ६ ॥

मैं अत्यन्तदीन मानवी हूं, नारायणजी देवदेव हैं, (दोनोंके विवाहकी सम्भावना कहां ?) विधाता हमारे विमुख है, नहीं तो महादेव किस कारणसे हमको ठगते ? ॥ ६ ॥

विष्णुना च परित्यक्ता मदन्या काऽत्र जीवति ॥ ७ ॥

विष्णुजीसे त्यागी जाकर मैं जीवन धारण करती हूं ? ऐसी अवस्थामें मेरे सिवाय और कोईभी प्राणधारण नहीं कर सकती ॥ ७ ॥

इति नाना विलापिन्या वचनं शोचनाश्रयम् ।
पद्मायाश्चारुचेष्टायाः श्रुत्वाऽऽयातस्तवान्तिके ॥ ८ ॥

श्रेष्ठ चरित्रवाली पद्माका ऐसा नाना प्रकारका शोकयुक्त विलाप सुनकर मैं आपके निकट आयाहूं ॥ ८ ॥

शुकस्य वचनं श्रुत्वा कल्किः परमविस्मितः ।
तं जगाद पुनर्याहि पद्मां बोधयितुं प्रियाम् ॥ ९ ॥

शुकके यह वचन सुनकर कल्किजी अत्यन्त विस्मित हुए और तिससे कहा कि, तुम फिर (सिंहलदेशमें) जाओ और हमारी प्यारी पद्माको समझाओ बुझाओ ॥ ९ ॥

मत्सन्देशहरो भूत्वा मद्रूपगुणकीर्त्तनम् ।
श्रावयित्वा पुनः कीर समायास्यसि बान्धव ॥ १० ॥

हे शुक ! तुम हमारा सन्देशा ले जानेवाले होकर प्यारीके समीप हमारे रूपगुणका वृत्तान्त कहना, हे बान्धव विहङ्गम! तुम (इस कार्यको करके) फिर आइयो ॥ १० ॥

सा मे प्रिया पतिरहं तस्या दैवविनिर्मितः ।
मध्यस्थेन त्वया योगमावयोश्च भविष्यति ॥ ११ ॥

पद्मा हमारी प्यारी स्त्री और मैं पद्माका पति हूं, यह विधाताने स्थिर कर ही रक्खा है, तुम मध्यस्थ होकर परस्पर हमारा मेल करादीजो ॥ ११ ॥

सर्वज्ञोऽसि विधिज्ञोऽसि कालज्ञोऽसि कथामृतैः ।
तामाश्वास्य ममाश्वासकथास्तस्याः समाहर ॥ १२ ॥

तुम सर्वज्ञ और नियमज्ञ हो, समयपर कार्यको करसकते हो, (इस कारण) वचनरूप सुधाधारासे तिसको समझा बुझाकर हमारे (संतोषके) लिये तिसका आश्वास वाक्य कर आइयो ॥ १२ ॥

इति कल्केर्वचः श्रुत्वा शुकः परमहर्षितः ।
प्रणम्य तं प्रीतमनाः प्रययौ सिंहलं त्वरन् ॥ १३ ॥

कल्किजीके यह वचन सुनकर शुक अत्यन्त आनन्दित हुआ और प्रसन्न हो तिनको प्रणाम करके शीघ्रताके साथ सिंहलकी ओरको गया ॥ १३ ॥

खगः समुद्रपारेण स्नात्वा पीत्वाऽमृतं पयः ।
बीजपूरफलाहारो ययौ राजनिवेशनम् ॥ १४ ॥

इसके उपरान्त वह पक्षी समुद्रके पार जाय स्नान कर और अमृतमय जल पीकर बिजौरा नामक नीम्बू फलका आहार करता हुआ फिर राजभवनमें पहुँचकर ॥ १४ ॥

तत्र कन्यापुरं गत्वा वृक्षे नागेश्वरे वसन् ।
पद्मामालोक्य तां प्राह शुको मानुषभाषया ॥ १५ ॥

कन्याके अन्तःपुरमें जाय नागकेशरके वृक्षपर बैठा श्रेष्ठ बुद्धिवाला शुक पद्माको देखकर मनुष्यकी बोलीसे कहताहुआ ॥ १५ ॥

कुशलं ते वरारोहे रूपयौवनशालिनि ।
त्वां लोलनयनां मन्ये लक्ष्मीरूपामिवापराम् ॥ १६ ॥

हे वरारोहे ! तुम कुशलसे तो हो ? मैं देखताहूँ कि, तुम अनुपम रूपवती और पूर्ण यौवनवाली हो तुम्हारे दोनों नेत्र चंचल (और अत्यन्त मनोहर हैं) मैं जानताहूं कि, तुम दूसरी लक्ष्मी हो ॥ १६ ॥

पद्माननां पद्मगन्धां पद्मनेत्रां कराम्बुजे ।
कमलं लालयन्तीं त्वां लक्षयामि परां श्रियम् ॥ १७ ॥

तुम्हारा मुखमण्डल पद्म (कमल) की नांई है, तुम्हारे शरीरमें पद्मकी समान गन्ध है, तुम्हारे दोनों नेत्र पद्मकी नांई शोभायमान हो रहेहैं। तुम्हारे हाथभी (लाल) पद्मकी समान हैं, तुम्हारे हाथमेंभी पद्म है, इन्हीं लक्षणोंसे हमको जान पडता कि, तुम दूसरी लक्ष्मी हो ॥ १७ ॥

किं धात्रा सर्व्वजगतां रूपलावण्यसम्पदाम् ।
निर्मितासि वरारोहे जीवानां मोहकारिणि ॥ १८ ॥

हे वरारोहे ! तुम समस्तजीवोंकी मोहनेवाली हो, हमें जानपडता है कि, विधाताने सारे संसारकी रूप लावण्यराशि इकट्ठी करके तुमको बनाया होगा ॥ १८ ॥

इति भाषितमाकर्ण्य कीरस्याऽमृतमद्भुतम् * ।
हसन्ती प्राह सा देवी तं पद्मा पद्ममालिनी ॥ १९ ॥

तोतेके ऐसे अनसुने अमृत वचन सुनकर, पद्मकी माला पहिरे हुए पद्मा हँसकर बोली ॥ १९ ॥

कस्त्वं कस्मादागतोऽसि कथं मां शुकरूपधृक् ।
देवो वा दानवो वा त्वमागतोऽसि दयापरः ॥ २० ॥

तुम कौन हो ? कहांसे आयेहो, तुम शुकरूपधारी देवता हो या दैत्य हो ? तुम दयावान् होकर किस निमित्त हमारे पास आये हो ? ॥ २० ॥

शुक उवाच ।

सर्व्वज्ञोऽहं कामगामी सर्व्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
देवगन्धर्व्वभूपानां सभासु परिपूजितः ॥ २१ ॥

शुक बोला—मैं सर्वज्ञ और सब शास्त्रोंके तत्त्वको जाननेवाला हूं, मैं कामगामी अर्थात् जब जहां इच्छा होती है तबही तहाँ जा सकता हूं । देवसभा, गन्धर्वसभा और राजसभामें हमारा भलीभांति सम्मान और आदर है॥ २१॥

चरामि स्वेच्छया खे त्वामीक्षणार्थमिहागतः ।
त्वामहं हृदि संतप्तां त्यक्तभोगां मनस्विनीम् ॥ २२ ॥

मैं इच्छानुसार आकाशमार्गमें घूमा करताहूं । अब तुमको देखनेके लिये यहां आयाहूं । तुम श्रेष्ठ हृदयवाली होकरभी इस समय हृदयमें अत्यन्त सन्तापयुक्त हो और भोगसुखसे विमुख हुई हो ॥ २२ ॥

---

* कीरस्यामितमद्भुतम् इति वा पाठः।

हास्यालाप-सखीसंग-देहाभरण-वर्जिताम् ।
विलोक्याऽहं दीनचेताः पृच्छामि श्रोतुमीरितम् ॥
कोकिलालाप-सन्तापजनकं मधुरं मृदु ॥ २३ ॥

हास्य, परिहास, किसीके साथ बोलना चालना, सखियोंका संग और शरीरके गहने यह सब तुमने छोड़ दिये हैं। मैं तुम्हारी ऐसी अवस्था देख दीनचित्तवाला हो, कोयलके बोलसेभी मधुर और मृदु तुम्हारे वचन श्रवण करनेके लिये (तुम्हारे संतापका कारण) पूछता हूं ॥ २३ ॥

तव दन्तौष्ठजिह्वाग्रलुलिताक्षरपङ्क्तयः ।
यत्कर्णकुहरे मग्नास्तेषां किं वर्ण्यते तपः ॥ २४ ॥

तुम्हारे दांत, अधर और जिह्वाग्रसे निकली हुई अक्षरोंकी पांति जिसके कानोंमें पडे तिसकी तपस्याका कहांतक वर्णन करूं ॥ २४ ॥

सौकुमार्य्यं शिरीषस्य क्व कान्तिर्वा निशाकरे ।
पीयूषं क्व वदन्त्येवानन्दं ब्रह्मणि ते बुधाः * ॥ २५ ॥

तुम्हारे सामने शिरीषके फूलकी सुकुमारता और चन्द्रमाकी कांति फीकी है। पंडितलोग अमृत और ब्रह्मानन्दकी प्रशंसा किया करते हैं; परन्तु सो भी तुम्हारे आगे अतिसाधारण है ॥ २५ ॥

तव बाहुलताबद्धा ये पास्यन्ति सुधाननम् ।
तेषां तपोदानजपैर्व्यर्थैः किं जनयिष्यति ॥ २६ ॥

जो पुण्यवान् पुरुष तुम्हारे कोमल बाहुरूपी पाशमें बँधकर तुम्हारे चंद्र-समान वदनकी अमृतधाराको पियेगा, तिसके लिये तप, दान, जपादि धर्म-कर्म अत्यन्त तुच्छ हैं, क्योंकि, धर्मकर्म करनेसे कुछ इससे अधिक सुख-कारी पदार्थका होना सम्भव नहीं ॥ २६ ॥

तिलकालकसम्मिश्रं लोलकुण्डलमण्डितम् ।
लोलेक्षणोल्लसद्वक्त्रं पश्यतां न पुनर्भवः ॥ २७ ॥

हे सुन्दरि ! तुम्हारे वदनमण्डलपर तिलक और अलकें शोभायमान हैं, दो चञ्चल कुण्डलोंसे मुखकी शोभा बढती है, विलोल लोचनसे सुन्दरताई खिल

---

* ब्रह्मणि तेऽधुना इति वा पाठः।

रही है । अनन्त शोभाके भवनरूप तुम्हारे मुखकमलको जो देखेगा तो उसका दूसरा जन्म होना संभव नहीं ॥ २७ ॥

बृहद्रथसुते स्वाधिं वद भामिनि यत्कृते ÷ ।
तपःक्षीणामिव तनुं लक्षयामि रुजं विना ॥
कनकप्रतिमा यद्वत् × पांसुभिर्मलिनीकृता ॥ २८ ॥

हे बृहद्रथकी पुत्रि ! इस समय तुम्हारे मानसिक दुःखका क्या कारण है ? कहो । हे भामिनि ! इस समय मानसिक दुःख करके तुम्हारा यह शरीर पीडाके विनाभी तपसे क्षीण हुएकी समान दिखाई देता है । विशेष करके सुवर्णकी प्रतिमा धूरिसे मलीन होनेपर जैसी दीखती है तैसेही (तुम्हारा यह शरीरभी मलीन होगयाहै) ॥ २८ ॥

पद्मोवाच ।

किं रूपेण कुलेनापि धनेनाभिजनेन वा ।
सर्व्वं निष्फलतामेति यस्य दैवमदक्षिणम् ॥ २९ ॥

पद्मा बोली—जिसपर भगवान् विष्णुजी अनुकूल नहीं हैं; तिसका रूप, कुल, धन, ऊंचे वंशमें जन्मादि सबही विफल हैं ॥ २९ ॥

शृणु कीर समाख्यानं * यदि वा विदितं तव ।
बाल्य-पौगण्ड-कैशोरे हरसेवां करोम्यहम् ॥ ३० ॥

हे कीर! हमारा बृत्तान्त जो तुम न जानते हो तो सुनो । मैंने पौगण्ड(१) बाल्य और किशोर अवस्थामें शिवजीकी पूजा की थी ॥ ३० ॥

तेन पूजाविधानेन तुष्टो भूत्वा महेश्वरः ।
वरं वरय पद्मे त्वमित्याह प्रियया सह ॥ ३१ ॥

÷ वद भाविनि यत् कृतम् इति पाठान्तरम् ।

× कनकप्रतिमं तद्वत् इत्यपरे पठन्ति । * शृणु कीर ममाख्यानम् ।

(१) कोई २ कहते हैं कि, पांच वर्षसे लेकर १६ वर्षतककी उमरका नाम पौगण्ड है । ११ वर्षसे लेकर पंद्रह वर्षतक किशोर अवस्था है । जन्म होनेसे पांच वर्षतक शैशवावस्था है । ६ वर्षसे लेकर १०॥ वर्षतक बाल्यावस्था है । यौवन १७ वर्षसे लेकर ३५ वर्षतक है । ३६ से लेकर पचास वर्षतक प्रौढ दशा है । ५१ से लेकर ७० तक वृद्धदशा है । ७१ से लेकर शेषायुतक अतिवृद्ध दशा है ।

उस पूजासे महादेवजीने संतुष्ट हो पार्वतीके साथ आयकर कहा—हे पद्मे ! तुम वर मांगो ॥ ३१ ॥

लज्जयाऽधोमुखीमग्रे स्थितां मां वीक्ष्य शङ्करः ।
प्राह ते भविता स्वामी हरिर्नारायणः प्रभुः ॥ ३२ ॥

फिर उन्होंने हमें सामने खड़ी और लाजसे नीचेको मुख किये हुए देखकर कहा कि, प्रभु नारायण हरि तुम्हारे स्वामी होंगे ॥ ३२ ॥

देवो वा दानवो वाऽन्यो गन्धर्वो वा तवेक्षणात् ।
कामेन मनसा नारी भविष्यति न संशयः ॥ ३३ ॥

देव, दानव, गन्धर्व या और जो कोई सकाम हृदयसे तुमको देखेगा, वह तत्काल नारीरूपको प्राप्त होजायगा ॥ ३३ ॥

इति दत्त्वा वरं सोमः प्राह विष्णवर्च्चनं यथा ।
तथाऽहं ते प्रवक्ष्यामि समाहितमनाः शृणु ॥ ३४ ॥

यह वर देकर भगवान् महेश्वरने विष्णुपूजाका जैसा प्रकरण बतादिया है, सोभी तुमसे कहतीहूँ सावधान चित्तसे सुनो ॥ ३४ ॥

एताः सख्यो नृपाः पूर्व्वमाहृता ये स्वयंवरे ।
पित्रा धर्म्मार्थिना दृष्ट्वा रम्यां मां यौवनान्विताम् ॥ ३५ ॥

यह जो हमारी सखियोंको देखते हो, यह सब पहले राजा थे, हमारे पिताने हमको यौवनकी सीमासे उत्तीर्ण और रमणीय आकारसे युक्त देख धर्मकी रक्षा करनेके अभिप्रायसे इन सब राजाओंको हमारे स्वयंवरस्थानमें इकट्ठा कियाथा ॥ ३५ ॥

स्वागतास्ते सुखासीना विवाहकृतनिश्चयाः ।
युवानो गुणवन्तश्च रूपद्रविणसम्मताः ॥ ३६ ॥

यह लोग युवा, गुणवान्, रूपवान् और अतुल ऐश्वर्यसे युक्त थे । यह लोग मेरे साथ विवाह करनेकी वासना करके सुखसे आये और स्वयंवरकी सभामें सुखसे बैठे ॥ ३६ ॥

स्वयंवरगतां मां ते विलोक्य रुचिरप्रभाम् ।
रत्नमालाश्रितकरां निपेतुः काममोहिताः ॥ ३७ ॥

तब मैं हाथमें रत्नमाला ग्रहण करके मनोहर प्रभाको विस्तार करती हुई स्वयंवरके स्थानमें आई, राजालोग मुझको देखतेही कामदेवके बाणसे जर्जर-शरीर हो पृथ्वीपर गिरे ॥ ३७ ॥

तत उत्थाय सम्भ्रान्ताः सम्प्रेक्ष्य स्त्रीत्वमात्मनः ।
स्तनभारनितम्बेन गुरुणा परिणामिताः ॥ ३८ ॥

फिर वे हडबडायकर उठे तो देखा कि, सब शरीरमें स्त्रियोंके चिह्न हो गये हुए हैं । भारी नितम्ब और बडे दो पयोधर शोभायमान होरहे हैं ॥ ३८ ॥

ह्रिया भिया च शत्रूणां मित्राणामतिदुःखदम् ।
स्त्रीभावं मनसा ध्यात्वा मामेवानुगताः शुक ॥ ३९ ॥

हे शुक ! इसके उपरान्त वे अपना स्त्रीभाव प्रत्यक्ष देखकर शत्रु या मित्र सबकेही निकट लाज और भयके मारे (फिर मुँह दिखानेकी इच्छा न करते हुए) तदुपरान्त वह अंतःकरणमें दुःखित हो कुछ कालतक मन-हीमन शोच विचार मेरेही साथ होलिये ॥ ३९ ॥

परिचर्य्यां हरिरताः सख्यः सर्व्वगुणान्विताः ।
मया सह तपो ध्यानं पूजां कुर्व्वन्ति सम्मताः ॥ ४० ॥

इस समय यह हमारी सखी हुए हैं, सर्व गुणोंसे विभूषित यह लोग हमारे स्नेहके पात्र हैं । यह हमारे साथ विष्णुजीकी पूजा, विष्णुजीका ध्यान और तप करते हैं ॥ ४० ॥

तदुदितमिति सन्निशम्य कीरः श्रवणसुखं निजमानसप्रकाशम् ।
समुचितवचनैः प्रतीक्ष्य पद्मा मुरहरयजनं पुनः प्रचष्टे ॥ ४१ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये शुकपद्मासंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अपनी मानासिक इच्छाके अनुरूप, श्रवण सुखदायी पद्माके यह वचन सुनकर तोतेने कथाके उचित प्रसंगसे उसको संतुष्ट किया, इसके उपरान्त

(फिर) विष्णुपूजा (१) विषयक कथाको उठाता हुआ ॥ ४१ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभा० भविष्ये बलदेव०भाषाटी०शुकपद्मासंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

प्रथमांशः ।

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

शुक उवाच-विष्णवर्चनं शिवेनोक्तं श्रोतुमिच्छाम्यहं शुभे ।
धन्याऽसि कृतपुण्याऽसि शिवशिष्यत्वमागता ॥ १ ॥

१ जो देवता विश्वमें व्याप्त होरहे हैं, वही विष्णु हैं, जो देवता विश्वको प्रसन्न करते हैं, वही विष्णु हैं, संस्कृत भाषामें धातु और व्याकरणकी सहायतासे अनेक अर्थ होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि, यह अचिन्त्य शक्ति परात्पर भगवान्‌काही नाम है । विष्णुपुराणका मत है कि, प्रलयके समय समस्त संसारका श्रीनारायणजीके शरीरमें लय होजाता है, इसी कारणसे इनका विष्णुनाम हुआ है। यथा-

यस्माद्विश्वमिदं सर्वं तस्य शक्त्या महात्मनः । तस्मादेवोच्यते विष्णुः विशधातोः प्रवेशनात् ॥

अर्थात्-उस महात्मा देवताकी शक्तिसे यह विश्व (तिसमें) "प्रविष्ट होताहै" विश-धातुका प्रवेशनरूप अर्थ ग्रहण करनेसे ऐसा अर्थ होता है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें कहा है-

न क्षीयसे न क्षरसे कल्पकोटिशतैरपि । तस्मात्त्वमक्षरत्वाच्च विष्णुर्वेति प्रकीर्त्यसे ॥

(प्रकृतिखण्ड २४ अध्याय)

यह भगवान् विष्णुजी रजोगुणप्रधान होकर सृष्टि करते, सत्त्वगुणप्रधान होकर पालन करते और तमोगुणप्रधान होकर ध्वंस करते हैं, यथा-

रजोगुणमयं चान्यं रूपं तस्यैव धीमतः । चतुर्मुखः स भगवान् जगत्सृष्टौ प्रवर्त्तते ॥
सृष्टं च पाति सकलं विश्वात्मा विश्वतोमुखः । सत्त्वं गुणमुपाश्रित्य विष्णुर्विश्वेश्वरः स्वयम् ॥
अन्तकाले स्वयं देवः सर्वात्मा परमेश्वरः । तमोगुणं समाश्रित्य रुद्रः संहरते जगत् ॥
एकोऽपि सन् महादेवस्त्रिधाऽसौ समवस्थितः । सर्गरक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽपि निरञ्जनः ॥

(कूर्मपुराण ४ अध्याय)

अर्थात् उन शक्तिमान् भगवान्‌का रजोगुणमें चतुर्मुख रूप है । वह चतुर्मुख (ब्रह्माकी मूर्ति) जगत्‌की सृष्टि करने लगा । विश्वेश्वर श्रीहरि आपही सत्त्वगुणका अवलम्बन कर विश्व-मुख विश्वात्मा विष्णुरूपसे उत्पन्न हुए समस्त लोकोंका पालन करते हैं। तदनन्तर प्रलयकालमें वही सर्वान्तर्यामी परमेश्वर तमोगुणका आश्रय करके रुद्ररूपसे सारी सृष्टिका संहार करते हैं। वह निरंजन महादेवजी एकरूप होनेपरभी, त्रिविधरूपसे विराजमान हो सृष्टि, स्थिति और प्रलय इन तीन गुणसे त्रिविध हुए हैं ॥ अग्निपुराणमें कहा है:-

सृष्टिस्थित्यन्तकरणाद्ब्रह्माविष्णुशिवात्मिकाः । सन् संज्ञा याति भगवान् एक एव जनार्दनः ॥
ब्रह्मत्वे सृजते चैव विष्णुत्वे पाति नित्यशः । रुद्रत्वे चैव संहर्त्ता एको देवस्त्रिधा स्मृतः ॥

(अग्निपु० सर्गानुशासन अध्याय)

अर्थात् केवल एक भगवान् जनार्दनही सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते हैं, इसी कारणसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश यह रूपत्रयात्मक हो उसनेही तीन संज्ञा पाई है। केवल एक वही देवता तीन रूपसे रहकर ब्रह्मारूपसे सृष्टि, विष्णुरूपसे पालन और रुद्ररूपसे संहार करते हैं ॥

अब यह प्रमाणित होगया कि, भगवान्‌की सत्त्वगुणमयी पालन करनेवाली मूर्तिही विष्णु है।

शुकने कहा-हे कल्याणि ! महादेवजीने तुमसे जो विष्णुपूजाकी पद्धति कही है, मेरी इच्छा है कि, तिसको सुनू । हे पद्मावति ! तुम प्रशंसाके योग्य हो, तुमने (पूर्वजन्ममें) बहुत पुण्य संचय किया था, इसी कारण शिवकी शिष्या हुई हो ॥ १ ॥

अहं भाग्यवशादत्र समागम्य तवान्तिकम् ।
शृणोमि परमाश्चर्य्यं कीराकारनिवारणम् ॥ २ ॥

मैं भाग्यसेही आज तुम्हारे समीप आ पहुँचाहूं । अब मैं तुमसे परम आश्चर्य (विष्णुजीकी पूजाकी रीति) श्रवण करूंगा । तिसके श्रवण करनेसे मुझको फिर पक्षीकी देह नहीं धारण करनी पडैगी ॥ २ ॥

भगवद्भक्तियोगं च जपध्यानविधिं मुदा ।
परमानन्द-सन्दोह-दान-दक्षं श्रुतिप्रियम् ॥ ३ ॥

जिससे भगवान्के प्रति भक्ति हो, जिस प्रकारसे विष्णुजीका ध्यान और जप करना चाहिये, इस विष्णुपूजाप्रकरणमें तिसकीही विधि है। यह विष्णुपूजाप्रकरण सुननेमें मधुर और परमानन्दके समूहको देनेवाला है ॥ ३ ॥

पद्मोवाच-श्रीविष्णोरर्च्चनं पुण्यं शिवेन परिभाषितम् ।
यच्छ्रद्धयाऽनुष्ठितस्य श्रुतस्य गदितस्य च ॥ ४ ॥

पद्मा बोली-शिवजीकी कही हुई विष्णुपूजा पद्धति अत्यन्त पवित्र है। इसको श्रद्धापूर्वक श्रवण करने, अनुष्ठान करने या कहनेसे ॥ ४ ॥

सद्यः पापहरं पुंसां गुरुगोब्रह्मघातिनाम् ।
समाहितेन मनसा शृणु कीर यथोदितम् ॥ ५ ॥

मनुष्यका गोहत्या गुरुहत्या और ब्रह्महत्यासे उत्पन्न हुआ पाप शीघ्र दूर हो जाताहै । हे विहंगम ! महादेवजीने विष्णुजीकी जिस पूजाका वर्णन किया है, इस समय मैं तिसको तुमसे कहतीहूं, सावधानचित्तसे श्रवण करो ॥ ५ ॥

कृत्वा यथोक्तकर्माणि पूर्वाह्णे स्नानकृच्छुचिः ।
प्रक्षाल्य पाणी पादौ च स्पृष्ट्वाऽपः स्वासने वसेत् ॥ ६ ॥

प्रातःकाल स्नान कर नित्य कर्म समाप्त करनेके पीछे पवित्र हो हाथ पांव धो

जल×स्पर्श करनेसे पश्चात् मनुष्यको चाहिये कि अपने+आसनपर बैठे॥ ६॥

× जल स्पर्श करके ऐसा कहनेसे समझा जाता है कि, जलसे स्नान करके या मस्तकादि अंगपर जलके छींटे देकर पवित्र हो आसनपर बैठें। पांव धोने पर दिङ्निरूपण, यथा—

प्रथमं प्राङ्मुखः स्थित्वा पादौ प्रक्षालयेच्छनैः। उदङ्मुखो वा दैवत्ये पैतृके दक्षिणामुखः॥

(आह्निकतत्त्व)

+ आसन—पूजाके लिये बैठनेका स्थान। आसननिरूपण यथा—

धरण्यां दुःखसम्भूतिर्दौर्भाग्यं दारुजासने। आम्रनिम्बकदम्बानामासने सर्वनाशनम्॥
उपविश्यासने रम्ये कृष्णाजिनकुशोत्तरे। राङ्कवे कम्बले वापि काशादौ व्याघ्रचर्मणि॥
न कुर्य्यादर्चनं विष्णोः शिवे काष्ठासनादिषु। काष्ठासने वृथा पूजा पाषाणे व्रणसम्भवः॥
भूम्यासने गतिर्नास्ति वस्त्रासने दरिद्रता। कुशासने ज्ञानवृद्धिः कम्बले सिद्धिरुत्तमा॥
कृष्णाजिने धनी पुत्री मोक्षः स्याद्व्याघ्रचर्मणि। मंत्रयोगं प्रकुर्वीत भोगार्थं सुखमासने॥

(महानिर्वाणतंत्र)

यदि विशेष विवरण देखनेकी इच्छा हो तो मेरा किया हुआ महानिर्वाणतंत्रका अनुवाद देखो जो कि, इसी "श्रीवेंकटेश्वर" यंत्रालयमें मूलसहित छपा है) आसनपरिमाण यथा—

नैतद्द्विहस्ततो दीर्घं सार्द्धहस्तान्न विस्तृतम्। न त्र्यंगुलात्समुच्छ्रायं पूजाकर्मणि संग्रहे॥
आसनं च ततः कुर्य्यान्नातिनीचं न चोच्छ्रितम्॥ (महानिर्वाणतंत्र)

आसनपर पांव रखनेकी प्रथा। यथा—

किञ्चित्स्पृशन् वामशाखां वामपादपुरःसरम्। स्मरन् देव्याः पदाम्भोजं मण्डपं प्रविशेत्सुधीः॥

(महानिर्वाणतंत्र)

आसनपर बैठनेकी विधि, यथा—

आसनेभ्यः समस्तेऽभ्यः साम्प्रतं द्वयमुच्यते। एकं सिद्धासनं नाम द्वितीयं कमलासनम्॥

(महानिर्वाणतंत्र)

बहुधा वैदिकक्रियाकर्ममें स्वस्तिकासनका व्यवहार है। स्वस्तिकासन यथा—

जानूर्वोरन्तरे सम्यक् धृत्वा पादतले उभे। समकायः सुखासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते॥

(शिवसंहिता)

आसनपर बैठनेमें दिङ्निरूपण यथा—

अन्तर्जानु शुचौ देशे उपविष्ट उदङ्मुखः। प्राग्वा ब्राह्मेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत्॥
स्नातः शुक्लाम्बरधरः स्वाचान्तः पूर्वदिङ्मुखः। प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम्॥

(शिवसंहिता)

आसनशुद्धिका मंत्र—

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता। त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम्॥

आसनकी पूजाका मंत्र—ॐ आधारशक्तये कमलासनाय नमः।

प्राचीमुखः संयतात्मा साङ्गन्यासं प्रकल्पयेत् ।
भूतशुद्धिं ततोऽर्घ्यस्य स्थापनं विधिवच्चरेत् ॥ ७ ॥

फिर आत्माको वशमें कर पूर्वकी ओर मुखकर अंगन्यास (१) भूतशुद्धि और विधिपूर्वक अर्घ्यस्थापन करे ॥ ७ ॥

ततः केशवकृत्यादिन्यासेन तन्मयो भवेत् ।
आत्मानं तन्मयं ध्यात्वा हृदिस्थं स्वासने न्यसेत् ॥ ८ ॥

तदुपरान्त केशवकृत्यादि न्याससे तन्मय हो अपनेको विष्णुमय विचार हृदयमें स्थित हुए विष्णुजीको मनसे कल्पित किये आसनपर स्थापित करे॥८॥

पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ।
यथोपचारैः सम्पूज्य मूलमन्त्रेण देशिकः ॥ ९ ॥

देशिक (२) यथायोग्य उपचारसे पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय और स्नानीयजल, पहरनेके वस्त्र और भूषणादि देकर मूलमन्त्रसे पूजा करे ॥९॥

ध्यायेत्पादादिकेशान्तं हृदयाम्बुजमध्यगम् ।
प्रसन्नवदनं देवं भक्ताभीष्टफलप्रदम् ॥ १० ॥

अनन्तर जो देवता भक्तके हृदयपद्ममें विहार करे हैं, जो भक्तोंकी मनोकामनाओंको सफल करे हैं, उन प्रसन्नवदन भगवान्का श्रीचरणसे लेकर केशकलापतक ध्यान करें ॥ १० ॥

ओं नमो नारायणाय स्वाहा ।
योगेन सिद्धविबुधैः परिभाव्यमानं लक्ष्म्यालयं तुलसिकाञ्चितभक्तभृङ्गम् । प्रोत्तुङ्गरक्तनखरांगुलिपत्रचित्रं गंगारसं हरिपदाम्बुजमाश्रयेऽहम् ॥ ११ ॥

---

१ अंगन्यास–पूजा जपादिके प्रथम विघ्ननाशके लिये विविध कर्त्तव्य विशेष। इसको न्यास भी कहते हैं। यह मातृकान्यास, षडङ्गन्यासादि अनेक प्रकारके हैं। (तंत्रसार) संगीत शास्त्रमें जहां न्यासशब्द आवै तहां राग रागिनीके स्वरको समझना चाहिये। यथा–न्यासः स्वरस्तु विज्ञेयो यस्तु गीतसमापकः। (संगीतसारसंग्रह)

(२) देशिक शब्दका अर्थ उपदेशकहै। यहांपर जो मंत्रसे उपदेश (उच्चारण या शिक्षा) करै वही देशिक है। भावार्थ पूजक।

(ध्यानके समाप्त होजानेपर "ॐ नमो नारायणाय स्वाहा ।" यह पढकर नीचे लिखा स्तोत्र पढना चाहिये) योगसे सिद्ध हुए पंडित लोग सदा जिनका ध्यान करते हैं, जो लक्ष्मीके आश्रय हैं, जिनके भक्तरूप भौंरे तुलसीसे व्याप्त रहते हैं, जिनके अत्यन्त लालवर्ण नखयुक्त अंगुलिरूप पत्रोंसे गंगाजल चित्रित होरहा है, नारायणजीके ऐसे चरणकमलका आश्रय ग्रहण करताहूं ॥ ११ ॥

गुम्फन्मणिप्रचयघट्टितराजहंसशिञ्जत्सुनूपुरयुतं पदपद्मवृन्तम् ।
पीताम्बराञ्चलविलोलवलत्पताकं स्वर्णत्रिवक्रवलयं च हरेः स्मरामि ॥

जिन श्रीचरणोंमें गुंथेहुए मणिमालासे बने व हंसकी बोलीके समान शब्द करनेवाले सुन्दर नूपुर विराजमान है, जिन चरणोंमें पीताम्बरका अंचलभाग चंचल पताकाकी समान जान पडता है, जिन चरणोंमें सुवर्णमय त्रिवक्र नामक वलय विभूषण बंधे हैं, उन चरणरूप कमलवृन्तका स्मरण करताहूं ॥ १२ ॥

जंघे सुपर्णगलनीलमणिप्रवृद्धे शोभास्पदारुणमणिद्युतिचंचुमध्ये ।
आरक्तपादतललम्बनशोभमाने लोकेक्षणोत्सवकरे च हरेः स्मरामि ॥

गरुडजीके कंठभूषण नीलकान्तमणिके प्रभासे जिन जंघाओंकी (कान्ति) बढी है, लाल तलुएँ जिन जंघाओंके (नीचे विलम्बित होकर विराजमान होरहे हैं । जिन दोनों जंघाओंके मध्यदेशमें परम रमणीय अरुणमणिके समान लाल और कान्तियुक्त गरुडजीकी चोंच शोभायमान होरही है, नारायणजीके लोचन रंजन उन दोनों जंघाओंका स्मरण करताहूं ॥ १३ ॥

ते जानुनी मखपतेर्भुजमूलसङ्गरङ्गोत्सवावृततडिद्वसने विचित्रे ।
चञ्चत्पतत्रमुखनिर्गतसामगीतविस्तारितात्मयशसी च हरेः स्मरामि ॥

चंचल गरुडजी साम गाकर जिनका यश गाते हैं, उत्सवके समयमें पहिरे हुए कंधेमें समर्पित बिजलीकी समान सुन्दर वस्त्रके विचित्र रंगकी प्रभासे

जो दोनों जांघें रंग रही हैं; श्रीनारायणजीके उन दोनों विचित्र जानुओंका स्मरण करताहूं ॥ १४ ॥

विष्णोः कटिं विधिकृतान्तमनोजभूमिं जीवाण्डकोशगण-सङ्गदुकूलमध्याम् । नानागुणप्रकृतिपीतविचित्रवस्त्रां ध्याये-न्निबद्धवसनां खगपृष्ठसंस्थाम् ॥ १५ ॥

जो विधाता, यम और कामदेवका आधार है (१) अर्थात् जो सृष्टि स्थिति और लयकी कारण है, त्रिगुणयुक्त प्रकृति पीत और विचित्र वस्त्र रूपसे जहांपर विराजमान रहती है, जीवोंके बीजका आधार युक्त दुपट्टा जहांपर शोभा पाता है, गरुडजीकी पीठपर स्थित विष्णुजीकी उस कमरका ध्यान करताहूं ॥ १५ ॥

शातोदरं भगवतस्त्रिवलिप्रकाशमावर्त्तनाभिविकसद्विधि-जन्मपद्मम् । नाडीनदीगणरसोत्थितशस्त्रासिन्धुं ध्यायेऽण्ड-कोशनिलयं तनुलोमरेखम् ॥ १६ ॥

जिसमें त्रिवली शोभा पाय रही है, जहांपर भँवरके समान नाभिसरोवरमें ब्रह्माका जन्मस्थानरूपकमल (२) खिल रहा है । जिस स्थानमें नाडी-

---

(१) विष्णुजीकी कमरमें कन्दर्प (काम) यम (मृत्युपति) धाता (ब्रह्मा) इन तीन देवताओंका आधार (वासस्थान) है । इसका वैज्ञानिक भाव यह है कि, कमरही वीर्यका आधार है । पहले इसी आधारमें कामोद्भव होता है । फिर ब्रह्माजीके द्वारा उस वीर्यमें जीव सृष्टिका वीर्य उत्पन्न होताहै, जब वह नारीगर्भमें पडता है तब जीवकी उत्पत्ति होती है, पीछे यम अर्थात् मृत्युपति वा मृत्युके द्वारा जीवका नाश हो जाता है; जीवका आगार-वीर्य पूर्ण कटिदेश जीवका आदि वासस्थान है ।

(२) प्रलयके पीछे पृथ्वी जलमय होगई थी । भगवान् नारायणजी उस जलमें शयन किये हुएथे । तिस समय उनकी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ, तिससे ब्रह्माने जन्म लिया; इसी कारण ब्रह्माको पद्मयोनि कहते हैं । ब्रह्माने जन्म लेकर चारों ओर देखनेकी इच्छा की, वह जिस ओर देखनेकी इच्छा करते उसी ओर उनके एक मुख निकल आता; इस प्रकार उनके चार मुख हुए । संस्कृत शास्त्रमें ऐसाही उपाख्यान लिखाहै । श्रीमद्भागवतमें कहा है-

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः । नाभिह्रदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥

(१ स्कन्ध, ३ अ० २ श्लो०)

यहांपर जो नाभिपद्मका वर्णन है कल्किपुराणके इस स्थलमें निःसन्देह तिसकीही सूचना है।

रूप नदियोंके रससे अम्बरूप समुद्र उल्लासित होता है, जो ब्रह्माण्डका आधार है, जिसमें छोटे छोटे रुओंकी राशि शोभायमान होरही है, मैं भगवान्‌के ऐसे क्षीण उदरका स्मरण करताहूं ॥ १६ ॥

वक्षः पयोधितनयाकुचकुंकुमेन हारेण कौस्तुभमणिप्रभया विभातम् ।
श्रीवत्सलक्ष्महरिचन्दनजप्रसूनमालाचितं× भगवतःसुभगं स्मरामि ॥

जिस हृदयमें सागर-कुमारी लक्ष्मीजीका कुचकुंकुम लगरहा है, कंठहार और कौस्तुभमणिकी (१) दीप्त कान्तिसे जो कान्तिमान् हो रहा है, जिस हृदयमें श्रीवत्स चिह्न शोभायमान होरहाहै (२) जिस वक्षस्थलमें

× हरसंवरणप्रसूनमालाचितम् इति पाठान्तरम् ।

(१) देवताओंने अमृत प्राप्तिकी अभिलाषासे समुद्रको मथा था । समुद्रके मथनेसे पहले चन्द्रमाकी उत्पत्ति हुई क्रम २ से लक्ष्मी और सुरादेवीकी उत्पत्ति हुई थी । फिर—

कौस्तुभस्तु मणिर्दिव्य उत्पन्नो घृतसम्भवः । मरीचिविकचः श्रीमान्नारायण उरोगतः ॥
(महाभारत, आदि० १५ अ० ३७ श्लोक०)

अर्थात् घृतसम्भव श्रीमान् दिव्यकौस्तुभमणिकी उत्पत्ति हुई । उसमें किरणें निकल रहीं थीं । नारायणजीके हृदयमें कौस्तुभ पहरी गई ।

कौस्तुभके पीछे अनेक पदार्थोंकी उत्पत्ति हुई । तिनका लिखना यहां व्यर्थ है । इस प्रकार कौस्तुभका जन्म हुआ । यह अति विख्यात रत्न है शब्दकल्पद्रुममें लिखा है । यथा–

कौस्तुभस्तु महातेजाः कोटिसूर्यसमप्रभः । इदं किमुत वक्तव्यं प्रदीपाद्दीप्तिमानिति ॥
(भागवतामृतम्)

अर्थात् कौस्तुभ अतिशय तेजस्वी कोटिसूर्यके समान प्रभावाला, प्रदीपसे अधिक दीप्तिमान् है । इससे अब अधिक क्या कहाजाय ?

इसीसे कौस्तुभ विख्यात है, परन्तु केवल इसी कारणसे कौस्तुभका गौरव नहीं बढा है । नारायणजीने यत्नसे हृदयमें धारण कर रक्खा है । यही कारण जो संस्कृत शास्त्रमें कौस्तुभकी अनन्त प्रशंसा है ।

(२) श्रीवत्स माङ्गल्यचिह्नविशेष । कोषकार हेमचन्द्र कहता है कि, श्रीवत्स विष्णुजीका चिह्नविशेष है, सो, वक्षःस्थ शुक्लवर्ण, दक्षिणावर्त्त रोमावली है । पंडित कृष्णदास कहता है कि, कौस्तुभकी समान और किसी मणिविशेषका नाम श्रीवत्स है ।

हरिचन्दन वृक्षके (१) फूलोंकी माला डोलरही है, परम मनोहर भगवान्के उस वक्षस्थलका स्मरण करताहूं ॥ १७ ॥

बाहू सुवेशसदनौ वलयाङ्गदादिशोभास्पदौ दुरितदैत्यविनाशदक्षौ । तौ दक्षिणौ भगवतश्च गदासुनाभतेजोर्जितौ सुललितौ मनसा स्मरामि

श्रेष्ठवेशकी भगवद्रूप जिन दोनों बाहोंमें वलय, अंगद (२) आदि सुन्दर भूषण शोभायमान होरहेहैं, जिन बाहोंके विक्रमसे बहुतसे दानव मरे हैं, जिस दोनों बाहोंकी प्रभासे गदा (३) और चक्र (४) का तेज मलीन हुआ है, मनहीमनमें भगवान्की उन सुललित दाहिनी दो बाहोंका ध्यान करताहूं ॥ १८ ॥

वामौ भुजौ मुररिपोर्धृतपद्मशंखौ श्यामौ करीन्द्रकरवन्मणि-

---

(१) देववृक्षविशेष । स्वर्गके नंदनकाननमें पांच मनोहर देववृक्ष हैं, उनमेंसेही एकका नाम हरिचन्दन है । यथा–

पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः । सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम् ॥
(अमरकोष, स्वर्गवर्ग)

यहां कई वृक्ष देववृक्ष नामसे प्रसिद्ध हैं । इनको वृक्षोंका राजाभी कहा जा सकता है । संस्कृत साहित्यमें देववृक्षका आदर अत्यन्त दिखाई देता है । जहां किसी देवानुगृहीत पुरुषने किसी प्रकारका श्रेष्ठ कार्य किया कि, वैसेही स्वर्गसे देववृक्षके फूलोंकी वर्षाके होनेका वर्णन जहां तहां लिखा है ।

(२) रत्नविचित्रित सिंहमुखाकार लम्बनयुक्त बाहुभूषणका नाम केयूर है । कोहनीके उपरिभागमें जो “ तावीज ” और “ बाजू ” पहरते हैं सोई पूर्व समयका केयूर है । आजकल इसको “बाहुवट” या “बाजूबन्द” कहते हैं । डोरा न होनेसे अंगदभी कहा जा सकता है । यह अंगद वा आजकलका बघमुखा, अनन्त, प्रायः समान हैं । पहले इसमें मोती जडे जाते थे यथाः–

सुवर्णमणिविन्यस्तमुक्ताजालकमङ्गदम् ।
(डाक्टर रामदासजीका रत्नरहस्य)

(३) विष्णुजीकी गदाका नाम कौमोदकी है ।

(४) विष्णुजीके चक्रका नाम सुदर्शन है । यथा—

शंखो लक्ष्मीपतेः पाञ्चजन्यश्चक्रं सुदर्शनम् ।
कौमोदकी गदा खड्गो नन्दकः कौस्तुभो मणिः ॥ (अमरकोष, स्वर्गवर्ग)

लक्ष्मीपति विष्णुजीके शंखका नाम पांचजन्य है, चक्र सुदर्शन, गदा कौमोदकी, खड्ग नन्दक और मणिका नाम कौस्तुभ है ॥

भूषणाढ्यौ । रक्ताङ्गुलिप्रचयचुम्बितजानुमध्यौ पद्मालया-प्रियकरौ रुचिरौ स्मरामि ॥ १९ ॥

जिन दो बांई भुजाओंमें शंख और पद्म धारित हैं, हाथीकी शुण्डके समान, साँवरे रंगकी जिन दोनों बाहोंमें मणिमय विभूषण पहिरेहैं, लाल २ उंगलियें (जो बांहके अग्रभागसे लम्बित होकर) जानुको चुम्बन करती हैं, कमलपर बैठी हुई पद्माके मनको प्रसन्न करनेवाली, रुचिर दर्शन भगवान्की इन दोनों बाहोंका स्मरण करताहूं ॥ १९ ॥

कण्ठं मृणालममलं मुखपङ्कजस्य लेखात्रयेण वनमालिकया निवीतम् । किंवा विमुक्तिवशमन्त्रकसत्फलस्य वृन्तं चिरं भगवतः सुभगं स्मरामि ॥ २० ॥

जो कंठ भगवान्का निर्मल मृणालस्वरूप है, जिस कंठमें तीन रेखा और वनमाला विराजमान है, जो कंठ मोक्षदशामें स्थितके मंत्ररूप रमणीय फलका वृन्त (झब्बा) रूप है, भगवान्के उस सुन्दर कण्ठका निरन्तर स्मरण करताहूं ॥ २० ॥

वक्त्राम्बुजं दशनहासविकाशरम्यं रक्ताधरौष्ठवरकोमल-वाक्सुधाढ्यम् । सन्मानसोद्भवचलेक्षणपत्रचित्रं लोकाभिराम-ममलं च हरेः स्मरामि ॥ २१ ॥

लाल कमलके समान, सुन्दर लाल अधरोंसे कमनीय, हंसनेके समय दांतोंके विकाशसे परम सुन्दर वचनरूप सुधासे युक्त, मनको प्रसन्न करने-वाले, चंचल नयन पत्र करके चित्रित, लोगोंके मनका रंजन करनेवाले नारायणजीके वदनकमलका स्मरण करताहूं ॥ २१ ॥

सूरात्मजावसथगन्धभिदं सुनासं भ्रूपल्लवं स्थितिलयोदय-कर्म्मदक्षम् । कामोत्सवं च कमलाहृदयप्रकाशं संचिन्तयामि हरिवक्त्रविलासदक्षम् ॥ २२ ॥

जिनसे यमराजके गृहकी गन्धभी नहीं सूंघनी पडती, जिनके निकट नासिका शोभा पातीहै, जिनसे जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होतीहै,

जिनसे मदनमहोत्सव प्रगट होता है, जिनके देखनेसे लक्ष्मीजीका हृदय प्रफुल्ल होजाता है, नारायणजीके मुखकमलपर जो शोभायमान होरहे हैं, उन भौंहके पत्रोंका स्मरण करताहूं ॥ २२ ॥

कर्णौ लसन्मकरकुण्डलगण्डलोलौ नानादिशां च नभसश्च विकासगेहौ । लोलालकप्रचयचुम्बनकुञ्चिताग्रौ लग्नौ हरेर्मणिकिरीटतटे स्मरामि ॥ २३ ॥

गडण्स्थलमें चंचल मकराकार कुंडल जो शोभित हैं,जिनसे अनेक दिशा और आकाशमंडल प्रकाशित होताहै, जिनका अग्रभाग चलायमान अलकसमूहके स्पर्शसे कुछेक सिकुडाहुआ जानपडताहै, जो मणिमय किरीटके किनारोंमें लगे हुए हैं, नारायणजीके ऐसे दो श्रवणका स्मरण करताहूं॥ २३॥

भालं विचित्रतिलकं प्रियचारुगन्धगोरोचनारचनया ललनाऽक्षिसख्यम् । ब्रह्मैकधाम मणिकांतकिरीटजुष्टं ध्यायेन्मनोनयनहारकमीश्वरस्य ॥ २४ ॥

श्रीनारायणजीके जिस ललाट (माथा) के किनारे मनोहर और सुगंधित गोरोचनसे विचित्र तिलक खिंचाहै और अलकावली (१) विभूषित हुईहै, जिस माथेमें व ललनाके लोचनमें बंधुता स्थापित होगई है, जहांपर मणिमय मुकुटकी मणिप्रभा प्रभासित होरहीहै, जो परब्रह्मका केवल भवनरूप है, मनोहर लोचनरंजन भगवान्‌के उस ललाटका ध्यान करताहूं ॥ २४॥

श्रीवासुदेवचिकुरं कुटिलं निबद्धं नानासुगन्धिकुसुमैः स्वजनादरेण । दीर्घं रमाहृदयगाशमनं धुनन्तं ध्यायेऽम्बुवाहरुचिरं हृदयाब्जमध्ये ॥ २५ ॥

---

(१) प्राचीन कालके समय माथे, गालपर चंदन व कुंकुमादि सुगंधित पदार्थोंसे चित्रकार्य किया जाताथा । मुखपर और गालपर अनेक प्रकारके लतापत्ते बनाये जातेथे, कारीगिरीसे मुखको चमत्कार किया जाताथा । आजकल जो विवाहके समय कहीं २ वर कन्याके मुखको चंदनादिसे सजाते हैं सो इसी रीतिका नमूना रहगया है ॥

आत्मीय भक्तोंने आदरसहित अनेक प्रकारके सुगन्धित फूलोंके भारसे जिन कुटिल केशोंको वेणी बनाय बांध दिया है, जो (पवनके प्रवाहसे) कुछेक हिल रहेहैं, जिन केशोंकी सुन्दरताईसे कमलासना कमलाका मदन-विकार शान्त होजाता है, मैं अपने हृदयकमलमें भगवान्के उन लम्बित व नीले बादलकी समान रुचिर केशपाशका ध्यान करता हूं ॥ २५ ॥

मेघाकारं सोमसूर्य्यप्रकाशं सुभ्रून्नासं चक्रचापैकमानम् ।
लोकातीतं पुण्डरीकायताक्षं विद्युच्चैलं चाश्रयेऽहं त्वपूर्वम् ॥२६॥

जिनका शरीर मेघकी समान है, जिनके (दोनों नेत्र) चन्द्रमा और सूर्यके समान हैं, जिनकी दोंनो भौंहे इन्द्रधनुषकी समान शोभित हैं, जिनका (पीत) अंबर (वस्त्र) बिजलीकी समान है, ऐसे अपूर्वमूर्तिवाले विष्णुजीका आश्रय ग्रहण करता हूं ॥ २६ ॥

दीनं हीनं सेवया वेदवत्या पापैस्तापैः पूरितं मे शरीरम् ।
लोभाक्रान्तं शोकमोहाधिविद्धं कृपादृष्ट्या पाहि मां वासुदेव ॥२७॥

मैं अतिदीन और वेदमें कही हुई सेवादिसे हीन हूं । मेरा शरीर पाप तापेसे भरा हुआ है, लोभसे घिरा और शोक मोह तथा मानसिक व्यथासे युक्त है । इस कारण हे वासुदेव ! कृपादृष्टिसे मेरी रक्षा करो ॥ २७ ॥

ये भक्त्याऽऽद्यां ध्यायमानां मनोज्ञां व्यक्तिं विष्णोः षोडश-
श्लोकपुष्पैः । स्तुत्वा नत्वा पूजयित्वा विधिज्ञाः शुद्धा मुक्ता
ब्रह्मसौख्यं प्रयान्ति ॥ २८ ॥

जो पुरुष भक्तिपूर्वक विष्णुजीकी इस आद्य मनोहर मूर्तिका ध्यान करके षोडश-श्लोक-रूप फलोंसे स्तुति करके नमस्कार और पूजा करेंगे, विधिके जाननेवाले वह पुरुष शुद्ध और मुक्त होकर ब्रह्मानंदको भोग करेंगे ॥२८॥

पद्मेरितमिदं पुण्यं शिवेन परिभाषितम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं परम् ॥ २९ ॥

पद्मा करके कहा शिवप्रोक्त यह (स्तोत्र) अत्यन्त पवित्र है, धन व यशकारी, आयु, स्वर्ग फलका देनेवाला और परम मंगलदायी है ॥ २९ ॥

पठन्ति ये महाभागास्ते मुच्यन्तेंऽहसोऽखिलात् ।
धर्म्मार्थकाममोक्षाणां परत्रेह फलप्रदम् ॥ ३० ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये हरिभक्तिविवरणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

यह स्तोत्र परलोकमें और इस लोकमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप (१) फल देनेवाला है, इस स्तोत्रको जो महात्मा लोग पढेंगे वे समस्त पापोंसे छूट जायंगे ॥ ३० ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये बलदेव०भाषाटी० हरिभक्तिविवरणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

समाप्तश्चायं प्रथमांशः ।

द्वितीयांशः ।

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सूत उवाच-इति पद्मावचः श्रुत्वा कीरो धीरः सतां मतः ।
कल्किदूतः सखीमध्ये स्थितां पद्मामथाब्रवीत् ॥ १ ॥

सूतजी बोले-साधुओंसे आदर किया हुआ विज्ञानी कल्किजीका दूत शुक सखियोंसे युक्त पद्मासे यह वचन सुनकर तिससे कहता भया ॥ १ ॥

वद पद्मे साङ्गपूजां हरेरद्भुतकर्मणः ।
यामास्थाय विधानेन चरामि भुवनत्रयम् ॥ २ ॥

---

(१) धर्म, अर्थ, काम, मोक्षको चतुर्वर्ग कहते हैं । यही परमपुरुषार्थ है । धर्मशास्त्राऽनुयायी आचार शास्त्रमें कहे हुए कर्मोंका अनुष्ठान करनेसे जो होनहार (शुभ) फल इकट्ठा होता है तिसकोही स्थूलभावसे धर्म कहा जाता है । अर्थ-धन-सम्पत्ति; प्रत्येक मनुष्यको धनका उपार्जन करना यह आवश्यक है । काम-अभीष्ट सिद्धि । मोक्ष-निर्वाण वा मुक्ति । धर्म अर्थादि परस्पर सापेक्ष है । शास्त्र कहता है कि, प्रत्येक मनुष्यको इस चतुर्वर्गपर ध्यान रखना चाहिये ।

हे पद्मे ! अद्भुत कर्म करनेवाले नारायणजीकी पूजा सब अंगोंके साथ वर्णन करो । मैं विधिविधानसे तिसका अनुष्ठान करके त्रिभुवनमें भ्रमण करूंगा ॥ २ ॥

पद्मोवाच—एवं पादादि केशान्तं ध्यात्वा तं जगदीश्वरम् ।
पूर्णात्मा देशिको मूलं मन्त्रं जपति मन्त्रवित् ॥ ३ ॥

पद्मा बोली—मंत्रका जाननेवाला साधक, जगदीश्वर विष्णुजीको पूर्णात्मा समझकर इस प्रकार चरणसे लेकर केशतक ध्यान करके मूल-मन्त्र जप करै ॥ ३ ॥

जपादनन्तरं दण्ड-प्रणतिं मतिमांश्चरेत् ।
विष्वक्सेनादिकानां तु दत्त्वा विष्णुनिवेदितम् ॥ ४ ॥

मतिमान् पुरुष जप करके दंडवत् प्रणाम करे । फिर विष्वक्सेना-दिको पाद्य अर्घ्य, नैवेद्य इत्यादि दान करके विष्णुजीको निवेदन की हुई वस्तु ॥ ४ ॥

तत उद्वास्य हृदये स्थापयेन्मनसा सह ।
नृत्यन् गायन् हरेर्नाम तं पश्यन् सर्वतः स्थितम् ॥ ५ ॥

हृदयमें स्थापन करके मनसे उन सर्वव्यापी विष्णुजीको स्मरण कर मन मनमें नृत्य, गान और हरिसंकीर्त्तन करै ॥ ५ ॥

ततः शेषं मस्तकेन कृत्वा नैवेद्यभुग्भवेत् ।
इत्येतत्कथितं कीर कमलानाथसेवनम् ॥ ६ ॥

फिर निर्माल्य—शेष (१) मस्तकपर धारण कर नैवेद्य भोजन करे । हे कीर ! यह तुमसे कमलापतिकी पूजाकी विधि कही ॥ ६ ॥

---

(१) विष्णुजीको निवेदन की हुई वस्तुका नाम निर्माल्य है । गरुडपुराणमें कहा है—
अर्वाक् विसर्जनाद्द्रव्यं नैवेद्यं सर्वमुच्यते । विसर्जिते जगन्नाथे निर्माल्यं भवति क्षणात् ॥
(गरुडपुराण)

विसर्जन (उत्सर्ग) के पहले नैवेद्य कहते हैं; विसर्जन (निवेदन) होजानेपर तत्काल नैवेद्य निर्माल्य हो जाता है ।

सकामानां कामपूरमकामाऽमृतदायकम् ।
श्रोत्रानन्दकरं देव-गन्धर्व्व-नर-हृत्प्रियम् ॥ ७ ॥

इस प्रकार पूजा करनेसे सकाम पुरुषकी कामना पूर्ण होती है और निष्कामको मुक्ति प्राप्त होजाती है। यह देव, गन्धर्व (१) मनुष्योंको हृदयानन्ददायक और सबको श्रवण सुखकारी है ॥ ७ ॥

शुक उवाच–समीरितं श्रुतं साध्वि भगवद्भक्तिलक्षणम् ।
त्वत्प्रसादात्पापिनो मे कीरस्य भुवि मुक्तिदम् ॥ ८ ॥

शुकने कहा–हे पतिव्रते ! तुमने भगवान् विष्णुजीके प्रति भक्तिविषयमें जो कुछ कहा तिसको सुना। इस समयमें पापात्मा पक्षी होकर भी तुम्हारे प्रसाद करके इससे मुक्ति पाऊंगा ॥ ८ ॥

किन्तु त्वां काञ्चनमयीं प्रतिमां रत्नभूषिताम् ।
सजीवामिव पश्यामि दुर्लभां रूपिणीं श्रियम् ॥ ९ ॥

परन्तु मैं तुमको रत्नालंकारसे अलंकृत हुई सचेतन काञ्चनमयी प्रतिमाकी समान देखता हूं। तुम्हारा रूप त्रिभुवनमें दुर्लभ है। (मैं जानता हूं) तुम लक्ष्मी होगी ॥ ९ ॥

नान्यां पश्यामि सदृशीं रूपशीलगुणैस्तव ।
नान्यो योग्यो गुणी भर्त्ता भुवनेऽपि न दृश्यते ॥ १० ॥

रूप, गुण और स्वभावमें तुम्हारे समान और कोई स्त्री नहीं हमने देखा और तुम्हारे योग्य गुणवान् स्वामीभी त्रिलोकीमें (एक पुरुषके अतिरिक्त) और किसीको नहीं देखता ॥ १० ॥

किन्तु पारे समुद्रस्य परमाश्चर्य्यरूपवान् ।
गुणवानीश्वरः साक्षात्कश्चिद्दृष्टोऽतिमानुषः ॥ ११ ॥

---

१ स्वर्गवासी सम्प्रदाय विशेष। हाहा, हूहू, चित्ररथादि गन्धर्व यथा–
हाहा हूहूश्चित्ररथो हंसो विश्वावसुस्तथा। गोमायुस्तुम्बुरुर्नन्दिरेवमाद्याश्च ते स्मृताः ॥
(इति जटाधरः)

हाहा, हूहू, चित्ररथ, हंस, विश्वावसु, गोमायु, तुम्बुरु और नन्दि आदि गन्धर्व हैं ॥
गन्धर्वोंकी ११ सम्प्रदाय हैं। यथा अग्निपुराणे–
अभ्रजोऽङ्गारिबम्भारी सूर्यवर्चास्तथा कृधूः। हस्तः सुहस्तः स्वाश्चैव मूर्द्धन्वांश्च महामनाः ॥
विश्वावसुः कृशानुश्च गन्धर्वैकादशा गणाः ॥ (अग्निपुराण, गणभेद अध्याय)

परन्तु समुद्रके पार परमाश्चर्य रूपवाले, अलौकिक साक्षात् ईश्वर किसी गुणवान् पात्रको मैंने देखा है ॥ ११ ॥

न हि धातृकृतं मन्ये शरीरं सर्व्वसौभगम् ।
यस्य श्रीवासुदेवस्य नान्तरं ध्यानयोगतः ॥ १२ ॥

तिसका सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर विधाताका बनाया हुआ नहीं जान पडता । मैंने बहुत शोचविचार कर देखा है कि, भगवान् वासुदेवके साथ उसका कोई भेद नहीं है ॥ १२ ॥

त्वया ध्यातं तु यद्रूपं विष्णोरमिततेजसः ।
तत्साक्षात्कृतमित्येव न तत्र कियदन्तरम् ॥ १३ ॥

असीमतेजसे युक्त विष्णुजीकी जिस मूर्तिका ध्यान तुम करती रहती हो मैं जानताहूं कि, उसकी मूर्तिका साक्षात् दर्शन किया है, तिसमें कुछभी भेद दिखाई नहीं देता ॥ १३ ॥

पद्मोवाच—ब्रूहि तन्मम किं कुत्र जातः कीर परावरम् ।
जानासि तत्कृतं कर्म्म विस्तरेणात्र वर्णय ॥ १४ ॥

पद्मा बोली—हे कीर ! क्या कहा ? फिर कहो, उन्होंने कहांपर जन्म लिया है, जो तुम विशेष वृत्तान्त जानते हो तो कहो कि, उन्होंने क्या क्या कर्म किया है ॥ १४ ॥

वृक्षादागच्छ पूजां ते करोमि विधिबोधिताम् ।
बीजपूरफलाहारं कुरु साधु पयः पिब ॥ १५ ॥

तुम वृक्षसे उतर आओ, मैं विधिविधानसे तुम्हारा अतिथिसत्कार करूं, इस स्थानमें बीजपूर फल हैं, भक्षण करके कुछ निर्मल जल पान करो॥ १५॥

तव चंचुयुगं पद्मरागादरुणमुज्ज्वलम् ।
रत्नसंघट्टितमहं करोमि मनसः प्रियम् ॥ १६ ॥

पद्मरागमणि (१) से अरुणवर्ण उज्ज्वल तुम्हारी चोंच मन माने रत्नोंसे बँधवाऊंगी ॥ १६ ॥

---

(१) मणिविशेष । रत्नशास्त्रमें पद्मरागकी उत्पत्तिका उपाख्यान लिखा है यथा—

–त्रैलोक्यहितकामार्थं पुरेन्द्रेण हतोऽसुरः । बिन्दुमात्रमसृक् तस्य यावन्न पतते भुवि ॥
गृहीत्वा तत्क्षणाद्भानुस्तावद्दृष्टो दशाननः । तद्भयात्तेन विक्षिप्तमसृक् तस्य महीतले ॥
नद्यां रावणगङ्गायां देशे सिंहलकोद्भवे । तटद्वये च तन्मध्ये विक्षिप्तं रुधिरं तथा ॥
रात्रौ तदम्भसां मध्ये तीरद्वयसमाश्रितम् । खद्योतवाह्निवद्दीप्तं मूर्ध्नि वह्निप्रकाशितम् ॥
पद्मरागं समुद्भूतं त्रिधा भेदैकजातयः । सुगन्धि कुरुविन्दश्च पद्मरागमनुत्तमम् ॥
(अगास्तिमतम् । पद्मरागपरीक्षा प्रकरण १ से ५ श्लोकतक)

महादेवजीने त्रिलोकीका हित करनेकी कामनासे असुरवध किया था । असुरका एक बूंद रुधिरभी पृथ्वीपर नहीं गिरताथा, तिसे सूर्य भगवान् ग्रहण करते भये । इसी समयमें तहां-पर रावण आया, उसको देखकर शंकाके मारे सूर्यनारायणने यह रुधिर पृथ्वीपर डाल दिया । सो रुधिर सिंहलदेशकी रावणगंगानामक नदीके जल और उसके दोनों किनारोंपर गिरा रात्रिके समय नदीके जलमें और दोनों किनारोंपर पटबीजनेकी अग्निके समान कान्ति-मान् प्रभाजालसे प्रदीप्त पद्मरागकी उत्पत्ति हुई । अकेला पद्मराग सुगन्धि, कुरुविन्द और पद्मराग इन तीन जातियोंका कहा जाता है, पद्मराग तितना अच्छा नहीं है ।

इसी प्रकारसे पद्मरागकी उत्पत्ति हुई । सौगन्धिक, कुरुविन्द और पद्मराग यह तीन श्रेणी हैं । सौगन्धिकका परिचय यह है:–

ईषन्नीलं सुरक्तं च ज्ञेयं सौगन्धिकं बुधैः । लाक्षारसनिभं चैव हिंगूलकुंकुमप्रभम् ॥
(अगस्तिमत ॥ ४० ॥)

कुरुविन्दका रंगः–

शशासृक्लोध्रसिन्दूरगुञ्जाबन्धूककिंशुकैः । अतिरिक्तं सुपीतं च कुरुविन्दमुदाहृतम् ॥
(अगास्तिमत ॥ ३९ ॥)

पद्मरागः–पद्मिनीपुष्पसंकाशः खद्योताग्निसमप्रभः । कोकिलाक्षनिभो यश्च सारसाक्षिसमप्रभः ॥
चकोरनेत्रसम्भासः सप्तवर्णसमन्वितः । पद्मरागः स विज्ञेयश्छायाभेदेन लक्ष्यते ॥

पद्मरागका रंग कमलफूलके समान, प्रभा पटबीजनेकी दीप्तिके समान, कोकिलके नेत्रोंकी समान सारसके नेत्रकी समान दीप्तिमान्, चकोरके नेत्रकी समान रंगवाला पद्मराग होता है । छायाके भेदसे पद्मरागमें ७ रंग दिखाई देते हैं ।

शुक्रनीति पुस्तकमें पद्मरागके पर्याय शब्द देखे जाते हैं । पुष्पराग (पुखराज) भी पद्मरागका नाम है । यथा–

स्वर्णच्छविः पुष्परागः पतिवर्णो गुरुप्रियः । अत्यन्तविशदं वज्रं तारकाभं कवेः प्रियम् ॥
(४ अ० २ प्रक० श्लोक ४४)

पद्मरागके यह लक्षण और अगस्तिका मत इन दोनोंमें भेद दिखाई देता है । अगस्तिमत रत्नशास्त्र है यही कारण है कि, इस ग्रंथमें पद्मरागका वृत्तान्त विस्तारसे लिखा है । शुक्र-नीतिमें संक्षेपसे केवल लक्षण कहे हैं । बृहत्संहितामें पद्मरागका वर्णन इस प्रकारसे है–

सौगन्धिककुरुविन्दस्फटिकेभ्यः पद्मरागसम्भूतिः ।
सौगन्धिकजा भ्रमरा ह्यञ्जनाब्जसद्युतयः ॥ (बृ० सं० ८२ अ० १ श्लो०)

वराहमिहिराचार्यका बनाया हुआ बृहत्संहिता ज्योतिषग्रंथ है, उक्त ग्रंथका मत है कि, स्फटिकसे पद्मरागकी उत्पत्ति हुई है । अगस्तिके मतसे स्फटिक भिन्न पदार्थ है ।

कन्धरं सूर्य्यकान्तेन मणिना स्वर्णघट्टिना ।
करोम्याच्छादनं चारु मुक्ताभिः पक्षतिं तव ॥ १७ ॥

सुवर्णयुक्त सूर्यकान्तमणिसे (१) तुम्हारा गला विभूषित करूंगी तुम्हारे दोनों पंख मोतियोंसे (२) शोभित करूंगी ॥ १७ ॥

पतत्रं कुंकुमेनाङ्गं सौरभेणातिचित्रितम् ।
करोमि नयनानन्ददायकं रूपमीदृशम् ॥ १८ ॥

तुम्हारे पंखोंको और शरीरको सुगन्धित कुंकुमसे चित्रित करके तुम्हारा रूप ऐसा बनाऊंगी कि, देखतेही सबके नेत्रोंको आनंद उत्पन्न हो ॥ १८ ॥

पुच्छमच्छमणिव्रातघर्घरेणातिशब्दितम् ।
पादयोर्नूपुरालाप-लापिनं त्वां करोम्यहम् ॥ १९ ॥

तुम्हारी पूंछमें निर्मल मणि गूंथ दूंगी, तिनकरके उडनेके समय झर२ शब्द होगा । तुम्हारे चरण ऐसे सजाऊंगी कि, गमनके समय नूपुरध्वनि होगी ॥ १९ ॥

---

(१) सूर्यकान्त मणिको अतिशपत्थर कहते हैं । अगस्तिमतके प्रकीर्णक प्रकरणमें कहा है—

चन्द्रकान्तोऽमृतस्रावी सूर्यकान्तोऽग्निकारकः । जलकान्तो जलस्फोटी हंसगर्भो विषापहः ॥
(अगस्तिमत ॥ १७ ॥)

जिस स्फटिकमेंसे अमृत निकलता है तिसको चन्द्रकान्त और जिसमेंसे अग्नि निकलता है तिसको सूर्यकान्त कहते हैं ।

(२) संस्कृतशास्त्रमें मोतियोंका बहुतेरा वर्णन है । अगस्तिमतमें मुक्ताकी उत्पत्तिस्थान कहा है यथा—

जीमूतकरिमत्स्याहिवंशशंखवराहजाः । शुक्त्युद्भवाश्च विज्ञेया अष्टौ मौक्तिकसंज्ञकाः ॥
इति विख्यातमुनयो लोके मौक्तिकहेतवः । तेषामेके महार्घ्यास्तु शुक्तिजा लोकविश्रुताः ॥
(मुक्तापरीक्षाप्रकरण ४ । ५ ॥)

मेघ, हस्ती, मत्स्य, सर्प, बांस, शंख, वराह और शुक्ति (सीपी) से मोतीकी उत्पत्ति होती है । इससे मोती आठ प्रकारके हैं । शौक्तिक (सीपी) से उत्पन्न हुआ मोती सबसे महँगा और प्रसिद्ध है । बृहत्संहितामें कहा है—

द्विपभुजगशुक्तिशंखाभ्रवेणुतिमिशूकरप्रसूतानि । मुक्ताफलानि तेषां बहु साधु च शुक्तिजं भवति ॥
(बृहत्संहिता, ८१ अ०)

हाथी, सांप, सीपी, शंख, मेघ, बांस, तिमि, शूकर इन आठ आकरसे मुक्ताफलकी उत्पत्ति होती है । सीपसे उत्पन्न हुआ मोती सबसे उत्तम है ।

अगस्तिमतसे साधारण भावमें मत्स्य मुक्ताका आकर कहा है । बृहत्संहितामें तिमिमत्स्य मुक्ताका आकर नियत किया गया है ।

तवामृतकथाघ्रातत्यक्ताधिं शाधि मामिह ।
सखीभिः सङ्गताभिस्ते किं करिष्यामि तद्वद ॥ २० ॥

तुम्हारे वचनामृत सुनकर हमारे मनकी समस्त व्यथा दूर होगई । अब आज्ञा दो कि, तुम्हारा क्या कार्य करूं ? मैं सखियोंके साथ तैयार हूं २०

इति पद्मावचः श्रुत्वा तदन्तिकमुपागतः ।
कीरो धीरः प्रसन्नात्मा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ २१ ॥

पद्माके यह वचन सुनकर शुकने प्रसन्न हृदयसे धीरे धीरे उसके निकट जाकर कहना आरंभ किया ॥ २१ ॥

कीर उवाच—ब्रह्मणा प्रार्थितः श्रीशो महाकारुणिको बभौ ।
शम्भले विष्णुयशसो गृहे धर्मं रिरक्षिषुः ॥ २२ ॥

शुक कहता हुआ—ब्रह्माजीकी प्रार्थनाके अनुसार, धर्मके स्थापन करनेकी अभिलाषासे महाकारुणिक श्रीपति शम्भलग्रामके मध्य विष्णुयशानामक ब्राह्मणके गृहमें (जन्म लेकर) स्थित हो रहे हैं ॥ २२ ॥

चतुर्भिर्भ्रातृभिर्ज्ञाति-गोत्रजैः परिवारितः ।
कृतोपनयनो वेदमधीत्य रामसन्निधौ ॥ २३ ॥

उनके चार भ्राता और गोत्र भाई तिनके साथ हैं । जब पहले उनका उपनयन हो गया तो उन्होंने परशुरामजीसे वेद पढा ॥ २३ ॥

धनुर्वेदं च गान्धर्वं शिवादश्वमसिं शुकम् ।
कवचं च वरं लब्ध्वा शम्भलं पुनरागतः ॥ २४ ॥

और वे धनुर्वेद, गान्धर्ववेद (१) सीखकर महादेवजीसे अश्व, खड्ग, शुक, कवच और वर पाकर शम्भल ग्राममें लौटे ॥ २४ ॥

---

(१) गान्धर्ववेद संगीतशास्त्र गन्धर्वोंके अधिकारमें है, इसी कारण विद्याशब्दसे नियत हुआ है । नृत्य, गीत, वाद्य और अभिनयादि संगीतशास्त्रके अन्तर्गत है, संस्कृतशास्त्रमें संगीतकी पुस्तकोंका अभाव नहीं है । नाटयशास्त्र संस्कृतशास्त्रका बहुत पुराना अंग है । धर्मग्रन्थ सामवेद स्वरके संयोगसे गाया जाता था । अब भी संस्कृत संगीतशास्त्रके लोप होनेसे बचे बचाये ग्रंथ दिखाई देते हैं ।

विशाखयूपभूपालं प्राप्य शिक्षाविशेषतः ।
धर्मानाख्याय मतिमान् अधर्म्मांश्च निराकरोत् ॥ २५ ॥

फिर उन मतिमान् कल्किजीने विशाखयूप नामक राजाको प्राप्त हो विशेष शिक्षा करके धर्म प्रगट कर अधर्मको दूर किया है ॥ २५ ॥

इति पद्मा तदाख्यानं निशम्य मुदितानना ।
प्रस्थापयामास शुकं कल्केरानयनादृता ॥ २६ ॥

शुकसे यह आख्यान सुनकर पद्मा हर्षित और विकसित मुखवाली हुई । फिर कल्किजीको लानेके अभिप्रायसे यत्नसहित शुकको पठाया ॥ २६ ॥

भूषयित्वा स्वर्णरत्नैस्तमुवाच कृताञ्जलिः ॥ २७ ॥

उसने सुवर्ण और रत्नसे शुकको सजाकर हाथ जोड कहना आरम्भ किया ॥ २७ ॥

पद्मोवाच–निवेदितं तु जानासि किमन्यत्कथयाम्यहम् ।
स्त्रीभावभयभीतात्मा यदि नायाति स प्रभुः ॥ २८ ॥

पद्मा बोली–हमें जो कुछ निवेदन करना है सो तुम्हारा अजाना नहीं है । तुमसे और अधिक क्या कहूं ? हम स्त्रीजाति सदासेही भीरुस्वभाववाली होती हैं । यद्यपि प्रभु न आवें–॥ २८ ॥

तथापि मे कर्मदोषात् प्रणतिं कथयिष्यसि ।
शिवेन यो वरो दत्तः स मे शापोऽभवत्किल ॥ २९ ॥

तथापि मेरी ओरसे प्रणाम कहकर मेरे कर्मदोषसे कुछ हुआ है सो कहियो और सूचित करियो कि, महादेवजीने जो वर हमें दिया है वह शापरूप होगया ॥ २९ ॥

पुंसां मद्दर्शनेनापि स्त्रीभावं कामतः शुक ।
श्रुत्वेति पद्मामामन्त्र्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ ३० ॥

कि, जो पुरुष हमको सकाम हृदयसे देखे वह तत्काल स्त्रीशरीरको प्राप्त होजाय । शुकने यह कथा सुन पद्माको समझाया बुझाया और बारंबार प्रणाम कर ॥ ३० ॥

उड्डीय प्रययौ कीरः शम्भलं कल्किपालितम् ।
तमागतं समाकर्ण्य कल्किः परपुरञ्जयः ॥ ३१ ॥

उडता हुआ शुक कल्किजी करके पालित शम्भलग्राममें गमन करता हुआ । शत्रुपुरके जीतनेवाले कल्किजी शुककी आगमनवार्ता श्रवण कर ३१

क्रोडे कृत्वा तं ददर्श स्वर्णरत्नविभूषितम् ।
सानन्दं परमानन्ददायकं प्राह तं तदा ॥ ३२ ॥

परमानन्द उस शुकको गोदमें लेकर देखा कि, वह सुवर्ण और रत्नोंसे विभूषित हुआ है । तब वह आनन्दपूर्वक तिससे इसका कारण बूझनेके अभिलाषी हुए ॥ ३२ ॥

कल्किः परमतेजस्वी परस्मिन्नमलं शुकम् ।
पूजयित्वा करे स्पृष्ट्वा पयःपानेन तर्पयन् ॥ ३३ ॥

परम तेजस्वी कल्किजीने दोषरहित शुकको पहले इतर अर्थात् बांए हाथसे छूकर जल पिलाय तृप्त कर ॥ ३३ ॥

तन्मुखे स्वमुखं दत्त्वा पप्रच्छ विविधाः कथाः ।
कस्माद्देशाच्चरित्वा त्वं दृष्ट्वाऽपूर्व्वं किमागतः ॥ ३४ ॥

उसके मुखसे मुख लगाय बहुतसी बातें पूछीं । तुम अब कौनसे देशमें विचरण करके कौनसी अपूर्व वस्तु देख आये ? ॥ ३४ ॥

कुत्रोषितः कुतो लब्धं मणिकाञ्चनभूषणम् ।
अहर्निशं त्वन्मिलनं वाञ्छितं मम सर्व्वतः ॥ ३५ ॥

तुम अबतक कहां थे ? मणिकाञ्चनरूप भूषण कहांसे पाये हो ? मैं दिन रात सब प्रकारसे तुम्हारे साथ मिलनेकी कामना करताहूं ॥ ३५ ॥

तवानालोकनेनापि क्षणं मे युगवद्भवेत् ॥ ३६ ॥

तुम्हारे विना देखे एक क्षणभी युगके समान होजाता है ॥ ३६ ॥

इति कल्केर्वचः श्रुत्वा प्रणिपत्य शुको भृशम् ।
कथयामास पद्मायाः कथाः पूर्वोदिता यथा ॥ ३७ ॥

कल्किजीके मुखसे यह वचन सुनकर शुकने उन्हें वारंवार नमस्कार किया और वह सब कथा कही कि, पद्माने जो कुछ कह दियाथा ॥ ३७॥

संवादमात्मनस्तस्या निजालङ्कारधारणम् ।
सर्व्वं तद्वर्णयामास तस्याः प्रणतिपूर्वकम् ॥ ३८ ॥

और पद्माने जैसा व्यवहार किया है, पद्माके साथ जैसी बात चीत हुई है, जिस प्रकार आभूषण दिये गये हैं, सो प्रणाम करके समस्त वर्णन करता भया ॥ ३८ ॥

श्रुत्वेति वचनं कल्किः शुकेन सहितो मुदा ।
जगाम त्वरितोऽश्वेन शिवदत्तेन तन्मनाः ॥ ३९ ॥

यह सुनकर तिसमें चित्त लगाय कल्किजी तोतेके साथ महादेवजीके दिये घोडेपर चढकर शीघ्रतासे हृदयमें हर्षित हो (सिंहलको) यात्रा करते हुए॥ ३९॥

समुद्रपारममलं सिंहलं जलसंकुलम् ।
नानाविमानबहुलं भास्वरं मणिकाञ्चनैः ॥ ४० ॥

यह सिंहलद्वीप समुद्रके पार स्थित है, निर्मल जलके बीच बसा हुआ है, असंख्य जनोंसे युक्त है अनेक प्रकारके आकाशयान इसमें हैं, मणि-कांचन देदीप्यमान होरहे हैं ॥ ४० ॥

प्रासादसदनाग्रेषु पताकातोरणाऽऽकुलम् ।
श्रेणीसभापणाट्टाल-पुरगोपुरमण्डितम् ॥ ४१ ॥

यह द्वीप, अटारी और गृहोंके सामने पताका और तोरणके रहनेसे अत्यन्त शोभा दे रहा है । सभा (बैठकें), दुकानें, सौधसमूह, पुरसमूह,

गोपुरसमूह (पुरद्वार) ये सब श्रेणीके अनुसार स्थापित हैं। इन सबसे यह नगर शोभायमान होरहा है ॥ ४१ ॥

पुरस्त्री-पद्मिनी-पद्मगन्धामोद-द्विरेफिणीम् ।
पुरीं कारुमतीं तत्र ददर्श पुरतः स्थिताम् ॥ ४२ ॥

(कल्किजीने सिंहलद्वीपमें पहुँच) सामने कारुमती नामक पुरी देखी। इस पुरीमें पुरस्त्रीरूप पद्मिनियोंकी पद्मगन्धसे भवँरे हर्षित हो रहे हैं ॥४२॥

मराल-जाल-सञ्चाल-विलोल-कमलान्तराम् ।
उन्मीलिताब्जमालालिकलिताकुलितं सरः *॥ ४३ ॥

इस पुरीमें जो जलाशय हैं तिनका जल हंसकुलके चलनेसे चलायमान है, उन्होंने जो समस्त सरोवर देखे, सो खिलेहुए कमलोंमें स्थित भ्रमरगणोंसे आकुल देखे ॥ ४३ ॥

जलकुक्कुटदात्यूह-नादितं हंससारसैः ।
ददर्श स्वच्छपयसां लहरीलोलवीजितम् ॥ ४४ ॥

उनके चारों ओर हंस, सारस, जलमुर्ग, दात्यूह (कुंजपक्षी) समूह शब्द करते हैं। स्वच्छ जलका चंचल तरंगके संग (शीतलवायु करके निकटका वन) बयारित होरहा है ॥ ४४ ॥

वनं कदम्बकुद्दाल-शालतालाम्रकेसरैः ।
कपित्थाश्वत्थखर्जूर-बीजपूरकरंजकैः ॥ ४५ ॥

यह समस्त वन कदंब, कुद्दाल (कोविदार, आबनूस), शाल (स्वनाम-प्रसिद्ध, भारतवर्षके पहाडी देशोंमें बहुतायतसे पायाजाता है), ताल (ताड), आम, मौलश्री, कैथ, पीपल, खजूर, बिजौरा नींबू, करंजक (करमचा) ४५

पुन्नागपनसैर्नागरङ्गैरर्जुनशिंशपैः ।
क्रमुकैर्नारिकेलैश्च नानावृक्षैश्च शोभितम् ॥
वनं ददर्श रुचिरं फलपुष्पदलावृतम् ॥ ४६ ॥

---

* उन्मीलितानि मालानि कलिताकुलितं सरः। इति वा पाठः ॥

पुन्नाग (बडा पेड होताहै, इसी नामसे प्रसिद्ध है), पनस (कटहर), नागरंग (नारंगी), अर्जुन (इस वृक्षका आधुनिक नाम नहीं ज्ञात होता), शिंशपा (शिरसै), क्रमुक (ब्रह्मदारु वृक्ष, गुवाक या सुपारीका वृक्ष), नारियल आदि अनेक वृक्षोंसे शोभायमान है। फल, पुष्प और पत्रोंसे विभूषित यह वन कल्किजीने देखा ॥ ४६ ॥

दृष्ट्वा हृष्टतनुः शुकं सकरुणः कल्किः पुरान्ते वने
प्राह प्रीतिकरं वचोऽत्र सरसि स्नातव्यमित्यादृतः।
तच्छ्रुत्वा विनयान्वितः प्रभुमतं यामीति पद्माश्रमं
तत्सन्देशमिह प्रयाणमधुना गत्वा स कीरोऽवदत् ॥ ४७ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे कल्केरागमनवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

वह पुरीके निकटवर्त्ती वनमें खडे हो उक्त सब बातोंको देख चित्तमें हर्षित हो हृदयमें करुणालय आदरसहित शुकसे प्रीतिकारी वचन कहते हुए कि, हम इसी स्थानमें स्नान करेंगे। स्वामीके ऐसे अभिप्रायको जानकर शुकने विनयसहित कहा, अब मैं पद्माके घरको जाता हूं। फिर शुकने पद्माके निकट जाय कल्किजीके कहेहुए वचन और उनके आनेकी समस्त वार्ता कही ॥ ४७ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे बल० भाषाटीकायां कल्केरागमन-वर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयांशः।

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सूत उवाच–कल्किः सरोवराभ्यासे जलाहरणवर्त्मनि।
स्वच्छस्फटिकसोपाने प्रवालाचितवेदिके ॥ १ ॥
सरोजसौरभव्यग्रभ्रमद्भ्रमरनादिते।
कदम्बपोतपत्रालि-वारितादित्यदर्शने ॥ २ ॥

समुवासासने चित्रे सदश्वेनावतारितः ।
कल्किः प्रस्थापयामास शुकं पद्माश्रमं मुदा ॥ ३ ॥

सूतजी बोले-भगवान् कल्किजीने महादेवजीके दिये हुए घोडेसे उतरकर सरोवरके निकट जल लानेके मार्गमें (वह घाट कि जिससे पनिहारियां जल भरकर लेजाती हैं) मूंगोंसे भूषित मनोहर मणिमय चबूतरेपर बैठकर प्रीतिप्रफुल्ल हृदयसे शुकको पद्मावतीके वासस्थानमें पठाया । वह सरोवरकी शोभाको देखने लगे । उस सरोवरमें स्वच्छ स्फटिकमय (१) सीढियाँ बनी हुई हैं । भवँरगण सरोजिनी (कमलिनी) के मधुर सौरभसे मोहित हो गुन २ करते हुए गान कर रहे हैं । निकटके कदम्ब वृक्षोंके घने नये पत्तोंकी छायासे सूर्यकी किरणें रुक रहीहैं ॥ १-३ ॥

---

(१) रत्नविशेष । संस्कृतशास्त्रमें इस रत्नका बहुत वर्णन पायाजाता है । डाक्टर रामदासने रत्नरहस्य नामक पुस्तकमें लिखा है:-" बलदेवजीने उस दानवका मेद लेकर कावेरीतीरके निकट, विन्ध्याचलके निकट, यवनदेश और नेपाल देशमें फेंका था । उस आकाशकी तुल्य तैलाख्य मेदसे स्फटिकका जन्म हुआ है "

अगस्तिमत नामक रत्नशास्त्रके मतसे स्फटिक ११ वां रत्न है । यथा-

रत्नमेकादशं प्रोक्तं सर्वैः स्फटिकसंज्ञकम् । प्रकीर्णक प्रक० ५ श्लोक)

स्फटिक चार प्रकरका था । अगास्तिके मतमें कहा है:-

चन्द्रकान्तोऽमृतस्रावी सूर्यकान्तोऽग्निकारकः । जलकान्तो जलस्फोटी हंसगर्भो विषापहः ॥
(अगास्तिमतम्, प्रकीर्णः ॥ १७ ॥)

चन्द्रकान्त स्फटिक अमृतस्रावी है, सूर्यकान्त अग्निकारक है, जलकान्त जलस्रावी और हंसगर्भ स्फटिक विषनाशक है ।

महाराज अकबरके जीवनचरित्र ग्रंथमें लिखा है कि, वह सूर्यकी किरणके द्वारा सूर्यकान्त स्फटिक मणिसे अग्नि निकलवाकर उससे अपने व्यवहार करनेको भोजन बनवाया करते और रातके समय वासगृहमें दीपक जलाते थे । चन्द्रकान्त स्फटिक मणिसे पूर्णिमाकी रात्रिको चंद्रमाका अमृत (सुधा) ग्रहण करते थे । चन्द्रकान्तमणिमें यह सुधा निर्मल ओसकी बूंदोंके समान फूट उठती थी । जो लोग " चंद्र-और चकोरका चंद्रमासे अमृत पीना " कविकल्पना कहकर उडाया चाहते हैं वह अब क्या कहते ?

कोई २ रत्नावित् महर्षि कहते हैं कि, पद्मराग मणि स्फटिकसे उत्पन्न होता है । यद्यपि रूपगुणसे अलगसा जान पडता है तथापि स्फटिक व पद्मरागमें विशेष कोई पदार्थगत विभिन्नता नहीं है । परन्तु रत्नशास्त्रमें पद्मरागकी उत्पत्तिका स्वतंत्र वर्णन, लक्षण, गुण और मूल्यादिका वर्णन है । स्फटिक और पद्मरागके विषयको लेकर महर्षियोंमें मतभेद हुआ है ॥

स नागेश्वरमध्यस्थः शुको गत्वा ददर्श ताम् ।
हर्म्यस्थां बिसिनीपत्रशायिनीं सखिभिर्वृताम् ॥ ४ ॥

पद्माके स्थानमें पहुँचकर नागकेशरके वृक्षपर बैठकर शुकने देखा कि, पद्मा अटारीके ऊपर पुरैनके पत्तोंकी सेजपर शयन किये हुए है, सखियां उसको चारों ओरसे घेरी हुई हैं ॥ ४ ॥

निश्वासवाततापेन म्लायतीं वदनाम्बुजम् ।
उत्क्षिपन्तीं सखीदत्तकमलं चन्दनोक्षितम् ॥ ५ ॥

उसका वदनकमल (विरहके संतापसे) संतापित सांसकी पवनसे मलीन हो रहा है । वह सखीका दिया हुआ चन्दनचर्चित प्रफुल्ल कमल हाथसे हिला रही है ॥ ५ ॥

रेवावारिपरिस्नातं परागास्यं×समागतम् ।
धृतनीरं रसगतं निन्दन्तीं पवनं प्रियम् ॥ ६ ॥

रेवाके जलमें भीगा परागयुक्त जलगर्भ दक्षिण दिशासे आया हुआ सरस पवन सबका प्यारा होनेपरभी पद्मासे निन्दा किया जा रहा है ॥ ६ ॥

शुकः सकरुणः साधु-वचनैस्तामतोषयत् ।
सा त्वमेह्येहि ते स्वस्ति स्वागतं स्वस्ति मे शुभे ॥ ७ ॥

इसके उपरान्त शुकने करुणाहृदयसे प्रिय वचन कहकर पद्माको समझाया । पद्माने कहा—शुक ! तुम्हारा मंगल हो, निकट आओ, कुशल तो हो ? (शुक बोला)—शोभने ! हमारा समस्त कुशल है ॥ ७ ॥

गते त्वय्यतिव्यग्राऽहं शान्तिस्तेऽस्तु रसायनात् ।
रसायनं दुर्लभं मे सुलभं ते शिवाश्रये ॥ ८ ॥

(पद्मा बोली)—हे शुक ! तुम जबसे गये हो मैं तबसेही हृदयमें अत्यन्त

× परागाढ्यम् । इति पाठान्तरम् ।

व्याकुल हो रही हूं । (शुक बोला) अब रसायन (१) करके तुम्हारे सब सन्ताप शांत हों (पद्माने–कहा हे शुक !) मेरे लिये रसायन अत्यन्त दुर्लभ है । (शुक बोला)–हे शिवशिष्ये ! तुम्हारे अर्थ रसायन दुर्लभ नहीं, अत्यन्त सुलभ है ॥ ८ ॥

क्व मे भाग्यविहीनाया इहैव वरवर्णिनि ।
देवि तं सरसस्तीरे प्रतिष्ठाप्यागता वयम् ॥ ९ ॥

पद्मा बोली–हे शुक ! हमारा भाग्य मन्द है, किस प्रकारसे कहाँ हमारा अभी सुलभ हो सकेगा ? (तोता बोला) हे वरवर्णिनि ! इस स्थानमेंही तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा । हे देवी ! मैं उनको इस स्थानमेंही सरोवरके किनारे ठहराकर चला आया हूँ ॥ ९ ॥

एवमन्योन्यसंवाद-मुदितात्ममनोरथे ।
मुखं मुखेन नयनं नयने साऽऽहृता ददौ ॥ १० ॥

पद्मा और शुककी परस्पर इस प्रकार बातचीत होनेपर पद्मा अपने मनोरथकी सिद्धिमें (आशा पाय) हर्षित हुई । फिर उसने आदरसहित तोतेका मुख अपने मुखमें और तोतेका नेत्र अपने नेत्रमें समर्पण किया ॥ १० ॥

विमला मालिनी लोला कमला कामकन्दला ।
विलासिनी चारुमती कुमुदेत्यष्ट नायिकाः ॥ ११ ॥

---

(१) वैद्यकशास्त्रमें कहा है कि, द्रव्यगुणसे जरा और व्याधिका नाश होसकता है । जरा और व्याधिका नाश करनेवाले द्रव्य शास्त्रके मतसे ' रसायन ' कहे जाते हैं । भावप्रकाशमें लिखा है:–

रसायनं तु तज्ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम् । यथाऽमृता रुदन्ती च गुग्गुलुश्च हरीतकी ॥

अर्थात् जिस द्रव्यसे (मनुष्यकी) जरा और व्याधिका नाश हो तिसको रसायन कहते हैं जैसे अमृता (गिलोय) रुदन्ती गूगुल और हरड ।

इन द्रव्योंमें जरा और व्याधिका नाश करनेकी शक्ति थी । जिस प्रकार ' रसायन ' से मनुष्यकी जरा, व्याधिका दुःख दूर हो सकता है वैसेही ' रसायन ' से नायक नायिकाका दुःख दूर करेगा; इस भावसे यहांपर 'रसायन' शब्दका प्रयोग हुआ है । रसायन औषधि विशेष है । इसही औषधिको उपलक्ष्य करके शुक कहता है–" हे पद्मावती ! तुम कातर हुई तो हो परन्तु तुम्हारी रसायन निकट है । "

विमला, मालिनी, लोला, कमला, कामकन्दला, विलासिनी, चारुमती, कुमुदा ये अष्ट नायिका हैं ॥ ११ ॥

सख्य एता मतास्ताभिर्जलक्रीडार्थमुद्यता ।
पद्मा प्राह सरस्तीरमायान्त्वेता मया स्त्रियः ॥ १२ ॥

ये उसकी प्यारी सखियें थीं। वह इन आठ नायिकाओंके साथ जलक्रीडा (विहार) करनेको तैयार हुई। पद्मा बोली—यह आठ सखियें हमारे साथ सरोवरके किनारेपर आवें ॥ १२ ॥

इत्याख्यायाशु शिबिकामारुह्य परिवारिता ।
सखीभिश्चारुवेषाभिर्भूत्वा स्वान्तःपुराद्बहिः ॥
प्रययौ त्वरितं द्रष्टुं भैष्मी यदुपतिं यथा ॥ १३ ॥

यह कहकर पद्मा तत्काल पालकीमें चढी। वह उजले वेषवाली सखियोंके साथ अन्तःपुरसे बाहिर आई, रुक्मिणीजी (१) जिस प्रकार कृष्णजीके दर्शन करनेको बाहर हुई थीं, तैसेही पद्माने कल्किजीका दर्शन करनेके निमित्त शीघ्रतासे गमन किया ॥ १३ ॥

जनाः पुमांसः पथि ये पुरस्थाः प्रदुद्रुवुः स्त्रीत्वभयाद्दिगन्तरम् ।
शृङ्गाटके वा विपणिस्थिता ये निजाङ्गनास्थापितपुण्यकार्य्याः॥१४॥

मार्गमें चौराहे या दुकानोंपर जो पुरवासी पुरुष थे सो स्त्री होनेके भयसे चारों ओर भाग गये। उनकी स्त्रियाँ (अपने अपने स्वामियोंको निरापद आते देखकर देवपूजादि) पुण्यकर्मका अनुष्ठान करने लगीं ॥ १४ ॥

---

(१) रुक्मिणी—यह विदर्भ (वर्त्तमान बेरार) देशके महाराज भीष्मककी कन्या थी। रुक्मिणीका बडा भ्राता रुक्म चाहता था कि, चेदि (वर्तमान बुंदेलखण्ड और जबलपुर) देशके राजा दमघोषके पुत्र शिशुपालके साथ अपनी बहिनका विवाह करो। परन्तु रुक्मिणीने इस व्याहसे अप्रसन्न हो द्वारकानाथ श्रीकृष्णभगवान्जीकी भार्या होनेकी इच्छासे एक ब्राह्मणको उनके निकट भेजा। श्रीकृष्णजी शीघ्र विदर्भमें आय रुक्मिणीजीको बलसे ग्रहण कर द्वारकामें ले गये और तहां विधिविधानसे उनके साथ विवाह किया।
(रुक्मिणीका विस्तारित विवरण महाभारतमें पाया जाता है।):

(२) पण्यकार्याः। इति सरस पाठः।

निवारितां तां शिबिकां वहन्त्यो नार्य्योऽतिमत्ता बलवत्तराश्च ।
पद्मा शुकोक्त्या तदुपर्य्युपस्था जगाम ताभिः परिवारिताभिः॥१५॥

मार्ग इस प्रकार पुरुषसम्पर्कसे रहित हुआ (यौवन-) मतवाली और अत्यन्त बलवती स्त्रियें पालकीको ले चलनेको लगीं । शुकके कहनेके अनुसार पद्मा उस पालकीमें चढकर सखियोंके साथ गमन करने लगी ॥१५॥

सरोजलं सारसहंसनादितं प्रफुल्लपद्मोद्भवरेणुवासितम् ।
चेरुर्विगाह्याशु सुधाकराननाः कुमुद्वतीनामुदयाय शोभनाः ॥१६॥

तासां मुखामोदमदान्धभृङ्गा विहाय पद्मानि मुखारविन्दे ।
लग्नाः सुगन्धाधिकमाकलय्य निवारिताश्चापि न तत्यजुस्ते ॥१७॥

इसके उपरान्त वह चंद्रवदनी शोभायमान ललनायें सारस और हंसोंकी मधुर ध्वनिसे युक्त, खिले हुए कमलफूलोंसे उत्पन्न रेणुसे सुगन्धित सरोवरके नीरमें न्हाय कुमुद्वतीको विकसित करनेके अभिप्रायसे घूमने लगीं भ्रमरगणोंने उनके वदनकमलके सौरभसे अन्धे हो प्रफुल्ल कमलको छोड उस मुखकमलपरही बैठना आरंभ किया, स्त्रियें वारंवार उनको उडातीं थीं परंतु वह मुखपद्ममें अत्यन्त सौरभ देखकर तिसको नहीं छोडते थे ॥ १६ ॥ १७ ॥

हासोपहासैः सरसप्रकाशैर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च जले विहारैः ।
करग्रहैस्ता जलयोधनार्त्ताश्चकर्ष ताभिर्वनिताभिरुच्चैः ॥ १८ ॥

रसयुक्त हास परिहाससे, वाद्यसे, नृत्यसे, हाथ पकडके व और अनेक नाना प्रकारके जलविहारसे जलसन्तरणमें मत्त सखियोंके मनको पद्मा हरण करती हुई । सखियों करके तिसका मनभी हरागया ॥ १८ ॥

सा कामतप्ता मनसा शुकोक्तिं विविच्य पद्मा सखिभिः समेता ।
जलात्समुत्थाय महार्हभूषा जगाम निर्दिष्टकदम्बषण्डम् ॥१९॥

इसके उपरान्त कामदेवसे सन्तापित हुआहै हृदय जिसका ऐसी पद्मा

मनही मनमें शुकके वाक्योंको विचारती सखियोंके साथ जलसे निकली। फिर वह बड़े मोलके गहने पहर तोतेसे कहे हुए कदंबके तले गई ॥ १९ ॥

सुखे शयानं मणिवेदिकागतं कल्किं पुरस्तादतिसूर्यवर्चसम् । महामणिव्रातविभूषणाचितं शुकेन सार्द्धं तमुदैक्षतेशम् ॥ २० ॥

उसने तोतेके साथ कदम्बके तले जाकर देखा कि, सम्मुखही मणिके चबूतरेपर कल्किजी लेटे हुए सुखसे सो रहे हैं। उनके तेजसे सूर्य भगवान्का तेजभी हारगया है। उनके सब अंगोंमें महामणियोंका समूह शोभायमान हो रहा है ॥ २० ॥

तमालनीलं कमलापतिं प्रभुं पीताम्बरं चारुसरोजलोचनम् ।
आजानुबाहुं पृथुपीनवक्षसं श्रीवत्ससत्कौस्तुभकान्तिराजितम् २१॥
तदद्भुतं रूपमवेक्ष्य पद्मा संस्तम्भिता विस्मृतसत्क्रियार्था ।
सुतं तु सम्बोधयितुं प्रवृत्तं निवारयामास विशङ्कितात्मा ॥ २२ ॥

तमालकी समान नीलवर्णवाले, पीताम्बर पहिरे, रमणीय कमलदलकी समान नेत्रवाले, जिनकी बाहें जानुतक लम्बी हैं, चौडी और पुष्ट जिनकी छाती है, श्रीवत्सचिह्नसे चिह्नित और कौस्तुभमणिकी कान्तिसे लक्ष्मीके पति श्रीनारायणजी विराजमान हैं। इस रूपको निहार पद्मा मोहित होगई और विस्मित हो उचित सत्कार करना भूल गई। जब शुक कल्किजीको जगाने लगा, तब पद्माने शंकित हृदयसे उसको निवारण किया॥२१॥२२॥

कदाचिदेषोऽतिबलोऽतिरूपी मद्दर्शनात्स्त्रीत्वमुपैति साक्षात् ।
तदाऽत्र किं मे भविता भवस्य वरेण शापप्रतिमेन लोके ॥२३॥

(और बोली) यह महावीर कमनीयाकार पुरुष जो हमैं देखकर स्त्रीके शरीरको प्राप्त होजाय तो महादेवजीके वरसे हमें क्या लाभ हुआ ? तिनका वर हमारे अर्थ शापरूप हो रहाहै ॥ २३ ॥

चराचरात्मा जगतामधीशः प्रबोधितस्तद्धृदयं विविच्य ।
ददर्श पद्मां प्रियरूपशोभां यथा रमा श्रीमधुसूदनाग्रे ॥ २४ ॥

इसके उपरान्त चराचर जगत्के अंतरात्मा, जगदीश्वर कल्किजी पद्माके आन्तरिक अभिप्रायको समझकर जागे और देखते हुए कि, मधुसूदन-मूर्तिके (१) सन्मुख लक्ष्मीजी स्थित होरहीहो तैसेही परमरूपवती श्रेष्ठनेत्रोंवाली पद्मा तिनके सामने खडीहै ॥ २४ ॥

संवीक्ष्य मायामिव मोहिनीं तां जगाद कामाकुलितः स कल्किः ।
सखीभिरीशां समुपागतां तां कटाक्षविक्षेपविनामितास्याम् ॥ २५ ॥

सखियोंके साथ आईहुई और कटाक्ष चलातेही जिसका मुख नीचे पड-गयाहै साक्षत् मायाकी समान मोहकी माता राजकुमारी पद्माको देखकर कल्किजीने सकामहृदयसे कहा ॥ २५ ॥

इहेहि सुस्वागतमस्तु भाग्यात्समागमस्ते कुशलाय मे स्यात् ।
तवाननेन्दुः किल कामपूरतापापनोदाय सुखाय कान्ते ॥२६॥

हे कान्ते ! निकट आओ । तुम्हारा आगमन मंगलका कारण हो । तुम्हारे साथ मेरा समागम हुआ । तुम्हारे वदनरूपी चन्द्रमासे हमारे काम-देवका ताप दूर होकर सुख बढै ॥ २६ ॥

लोलाक्षि लावण्य-रसामृतं ते कामाहिदष्टस्य विधातुरस्य ।
तनोतु शान्तिं सुकृतेन कृत्या सुदुर्लभां जीवनमाश्रितस्य ॥२७॥

हे चंचलनेत्रवाली ! यद्यपि मैं जगत्का विधाता हूं तथापि कामदेवरूप कालसर्पने मुझको डसा है । इस समय तुम्हारे लावण्यरूप अमृतके विना

---

(१) मधुनामक दैत्यका नाश किया, इत्यादि अर्थसे मधुसूदन नामकी उत्पात्ति हुई है । ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें कहा है:-

सूदनं मधुदैत्यस्य यस्मात् स मधुसूदनः । इति सन्तो वदन्तीशं वेदैर्भिन्नार्थमीप्सितम् ॥
मधु क्लीवं च माध्वीके कृतकर्म शुभाशुभे । भक्तानां कर्मणां चैव सूदनं मधुसूदनः ॥
परिणामाशुभं कर्म भ्रान्तानां मधुरं मधु । करोति सूदनं यो हि स एव मधुसूदनः ॥
(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, कृष्णजन्मखण्ड, ११० अ०)

तिसकी शान्ति होनेका दूसरा उपाय नहीं है। यह शान्ति बहुतसे पुण्यकरके वा पुरुषार्थसे भी दुर्लभ है और यह आश्रित हुईकी जीवनरूप है ॥ २७ ॥

बाहू तवैतौ कुरुतां मनोज्ञौ हृदि स्थितं काममुदन्तवासम् ।
चार्वायतौ चारुनखाङ्कुशेन द्विपं यथा सादिविदीर्णकुम्भम् ॥२८॥

महावत जिस प्रकार अंकुशसे मतवाले हाथीका कुम्भ भेद डालता है, तैसेही तुम्हारी यह रमणीय और बडी दोनों बाँहें श्रेष्ठ नखरूप अंकुश करके मेरे हृदयमें स्थित मदनरूप मतवाले हाथीको क्षत विक्षत और निर्वासित करें ॥ २८ ॥

स्तनाविमावुत्थितमस्तकौ ते कामप्रतोदाविव वाससाऽक्तौ ।
ममोरसा भिन्ननिजाभिमानौ सुवर्तुलौ व्यादिशतां प्रियं मे॥२९॥

वसनसे ढके तुम्हारे यह दोनों गोल स्तन कामदेवके चाबुककी समान शिर उठारहे हैं। यह मेरी छातीसे खर्वीकृत हो हमारी मनोवांछाको पूर्ण करें ॥ २९ ॥

कान्तस्य सोपानमिदं वलित्रयं सूत्रेण रोमावलिलेखलक्षितम् ।
विभाजितं वेदिविलग्नमध्यमे कामस्य दुर्गाश्रयमस्तु मे प्रियम्॥३०॥

हे प्यारी ! तुम्हारा मध्यदेश (कमर) यज्ञवेदीके मध्यदेशकी नाईं क्षीण है, उसमें त्रिवलीका उदय हुआ है, (उस त्रिवलीके ऊपर) रमणीय रोम-रेखा उत्पन्न हैं, मैं जानताहूं कि, वह सुन्दर त्रिवलीरेखा तुम्हारे प्रीतमकी (मदनमार्गमें उतरनेको) सोपान (सीढी) और कामदेवके आश्रयको मानो दुर्ग है। हे प्रिये ! तुम्हारी त्रिवली हमें प्रसन्न करें ॥ ३० ॥

रम्भोरु सम्भोगसुखाय मे स्यान्नितम्बबिम्बं पुलिनोपमं ते ।
तन्वङ्गि तन्वंशुकसङ्गशोभं प्रमत्तकामाविमदोद्यमालम् ॥ ३१ ॥

हे रम्भोरु ! पुलिनकी समान तुम्हारे नितम्बबिम्ब हमारे सम्भोग-सुखका विधान करें. हे कृशांगि ! सूक्ष्म वस्त्रसे ढके तुम्हारे नितम्बमंडलपर मदनमत्त पुरुषका कामाभिलाष चरितार्थ होजाता है । इस समय यह हमारे सम्भोगसुखके कारण होवें ॥ ३१ ॥

पादाम्बुजं तेऽङ्गुलिपत्रचित्रितं वरं मरालक्कणनूपुरावृतम् ।
कामाहिदष्टस्य ममास्तु शान्तये हृदि स्थितं पद्मघने सुशोभने ३२॥

हमारे हृदय (निर्मल जल) में स्थित, अंगुलिरूप पत्रद्वारा चित्रित, हंसकी समान शब्द करनेवाले नूपुरोंसे शोभायमान, परमरमणीय तुम्हारे दो पद पंकजसे हमारे मदनरूपविषधर दंशनजनित विषका उपशम (शान्ति) होवें ॥ ३२ ॥

श्रुत्वैतद्वचनामृतं कलिकुलध्वंसस्य कल्केरलं
दृष्ट्वा सत्पुरुषत्वमस्य मुदिता पद्मा सखीभिर्वृता ।
कान्तं क्कान्तमनाः कृताञ्जलिपुटा प्रोवाच तत्सादरं
धीरं धीरपुरस्कृतं निजपतिं नत्वा नमत्कन्धरा ॥ ३३ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे पद्माकल्किसाक्षात्-
संवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

कलिकुलका ध्वंस करनेवाले कल्किजीके यह अमृततुल्य वचन सुनकर व तिनका पुरुषत्व अक्षत देखकर पद्मा अत्यन्त आनन्दको प्राप्त हुई । फिर जब पद्माका मन कल्किजी करके घिरगया, तब वह सखियोंके साथ शिर झुकाय, नमस्कार कर, हाथ जोड, धीर जनोंसे आदरको प्राप्त हुए अपने पति कल्किजीसे आदरपूर्वक धीरे धीरे कहती हुई ॥ ३३ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां
पद्माकल्किसाक्षात्संवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

द्वितीयांशः ।

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सूत उवाच-सा पद्मा तं हरिं मत्वा प्रेमगद्गदभाषिणी ।
तुष्टाव व्रीडिता देवी करुणावरुणालयम् ॥ १ ॥

सूत बोले—पद्मावती श्रीकल्किजीको साक्षात् भगवान् श्रीहरि जानकर लाजसे शिरको झुकाय प्रेमगद्गदवाणीसे उन करुणासागर भगवान्की स्तुति करने लगी ॥ १ ॥

प्रसीद जगतां नाथ धर्म्मवर्म्मन् रमापते ।
विदितोऽसि विशुद्धात्मन् वशगां त्राहि मां प्रभो ॥ २ ॥

हे रमापते ! आप जगत्के नाथ और धर्मके वर्म (बख्तर) रूप हैं । हे विशुद्धात्मन् ! आपको पहचान गई हूं, हे प्रभो ! इस समय मैं आपकी शरण आई आप मेरी रक्षा करें ॥ २ ॥

धन्याऽहं कृतपुण्याऽहं तपोदानजपव्रतैः ।
त्वां प्रतोष्य दुराराध्यं लब्धं तव पदाम्बुजम् ॥ ३ ॥

मैं धन्य और पुण्यवती हूं, आप कठिनतासे आराध्य हैं, तथापि मैंने तप, दान, जप और व्रतसे आपको संतुष्ट करके आपके चरणोंको प्राप्त किया॥ ३॥

आज्ञां कुरु पदाम्भोजं तव संस्पृश्य शोभनम् ।
भवनं यामि राजानमाख्यातुं स्वागतं तव ॥ ४ ॥

आप इस समय आज्ञा करैं मैं आपके सुकोमल चरणकमल स्पर्शकर गृहमें जाय, राजासे आपके शुभागमनकी वार्ता निवेदन करूं ॥ ४ ॥

इति पद्मा रूपसद्मा गत्वा स्वपितरं नृपम् ।
प्रोवाचागमनं कल्केर्विष्णोरंशस्य दौत्यकैः ॥ ५ ॥

यह कहकर अनुपम रूपवती पद्मा पिताके निकट गई और दूत द्वारा विष्णुजीके अंश कल्किजीके आनेका वृत्तान्त कहा ॥ ५ ॥

सखीमुखेन पद्मायाः पाणिग्रहणकाम्यया ।
हरेरागमनं श्रुत्वा सहर्षोऽभूद् बृहद्रथः ॥ ६ ॥

जब बृहद्रथ राजाने पद्माकी सखीसे सुना कि, विष्णुजी विवाहार्थी होकर आये हैं तब उसके आनन्दकी सीमा न रही ॥ ६ ॥

पुरोधसा ब्राह्मणैश्च पात्रैर्मित्रैः सुमङ्गलैः ।
वाद्यताण्डवगीतैश्च पूजायोजनपाणिभिः ॥ ७ ॥

फिर वह पुरोहित, ब्राह्मण, परिजन और मित्रोंके साथ पूजाकी सामग्री हाथमें ले मांगलिक नृत्य, गीत और वाद्य श्रवण व दर्शन करते करते ॥ ७॥

जगामानयितुं कल्किं सार्द्धं निजजनैः प्रभुः ।
मण्डयित्वा कारुमतीं पताकास्वर्णतोरणैः ॥ ८ ॥

कल्किजीको लानेके निमित्त यात्रा करता हुआ, तिसके आत्मीय बन्धु बान्धव सबही उसके साथ चले पताका और सुवर्णमय तोरणसमूहोंसे कारुमती पुरी विभूषित हुई ॥ ८ ॥

ततो जलाशयाभ्यासं गत्वा विष्णुयशःसुतम् ।
मणिवेदिकयाऽऽसीनं भुवनैकगतिं पतिम् ॥ ९ ॥

इसके उपरान्त बृहद्रथ राजाने जलाशयके निकट जायकर देखा कि, विष्णुयशाके पुत्र अगतिके गति जगत्पति विष्णुजी मणिवेदीपर विराजमान हैं ॥ ९ ॥

घनाघनोपरि यथा शोभन्ते रुचिराण्यहो ।
विद्युदिन्द्रायुधादीनि तथैव भूषणान्युत ॥ १० ॥

जल वर्षानेवाले कारे बादरके ऊपर जैसे मनोहर दामिनी व इंद्रायुधादि शोभा पाते हैं, तैसेही (कृष्णवर्णवाले कल्किजीके अंगमें) अनेक भूषणोंका समूह शोभा पारहा है ॥ १० ॥

शरीरे पीतवासाग्रघोरभासा विभूषितम् ।
रूपलावण्यसदने मदनोद्यमनाशने ॥ ११ ॥

रूप लावण्यका भवन, मदनको पराजय करनेवाला तिनका शरीर पीताम्बरके अग्रभागमें स्थित अत्यन्त कान्तिसे भूषित हो रहा है ॥ ११ ॥

ददर्श पुरतो राजा रूपशीलगुणाकरम् ।
साश्रुः सपुलकः श्रीशं दृष्ट्वा साधु तमार्च्चयत् ॥ १२ ॥

फिर रूपवन्त् गुणयुक्त सुशील श्रीपति कल्किजीको सन्मुख देख राजा पुलकित हो आनन्दके आंसू बहाने लगा, फिर विधिविधानसे तिनकी पूजा करके (कहा) ॥ १२ ॥

ज्ञानागोचरमेतन्मे तवागमनमीश्वर ।
यथा मान्धातृपुत्रस्य यदुनाथेन कानने ॥ १३ ॥

हे जगदीश्वर ! यदुनाथ ! जिस प्रकार काननमें मान्धाताके पुत्रसे मिले थे तैसेही यहांपर आपका आगमन मेरे लिये स्वप्नमेंभी अगोचर है ॥ १३ ॥

इत्युक्त्वा तं पूजयित्वा समानीय निजाश्रमे ।
हर्म्यप्रासादसंबाधे स्थापयित्वा ददौ सुताम् ॥ १४ ॥

राजा यह कह पूजा कर कल्किजीको, अटारी और धवरहरोंसे शोभित अपने गृहमें ले आया और यत्नसहित ठहराकर कन्यादान किया ॥ १४ ॥

पद्मां पद्मपलाशाक्षीं पद्मनेत्राय पद्मिनीम् ।
पद्मजादेशतः पद्मनाभायादाद्यथाक्रमम् ॥ १५ ॥

उसने ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार कमलदललोचन पद्मनाभ कल्किजीके निकट, कमलनयनी पद्मिनी पद्माको नियमानुसार समर्पण किया ॥ १५ ॥

कल्किर्लब्ध्वा प्रियां भार्य्यां सिंहले साधुसत्कृतः ।
समुवास विशेषज्ञः समीक्ष्य द्वीपमुत्तमम् ॥ १६ ॥

मतिमान् कल्किजी, प्यारी भार्याको प्राप्त करके साधु लोगोंकरके उत्तम सत्कार पाय, सिंहलद्वीपको उत्तम स्थान देख कुछ दिनतक उस स्थानमें वास करते हुए ॥ १६ ॥

राजानः स्त्रीत्वमापन्नाः पद्मायाः सखितां गताः ।
द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः कल्किं विष्णुं जगत्पतिम् ॥ १७ ॥

जो राजालोग स्त्रीके शरीरको पाय पद्माकी सखी हुए थे वे सब अतिशीघ्रतासे जगत्के स्वामी कल्किजीके देखनेको आये ॥ १७ ॥

ताः स्त्रियोऽपि तमालोक्य संस्पृश्य चरणाम्बुजम् ।
पुनः पुंस्त्वं समापन्ना रेवास्नानात्तदाज्ञया ॥ १८ ॥

उन्होंने कल्किजीको देखकर तिनके चरणकमलको स्पर्श किया और तिन (हरि) की आज्ञासे वह रेवानदीमें नहाये । स्नान करतेही नारीभाव छोड फिर पुरुषभावको प्राप्त हुए ॥ १८ ॥

पद्माकल्की गौरकृष्णौ विपरीतान्तरावुभौ ।
बहिः स्फुटौ नीलपीत-वासोव्याजेन पश्यतु ॥ १९ ॥

पद्माका गौरवर्ण और कल्किजीका कृष्णवर्ण है, यह दोनों वर्ण परस्पर विपरीत हैं, इसी कारणसे मानो पद्माका नीलाम्बर और कल्किजीका पीताम्बर रूप बाह्यवर्ण प्रकाशित होकर सबको परस्पर रूपका समन्वय दिखाते हैं ॥ १९ ॥

दृष्ट्वा प्रभावं कल्केस्तु राजानः परमाद्भुतम् ।
प्रणम्य परया भक्त्या तुष्टुवुः शरणार्थिनः ॥ २० ॥

कल्किजीका परम अद्भुत प्रभाव निहार शरणागत हो अत्यन्त भक्तिके साथ नमस्कार करके राजालोगोंने कल्किजीकी स्तुति करनी आरंभकी॥ २०॥

जय जय निजमायया कल्पिताशेषविशेषकल्पनापरिणाम ! जलाप्लुतलोकत्रयोपकरणमाकलय्य मनुमनिशम्य पूरित-मविजनाविजनाविर्भूतमहामीनशरीर ! त्वं निजकृतधर्म्म-सेतुसंरक्षणकृतावतारः॥ २१ ॥

राजा बोले—हे देव ! तुम्हारी जय हो, तुम्हारी कल्पनाके बलसे जगत्में अनेक प्रकारकी विचित्र कल्पना कल्पित होरहीहैं, तुम्हारेही प्रभावसे तिनकी परिणति होती है । जब त्रिलोकी प्रलयके जलमें डूबगई थी तब तुमने वेदध्वनि न सुनपाकर प्राणियोंसे रहित जनशून्यस्थानमें महा-मीनमूर्ति धारण करके (त्रिलोकीके) समस्त जीवोंका उपकरण संग्रह कियाथा । हे देव ! तुमही अपने धर्मरूप सेतुकी रक्षाके लिये मीन अव-तार (१) हुए थे ॥ २१ ॥

---

(१) जब प्रलयके जलमें पृथ्वी डूबगई थी, तब भगवान् विष्णुजीने मत्स्यावतार लिया था, मत्स्यपुराणमें इस प्रकार लिखा है । यथा:—

–पुरा राजा मनुर्नाम चीर्णवान् विपुलं तपः । पुत्रे राज्यं समारोप्य क्षमावान् रविनन्दनः ॥ १३ ॥
बभूव वरदश्चास्य वर्षायुत(ग)शते गते । वरं वृणीष्व प्रोवाच प्रीतः स कमलासनः ॥ १४ ॥

(मत्स्यपुराण १ अध्याय)

पूर्वकालमें मनुनामक सूर्यवंशीय राजा पुत्रके कंधेपर राज्यभार डाल बहुत तप इकट्ठा करता था । शतयुग बीतजानेपर भगवान्जीने तिसको वर देनेके अभिलाषसे पूछा, वर मांगो; तुम्हारी क्या अभिलाषा है कहो ? तब मनु बोले–

भूतग्रामस्य सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च । भवेयं रक्षणायालं प्रलये समुपस्थिते ॥ १६ ॥

(मत्स्यपुराण १ अध्याय)

हे देव ! जो प्रसन्न हो तो यह वर दो कि, प्रलय होनेपर मैं स्थावर जंगम समस्त भूतग्रामकी रक्षा करसकूं । भगवान् 'तथास्तु' कहकर अंतर्हित हुए, इस ओर–

कदाचिदाश्रमे तस्य कुर्वतः पितृतर्पणम् । पपात पाण्योरुपरि शफरी जलसंयुता ॥ १८ ॥
दृष्ट्वा तच्छफरीरूपं स दयालुर्महीपतिः । रक्षणायाकरोद्यत्नं स तस्मिन् करकोदरे ॥ १९ ॥
अहोरात्रेण चैकेन षोडशांगुलविस्तृतः । सोऽभवन्मत्स्यरूपेण पाहि पाहीति चाब्रवीत् ॥ २० ॥

(मत्स्यपुराण १ अध्याय)

एक दिन मनुजी आश्रममें पितृतर्पण करते थे । उसी समय उनकी हथेलीपर एक मछली आनपडी । मछलीको देख मनुजीको दया आई । मछलीका प्राण बचानेकी अभिलाषासे राजा मनुने उसको अपने कमण्डलुमें रखदिया । दिनरात्रिमें उस छोटी मछलीका देह १६-अंगुल बढगया । कमंडलुके ओछे स्थानमें वह प्राण जानेकी शंकासे रक्षा करो रक्षा करो कहने लगी, तब–

स तमादाय मणिके प्राक्षिपज्जलचारिणम् । तत्रापि चैकरात्रेण हस्तत्रयमवर्द्धत ॥ २१ ॥
पुनः प्राहार्त्तनादेन सहस्रकिरणात्मजम् । स मत्स्यः पाहि पाहीति त्वामहं शरणं गतः ॥ २२ ॥
ततः स कूपे तं मत्स्यं प्राहिणोद्रविनंदनः । यदा न माति तत्रापि कूपे मत्स्यः सरोवरे ॥ २३ ॥
क्षिप्तोऽसौ पृथुतामागात् पुनर्योजनसम्मिताम् । तत्राप्याह पुनर्दीनः पाहि पाहि नृपोत्तम ॥ २४ ॥
ततः स मनुना क्षिप्तो गंगायामप्यवर्द्धत । यदा तदा समुद्रे तं प्राक्षिपन्मेदिनीपतिः ॥ २५ ॥

(मत्स्यपुराण १ अध्याय)

मनुजीने तिसको लेकर मणिकमें (मिट्टीकी कलसीमें) डालदिया । तहांपर वह मत्स्य एक रात्रिके बीचमें तीन हाथ बढगया और फिर आर्त्तनाद करने लगा । तब राजर्षिने तिसको कुएमें डालदिया । जब कुएमेंभी उसकी देह न समाई, तब सरोवरमें रख दिया । सरोवरमें डालनेके पीछे यह मत्स्य योजन भर बढगया । तहांपर कातर वचनसे कहने लगा–हे राजर्षे ! मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो । तब मनुजीने तिसको गंगाजीमें डालदिया । जब गंगाजीमें भी उसकी देह न आ सकी तब समुद्रमें डाला । समुद्रमें डालनेके पीछे–

पुनरिह दितिज-बल-परिलंघित-वासव-सूदनाहत-जितत्रिभुवन-पराक्रम-हिरण्याक्ष-निधन-पृथिव्युद्धरणसंकल्पाभिनिवेशेन धृत-कोलावतारः पाहि नः ॥ २२ ॥

जब दानवोंकी सेना इन्द्रको पराजित करनेलगी और त्रिभुवनको जीतनेवाला पराक्रमी हिरण्याक्ष इन देवराजके संहार करनेको तैयार हुआ तब तिसका नाश और पृथ्वीका उद्धार करनेके संकल्पसे आप महा-

---

–यदा समुद्रमखिलं व्याप्यासौ समुपस्थितः । तदा प्राह मनुर्भीतः कोऽसि त्वमसुरेतरः ॥ २६ ॥
अथवा वासुदेवस्त्वमन्य ईदृक् कथं भवेत् । योजनायुतविंशत्या कस्य तुल्यं भवेद्वपुः ॥ २७ ॥
ज्ञातस्त्वं मत्स्यरूपेण मां खेदयसि केशव । हृषीकेश जगन्नाथ जगद्धाम नमोऽस्तु ते ॥ २८ ॥
एवमुक्तः स भगवान् मत्स्यरूपी जनार्दनः । साधुसाध्विति चोवाच सम्यग्ज्ञातस्त्वयानघ॥२९॥

(मत्स्यपु० अ० १)

उस मत्स्यने समस्त समुद्रको व्याप्त किया, तिसका ऐसा भाव निहार मनुजीने अत्यंत भीत हो पूछा–हे मीन ! तुम कौन देवता हो कहो ? अथवा तुम निश्चय वासुदेव हो । विना श्रीहरिके और कौन ऐसा होगा ? किसका शरीर दो लक्ष योजनके परिमाणका होगा ? हे केशव ! मत्स्यरूपसे और हमको कष्ट न दो; हम तुम्हारे स्वरूपको जान गये हैं । तब मत्स्यरूपी भगवान् बोले, अच्छा ! अच्छा ! तुम यथार्थ विषय जान गये हो । हे राजर्षे ! शीघ्रही प्रलय होगी, तब पर्वत वनसे युक्त पृथ्वी जलमें डूब जायगी । उस समय जिससे सृष्टिकी रक्षा हो जाय इस अभिलाषसे समस्त देवताओंने यह नाव बनाई है । तुम–

स्वेदाण्डजोद्भिज्जा ये ये च जीवा जरायुजाः ।
अस्यां निधाय सर्व्वांस्तानननाथान् पाहि सुव्रत ॥ ३२ ॥

(मत्स्यपुराण १ अध्याय)

स्वेदज (मक्खी फुनगे आदि), अण्डज (मत्स्य, सरीसृप, पक्षी आदि), उद्भिज्ज (वृक्ष लता आदि) और जरायुज (मनुष्य, वानर, घोडा आदि) समस्त जीव इस नावमें रखकर तिनकी रक्षा करो कारण कि, तिनकी रक्षा करनेवाले तुम्हारे बिना और कोई नहीं है, जब प्रलय–पवनके कोपसे नाव टकरावैगी, तब हमारे मत्स्यदेहके सींगमें उसको बांध दीजो। मनुजीने इसी भांति सृष्टिके बीजोंका संग्रह कर संसारके जीवप्रवाहके बीजोंकी रक्षा की, श्रीमद्भागवतमें कहा है–

रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधिसंप्लवे । नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ॥

(श्रीमद्भागवत, १ स्कन्ध, ३ अ० १५ श्लोक)

इस प्रकार और इस कारण भगवान्ने मत्स्यावतार धारण किया था ॥

वराह अवतार (१) हुए थे। अब आप हमारा निस्तार करें ॥ २२ ॥

पुनरिह जलधि-मथनाहृत-देवदानवगणानां मन्दराचलानयन-व्याकुलितानां साहाय्येनाहृतचित्तः पर्व्वतोद्धरणामृतप्राशन-रचनावतारः कूर्म्माकारः प्रसीद परेश ! त्वं दीननृपाणाम् ॥ २३ ॥

पहले जब देवता और दानव लोग मिलकर समुद्रके मथनेको मन्दराचलके स्थापन करनेका स्थान न पानेसे व्याकुलचित्त हुए थे, तब आपने तिनको सहायता देनेका संकल्प करके कूर्मावतार होकर पीठपर पर्वतको धारण किया। देवताओंको अमृतपान करानेके अभिप्रायसेही आपका

---

(१) जब पृथ्वी प्रलयके जलमें डूब गई तब भगवान्‌ने वराहमूर्त्ति धारण कर पृथ्वीपर अवतार ले महीका उद्धार किया था। हरिवंशमें लिखा है–

पुरा एकार्णवे घोरे श्रूयते मेदिनी त्वियम्। पातालस्य तले मग्ना विष्णुना प्रभविष्णुना ॥
वराहं रूपमास्थाय उद्धृता जगदादिना। हिरण्याक्षस्तु दैत्येन्द्रो वराहेण निपातितः ॥
(महाभारत हरिवंशपर्व १०६ अध्याय)

अर्थात्–ऐसा सुनाजाता है कि, पूर्वकालमें घोर एकार्णवेंम (प्रलयके समय सब जगत् जलमय हो जाता है, उस समय प्रत्येक जलमय विभागकी दधि, क्षीरादि समुद्रसंज्ञा नहीं रहती समस्तही जलमय होकर एकसा जान पडता है, इसीसे एकार्णव कहते हैं) पातालके तले पृथ्वी डूब गई थी, जगत्‌के आदि कारणं भगवान् विष्णुजीने वराहमूर्ति धारणकर पृथ्वीका उद्धार किया था। वराहमूर्तिधारी भगवान्‌ने दैत्यराज हिरण्याक्षका प्राणसंहार किया ॥

श्रीमद्भागवतमें भी कहा है कि, भगवान् वराहमूर्ति धारण कर पृथ्वीपर अवतरे थे; परन्तु इस संक्षिप्त विवरणमें हिरण्याक्षके वधका प्रसंग नहीं दीखता। यथा–

द्वितीये तु भवायास्य रसातलगतां महीम्। उद्धरिष्यन्नुपाधत्त यज्ञेशः शौकरं वपुः ॥
(श्रीमद्भागवत १ स्कन्ध ३ अध्याय)

अर्थात्–इस विश्व (संसार) की उत्पत्तिके लिये यज्ञेश्वर हरिने रसातल गई हुई पृथ्वीके उद्धार करनेकी कामनासे शूकरदेह धारण किया था ॥

जिस स्थानमें भगवान्‌ने वराहमूर्त्ति धारण करके हिरण्याक्ष दैत्यका संहार किया, उस स्थानका नाम वराहतीर्थ वा शूकरतीर्थ है। बरेलीके ४७ मील दक्षिणमें गंगाजीके प्राचीन प्रवाहके किनारे यह तीर्थ है। इसका दूसरा नाम शूरण वा शूकर खेत है। गोसांई तुलसीदासजीने भी रामायणमें उसका नाम लिखा है कि–" पुनि मैं निज गुरुसन सुनी कथा सुशूकरखेत " ॥

कूर्मावतार हुआ था (१) हे परमेश्वर ! अब आप इन दीन हीन राजाओंके प्रति प्रसन्न होवें ॥ २३ ॥

पुनरिह त्रिभुवनजयिनो महाबलपराक्रमस्य हिरण्यकशिपोरर्दितानां देववराणां भयभीतानां कल्याणाय दितिसुतवधप्रेप्सुर्ब्रह्मणो वरदानादवध्यस्य न शस्त्रास्त्ररात्रिदिवास्वर्गमर्त्यपातालतले देवगन्धर्वकिन्नरनरनागैरिति विचिन्त्य नरहरिरूपेण नखाग्रभिन्नोरुदंष्ट्रदन्तच्छदं त्यक्तासुं कृतवानसि ॥ २४ ॥

जब महाबली पराक्रमी त्रिभुवनविजयी हिरण्यकशिपु, प्रधान२ देवताओंको पीडित करने लगा देवतालोगभी जब इस दैत्यके भयसे अत्यन्त भीत हुए तब आप तिन देवताओंके मंगलार्थ इस दैत्यराजके वधका संकल्प करते हुए; परन्तु उक्त दैत्यराज ब्रह्माके वरसे अवध्य अर्थात् ब्रह्माजीने उसको ऐसा वर दियाथा कि देवता, गन्धर्व, किन्नर, नर वा नाग, शस्त्रसे,

---

(१) देवताओंने अमृतकी प्राप्तिके लिये समुद्रको मन्थन किया था । उन्होंने मन्दरपर्वत (भागलपुर जिलेमें कहलगांव–" कहोल–वा कहोड मुनिका प्राचीन आश्रम है " नामक स्थानसे दूर मन्दर नामका पवर्त है) को मथानी बनानेकी इच्छा की । परन्तु कोई इस महापर्वतको इसके स्थानसे नहीं उठासका फिर सबने निरुपाय होकर नारायणजीकी शरण ग्रहण की, तहांपर ब्रह्माजीभी थे । तिनके कहनेसे महाबलवान् शेषजीने मन्दर पर्वतको उठाया; परन्तु क्षीरसागरके जलमें मन्दरके स्थापन करनेका आधार नहीं था । नारायणजीने उस शक्तिशाली आधारका प्रभाव देखकर आपही महाकूर्ममूर्त्ति धारण करके पीठ लगा दी । तब उन कूर्मरूपी भगवान्की पीठपर मन्दररूप मंथन दण्ड स्थापन करके समुद्र मंथन होनेलगा । यथा—

कूर्मेण तु तथेत्युक्त्वा पृष्ठमस्य समर्पितम् । तं शैलं तस्य पृष्ठस्थं यंत्रेणेन्द्रोऽभ्यपातयत् ॥

(महाभारत आदिपर्व १५ अ० १२ श्लो०)

इस प्रकारसे समुद्रमंथन हुआ । श्रीमद्भागवतमेंभी कूर्मावतारका वर्णन है, विस्तारित वृत्तान्त नहीं है; संक्षेपसे भगवान्के कूर्मावतार धारण करनेका कारण और वृत्तान्त लिखा है यथा:—

सुरासुराणामुदधिं मथ्नतां मन्दराचलम् । दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः ।

(श्रीमद्भागवत १ स्कन्ध ३ अध्याय १६ श्लो०)

एकादश वारमें जब देवता और दानवगण (मंदरपर्वतसे) समुद्रमंथन करते थे, तब भगवान्ने कच्छपमूर्ति धारण करके पीठपर मन्दर पर्वतको धारण किया था । श्रीमद्भागवतके मतानुसार कच्छपमूर्ति भगवान्का ११ वां अवतार है ।

वा अस्त्रसे रात्रिमें वा दिनमें वा मर्त्यलोक वा पातालमें (तिसका नाश करनेको समर्थ नहीं होंगे) आपने इन समस्त बातोंका विचार करके नृसिंहमूर्ति धारण की । (दैत्यराज आपको देखतेही क्रोधसे) दांतसे ओठोंको काटता हुआ कमर बांधता हुआ अर्थात् युद्ध करनेको तैयार हुआ (१) आपने अपने नखोंसे तिसके मर्मको फाडकर उसको यमराजके यहांका पाहुना किया ॥ २४ ॥

---

(१) पूर्वकालमें हिरण्यकशिपुनामक एक दैत्य था, वह भगवान् विष्णुजीसे अति डाह करता था । तिसका प्रह्लादनामक पुत्र अत्यन्त हरिभक्त और साधुचरित था । प्रह्लादकी समान स्थिर विश्वासी भक्तका वृत्तान्त पढनेसे ज्ञात होता है कि, वह अत्यन्त धार्मिक और प्रेमिक था । हिरण्यकशिपु पुत्रमें इस प्रकारकी हरिभक्तिका होना सुनकर अप्रसन्न हुआ और नारायणनाम छोडनेको पुत्रको बहुत समझाया बुझाया; किन्तु बालक प्रह्लादकी हरिभक्ति किसी प्रकारसे चलायमान न हुई । तब हिरण्यकशिपुने प्रह्लादके संहार करनेकी आज्ञा दी; परन्तु विष देने, अस्त्र मारने, हाथीके पांवसे दबानेपर भी प्रह्लादजीका प्राण न गया फिर राजसभामें बुलाकर हिरण्यकशिपु प्रह्लादसे कहने लगा-'तेरा नारायण कहाँ है ? मैं तेरे प्राणोंका नाश करताहूँ, सामर्थ्य हो तो नारायण तेरी रक्षा करे ।' नेत्रोंमें नीर भरकर गद्गद वाणीसे प्रह्लाद नारायणजीको पुकारने लगे । ब्रह्माजी करके वर पानेसे हिरण्यकशिपु सुरासुर, नर व गन्धर्वोंसे अजीत था । पृथ्वी, आकाश, पातालमें शस्त्र या अस्त्रके आघातसे तिसके प्राणनाशकी संभावना नहीं थी । इसी कारण राजसभामें खम्भको फाडकर नृसिंहरूप नारायणजी प्रगट हुए । तिनकी मूर्तिका आधा भाग नर और आधा भाग सिंहकी समान हुआथा, बस एक नये जीवकी सृष्टि हुई, ब्रह्माका वचनभी व्यर्थ न हुआ । नृसिंहमूर्ति नारायणजीने तीक्ष्ण नखोंसे हिरण्यकशिपुका पेट फाड डाला और प्राणनाश किया । महाभारतके हरिवंशपर्वमें लिखा है । यथाः-

हिरण्यकशिपुश्चैव महाबलपराक्रमः । अवध्योऽमरदैत्यानामृषिगन्धर्वकिन्नरैः ॥
यक्षराक्षसनागानां नाकाशे नावनीस्थले । न चाभ्यन्तररात्र्यह्नोर्न शुष्केणार्द्रकेण च ॥
अवध्यस्त्रिषु लोकेषु दैत्येन्द्रो ह्यपराजितः । नारसिंहेन रूपेण निहतो विष्णुना पुरा ॥
(महाभा० हरि० १०६ अध्याय)

श्रीमद्भागवतमें कहाहैः-

चतुर्दशं नारसिंहं बिभ्रद्दैत्येन्द्रमूर्जितम् । ददार करजैर्वक्षस्येरकां कटकृद्यथा ॥
(१ स्कन्ध ३ अ० १८ श्लो०)

इस कारणसे नारायणजीका नृसिंह अवतार हुआथा विष्णुपुराणमें भी इस अवतारका वृत्तान्त है अग्निपुराणमें कहाहैः-

सिंहस्य कृत्वा वदनं मुरारिः सदा करालं च सुरक्तनेत्रम् ।
अर्द्धं वपुर्वै मनुजस्य कृत्वा ययौ सभां दैत्यपतेः पुरस्तात् ॥ (अग्निपुराण)

पुनरिह त्रिजगज्जयिनो बलेः सत्रे शक्रानुजो बटुवामनो दैत्य-सम्मोहनाय त्रिपदभूमियाच्ञाच्छलेन विश्वकायस्तदुत्सृष्ट-जल-संस्पर्श-विवृद्धमनोभिलाषस्त्वं भूतले बलेर्दौवारिकत्व-मङ्गीकृतमुचितं दानफलम् ॥ २५ ॥

फिर आपने त्रिभुवनविजयी बलिराजाके यज्ञमें जाय देवराज इन्द्रके छोटे भ्राता हो वामनमूर्ति धारण कर उक्त दैत्यराजको मोहित करनेके लिये तीन पग भूमि मांगीथी। फिर उत्सर्गके अर्थ जल छोडतेही जब आपके मनकी अभिलाषा पूर्ण होगई तब आपने विराट्मूर्ति धारण करके (एक एक पाँवके परिमाणसे भूलोक और स्वर्लोक ग्रहण करके इन्द्रको देदिया। तदुपरान्त आपने राजा बलीको पातालमें पठाया और त्रिलोकदानके फलरूप आप तिसके द्वारवान होकर रहे (१) ॥ २५ ॥

---

(१) नारायणजीने देवताओंके मंगलार्थ वामनावतार लियाथा, पद्मपुराणके पाताल-खण्डमें वामनावतारका उपाख्यान लिखा है कि—प्रह्लादनामक असुरका विरोचननामक एक पुत्र था, विरोचनका पुत्र बलि हुआ, जो कि अत्यन्त धार्मिक, विशुद्धचरित्र, जितेन्द्रिय और हरिभक्त था, वह देवताओंको पराजित कर त्रिलोकीका राज्य करने लगा। इन्द्र और देवता-लोग राजा बलिके दास होगये।

कश्यप और अदितिसे देवताओंका जन्म हुआ था। उपरोक्त दोनों जनोंने अपनी सन्तानकी यह दशा निहार, तिसका दुःख छुटानेको तप करना आरम्भ किया। इस प्रकार दोनोंको तप करते २ सहस्र वर्ष बीतगये। तपसे प्रसन्न हो नारायण इनके सौंहीं प्रगट होकर बोले—हे कश्यप! मैं तुम्हारे तपसे प्रसन्न हुआ हूं जो इच्छा हो सो वर मांगो। कश्यप व अदितिने निवेदन किया कि, यदि आप प्रसन्न हैं, तो हमारे औरससे जन्म लेकर इन्द्रके कनिष्ठरूपसे उपेन्द्रनाम धारण कर पृथ्वीमें अवतार लो और मायाके बलसे बलिको जीत इन्द्रको त्रिलोकीका राज्य देदो। भगवान् 'तथास्तु' कहकर अन्तर्हित हुए। फिर कालक्रमसे अदिति गर्भवती हुई। सहस्रवर्षमें गर्भ पूर्ण हुआ। एक सहस्र वर्ष गर्भवास करनेके पीछे भगवान् सनातन वामनावतार धारण करते हुए। यहांपर पद्मपुराणमें वामनरूपका वर्णन है—

... ... सर्वलोकमहेश्वरम्। अदितिर्जनयामास वामनं विष्णुमच्युतम् ॥
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं पूर्णेन्दुसदृशद्युतिम्। सुन्दरं पुण्डरीकाक्षमतिखर्वतरं हरिम् ॥
बटुवेषधरं देवं सर्ववेदान्तगोचरम्। मेखलाजिनदण्डादिचिह्नांकितमीश्वरम् ॥

इस समयमें देवताओंने वामनजीके समीप जायकर सूचित किया कि, राजा बलि यज्ञ करताहै, यह अवसर उचित है। इस समय आप भिक्षाके छलसे त्रिलोकीको ग्रहण करके हमारी रक्षा करें। वामनजी 'तथास्तु' कहकर राजा बलिके यज्ञगृहमें गये। दैत्यराज बलिने आगमनका कारण पूछा, तब वामनजीने कहा:—

पुनरिह हैहयादिनृपाणाममितबलपराक्रमाणां नानामदोल्लङ्घित-मर्य्यादावर्त्मनां निधनाय भृगुवंशजो जामदग्न्यः पितृहोमधेनु-हरणप्रवृद्धमन्युवशात्त्रिस्सप्तकृत्वो निःक्षत्रियां पृथिवीं कृत-वानसि परशुरामावतारः ॥ २६ ॥

अनन्तर जब अतुलबल पराक्रमी हैहयराजाओंने अहंकारसे मत्त होकर धर्मको दबाय, मर्यादाका लंघन किया; तब तिनका वध करनेके लिये

—मम त्रिविक्रमं पादं महीं संदातुमर्हसि । एतदल्पमहीं दातुं मा विशङ्क महीपते ॥
जगत्त्रयप्रदानं तु मम भूप भविष्यति ॥ (पद्मपुराण)

अर्थात्—हे राजन् ! हमको ३ पग भूमि दान दो इस थोडीसी भूमिके दानमें शंका न कीजो । हमारे लिये यही त्रिजगत्के दानकी समान होगी ।

बलि भूमिदान करनेको तैयार हुआ । दैत्यगुरु शुक्राचार्यने बहुत रोका कहा कि, सब कुछ जाता रहैगा, ऐसा काम न करो; परन्तु बलिने एक न सुनी । वामनरूपी नारायण-जीको ३ पग भूमिका दान दिया तब;—

पादेनैकेन पुरुषो विक्रम्य मधुसूदनः । उवाच तं दैत्यराजं किं करोमीति शावतम् ॥
अथ सर्वेश्वरो विष्णुर्द्वितीयं पदमव्ययम् । ऊर्ध्वं प्रसारयामास ब्रह्मलोकान्तमच्युतः ॥
(पद्मपुराण)

इस प्रकारसे वामनावतार हुआ । वामनपुराणके उपाख्यानके सहितं इस वृत्तान्तका साधा-रणं भेद दिखाई देता है । श्रीमद्भागवतमें कहा है;—

क्रमतो गां पदैकेन द्वितीयेन दिवं विभोः । खं च कायेन महता तार्त्तीयस्य कुतो गतिः ॥३४॥
(८ स्कन्ध, २० अध्याय)

यजमानः स्वयं तस्य श्रीमत्पादयुगं मुदा । अवनिज्यावहन्मूर्ध्नि तदपो विश्वपावनीः ॥२०॥
(श्रीमद्भागवत ८ स्कन्ध, २० अध्याय)

पञ्चदशं वामनकं कृत्वाऽगादध्वरं बलेः । पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टपम् ॥११॥
(श्रीमद्भागवत १ स्कन्ध, ३ अध्याय)

पंचदश वामनमूर्ति धारण कर त्रिविष्टप ग्रहण करनेकी अभिलाषासे तीन पग भूमि मांगनेको राजा बलिके यज्ञमें गये थे । हरिवंशमें लिखा है;—

वामनेन तु रूपेण कश्यपस्यात्मजो बली । अदित्या गर्भसम्भूतो बलिर्बद्धोऽसुरोत्तमः ॥
सत्यरज्जुमयैः पाशैः कृतः पातालसंश्रयः ॥ (१०६ अध्याय)

अर्थात्—भगवान्ने अदितिके गर्भसे और कश्यपजीक औरससे वामनावतार धारण कर-प्रतिज्ञारूप रज्जुमय पाश (फंदा) से असुरोंमें श्रेष्ठ बली राजा बलिको बाँध पाताल वासी किया था ॥

फिर आप भृगुवंशावतंस परशुरामरूपसे अवतरेथे । फिर आपने इस परशु-राम अवतारसे पिताकी होम धेनु हरण हो जानेसे अत्यन्त क्रोधित हो पृथ्वीको इक्कीस वार क्षत्रियहीन करदिया (१) ॥ २६ ॥

पुनरिह पुलस्त्यवंशावतंसस्य विश्रवसः पुत्रस्य निशाचरस्य रावणस्य लोकत्रयतापनस्य निधनमुररीकृत्य रविकुलजात-दशरथात्मजो विश्वामित्रादस्त्राण्युपलभ्य वने सीताहरणवशा-त्प्रवृद्धमन्युना अम्बुधिं वानरैर्निबध्य सगणं दशकन्धरं हतवा-नासि रामावतारः ॥ २७ ॥

जब पुलस्त्यवंशके आभूषणरूप विश्रवा मुनिके पुत्र निशाचर रावणके प्रतापसे त्रिलोकी तापित हुई तब उसका वध करनेके लिये आपने सूर्य-कुलमें उत्पन्न राजा दशरथजीके यहां जन्म लिया था । फिर विश्वामित्र-जीके निकट अस्त्र सीखकर जब (पिताजीकी आज्ञासे) वनको गये उक्त रावणने सीताजीको हरण किया था । इससे आपने क्रोधित हो वानरोंकी

---

(१) भगवान्‌ने पापी राजाओंका लोप करनेके लिये जमदग्निके औरससे और रेणुकाके गर्भसे जन्म लेकर परशुराम नामसे संसारमें प्रतिष्ठा पाई थी । प्रथम अंशके दूसरे अध्यायक (२५ वां श्लो०) नोट देखो । हरिवंशमें कहा है-

कार्त्तवीर्यो महावीर्यः सहस्रभुजविग्रहः । दत्तात्रेयप्रसादेन मत्तो वरमदेन च ॥
जामदग्न्यो महातेजा रेणुकागर्भसम्भवः । त्रेताद्वापरयोः सन्धौ रामः शस्त्रभृतांवरः ॥
पर्शुना वज्रकल्पेन सप्तद्वीपेश्वरो नृपः । निहतो विष्णुना भूयश्छद्मरूपेण हैहयः ॥
(महाभारत हरिवंशपर्व, १०६ अध्याय)

महावीर्यवान् कार्त्तवीर्यके सहस्र हाथ थे । वह दत्तात्रेयके प्रसाद करके और वरके मदसे मत्त हुआ था । भगवान् परशुराम रेणुकाके गर्भ और जमदग्निके औरससे जन्म ग्रहण करके महातेजस्वी हो त्रेता और द्वापर युगकी सन्धिके समयमें अवतरे थे । उस काल तिनकी समान कोईभी शस्त्रधारियोंमें नहीं था । उन्होंने गुप्त वेषसे वज्रकी समान अपने परशुकरके सात-द्वीपके स्वामी हैहय राजाका प्राणसंहार किया था ॥ श्रीमद्भागवतमें कहा है:-

अवतारे षोडशमे पश्यन् ब्रह्मद्रुहो नृपान् । त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ॥
(श्रीमद्भागवत १ स्कन्ध, ३ अध्याय)

सोलहवें अवतारमें राजाओंको ब्रह्मद्रोही देख क्रोधित हो इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रिय-हीन किया था ॥

सेनाको बटोर वंशसहित रावणका ध्वंस कियाथा (१) ॥ २७ ॥

पुनरिह यदुकुल-जलधिकलानिधिः सकलसुरगणसेवितपदारविन्दद्वन्द्वो विविधदानवदैत्यदलनलोकत्रयदुरिततापनो वसुदेवात्मजो रामावतारो बलभद्रस्त्वमसि ॥ २८ ॥

तदनन्तर फिर आपने यदुकुलरूप समुद्रके चन्द्रमारूप वसुदेवके पुत्र कृष्णरूपसे अवतार ले विविध दैत्यदानवोंका संहार कर त्रिलोकीसे पापको दूर कियाथा । इससे समस्त देवतालोग उस कृष्णावतारके पदारविन्दकी सेवा

---

(१) दुराचारी रावण त्रिलोकीको पीडित करने लगा, तब देवताओंने ब्रह्माजीको साथ ले नारायणजीके पास जाय रावणके अत्याचारको निवेदन किया । भगवान्ने तिनको समझाय बुझाय सूर्यवंशमें राजा दशरथजीके औरससे कौशल्याके गर्भमें जन्म लिया । युवा अवस्थामें राज्याभिषेकके बदले पिताकी आज्ञासे १४ वर्षतक वनवास कर संसारमें पितृभक्ति और निःस्वार्थताका प्रकाशित उदाहरण प्रगट किया था । दंडकवनमें रावणकी बहिन शूर्पणखाने रामलक्ष्मणके रूपसे मोहित हो तिनसे अपनी कामना कही, श्रेष्ठचरित्रवाले रामचन्द्रजीने उसको निवारण किया, लक्ष्मणजीने उस पापिनी कुलटाके नाक कान काट डाले । शूर्पणखासे यह अपमान और जानकीजीकी सुन्दरताईका वृत्तान्त सुनकर रावण कामक्रोधके मारे अंधा होगया । उसने मारीचसे कहा कि, मायाका मृग होकर जानकीजीको छल । मारीच मायाका मृग होकर सीताजीके सन्मुख घूमने लगा । सीताजीने रामचन्द्रजीसे उस मृगके पकडनेको कहा । लक्ष्मणजीको आश्रमकी चौकसीपर छोड रामचन्द्रजी स्वयं उस मृगके पीछे पीछे चले । रामचन्द्रजीके बाणसे प्राणत्याग करनेके समय मायामृग रामजीकेसा कंठस्वर बनाय कातरध्वनि करने लगा । सीताजीने उस स्वरको सुनकर लक्ष्मणजीसे कहा कि, रामको देखो । लक्ष्मणजीके चले जानेपर रावण संन्यासीका वेष बनाय रामजीके आश्रममें आया और सीताजीको हरण करके लेगया ।

इस कारण रामचन्द्रजीका रावणसे घोर संग्राम हुआ । युद्धमें रावण मारागया । त्रिलोकीका कंटक दूर हुआ । यही रामावतारका प्रयोजन है । हरिवंशमें कहा है-

इक्ष्वाकुकुलसम्भूतो रामो दाशरथिः पुरा । त्रिलोकजयिनं वीरं रावणं वै न्यपातयत् ॥
(महाभारत, हरिवंश १०६ अ०)

पूर्वकालके समय इक्ष्वाकु वंशमें जन्म लेकर दशरथकुमारने रामरूपसे त्रिलोकविजयी वीर रावणको मारडाला था । वाल्मीकि रामायण और तुलसीकृत रामायणमें इस अवतारका विस्तारित विवरण है. पं. ज्वालाप्रसादजी मिश्रने इन दोनों ग्रंथोंपर भाषाटीका किया है । जो इसी यंत्रालयमें छपा है ।

करने लगे, उसी समय आपने बलदेवरूपसेभी अवतार लिया (१)॥२८॥

पुनरिह विधिकृत-वेदधर्म्मानुष्ठान-विहित-नानादर्शनसंघृणः संसारकर्म्मत्यागविधिना ब्रह्माभासविलासचातुरीप्रकृति-विमाननामसम्पादयन् बुद्धावतारस्त्वमसि ॥ २९ ॥

फिर आपनेही विधाताके कहे हुए वैदिक धर्मानुष्ठानमें अर्थात् यागादि-करणमें अनेक प्रकारकी घृणा देख संसारके त्यागनेसे मिथ्या माया प्रपंचको दूर करनेका उपदेश देनेको बुद्ध अवतार हुए और प्राकृतिक विषयकी अव-मानना नहीं की (२) ॥ २९ ॥

---

(१) युधिष्ठिरादिके समयमें भगवान्ने कृष्ण और बलरामरूपसे अवतार लिया था । महाभारत, विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत और दूसरे पुराणोंमेंभी श्रीकृष्णजीका वृत्तान्त लिखा है। श्रीमद्भागवतमें कहा है:–

एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी । रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम् ॥
(श्रीमद्भागवत १ स्कन्ध ३ अध्याय)

उन्नीसवीं और बीसवीं वार वृष्णिवंशमें राम (बलराम) और कृष्ण इन दो रूपसे जन्म लेकर पृथ्वीके भारको हरण किया था ॥ भाषारसरसिक पाठकगण ! कृष्णावतारका विवरण शालिग्राम वैश्यद्वारा अनुवादित ' शुकसागर ' में देखें, जो इसी यंत्रालयमें छपा है ।

(२) वैदिक धर्मकी उदीयमान दशामें यज्ञादिकी अत्यन्त श्रीवृद्धि हुई थी । नरमेध, गोमेध, अश्वमेधादि वैदिक यज्ञोंमें हजारों प्राणियोंके गरम रुधिरसे पृथ्वी कलंकित होने लगी। क्रम क्रमसे वैदिक धर्ममें घोर विप्लव उपस्थित हुआ । धर्मकी ओटमें सैकडों अत्याचार होकर जातियां ध्वंस होने लगीं । उस काल यज्ञीयपशु और मनुष्योंके करुणारोदनसे व्यथित हो भगवान् बुद्ध मूर्ति धारण कर पृथ्वीमें अवतरे थे । उन्होंने " मा हिंस्यात् सर्वभूतानि " इस वैदिक धर्मको जीवित किया था । " अहिंसा परमो धर्मः " यह महामंत्र बुद्धजीके चलाये बौद्ध धर्मका मूल है । श्रीमद्भागवत–

ततः कलौ संप्रवृत्ते संमोहाय सुरद्विषाम् । बुद्धो नाम्ना जिनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥
(भागवत १ स्कन्ध, ३ अध्याय)

श्रीधरस्वामी कहते हैं कि, कीकट (प्राचीन मगधराज्य, वर्त्तमान विहारका दाक्षिणांश) गयादेशमें स्थित था । यहां बुद्धजीका जन्म हुआ । भारतवर्षमें बौद्धधर्मका ऐसा प्रभाव जम गयाथा कि, अबतक यहां बौद्धोंकी संख्या बहुत है । पालि और संस्कृतभाषामें बौद्ध धर्मके और बुद्धजीके सम्बन्धके अगणित श्रेष्ठ ग्रंथ हैं । कोई कहते हैं कि, बुद्ध अजनके पुत्र हैं, कोई जिनका पुत्र बतलाते हैं । इस बातमें मतभेद है । अब कालके बदलनेसे बौद्धोंका धर्म बहुत बदलगया । बौद्धधर्ममें वेदका प्रमाण नहीं, सन्मान नहीं । प्राचीन दर्शन पुस्तकोंमें पग पगपर बौद्धधर्मका भ्रम दिखाया है और नास्तिक बतलाया है । कल्किपुराणमेंही कहा है कि, म्लेच्छादि पाखण्डियोंकी नांई बौद्धोंका संहार करनेके लिये भी कल्कि अवतारका प्रयो-जन है, फिर किस प्रकारसे बुद्धजी नारायणजीका अवतार हुए इस विषयका निर्णय करना अत्यन्त कठिन बात है ।

अधुना कलिकुलनाशावतारो बौद्धपाखण्डम्लेच्छादीनां च वेदधर्म्मसेतुपरिपालनाय कृतावतारः कल्किरूपेणास्मान् स्त्रीत्वनिरयादुद्धृतवानासि तवानुकम्पां किमिह कथयामः ॥३०॥

इस समय आप कलिकुलके ध्वंस करनेके लिये और बौद्ध, पाखण्डी वा म्लेच्छादिके शासनके लिये कल्किरूपसे अवतार ले वैदिकधर्मरूप सेतुकी रक्षा करते हैं । अब आपने हमको स्त्रीपन रूप नरकसे उद्धार किया । अत एव हमलोग आपके अनुग्रहका वर्णन कहांतक करैं (१) ॥ ३० ॥

क्व ते ब्रह्मादीनामविदितविलासावतरणं
क्व नः कामा वामाकुलितमृगतृष्णार्त्तमनसाम् ।
सुदुष्प्राप्यं युष्मच्चरण-जलजालोकनमिदं
कृपापारावारः प्रमुदितदृशाऽऽश्वासय निजान् ॥ ३१ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे नृपाणां स्तवो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ब्रह्मादि देवता लोगभी जिसकी लीलाके जाननेको समर्थ नहीं हैं, इस प्रकारके जो आप हैं तिनको अवतारका विषय कहां ? और जो लोग स्त्रीके देखनेपर मदनबाणसे जर्जर होते हैं और जिनका मन मृगतृष्णासे पीडित है, ऐसे (नराधम) हम हैं ही क्या ? हमारे लिये आपके चरणकमलका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है । आप कृपासिन्धु हैं, हम आपके अनुगामी हैं । आप एकवार स्निग्ध नेत्रोंसे देखकर हमें ढाढस बंधावें ॥ ३१ ॥

इति श्री कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे बलदेव० कृतभाषाटीकायां नृपाणां स्तवो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

(१) कल्कि अवतार अबतक नहीं हुआ । आगेको जो होगा, इस पुस्तकमें वर्त्तमानकी रीतिसे तिसकाही वर्णन है । कल्किजीका विशेष वृत्तान्त इस अनुवादमेंही लिखाजाता है । तथापि श्रीमद्भागवतसे इसका प्रमाण दिया जाता है-

अथासौ युगसन्ध्यायां दस्युप्रायेषु राजसु । जनिता विष्णुयशसो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः ॥
(प्रथमस्कन्ध ३ अध्याय)

इसके उपरान्त कलियुगकी सन्ध्याके समय जब राजालोग दस्यु (चोर) के समान होंगे, तब वही भगवान् विष्णुयशाके गृहमें कल्किनामसे अवतार लेंगे । इससे कल्कि अवतारकी सूचना हुई ।

द्वितीयांशः ।

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सूत उवाच-श्रुत्वा नृपाणां भक्तानां वचनं पुरुषोत्तमः ।
ब्राह्मणक्षत्रविट्-शूद्रवर्णानां धर्म्ममाह यत् ॥ १ ॥

सूतजी बोले-भक्त राजाओंके वचन सुनकर पुरुषोत्तम कल्किजी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों वर्णोंका धर्म कहते हुए ॥ १ ॥

प्रवृत्तानां निवृत्तानां कर्म्म यत्परिकीर्तितम् ।
सर्वं संश्रावयामास वेदानामनुशासनम् ॥ २ ॥

संसारमें आसक्त और रागरहित मनुष्योंके लिये वेदोक्त जो जो कर्म कहे हैं, वह सब उनको सुनाये ॥ २ ॥

इति कल्केर्वचः श्रुत्वा राजानो विशदाशयाः ।
प्रणिपत्य पुनः प्राहुः पूर्व्वां तु गतिमात्मनः ॥ ३ ॥

कल्किजीके यह वचन सुनकर राजाओंके हृदय पवित्र हुए । उन्होंने कल्किजीको फिर नमस्कार करके अपने अतीत अवस्थाके विषयमें प्रश्न किया (और कहा) ॥ ३ ॥

स्त्रीत्वं वाप्यथवा पुंस्त्वं कस्य वा केन वा कृतम् ।
जरा-यौवन-बाल्यादि सुखदुःखादिकं च यत् ॥ ४ ॥

किससे और किस कारणसे मनुष्यगणस्त्रीपुरुषके भेदसे अलग होते हैं ? बाल्यावस्था, युवावस्था, बुढापा और सुख दुःखादि ॥ ४ ॥

कस्मात्कुतो वा कस्मिन् वा किमेतदिति वा विभो ।
अनिर्णीतान्यविदितान्यपि कर्म्माणि वर्णय ॥ ५ ॥

किस कारणसे कहांसे होते हैं ? इसका क्या कारण है ? आप कहैं व और विषय जिनको हम नहीं जानते हैं सोभी आप वर्णन करें ॥ ५ ॥

(तदा तदाकर्ण्य कल्किरनन्तं मुनिमस्मरत्) ।
सोऽप्यनन्तो मुनिवरस्तीर्थपादो बृहद्व्रतः ॥ ६ ॥

(कल्किजीने यह सुनकर अनन्त नामक मुनिका स्मरण किया) । बहुतकालसे तीर्थमें वास करनेवाले व्रतधारी मुनिश्रेष्ठ अनन्तभी याद किये जातेही ॥ ६ ॥

कल्केर्दर्शनतो मुक्तिमाकलय्यागतस्त्वरन् ।
समागत्य पुनः प्राह किं करिष्यामि कुत्र वा ॥
यास्यामीति वचः श्रुत्वा कल्किः प्राह हसन्मुनिम् ॥ ७ ॥

कल्किजीके दर्शनसे मुक्ति होना विचार शीघ्रतासे तहां आये, क्योंकि उनको मुक्ति प्राप्त करनेका दूसरा उपाय नहीं था। उन्होंने कल्किजीके निकट आयकर कहा कि, हमको क्या करना होगा? कहांपर जाना होगा? आज्ञा कीजिये। कल्किजीने यह सुन हँसकर मुनिसे कहा ॥ ७ ॥

कृतं दृष्टं त्वया सर्व्वं ज्ञातं याह्यनिवर्त्तकम् ।
अदृष्टमकृतं चेति श्रुत्वा हृष्टमना मुनिः ॥ ८ ॥

मैंने जो किया है, सो सब तुमने देखा है और सब जानते हो। भाग्यको कोई खण्डन नहीं करसकता, विना कर्म कियेभी कोई तिसके फलको प्राप्त नहीं होता। यह वचन सुनकर महर्षिजी आनन्दित हुए ॥ ८ ॥

गमनायोद्यतं तं तु दृष्ट्वा नृपगणास्ततः ।
कल्किं कमलपत्राक्षं प्रोचुर्विस्मितचेतसः ॥ ९ ॥

फिर वह जानेको तैयार हुए। तब राजाओंने तिनको देख विस्मित चित्तसे कमलदललोचन कल्किजीसे कहा ॥ ९ ॥

राजान ऊचुः—किमनेनापि कथितं त्वया वा किमु तान् प्रति ।
सर्व्वं तच्छ्रोतुमिच्छामः कथोपकथनं द्वयोः ॥ १० ॥

राजा बोले--इन महर्षिजीने क्या कहा? और आपने तिसका क्या उत्तर दिया? आपका परस्पर किस विषयमें कथोपकथन हुआ? सो हम श्रवण करनेकी इच्छा करते हैं ॥ १० ॥

नृपाणां तद्वचः श्रुत्वा तानाह मधुसूदनः ।
पृच्छतामुं मुनिं शान्तं कथोपकथनादृताः ॥ ११ ॥

राजाओंके यह वचन सुनकर मधुसूदन कल्किजीने कहा, जिस विषयमें हमारा कथोपकथन हुआ उसको यदि जाननेकी इच्छा हो तो इन शान्त हृदयवाले मुनिसे पूछो ॥ ११ ॥

इति कल्केर्वचो भूयः श्रुत्वा ते नृपसत्तमाः ।
अनन्तमाहुः प्रणताः प्रश्नपारतितीर्षवः ॥ १२ ॥

कल्किजीके यह वचन सुनकर, प्रश्नका मर्म जाननेके अभिप्रायसे अनन्तको प्रणाम करके पूछा ॥ १२ ॥

राजान ऊचुः–मुने किमत्र कथनं कल्किना धर्मवर्मणा ।
दुर्बोधं केन वा जातं तत्त्वं वर्णय नः प्रभो ॥ १३ ॥

राजा बोले--हे महर्षे ! धर्मके वर्मरूप, कल्किजीके साथ आपका जो कथोपकथन हुआ, सो अत्यन्त दुर्बोध है, इसका क्या कारण ? आप हम लोगोंसे तिसका गूढ वृत्तान्त वर्णन कीजिये ॥ १३ ॥

मुनिरुवाच–पुरिकायां पुरि पुरा पिता मे वेदपारगः ।
विद्रुमो नाम धर्म्मज्ञः ख्यातः परहिते रतः ॥ १४ ॥

मुनिजी बोले–पूर्वकालमें पुरिका(१) नामक पुरीमें वेदवेदाङ्गके जाननेवाले परम धर्मके जाननेवाले कोई महर्षिजी वास करते थे । विद्रुमनामवाले वही हमारे पिता थे ॥ १४ ॥

सोमा मम विभो माता पतिधर्म्मपरायणा ।
तयोर्वयःपरिणतौ काले षण्ढाकृतिस्त्वहम् ॥ १५ ॥

हमारी सोमा नामक माता पतिधर्मपरायणा थी । हमारे पिता माता जब वृद्ध हुए तब हमारा जन्म हुआ । परन्तु मैं क्लीब हुआ ॥ १५ ॥

सञ्जातः शोकदः पित्रोर्लोकानां निन्दिताकृतिः ।
मामालोक्य पिता क्लीबं दुःखशोकभयाकुलः ॥ १६ ॥

---

(१) पुरिका–पुरी, उडीसाका एक नगर । इसका प्रधान नगर पुरी या पुरुषोत्तम वा जगन्नाथ क्षेत्र है । (Smith's Geography of India)

इससे पिता माताके शोक व दुःखकी सीमा न रही । मेरा आकार देख-कर सबही निन्दा करनेलगे । हमारे पिता हमको षण्ढाकार और क्लीव देख-कर शोक दुःख और भयसे व्याकुल हो ॥ १६ ॥

त्यक्त्वा गृहं शिववनं गत्वा तुष्टाव शङ्करम् ।
सम्पूज्येशं विधानेन धूपदीपानुलेपनैः ॥ १७ ॥

गृहको छोड शिववन (१) में जाय धूप दीप और चन्दनादिसे विधि-पूर्वक महादेवजीकी पूजा करके स्तुति करनेलगे ॥ १७ ॥

विद्रुम उवाच–शिवं शान्तं सर्व्वलोकैकनाथं भूतावासं वासुकी-कण्ठभूषम् । जटाजूटाबद्धगङ्गातरङ्गं वन्दे सान्द्रानन्द-सन्दोहदक्षम् ॥ १८ ॥

विद्रुमने कहा–जो सर्व लोकके अद्वितीय नाथ हैं, जो मंगलदायक हैं, जो समस्तप्राणियोंके आश्रय हैं, वासुकी जिनका कंठभूषणरूप है, गंगातरंग जिनके जटाजूटमें बँधरही है, आनन्दके सन्दोहका भोग करानेवाले उन महादेवजीको नमस्कार करता हूं ॥ १८ ॥

इत्यादिबहुभिः स्तोत्रैः स्तुतः स शिवदः शिवः ।
वृषारूढः प्रसन्नात्मा पितरं प्राह मे वृणु ॥ १९ ॥

मंगलदायक महादेवजी इस प्रकार बहुविधस्तोत्रसे संतुष्ट हुए, उन्होंने बैलपर सवार हो प्रसन्न मुखसे हमारे पिताको कहा कि, वर मांगो ॥ १९ ॥

विद्रुमो मे पिता प्राह मत्पुंस्त्वं तापतापितः ।
हसञ्छिवो ददौ पुंस्त्वं पार्वत्या प्रतिमोदितः ॥ २० ॥

हमारे पिता विद्रुमजीने कहा, हमारा पुत्र क्लीव है इससे मैं अत्यन्त सन्तापित हूं । महादेवजीने हँसकर हमें पुरुष होनेका वर दिया । तिस काल पार्वतीजीनेभी इस वरदानका अनुमोदन किया ॥ २० ॥

(१) शिववन । हरिद्वार या हरिद्वारतीर्थका कोई वन होगा (?)

मम पुंस्त्वं वरं लब्ध्वा पिताऽऽयातः पुनर्गृहम् ।
पुरुषं मां समालोक्य सहर्षः प्रियया सह ॥ २१ ॥

फिर हमारे पिता हमारे पुरुषत्वरूप वरको पाय फिर गृहमें आये । हमें पुरुषाकार देखकर हमारे पिता माता दोनोंको इतना हर्ष हुआ कि, जिसकी सीमा नहीं ॥ २१ ॥

ततः प्रवयसौ तौ तु पितरौ द्वादशाऽब्दके ।
विवाहं मे कारयित्वा बन्धुभिर्मुदमापतुः ॥ २२ ॥

फिर मेरी उमर १२ वर्षकी हुई तब हमारे वृद्ध पिता माताने मेरा विवाह करदिया और बन्धुबान्धवोंके साथ परम हर्षित हुए ॥ २२ ॥

यज्ञरातसुतां पत्नीं मानिनीं रूपशालिनीम् ।
प्राप्याऽहं परितुष्टात्मा गृहस्थः स्त्रीवशोऽभवम् ॥ २३ ॥

मानिनी रूपयौवनवाली, यज्ञरातकी पुत्रीको मैंने भार्या पाया और परम सन्तुष्ट हृदयसे गृहस्थाश्रममें वास करने लगा । क्रमानुसार मैं स्त्रीके वश हो गया ॥ २३ ॥

ततः कतिपये काले पितरौ मे मृतौ नृपाः ।
पारलौकिककार्य्याणि सुहृद्भिर्ब्राह्मणैर्वृतः ॥ २४ ॥

इसके उपरान्त कुछ काल बीतनेपर हमारे माता पिता परलोकवासी हुए। मैंने सुहृद और ब्राह्मणोंके साथ तिनकी पारलौकिक क्रिया की ॥ २४ ॥

तयोः कृत्वा विधानेन भोजयित्वा द्विजान् बहून् ।
पित्रोर्वियोगतप्तोऽहं विष्णुसेवापरोऽभवम् ॥ २५ ॥

फिर मैंने पितामाताकी और्ध्वदैहिक क्रिया करके बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन कराया । फिर मातापिताके वियोगसे हृदयमें सन्तापित हो मैंने विष्णुजीकी आराधना करनी आरम्भ की ॥ २५ ॥

तुष्टो हरिर्मे भगवाञ्जपपूजादिकर्मभिः ।
स्वप्ने मामाह मायेयं स्नेहमोहविनिर्मिता ॥ २६ ॥

मेरे जप पूजा आदि कर्मसे भगवान् हरि संतुष्ट हुए और तिन्होंने

स्वप्नमें मुझसे कहा कि, इस संसारमें स्नेह ममता आदि समस्त हमारीही माया है ॥ २६ ॥

अयं पितेयं मातेति ममताकुलचेतसाम् ।
शोकदुःखभयोद्वेगजरामृत्युविधायिका ॥ २७ ॥

'यह हमारा पिताहै' 'यह हमारी माता है' ऐसी ममतासे जिनका मन आकुलित होता है, सोई मेरी मायाके द्वारा शोक, दुःख, भय, उद्वेग, जरा, मृत्यु आदिका क्लेश अनुभव करते हैं ॥ २७ ॥

श्रुत्वेति वचनं विष्णोः प्रतिवादार्थमुद्यतम् ।
मामालक्ष्यान्तर्हितः स विनिद्रोऽहं ततोऽभवम् ॥ २८ ॥

मैंने विष्णुजीका यह वाक्य सुना और जैसेही इसका प्रतिवाद करनेको उद्यत हुआ कि, वह अन्तर्हित होगये और मेरी नींदभी टूटगई ॥ २८ ॥

सविस्मयः सभार्य्योऽहं त्यक्त्वा तां पुरिकां पुरीम् ।
पुरुषोत्तमाख्यं श्रीविष्णोरालयं चागमं नृपाः ॥ २९ ॥

हे राजाओ ! फिर मैं विस्मित हो पुरिकापुरी छोड भार्याके साथ (१)पुरुषोत्तम नामक स्थानमें आया, जो कि, नारायणजीका स्थान है२९॥

तत्रैव दक्षिणे पार्श्वे निर्मायाश्रममुत्तमम् ।
सभार्य्यः सानुगामात्यः करोमि हरिसेवनम् ॥ ३० ॥

मैं उस पुरुषोत्तमकी दाहिनी ओर उत्तम आश्रम बनाय भार्याके साथ और अनुचरोंके साथ नारायणजीकी सेवा करने लगा ॥ ३० ॥

मायासंदर्शनाकाङ्क्षी हरिसद्मनि संस्थितः ।
गायन्नृत्यञ्जपन्नाम चिन्तयञ्छमनापहम् ॥ ३१ ॥

मैं उन विष्णुजीके वासस्थानमें स्थित होकर तिनकी मायाको देखनेकी इच्छा करके नृत्य, गान और जप करके यमराजाका भयनाश करनेवाले श्रीहरिजीका ध्यान करने लगा ॥ ३१ ॥

---

१ पुरुषोत्तम–नीलाचलका दूसरा नाम है । दक्षिण समुद्रके तीर औड्र (उडिष्या) देशमें स्थित है । यह ऋषिकुल्या और वैतरणीनामक दो नदियोंके बीचका प्रसिद्ध तीर्थस्थान है । स्वयं पुरुषोत्तम नारायणजीके यहां रहनेसे इस तीर्थका यह नाम हुआ है ।

एवं वृत्ते द्वादशाब्दे द्वादश्यां पारणादिने ।
स्नातुकामः समुद्रेऽहं बन्धुभिः सहितो गतः ॥ ३२ ॥

इस प्रकारसे १२ वर्ष बीत गये। एक समय द्वादशीके पारण दिन मैं बन्धुजनोंके साथ स्नान करनेकी अभिलाषासे समुद्रके किनारेपर गया ॥ ३२ ॥

तत्र मग्नं जलनिधौ लहरीलोलसंकुले ।
समुत्थातुमशक्तं मां प्रतुदन्ति जलेचराः ॥ ३३ ॥

फिर मैंने जैसेंही समुद्रमें गोता मारा है कि, वैसाही भयंकर तरंगमालासे आकुल होनेपर फिर मैं उठनेको समर्थ न हुआ । मत्स्य आदि जलचर जंतुगण मुझको व्यथित करने लगे ॥ ३३ ॥

निमज्जनोन्मज्जनेन व्याकुलीकृतचेतसम् ।
जलहिल्लोलमिलनदलिताङ्गमचेतनम् ॥ ३४ ॥

मैं कभी उछलने लगा, कभी डूबने लगा इस प्रकारसे मेरा अन्तःकरण व्याकुल हुआ। मैं जलकी हिलोरसे अचेतन होगया। मेरे समस्त अंग विवश होगये (मैं मृतकसा होगया) ॥ ३४ ॥

जलधेर्दक्षिणे कूले पतितं पवनेरितम् ।
मां तत्र पतितं दृष्ट्वा वृद्धशर्मा द्विजोत्तमः ॥ ३५ ॥

फिर मैं पवनवेगसे चलायमान होकर समुद्रके दक्षिण किनारेपर आया। मैं उस स्थानमें पडा रहा कि, इतनेमें वृद्धशर्मा नामक एक ब्राह्मण मुझको तिस अवस्थामें देखकर ॥ ३५ ॥

सन्ध्यामुपास्य सघृणः स्वपुरं मां समानयत् ।
स वृद्धशर्मा धर्मात्मा पुत्रदारधनान्वितः ॥
कृत्वाऽरुग्णं तु मां तत्र पुत्रवत्पर्य्यपालयत् ॥ ३६ ॥

सन्ध्योपासना करनेके पछि करुणासहित हृदयसे मुझे अपने घरपर ले गये। धर्मात्मा और स्त्रीपुत्रवाले, धनयुक्त वृद्धशर्मा मुझको रोगरहित करके पुत्रके समान लालन पालन करने लगे ॥ ३६ ॥

अहं तु तत्र दीनात्मा दिग्देशाभिज्ञ एव न।
दम्पती तौ स्वपितरौ मत्वा तत्रावसं नृपाः ॥ ३७ ॥

हे राजाओ ! मैं उस स्थानमें दिग्देश कुछभी न जान सका, इस कारण मनमें अत्यन्त दुःखित हो ब्राह्मण दम्पतिकोही पिता माता समझ वहांपरही रहने लगा ॥ ३७ ॥

स मां विज्ञाय बहुधा वेदधर्म्मेष्वनुष्ठितम् ।
प्रददौ स्वां दुहितरं विवाहे विनयान्वितः ॥ ३८ ॥

उस ब्राह्मणने अनेक प्रकारसे मुझको देखा कि, मैं वेदोक्त धर्मसे दीक्षित हूं तब उसने विनययुक्त हो अपनी कन्याके साथ मेरा विवाह करादिया ॥ ३८॥

लब्ध्वा चामीकराकारां रूपशीलगुणान्विताम् ।
नाम्ना चारुमतीं तत्र मानिनीं विस्मितोऽभवम् ॥ ३९ ॥

इस ब्राह्मणकी कन्याका नाम चारुमती था। इसका रंग तपाये हुए सुवर्णके समान था यह रूप, गुण, शील किसीमें कम नहीं हुई। इस सन्मान करनेके योग्य स्त्रीको पायकर मैं अत्यन्त विस्मित हुआ ॥ ३९ ॥

तयाऽहं परितुष्टात्मा नानाभोगसुखान्वितः ।
जनयित्वा पञ्च पुत्रान्सम्मदेनावृतोऽभवम् ॥ ४० ॥

यह चारुमती सदा मुझको सन्तुष्ट करने लगी, मैं उस स्थानमें अनेक प्रकारके सुखोंको भोग करनेलगा। समयानुसार मेरे पांच पुत्र उत्पन्न हुए। मैं निरन्तर आनन्दके समुद्रमें मग्न रहने लगा ॥ ४० ॥

जयश्च विजयश्चैव कमलो विमलस्तथा ।
बुध इत्यादयः पञ्च विदितास्तनया मम ॥ ४१ ॥

मेरे पांच पुत्रोंका नाम जय, विजय, कमल विमल, और बुध हुआ ॥ ४१ ॥

स्वजनैर्बन्धुभिः पुत्रैर्धनैर्नानाविधैरहम् ।
विदितः पूजितो लोके देवैरिन्द्रो यथा दिवि ॥ ४२ ॥

मेरे पुत्र, आत्मीय, बन्धु जो अनेक हुए और मैं अनेक प्रकारके

धनका स्वामी जो हुआ। इस कारण जिस प्रकार देवराज इन्द्र जैसा स्वर्गमें देवताओंके पूज्य हुए तैसेही मैं सबका पूज्य और सर्वत्र विख्यात हुआ ॥ ४२ ॥

बुधस्य ज्येष्ठपुत्रस्य विवाहार्थं समुद्यतम् ।
दृष्ट्वा द्विजवरस्तुष्टो धर्मसारो निजां सुताम् ॥ ४३ ॥

मेरे बडे पुत्रका नाम बुध था। मैं बुधका विवाह करनेकी इच्छा करता हुआ। धर्मसार नामक किसी ब्राह्मणने मुझको पुत्रका विवाह करनेके लिये तैयार देख संतुष्ट हृदयसे अपनी कन्याके ॥ ४३ ॥

दित्सुः कर्माणि वेदज्ञश्चकाराभ्युदयान्यपि ।
वाद्यैर्गीतैश्च नृत्यैश्च स्त्रीगणैः स्वर्णभूषितैः ॥ ४४ ॥

दान करनेका अभिलाष किया। तिसने कन्याके विवाहार्थ वेदपारग ब्राह्मणके द्वारा आभ्युदयिक (१) कर्म पूरा किया स्वर्णके अनेक गहने पहने हुए कामिनियें नाचना गाना आरंभ करती हुईं। बाजोंकी मधुर ध्वनिसे (सबका मन खींचने लगीं) ॥ ४४ ॥

अहं च पुत्राभ्युदये पितृदेवार्षितर्पणम् ।
कर्त्तुं समुद्रवेलायां प्रविष्टः परमादरात् ॥ ४५ ॥

मैं भी पुत्रकी अभ्युदयकामनासे पितृतर्पण, देवतर्पण और ऋषितर्पण करनेके अभिप्रायसे परम यत्नपूर्वक समुद्रके किनारेपर आया ॥ ४५ ॥

वेलालोलायिततनुर्जलादुत्थाय सत्वरः ।
तीरे सखीन्स्नानसन्ध्या-परान्वीक्ष्याहमुन्मनाः ॥ ४६ ॥

(अनन्तर समुद्रके जलमें स्नान और तर्पण करके) शीघ्रही जलसे निकलकर किनारेकी ओर गमन करनेको हुआ। किनारेकी ओर निहार

---

(१) अभ्युदय शब्दका अर्थ विवाहादि इष्टलाभ है। उस अभ्युदयके लिये जो श्राद्ध करना होताहै, तिसको आभ्युदयिक श्राद्ध कहते हैं। गोभिल गृह्यसूत्रमें और श्राद्धतत्त्वमें आभ्युदयिक श्राद्धका विशेष वर्णन लिखा है। विवाह, यज्ञोपवीत व अन्नप्राशन आदि शुभ कर्मोंके आरम्भमें अभ्युदयकी कांक्षासे आभ्युदयिकश्राद्ध करना पडता है।

कर देखताहूं कि (पुरुषोत्तमक्षेत्रमें रहनेवाले) मेरे पहले भाई बन्धु स्नान और सन्ध्या आह्निक करते हैं। मैं यह देखकर बहुतही उद्विग्न हुआ ॥४६॥

सद्यः समभवं भूपा द्वादश्यां पारणादृतान् ।
पुरुषोत्तमसंवासान्विष्णुसेवार्थमुद्यतान् ॥ ४७ ॥

हे भूपालगण ! पुरुषोत्तमवासी ब्राह्मणलोग विष्णुजीकी सेवा और द्वादशीके पारणकी तैयारी करते हैं सो देखकर तत्काल (मेरे मनमें जैसा विस्मय और उद्वेग प्रगट हुआ सो मैं नहीं कहसकता) ॥ ४७ ॥

तेऽपि मामग्रतः कृत्वा तद्रूपवयसां निधिम् ।
विस्मयाविष्टमनसं दृष्ट्वा मामब्रुवन् जनाः ॥ ४८ ॥

पहले (द्वादशीके पारणादिनमें स्नानके समय) मेरा जैसा रूपथा, जैसी उमरथी, सो कुछभी नहीं बदला । पुरुषोत्तमवासी लोग सामने मुझको इस प्रकार विस्मय (और व्याकुल) देखकर पूछतेहुए ॥ ४८ ॥

अनन्त विष्णुभक्तोऽसि जले किं दृष्टवानिह ।
स्थले वा व्यग्रमनसं लक्षयामः कथं तव ॥ ४९ ॥

हे अनन्त ! किस कारण तुमको व्याकुल देखते हैं ? तुम परम वैष्णव हो, तुमने क्या जलमें या स्थलमें कुछ देखाहै ? ॥ ४९ ॥

पारणं कुरु तद्ब्रूहि त्यक्त्वा विस्मयमात्मनः ।
तानब्रुवमहं नैव किञ्चिद्दृष्टं श्रुतं जनाः ॥ ५० ॥

जो देखा हो तो कहो, विस्मय छोडकर पारण करो । मैंने तिनसे कहा, हे लोगो ! मैंने कुछ नहीं देखा, सुना ॥ ५० ॥

कामात्मा तत्कृपणधीर्मायासन्दर्शनादृतः ।
तया हरेर्माययाऽहं मूढो व्याकुलितेन्द्रियः ॥ ५१ ॥

परन्तु मैं अत्यन्त काममोहितहूँ और मेरा अन्तःकरण अत्यन्त दुर्बल है । मैं भगवानकी मायाके देखनेका अभिलाषी हुआथा । (मैं अन्यन्त मूर्खहूं) मैं उस समय उन्हीं हरिकी मायासे इतिकर्त्तव्यताविमूढ होगयाहूं, मेरी इन्द्रियां व्याकुल होती हैं ॥ ५१ ॥

न शर्म्म वेद्मि कुत्रापि स्नेहमोहवशं गतः ।
आत्मनो विस्मृतिरियं को वेद विदितां तु ताम् ॥ ५२ ॥

मैं स्नेहके और मोहके वशमें ऐसा होगयाहूं कि, किसी प्रकारसे स्थिर नहीं होसकता, मैं नहीं कह सकता कि, मैं कहांतक आपेको भूलगयाथा, परन्तु मैं जो हरिके मायाजालमें पडाहूं तिसको कोईभी अनुभव नहीं कर सका ॥ ५२ ॥

इति भार्य्याधनागर–पुत्रोद्वाहानुरक्तधीः ।
अनन्तोऽहं दीनमना न जाने स्वापसम्मितम् ॥ ५३ ॥

इस प्रकारसे स्त्री, पुत्र, धनागार और पुत्रके विवाहादि विषयमें मेरा मन अत्यन्त अनुरागी और दौडा जो तिससे मैं बहुतही शोकित और दुःखित होनेलगा । मैं अनन्त क्या कहूं और कौनहूं कुछभी न समझसका (पुरुषोत्तमकी समस्त बातें) मुझको स्वमसी जानपडने लगीं ॥ ५३ ॥

मां वीक्ष्य मानिनी भार्य्या विवशं मूढवत्सितम् ।
क्रन्दन्ती किमहोऽकस्मादालपन्ती ममान्तिके ॥ ५३ ॥

इसी अवसरमें अभिमानवाली मेरी भार्या मुझको विवश और मूढके समान स्थित देखकर ‘ हाय ’ अचानक क्या हुआ ! कहकर रोते २ मेरे निकट आई ॥ ५४ ॥

इह तां वीक्ष्य तांस्तत्र स्मृत्वा कातरमानसम् ।
हंसोऽप्येको बोधयितुमागतो मां सदुक्तिभिः ॥ ५५ ॥

पुरुषोत्तमक्षेत्रमें मैं अपनी पहली स्त्रीको निहार अपने उन स्त्री पुत्रोंकी याद करके अत्यन्तही कातर और दुःखित होने लगा उसी । अवसरमें एक परमहंस श्रेष्ठ उक्तिसे मुझको समझानेके लिये उस स्थानमें आये ॥ ५५ ॥

धीरो विदितसर्व्वार्थः पूर्णः परमधर्म्मवित् ॥ ५६ ॥
यह परमहंस धीर, सर्वज्ञ पूर्ण और परमधार्मिक ॥ ५६ ॥

सूर्य्याकारं सत्त्वसारं प्रशान्तं दान्तं शुद्धं लोकशोक-क्षयिष्णुम् । ममाग्रे तं पूजयित्वा मदङ्गाः पप्रच्छुस्ते मच्छुभ-ध्यानकामाः ॥ ५७ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे अनन्त-मायादर्शनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सूर्यके समान तेजस्वी सत्त्वगुणावलम्बी, शान्त, शुद्ध और सबके शोक दुःखको दूर करनेवाले थे। मेरे कुटुम्बी लोग मेरे सामने खडे हुए उन परमहंसकी पूजा करके उनसे पूछने लगे किस प्रकारसे इनकी कुशल होगी ॥ ५७ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे बलदेव०भाषाटी०अनन्त-मायादर्शनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

द्वितीयांशः ।

पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

सूत उवाच—उपविष्टे तदा हंसे भिक्षां कृत्वा यथोचिताम् ।
ततः प्राहुरनन्तस्य शरीरारोग्यकाम्यया ॥ १ ॥

लोमहर्षण बोले—जब परमहंस यथायोग्य भिक्षा करके बैठ गये (तब पुरुषोत्तमतीर्थके ब्राह्मणलोग) उनसे यह पूछते हुए कि, यह (अनन्त किस प्रकारसे रोगरहित होगा) ॥ १ ॥

हंसस्तेषां मतं ज्ञात्वा प्राह मां पुरतः स्थितम् ।
तव चारुमती भार्य्या पुत्राः पञ्च बुधादयः ॥ २ ॥

तिनके अभिप्रायको जानकर परमहंस मुझको सन्मुख देख मेरे ऊपर दृष्टि डालकर बोले--हे अनन्त ! चारुमती नामक तुम्हारी भार्या, बुध आदि पांच पुत्र ॥ २ ॥

धनरत्नान्वितं सद्म सम्बाधं सौधसंकुलम् ।
त्यक्त्वा कदाऽऽगतोऽसीह पुत्रोद्वाहदिने ननु ॥ ३ ॥

अटा अटारियोंसे विराजमान अनेक प्रकारके धनरत्नसे युक्त परस्पर मिलाहुआ अपूर्व गृह इन सबको छोडकर यहांपर कब आयेहो ? आज तुम्हारे पुत्रका विवाह दिन है ना ॥ ३ ॥

समुद्रतीरसञ्चारः पुराद्धर्म्मजनादृतः ।
निमन्त्र्य मामिहायातः शोकसंविग्नमानसः ॥ ४ ॥

(तुम समुद्रके दक्षिणकिनारे रहते हो) आजभी तुमको समुद्रके तीरपर घूमते हुए देखा है । तहांके समस्त धार्मिक लोगही तुम्हारा आदर किया करतेहैं । (तुमने पुत्रके विवाहोत्सवमें) हमकोभी आज निमंत्रण दिया है। इस समय तुम अपनी पुरीसे यहांपर आये हो । देखताहूं कि, तुम्हारा अन्तःकरण शोकसे अत्यन्त सन्तापित होरहा है ॥ ४ ॥

त्वं च सप्ततिवर्षीयस्तत्र दृष्टो मया प्रभो ।
त्रिंशद्वर्षीयवत्कस्मादिति मे संभ्रमो महान् ॥ ५ ॥

हे ज्ञानिन् ! मैंने वहांपर तुमको सत्तर वर्षका वृद्ध देखा है, अब तुमको यहांपर देखताहूं कि, तुम तीस वर्षके युवा हो इसका क्या कारण है ? इस बातका हमको अत्यन्त संशय हुआ है ॥ ५ ॥

इयं भार्य्या सहाया ते न तत्रालोकिता क्वचित् ।
अहं वा क्व कुतस्तस्मात्कथं वा केन काशितः ॥ ६ ॥

मैं देखताहूं कि, यह नारी तुम्हारी भार्या और सहाय करनेवाली है, इसको तो मैंने वहांपर कभी नहीं देखा । (यह कहांसे आई)मैं भी कहांसे किस प्रकार कहांपर आया और कौन मुझको यहांपर लेआया ॥ ६ ॥

स एव वा न वापि त्वं नाहं वा भिक्षुरेव सः ।
आवयोरिह संयोगश्चेन्द्रजाल इवाभवत् ॥ ७ ॥

तुम क्या वही अनन्त हो वा और कोई हो, मैं भी क्या वही भिक्षुक हूं

या और कोई हूं ? तुम्हारा व हमारा इन दोनों जनोंका यहांपर मिलना इन्द्रजालकी समान जानपडता है ॥ ७ ॥

त्वं गृहस्थः स्वधर्मज्ञो भिक्षुकोऽहं परात्मकः ।
आवयोरिह संवादो बालकोन्मत्तयोरिव ॥ ८ ॥

तुम स्वधर्मनिष्ठ गृहस्थ हो, मैं परमार्थचिन्तामें तत्पर भिक्षुक ब्राह्मण हूं, यहांपर हम दोनोंका कथोपकथन, बालक और मतवालेके कथोपकथनकी बराबर है (और) असंबद्ध जान पडता है ॥ ८ ॥

तस्मादीशस्य मायेयं त्रिजगन्मोहकारिणी ।
ज्ञानाप्राप्याऽद्वैतलभ्या मन्येऽहमिति भो द्विज ॥ ९ ॥

हे ब्रह्मन् ! हमको जान पडता है कि, यह जगदीश्वर विष्णुजीकी माया है, इससेही त्रिलोकीके लोग मोहित हुए रहते हैं । साधारणज्ञानसे यह समझमें नहीं आती, अद्वैतज्ञान होनेपर यह माया समस्त समझमें आजाती है ॥९॥

इति भिक्षुः समाश्राव्य यदन्यत्प्राह विस्मितः ।
मार्कण्डेय महाभाग भविष्यं कथयामि ते ॥ १० ॥

भिक्षु परमहंसने मुझसे विस्मित अंतःकरणसे यह कहकर मार्कण्डेयसे कहा, हे महाभाग मार्कण्डेय ! तुमसे होनहार कथा कहताहूं श्रवण करो ॥ १० ॥

प्रलये या त्वया दृष्टा पुरुषस्योदराम्भसि ।
सा माया मोहजनिका पन्थानं गणिका यथा ॥ ११ ॥

सुना होगा कि, प्रलयकालमें परमपुरुषके पेटवाले जलमें माया रहा करती है, वह माया सबको मोहित करती है। वेश्या जिस प्रकार राजमार्गपर बैठ-तीहै, तैसेही ॥ ११ ॥

तमो ह्यनन्तसन्तापा नोदनोद्यतमक्षरी ।
ययेदमखिलं लोकमावृत्यावस्थया स्थितम् ॥ १२ ॥

यह माया त्रिलोकीमें व्यापकर स्थिति करतीहै; यह मायाही तमोगुण-

रूप होकर सबको मिथ्यासंसारमें चलाती है । यह मायाही अनंत संतापका कारण है, किसीसे इसका ध्वंस नहीं होता है ॥ १२ ॥

लये लीने त्रिजगति ब्रह्मतन्मात्रतां गतः ।
निरुपाधौ निरालोके सिसृक्षुरभवत् परः ॥ १३ ॥
ब्रह्मण्यपि द्विधा भूते पुरुषप्रकृती स्वया ।
भासा संजनयामास महान्तं कालयोगतः ॥ १४ ॥

प्रलयकालमें जब त्रिलोकी लय होजाती है, जब प्रकाश न होनेसे चारों ओर अन्धकार हो जाता है, जब दिग्देश कालादिका कोई चिह्नतक नहीं रहता, तब परब्रह्म सृष्टि करनेका अभिलाषी होकर तन्मात्ररूपसे प्रगट होता है । प्रथम तो ब्रह्म अपने माहात्म्य करके पुरुष और प्रकृति, इन दो अंशोंमें विभक्त हुआ । फिर कालकी सहायता करके पुरुष और प्रकृतिका संयोग होनेपर महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ (१) ॥ १३ ॥ १४ ॥

कालस्वभावकर्म्मात्मा सोऽहङ्कारस्ततोऽभवत् ।
त्रिवृद्विष्णु-शिव-ब्रह्म-मयः संसारकारणम् ॥ १५ ॥

काल और अदृष्ट सहकृत प्रकृतिसे उत्पन्न हुए महत्तत्त्वसे अहंकारतत्त्व उत्पन्न होताहै । अहंकारतत्त्व तीन गुणके भेदसे विभक्त होकर ब्रह्मा, विष्णु,

---

(१) प्रकृति और पुरुष नित्य हैं । प्रलयकालके समय यह निरुपाधि ब्रह्मके अभिन्न रूपमें रहते हैं । पुरुष चेतनस्वरूप है, प्रकृति जडस्वरूप है । प्रकृति स्वयं किसी पदार्थको उत्पन्न नहीं करसकतीहै; पुरुषके संयोगसेही महत् अहंकारादिको उत्पादन करती है। प्रकृतिसे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अहंकारतत्त्व, अहंकारतत्त्वसे पंचतन्मात्र और ११ इन्द्रियें, पंचतन्मात्रसे पंचभूत उत्पन्न होते हैं । सांख्यवाले इनकोही २४ तत्त्व कहतेहैं । नेत्र, कान, नासिका, जीभ और त्वक् यह पांच ज्ञानके द्वार होनेसे ज्ञानेन्द्रिय शब्दसे पुकारे जाते हैं। वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, यह पांच कार्यके साधन होनेसे कर्मेंद्रिय शब्दसे पुकारे जाते हैं, मन उभयात्मक इन्द्रिय है । सबमें यह ग्यारहवीं इन्द्रिय है । शब्दतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र और गन्धतन्मात्र इन पांचको पंचतन्मात्र कहा जाता है । इस समस्त सृष्टिके विषयमें काल (समय) सहकारी है अर्थात् विना सृष्टिकालके उपस्थित हुए कभीभी कोई पदार्थ उत्पन्न नहीं होता ।

और महेशको उत्पन्न करताहै। फिर यह ब्रह्मा, विष्णु और महेश सारे संसारको उत्पन्न करते हैं। (१) ॥ १५ ॥

तन्मात्राणि ततः पञ्च जज्ञिरे गुणवन्ति च।
महाभूतान्यपि ततः प्रकृतौ ब्रह्मसंश्रयात् ॥ १६ ॥

पहिली पहल इस अहंकारतत्त्वसे त्रिगुणयुक्त पंचतन्मात्र उत्पन्न हुआ, पंचतन्मात्रसे पंच महाभूत उत्पन्न होते हैं। प्रकृतिके पुरुषके अधिष्ठित होने- पर ऐसी सृष्टि होती है (२) ॥ १६ ॥

जाता देवासु नरा ये चान्ये जीवजातयः।
ब्रह्माण्डभाण्डसंभार-जन्मनाशक्रियात्मिकाः ॥ १७ ॥

अनन्तर देव, असुर, मनुष्य और इस ब्रह्माण्डभाण्डोदरमें उत्पन्न व नाशवान् और जो समस्त जीव, जन्तु यावत् पदार्थ विद्यमान हैं, वह सबमें उत्पन्न होते हैं ॥ १७ ॥

माययामायया जीव-पुरुषः परमात्मनः।
संसारशरणव्यग्रो न वेदात्मगतिं क्वचित् ॥ १८ ॥

परमात्माकी मायासे सर्व प्रकारसे ढके रहनेपर यह समस्त जीव संसार-

---

(१) सत्त्व, रज और तमोगुण प्रकृतिकी साम्यावस्थामें रहते हैं। रजोगुणमय होनेसे ब्रह्माजी सृष्टिकर्त्ता, सत्त्वगुणमय होनेसे विष्णुजी रक्षाकर्त्ता और तमोगुणमय होनेसे महादेवजी संहारकर्त्ता हुए हैं।

(२) शब्दतन्मात्रसे आकाश, स्पर्शतन्मात्रसे वायु, रूपतन्मात्रसे तेज, रसतन्मात्रसे जल और गन्धतन्मात्रसे पृथ्वी उत्पन्न हुई। इन. महाभूतोंकी उत्पत्तिके समयमेंभी पहले परमाणु फिर द्व्यणुक इत्यादि क्रम है।

सांख्यकारिकामें कहा है कि–

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त । इत्यादि–

मूलप्रकृतिको केवल प्रकृति कहाजाता है, वह किसीकी विकृति नहीं है, महत्तत्त्व प्रकृतिकी विकृति और अहंकारकी प्रकृति है। अहंकार पंचतन्मात्रकी प्रकृति और मह त्तत्त्वकी विकृति है। पंचतन्मात्र भौतिक परमाणु पंचककी प्रकृति और अहंकारकी विकृति है। तिसके अनुसार महत्तत्त्व, अहंकारतत्त्व और पंचतन्मात्र यह प्रकृतिशब्दमेंभी युक्त होते हैं। इस कारण यहांपर प्रकृति शब्दका अर्थ केवल मूलप्रकृति नहीं है। उससे आठतत्त्व अभिहित हुए हैं।

मेंही लिपटे रहते हैं और संसारी कामोंमेंही उलझे रहते हैं, अपने उद्धारके उपायको कुछभी नहीं सोचते ॥ १८ ॥

अहो बलवती माया ब्रह्माद्या यद्वशे स्थिताः ।
गावो यथा नसि प्रोता गुणबद्धाः खगा इव ॥ १९ ॥

कैसा आश्चर्य है ! माया कैसी बलवती है ! मायाका कैसा अद्भुत सामर्थ्य है ! ब्रह्मादि देवतालोगभी इस मायाके वशमें रहकर नाथसे बिंधे बैलकी समान, डोरीसे बंधे पक्षीकी समान (संसारचक्रमें) निरंतर घूमते हैं॥१९॥

तां मायां गुणमय्यां ये तितीर्षन्ति मुनीश्वराः ।
स्रवन्तीं वासनानक्रां त एवार्थविदो भुवि ॥ २० ॥

जो महर्षिलोग इस प्रकारकी वासनारूप, नक्र-चक्र (नाके-भँवर) उत्पन्न करनेवाली महाप्रवाहवती गुणमयी माया (रूप महानदी) के पार होनेकी अभिलाषा करते हैं, उनकाही जन्म सार्थक है और वही यथार्थमें तत्त्वज्ञानी हैं ॥ २० ॥

शौनक उवाच–मार्कण्डेयो वशिष्ठश्च वामदेवादयोऽपरे ।
श्रुत्वा गुरुवचो भूयः किमाहुः श्रवणादृताः ॥ २१ ॥

शौनकजी बोलेः–मार्कण्डेय, वशिष्ठ, वामदेव व और ऋषिलोगोने यह आश्चर्यका वाक्य सुनकर क्या कहा ? अनंतका उपाख्यान सुननेवाले ॥२१॥

राजानोऽनन्तवचनमिति श्रुत्वा सुधोपमम् ।
किं वा प्राहुरहो सूत भविष्यमिह वर्णय ॥ २२ ॥

राजाओंने अनंतके मुखसे अमृतकी समान यह वाक्य सुनकर क्या कहा ? हे सूत ! यह समस्त होनहार कथा वर्णन करो ॥ २२ ॥

इति तद्वच आश्रुत्य सूतः सत्कृत्य तं पुनः ।
कथयामास कात्स्न्र्येन शोकमोहविघातकम् ॥ २३ ॥

सूतजीने यह सुनकर शौनककी प्रशंसा करके शोकमोहनाशक उन समस्त तत्त्वज्ञानकी कथाओंका फिर विस्तारसे वर्णन करना आरम्भ किया ॥२३॥

सूत उवाच-तत्रानन्तो भूपगणैः पृष्टः प्राह कृतादरः ।
तपसा मोहनिधनमिन्द्रियाणां च निग्रहम् ॥ २४ ॥

सूतजी बोले,-इसके उपरान्त राजाओंने आदरपूर्वक अनन्तसे पूछा, तब अनन्तने तपकरके मायाका परिहार इन्द्रियनिग्रहका वृतान्त कहा ॥ २४ ॥

अनन्त उवाच-अतोऽहं वनमासाद्य तपः कृत्वा विधानतः ।
नेन्द्रियाणां न मनसो निग्रहोऽभूत्कदाचन ॥ २५ ॥

अनन्तने कहा कि, फिर मैंने विधिविधानके साथ वनमें जाकर तप करना आरंभ किया, परन्तु किसी प्रकारसेभी इन्द्रियोंको और मनको वशमें न कर सका ॥ २५ ॥

वने ब्रह्म ध्यायतो मे भार्य्यापुत्रधनादिकम् ।
विषयं चान्तरा शश्वत्संस्मारयति मे मनः ॥ २६ ॥

मैं वनमें बैठकर जबही परब्रह्मका ध्यान करूं, उसी समय निरन्तर स्त्री, पुत्र, धन व और सब बातें मुझे याद आया करें ॥ २६ ॥

तेषां स्मरणमात्रेण दुःखशोकभयादयः ।
प्रतुदन्ति मम प्राणान्धारणा-ध्याननाशकाः ॥ २७ ॥

मेरे अन्तःकरणमें स्त्री, पुत्र, ऐश्वर्य आदिकी याद आतेही दुःख, शोक, भय आदि होनेलगे, तिससे मेरा अन्तरात्मा अत्यन्त व्याकुल हो, बस मेरे ध्यान धारणामें विघ्न हुआ करें ॥ २७ ॥

ततोऽहं निश्चितमतिरिन्द्रियाणां च घातने ।
मनसो निग्रहस्तेन भविष्यति न संशयः ॥ २८ ॥

फिर मैंने इन्द्रियोंके नष्ट करनेका संकल्प किया, विचारा कि, निःसंदेह इन्द्रियोंके नष्ट करतेही मनको वशकर सकूंगा ॥ २८ ॥

अतो मामिन्द्रियाणां च निग्रहव्यग्रचेतसम् ।
तदधिष्ठातृदेवाश्च दृष्ट्वा मामीयुरञ्जसा ॥ २९ ॥

जब मैं इस प्रकारसे संकल्प करके इन्द्रियोंको दमन करने लगा, तब इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवतालोग अकस्मात् आयकर मेरी ओर देखने लगे॥ २९॥

रूपिणो मामथोचुस्ते भोऽनन्त इति ते दश ।
दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्वि-वह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ॥ ३० ॥

उन दश इन्द्रियोंके दश अधिष्ठाता अपना २ रूप धारण करके आये थे, तिन्होंने हमसे कहा, हे अनन्त ! हम दिक्, वात, अर्क, प्रचेता, दो अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र और मित्र हैं ॥ ३० ॥

इन्द्रियाणां वयं देवास्तव देहे प्रतिष्ठिताः ।
नखाग्रकाण्डसम्भिन्नान्नास्मान्कर्तुमिहार्हसि ॥ ३१ ॥

हम दश जन दश इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता हैं । हम तुम्हारे शरीरमें प्रतिष्ठित हैं । हमको नखकी नोकसे छिन्न और नष्टकरना तुमको उचित नहीं है ॥ ३१ ॥

न श्रेयो हि तवानन्त मनोनिग्रहकर्म्माणि ।
छेदने भेदनेऽस्माकं भिन्नमर्म्मा मरिष्यसि ॥ ३२ ॥

विशेष करके ऐसा करनेसे तुम्हारा कोई भला होगा, या तिससे मनको तुम वश करसकोगे सो नहीं, अधिक होगा तो यह होगा कि, इन्द्रियोंके छिन्न भिन्न करनेसे तुमही मर्ममें व्यथा पायकर मरजाओगे ॥ ३२ ॥

अन्धानां बधिराणां च विकलेन्द्रियजीविनाम् ।
वनेऽपि विषयव्यग्रं मानसं लक्षयामहे ॥ ३३ ॥

हम देखते हैं कि—अंधे, बहरे और विकल इन्द्रियोंवाले जीव जब जनरहित वनमें वास करते हैं तबभी तिनके मन विषयभोगलालसासे लोलुप होते हैं ॥ ३३ ॥

जीवस्यापि गृहस्थस्य देहो गेहं मनोऽनुगः ।
बुद्धिर्भार्य्या तदनुगा वयमित्यवधारय ॥ ३४ ॥

यह शरीर गृहस्वरूप है, आत्मा गृहस्वरूप है, बुद्धि गृहिणीस्वरूप है, और मन परिचारकस्वरूप है। हमलोगोंकी भी बुद्धिरूप भार्याके अनुगत परिचारक (सेवक) जानो ॥ ३४ ॥

कर्मायत्तस्य जीवस्य मनो बन्धविमुक्तिकृत् ।
संसारयति लुब्धस्य ब्रह्मणो यस्य मायया ॥ ३५ ॥

जीवगण अपने अपने कर्मके अधीन हैं, अर्थात् जो जैसा कर्म करता है वह तैसाही फल भोगता है। मनही मुक्ति और संसार बन्धनका कारण है। जगदीश्वरकी मायाके अनुसार मनही लोभी पुरुषको संसारचक्रमें घुमाता है ॥ ३५ ॥

तस्मान्मनोनिग्रहार्थं विष्णुभक्तिं समाचर ।
सुखमोक्षप्रदा नित्यं दाहिका सर्व्वकर्म्मणाम् ॥ ३६ ॥

इस कारण तुम मनको वशमें करनेके लिये विष्णुजीमें भक्ति स्थापन करो, विष्णुजीकी भक्तिही निरन्तर सब कर्मोंका ध्वंस करती है और विष्णुभक्तिसेही सुख वा मोक्ष प्राप्त हो जासकता है (१) ॥ ३६ ॥

द्वैताद्वैतप्रदानन्द-सन्दोहा हरिभक्तिका ।
हरिभक्त्या जीवकोष-विनाशान्ते महामते ॥ ३७ ॥

हरिभक्तिसे द्वैत और अद्वैतका ज्ञान होजाताहै, इस कारण हरिभक्तिही

---

१ पाप पुण्यरूप कर्मके वश करके तिसका फल भोगनेके लिये संसारमें जन्म लेना पडता है, विना इस पापपुण्यका ध्वंस हुए मोक्ष नहीं होता। भगवद्गीतामें कृष्णजीने अर्जुनसे कहा है कि—

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन ।

हे अर्जुन ! ज्ञानरूप अग्नि समस्त कर्मको भस्म करदेता है। अर्थात् तत्त्वज्ञान होनेपर पूर्व-संचित पापपुण्य ध्वंस होजाता है और फिर भी किसी कार्यमें ज्ञानीको पाप या पुण्य नहीं होसकता; इस कारण संसारबन्धनका मूल पाप पुण्य न रहै तो जन्मभी नहीं होता ॥

आनन्दसन्दोहदायिनी है । हे महामते ! हरिभक्तिसे जीवकोष अर्थात् लिंगशरीर ध्वंस होगा (१) ॥ ३७ ॥

परं प्राप्स्यासि निर्वाणं कल्केरालोकनात्त्वया ।
इत्यहं बोधितस्तेन भक्त्या सम्पूज्य केशवम् ॥ ३८ ॥

इस समय तुम कल्किजीका दर्शन करो, तिससे परमनिर्वाणको प्राप्त कर सकोगे । जब परमहंसने मुझको ऐसा उपदेश दिया तब मैं भक्तिपूर्वक केशवकी पूजा करके ॥ ३८ ॥

कल्किं दिदृक्षुरायातः कृष्णं कलिकुलान्तकम् ॥ ३९ ॥

कलिके कुलका नाश करनेवाले कल्किजीका दर्शन करनेको इस स्थानमें आयाहूं ॥ ३९ ॥

दृष्टं रूपमरूपस्य स्पृष्टस्तत्पदपल्लवः ।
अपदस्य श्रुतं वाक्यमवाच्यस्य परात्मनः ॥ ४० ॥

इस स्थानमें रूपहीन ईश्वरके रूपका दर्शन किया, पदहीन ईश्वरके चरणपल्लवको स्पर्श करके कृतार्थ होगया । जो वाक्यहीन हैं, उन जगत्पतिके वाक्य सुने ॥ ४० ॥

इत्यनन्तः प्रमुदितः पद्मानाथं निजेश्वरम् ।
कल्किं कमलपत्राक्षं नमस्कृत्य ययौ मुनिः ॥ ४१ ॥

यह कहकर अनन्त मुनि हर्षित हृदयसे अपने ईश्वर कमलदललोचन पद्मानाथ कल्किजीको नमस्कार करके चलेगये ॥ ४१ ॥

राजानो मुनिवाक्येन निर्वाण-पदवीं गताः ।
कल्किमभ्यर्च्य पद्मां च नमस्कृत्य मुनिव्रताः ॥ ४२ ॥

---

(१) पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमान्वितम् । अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम् ॥
लिंगशरीरमें प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान यह पांच वायु, मन, बुद्धि और कर्मेन्द्रिय पांच और पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं । स्थूलशरीरके मध्यमें यह अमिश्रभूत–निर्मित सूक्ष्मशरीर रहता है । इस सूक्ष्मशरीरको पुरुष कहते हैं । मृत्युकालमें स्थूलशरीरध्वंस होनेपर सूक्ष्मशरीरध्वंस नहीं होता । यह सूक्ष्मशरीरही परलोकमें वा दूसरी देहमें जायकर पहले जन्मके पाप पुण्यका फल भोगता है, मुक्तिके समयमें यह सूक्ष्म शरीर नष्ट होजाता है, इस कारण फिर जन्म लेनेकी सम्भावना नहीं रहती ।

इस प्रकार मुनिके वचन सुन राजालोग मुनियोंकी समान व्रतनियमादिका अनुष्ठान करनेलगे और वे कल्कि पद्माकी पूजा करके मुक्तिमार्गके पथिकहुए॥

शुक उवाच-अनन्तस्य कथामेतामज्ञानध्वान्तनाशिनीम् ।
मायानियन्त्रीं प्रपठञ्छृण्वन्बन्धाद्विमुच्यते ॥ ४३ ॥

शुकने कहा—इन अनन्तकी कथा पढने वा श्रवण करनेसे संसारकी माया नियमित होजाती है, अज्ञानरूप अंधकार दूर होजाता है और संसार-बन्धनसे मुक्ति होजाती है ॥ ४३ ॥

संसाराब्धि-विलासलालसमतिः श्रीविष्णुसेवापरो
भक्त्याऽऽख्यानमिदं स्वभेद-रहितं निर्माय धर्मात्मना ।
ज्ञानोल्लास-निशात-खड्गमुदितः सद्भक्ति-दुर्गाश्रयः
षड्वर्गं जयतादशेषजगतामात्मस्थितं वैष्णवः ॥ ४४ ॥

इति श्रीकल्कि० भविष्ये द्वितीयांशे अनन्तमायानिरसनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

जो धर्मात्मा वैष्णव हैं, विष्णुसेवापरायण होकरभी संसारसागरमें विलास करनेकी लालसाकरते हैं, इस आख्यान करके संसारके अभेद ज्ञानरूप उल्लासित तीक्ष्ण खड्गको धारण करके उठाय भक्तिरूप दुर्गके आश्रित हो शरीर स्थित काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इन छः शत्रुओंको पराजितकरें ॥४४॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे बलदेवप्रसादमिश्रकृत-भाषाटीकायां अनन्तमायानिरसनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

द्वितीयांशः ।

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सूत उवाच-गते नृपगणे कल्किः पद्मया सह सिंहलात् ।
शम्भलग्राम-गमने मतिं चक्रे स्वसेनया ॥ १ ॥

सूतजी बोले—इसके उपरान्त राजाओंके चले जानेपर पद्माके साथ और सेनाके सहित सिंहलद्वीपसे गमन करनेकी अभिलाषा की ॥ १ ॥

ततः कल्केरभिप्रायं विदित्वा वासवस्त्वरन् ।
विश्वकर्म्माणमाहूय वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २ ॥

तब देवराज इन्द्रजीने कल्किजीके अभिप्रायको जानकर तत्काल विश्वकर्मा (१) को बुलायके कहा ॥ २ ॥

इन्द्र उवाच–विश्वकर्मञ्छम्भले त्वं गृहोद्यानाट्ट-घट्टितम् ।
प्रासादहर्म्य-सम्बाधं रचय स्वर्णसञ्चयैः ॥ ३ ॥

इन्द्र बोले–हे विश्वकर्मन् ! तुम शम्भलग्राममें जाय सुवर्णके समूहसे धवरहर, महल, अटा, अटारियें, गृह, उद्यानादि बनाओ ॥ ३ ॥

रत्नस्फटिक-वैदूर्य्य-नानामणिविनिर्मितैः ।
तत्रैव शिल्पनैपुण्यं तव यच्चास्ति तत्कुरु ॥ ४ ॥

रत्न, स्फटिक, वैडूर्य (२) आदि अनेक मणियोंसे (अनेक प्रका-

---

(१) विश्वकर्मा–ऋग्वेदमें इनका नाम त्वष्टा है । इनकी कन्याका नाम सरन्यु वा संज्ञा हुआ । विवस्वान् (सूर्य) के साथ इस कन्याका विवाह हुआ । अश्विनेय गण इसके पुत्र हुए । (Muir's Oriental Studies) पुराणोंके मतसे विश्वकर्मा देवताओंका शिल्पी है । इसका पिता प्रभास नामक वायु और माता योगसिद्धा है, इसके पुत्रका नाम वृत्र हुआ ।

(२) मणिविशेष । डाक्टर रामदासने अपनी रत्नरहस्य नामक पुस्तकमें कहा है, " कोई २ कहते हैं, कि विदूरदेशीय पर्वतपर उत्पन्न होनेके कारण इसका "वैदूर्य" नाम हुआ है । इस मणिका व्यवहार अति प्राचीनकालसे होता आया है । रामायण व महाभारतादि प्राचीन पुस्तकोंमेंभी इसका वर्णन है । व्यवहारकी वस्तु होनेसे इसके अनेक संस्कृत नाम हैं । जैनाचार्य हेमचंद्रने इसके दो नाम कहे हैं । यथाः– 'वैदूर्य' 'वालवायजम्' किन्तु राजनिघण्टु आदि ग्रंथोंमें इसके केतुरत्न, कैतव, प्रावृष्य, अभ्ररोह, खराब्दांकुर, विदूररत्न, विदूरज नाम देखे जाते हैं ।

महर्षि शुक्राचार्यने कहा है–ओत्वक्ष्याभश्चलत्तन्तुर्वैदूर्यः केतुप्रीतिकृत् ॥
(शुक्रनीति ४ अध्याय २ प्रकरण ४६ श्लोक)

इस कवितामें वैडूर्य मध्यश्रेणीके अन्तर्गत वर्णन हुआ है । राजनिघण्टुमें वैडूर्यमणिकी कान्तिका वर्णन दिखाई देता है । यथाः—

एकं वेणुपलाशकोमलरुचामायूरकण्ठत्विषा
मार्ज्जारेक्षणपिंगलच्छविजुषा ज्ञेयं त्रिधा च्छायया ।
यद्गात्रं गुरुतां दधाति नितरां स्निग्धं तु दोषोज्झितं
वैडूर्यं विशदं वदन्ति सुधियः स्वच्छं तु तच्छोभनम् ॥

भावप्रकाशमें कहा हैः–वैदूर्य्यं दूरजं रत्नं स्यात्केतुग्रहवल्लभम् ।
वैडूर्य दूरदेशमें उत्पन्न होता है, इस कहनेसे डाक्टर रामदासका मत समर्थित हुआ है ॥
प्राचीन समयमें ग्रहशान्तिके लिये रत्नका व्यवहार होता था । तिस काल केतुग्रहकी शान्तिके लिये वैडूर्यमणिके व्यवहारका चलन था । ज्ञात होता है कि, इसी कारण वैडूर्यमणिको केतुप्रिय कहा है ।

रके शिल्पकार्य करना बरन) शिल्पविद्यामें तुम जहांतक निपुण हो, तिस निपुणताके प्रगट करनेमें कसर मत करियो ॥ ४ ॥

श्रुत्वा हरेर्वचो विश्वकर्मा शर्म निजं स्मरन् ।
शम्भले कमलेशस्य स्वस्त्यादि-प्रमुखान्गृहान् ॥ ५ ॥

तब विश्वकर्माने देवराजके यह वचन सुन अपना मंगल होना जान शम्भल-ग्राममें कमलानाथके लिये स्वस्ति आदि अनेक प्रकारके गृह (बनाये) ॥५॥

हंससिंहसुपर्णादिमुखांश्चक्रे स विश्वकृत् ।
उपर्य्युपरि तापघ्नवातायनमनोहरान् ॥ ६ ॥

कोई गृह हंसमुख, कोई गृह सिंहमुख, कोई गृह गरुडमुख इत्यादि अनेक प्रकारके गृह हुए । समस्त गृह दुतल्ले, तितल्ले आदि एकके ऊपर एक बनने लगे । ग्रीष्म निवाररण करनेके लिये बहुतसी खिडकियाँ शोभायमान होने लगीं ॥ ६ ॥

नानावनलतोद्यानसरोवापीषु शोभितः ।
शम्भलश्चाभवत्कल्केर्यथेन्द्रस्यामरावती ॥ ७ ॥

अनेक प्रकारके वन, लता, उद्यान, सरोवर, दीर्घिका (डिग्घी) आदिसे कल्किजीका शम्भल ग्राम इन्द्रकी अमरावतीके समान अपूर्व शोभाको धारण करता हुआ ॥ ७ ॥

कल्किस्तु सिंहलाद्द्वीपाद्बहिः सेनागणैर्वृतः ।
त्यक्त्वा कारुमतीं कूले पाथोधेरकरोत् स्थितिम् ॥ ८ ॥

इस ओर सिंहलद्वीपमें सेनाके साथ कारुमती नगरीसे कल्किजी बाहर निकले फिर वह समुद्रके किनारेपर (सेनाकी छावनी डाल उस दिन) ठहरे ॥ ८ ॥

बृहद्रथस्तु कौमुद्या सहितः स्नेहकातरः ।
पद्मया सहितायास्मै पद्मानाथाय विष्णवे ॥ ९ ॥

कन्याके स्नेहसे कातर हो कौमुदी नामक रानीके साथ राजा बृहद्रथ

(उस समुद्रके किनारेतक) आया और सन्तुष्ट हृदयसे पद्माको और पद्मानाथ विष्णुजीको ॥ ९ ॥

दददौ गजानामयुतं लक्षं मुख्यं च वाजिनाम् ।
रथानां च द्विसाहस्रं दासीनां द्वे शते मुदा ॥ १० ॥

दश हजार हाथी, लक्ष उत्तम घोडे, दो हजार रथ और दो शत दासियें दान करता हुआ ॥ १० ॥

दत्त्वा वासांसि रत्नानि भक्तिस्नेहाश्रुलोचनः ।
तयोर्मुखालोकनेन नाशकत्किञ्चिदीरितुम् ॥ ११ ॥

वह अनेक प्रकारके वस्त्र और अनेक रत्नदान करके भक्ति व स्नेहभरे नेत्रोंसे जामाता और कन्याके वदनकमलको देखता रहा, कोईभी वचन न कह सका ॥ ११ ॥

महाविष्णुदम्पती तौ प्रस्थाप्य पुनरागतः ।
पूजितः कल्किपद्माभ्यां निजां कारुमतीं पुरीम् ॥ १२ ॥

वह कन्या और जमाईको विदा कर तिन करके पूजित हो तिनको (शंभलग्राममें) पठाय कारुमती नामक अपनी नगरीमें लौट आया ॥ १२ ॥

कल्किस्तु जलधेरम्भो विगाह्य पृतनागणैः ।
पारं जिगमिषुं दृष्ट्वा जम्बुकं स्तम्भितोऽभवत् ॥ १३ ॥

इसके उपरान्त कल्किजीने सेनासमूहके साथ समुद्रके जलमें स्नान करके देखा कि, एक शृगाल जलके ऊपर होता हुआ पारको जाताहै । तब वह खडे होगये ॥ १३ ॥

जलस्तम्भमथालोक्य कल्किः सबलवाहनः ।
प्रययौ पयसां राशेरुपरि श्रीनिकेतनः ॥ १४ ॥

फिर वह लक्ष्मीनाथ कल्किजी जलस्तम्भको हुआ देखकर सेना और वाहनोंके साथ समुद्रके ऊपरको होकर चले ॥ १४ ॥

गत्वा पारं शुकं प्राह याहि मे शम्भलालयम् ॥ १५ ॥

उन्होंने समुद्रके पार होकर शुकसे कहा—हे शुक ! तुम शम्भलग्राममें हमारे स्थानपर जाओ ॥ १५ ॥

विश्वकर्म्मकृतं तत्र देवराजाज्ञया बहु ।
सद्मसंबाधममलं मत्प्रियार्थं सुशोभनम् ॥ १६ ॥

वहांपर विश्वकर्माने इन्द्रकी आज्ञाके अनुसार हमारा प्रिय कार्य सिद्ध करनेको बहुतसे शोभायमान निर्मल गृह बनाये हैं ॥ १६ ॥

तत्रापि पित्रोर्ज्ञातीनां स्वस्ति ब्रूयाद्यथोचितम् ।
यदत्राङ्ग विवाहादि सर्व्वं वक्तुं त्वमर्हसि ॥ १७॥

तुम वहां जाकर हमारे मातापिताके निकट और जातिवालोंके निकट यथारीतिसे हमारा कुशल संवाद देना । हमारे विवाहादिका समस्त वृत्तान्त कहना ॥ १७ ॥

पश्चाद्यामि वृतस्त्वेतैस्त्वमादौ याहि शम्भलम् ॥ १८ ॥

मैं सेनाके साथ पीछे आताहूं, तुम शम्भलग्राममें आगे जाओ ॥ १८ ॥

कल्केर्वचनमाकर्ण्य कीरो धीरस्ततो ययौ ।
आकाशगामी सर्व्वज्ञः शम्भलं सुरपूजितम् ॥ १९ ॥

परम धीर सर्वज्ञ कीर (तोता) कल्किजीके वचन सुनकर आकाश-मार्गमें उडा । कुछ देरके पीछेही आदरके योग्य शम्भलग्राममें पहुँचा॥१९॥

सप्तयोजनविस्तीर्णं चातुर्वर्ण्यजनाकुलम् ।
सूर्य्यरश्मिप्रतीकाशं प्रासादशतशोभितम् ॥ २० ॥

यह शम्भलग्राम सात योजनका विस्तारवाला है । यहांपर ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र यह चार वर्ण वास करते हैं । सूर्यकी किरणोंके समान श्वेत और तेजयुक्त सैकडों अटारियें चारों ओर शोभा विस्तार कर रही हैं ॥ २० ॥

सर्व्वर्त्तुसुखदं रम्यं शम्भलं विह्वलोऽविशत् ॥ २१ ॥

यह नगर इस प्रकारसे बना और बसा है कि, किसी ऋतुमेंभी कष्ट

नहीं होता । इस नगरकी रमणीय शोभा देखते २ तोता विह्वल हो प्रवेश करने लगा ॥ २१ ॥

गृहाद्गृहान्तरं दृष्ट्वा प्रासादादपि चाम्बरम् ।
वनाद्वनान्तरं तत्र वृक्षाद्वृक्षान्तरं व्रजन् ॥ २२ ॥

शुक एक गृहसे दूसरे गृहमें (एक महलसे दूसरे महलमें) कभी दूसरे महलके अग्रभागसे आकाशमें, वहांसे उद्यानमें उद्यानसे, और उद्यानमें, वृक्षसे दूसरे वृक्षपर गमन करनेलगा ॥ २२ ॥

शुकः स विष्णुयशसः सदनं मुदितोऽव्रजत् ।
तं गत्वा रुचिरालापैः कथयित्वा प्रियाः कथाः ॥ २३ ॥

इस प्रकार हर्षित चित्तसे शुक विष्णुयशाके गृहमें पहुंचा । फिर विष्णु-यशाके निकट जाय मीठी वार्त्ता कर अनेक प्रकारकी प्रियकथा कह॥२३॥

कल्केरागमनं प्राह सिंहलात्पद्मया सह ॥ २४ ॥

सिंहलद्वीपसे पद्माके साथ कल्किजीके आनेका वृत्तान्त निवेदन किया२४॥

ततस्त्वरान्विष्णुयशाः समानाय्य प्रजाजनान् ।
विशाखयूपभूपालं कथयामास हर्षितः ॥ २५ ॥

फिर विष्णुयशाने शीघ्रतापूर्वक हर्षित हृदयसे विशाखयूप नामक राजासे और मान्य व प्रधान प्रधान राजाओंसे समस्त वृत्तान्त वर्णन किया ॥२५॥

स राजा कारयामास पुर-ग्रामादि मण्डितम् ।
स्वर्णकुंभैः सदम्भोभिः पूरितैश्चन्दनोक्षितैः ॥ २६ ॥

राजा विशाखयूपने (स्त्रीके साथ कल्किजीके आनेका वृत्तान्त जान-कर) चन्दनसे छिडके हुए जलपूर्ण सुवर्णकुम्भसे ग्राम और नगरको सजाया ॥ २६ ॥

कालागुरुसुगन्धाढ्यैर्दीपलाजांकुराक्षतैः ।
कुसुमैः सुकुमारैश्च रम्भापूग-फलान्वितैः ॥
शुशुभे शम्भलग्रामो विबुधानां मनोहरः ॥ २७ ॥

देवतालोगोंकाभी मन हरण करनेवाला शम्भलग्राम, अगरु आदि सुगन्धद्रव्यसे, प्रकाशमालासे, सुगन्ध मनोहर फूलोंकी मालासे, केला, सुपारी आदि फलसे, खीलें, अक्षत नये पत्ते आदिसे (अनदेखी) शोभा धारण करता हुआ ॥ २७ ॥

तं कल्किः प्राविशद्भीम-सेनागण-विलक्षणः ।
कामिनी-नयनानन्दमन्दिराङ्गः कृपानिधिः ॥ २८ ॥

कामिनियोंके नेत्रोंके आनन्दमन्दिरस्वरूप परमसुन्दर कृपानिधान कल्किजी भयदायी सेनाको साथ लेकर नगरमें प्रवेश करनेलगे ॥ २८ ॥

पद्मया सहितः पित्रोः पादयोः प्रणतोऽपतत् ।
सुमतिर्मुदिता पुत्रं स्नुषां शक्रं शचीमिव ॥
दृष्ट्वा त्वमरावत्यां पूर्णकामाऽदितिः सती ॥ २९ ॥

उन्होंने पद्माके साथ मिलकर मातापिताके चरणोंमें प्रणाम किया। देवलोकमें जिस प्रकार अदितिजी इन्द्र और शचीको देखकर पूर्णकाम और आनन्दित हुई थी, तैसेही सती सुमति, पुत्र कल्कि और पुत्रवधू पद्माको देखकर आनंदिता और पूर्ण मनोरथवाली हुई ॥ २९ ॥

शम्भलग्रामनगरी पताकाध्वज-शालिनी ।
अवरोधसुजघना प्रासादविपुलस्तनी ॥
मयूरचूचुका हंस-संघहारमनोहरा ॥ ३० ॥
पटवासोद्योतधूमवसना कोकिलस्वना ।
सहासगोपुरमुखी वामनेत्रा यथाऽङ्गना ॥
कल्किं पतिं गुणवती प्राप्य रेजे तमीश्वरम् ॥ ३१ ॥

पताका ध्वजासे युक्त शम्भल नगरीरूप रमणी ईश्वर कल्किजीको पतिस्वरूप पाय शोभा धारण करती हुई। अन्तःपुर तिसका जघन-स्वरूप, प्रासाद तिसके पीनस्तनरूप, मयूर तिसके चुचूकस्वरूप, हंसमाला तिसकी मुक्ताहारस्वरूप, विविध प्रकारके गन्धद्रव्योंका धूम तिसका वस्त्र-

स्वरूप, कोकिलका वाक्य तिसका वाक्यस्वरूप, फाटक तिसके सहास्य-वदनस्वरूप अधिक क्या कहैं वह शम्भलनगरी सुन्दर नेत्रवाली गुणवतीके रूपसे शोभाको प्राप्त होनेलगी ॥ ३० ॥ ३१ ॥

स रेमे पद्मया तत्र वर्षपूगानजाश्रयः ।
शम्भले विह्वलाकारः कल्किः कल्कविनाशनः ॥ ३२ ॥

अज, सर्वाश्रय, पापका नाश करनेवाले कल्किजी अपने कार्योंको भूलकर उस शम्भलनगरमें पद्माके साथ आनन्दमंगलसे बहुत वर्ष बिताते हुए ॥ ३२ ॥

कवेः पत्नी कामकला सुषुवे परमेष्ठिनौ ।
बृहत्कीर्तिबृहद्बाहू महाबलपराक्रमौ ॥ ३३ ॥

कुछ काल पीछे कविकी कामकलानामक स्त्रीमें बृहत्कीर्ति और बृहद्बाहु नामक महाबली पराक्रमी परम धार्मिक दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३३ ॥

प्राज्ञस्य सन्नतिर्भार्या तस्यां पुत्रौ बभूवतुः ।
यज्ञविज्ञौ सर्व्वलोकपूजितौ विजितेन्द्रियौ ॥ ३४ ॥

प्राज्ञकी स्त्री सन्नतिनेभी दो पुत्र प्रसव किये जिनके नाम यज्ञ और विज्ञ हुए, ये जितेन्द्रिय और समस्तलोकमें पूजित हुए ॥ ३४ ॥

सुमन्त्रकस्तु मालिन्यां जनयामास शासनम् ।
वेगवन्तं च साधूनां द्वावेतावुपकारकौ ॥ ३५ ॥

सुमंत्रकी भार्या मालिनीके गर्भसे शासन और वेगवान् नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए जो कि, साधुओंका उपकार करते रहे ॥ ३५ ॥

ततः कल्किश्च पद्मायां जयो विजय एव च ।
द्वौ पुत्रौ जनयामास लोकख्यातौ महाबलौ ॥ ३६ ॥

कल्किजीसे पद्माके गर्भमें जय और विजयनामक दो पुत्र जन्म लेते हुए यह दो पुत्र लोकमें विख्यात महाबली पराक्रमी हुए ॥ ३६ ॥

एतैः परिवृतोऽमात्यैः सर्व्वसम्पत्समान्वितः ।
वाजिमेधविधानार्थमुद्यतं पितरं प्रभुः ॥ ३७ ॥

समीक्ष्य कल्किः प्रोवाच पितामहमिवेश्वरः ।
दिशां पालान्विजित्याहं धनान्याहृत्य इत्युत ॥ ३८ ॥

इस समस्त परिवारसे युक्त और सर्व सम्पत्तिसे कल्किजी युक्त हुए । उन्होंने ब्रह्माजीके समान पिताजीको (१) अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करनेमें तैयार हुआ देखकर कहा कि, मैं दिक्पालोंको पराजित कर धन इकट्ठा करके ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

कारयिष्याम्यश्वमेधं यामि दिग्विजयाय भोः ॥ ३९ ॥

आपको अश्वमेधयज्ञ कराऊंगा । इस समय दिग्विजयके अर्थ यात्रा करता हूं ॥ ३९ ॥

---

(१) अश्वमेधयज्ञ प्राचीन वैदिक यज्ञ है । ऋग्वेदमेंभी अश्वमेधका वर्णन है । शुक्लयजुर्वेदके शतपथ ब्राह्मणमें अश्वमेधयज्ञका वर्णन विस्तारस लिखा है । राजाके अतिरिक्त और किसी साधारण मनुष्यको अश्वमेधयज्ञका अधिकार नहीं था ।

इस यज्ञमें पशुकी आवश्यकता होती है । अश्वही प्रधान पशु है । छागादि और पशुभी अनावश्यक नहीं हैं, तोभी इन पशुओंकी प्रधानता नहीं । यज्ञकें लिये इक्कीस खम्भ बनाये जातेथे । बिचले खम्भमें यज्ञके अश्वको बांधकर उसका संस्कार किया जाता था । फिर राजाकी आज्ञासे वह अश्व इच्छानुसार घूमनेको छोडदिया जाता था । राजकुमारगण अश्वकी रक्षा करते और कोई राजा यज्ञको बिगाडनेके दुरभिलाषसे यज्ञका घोडा हरण करता तो अश्वके रक्षक राजालोग युद्ध करके तिसका उद्धार करते थे । इस प्रकारसे भ्रमण करनेके पीछे यज्ञके घोडेको यज्ञक्षेत्रमें लौटालाते । एक वर्षमें घोडेकी लौटनेकी विधि है । उस संस्कृत और लौटे हुए अश्वको मंत्रमें कहे हुए अनुष्ठानसे वध करके होम किया जाता था । यज्ञके पीछे दक्षिणादान और अवभृथस्नान है । उन सब बातोंका लिखना निष्प्रयोजन है । अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करनेके पीछे इन्द्रपदवी प्राप्तिका अधिकार या पुण्य होता है । अश्वमेध यज्ञके घोडेपर यजमान राजाका और प्रतिद्वन्द्वी अश्वचोर राजाका भयानक युद्ध हुआ करता था । संस्कृतशास्त्रमें प्रवाद है कि, इन्द्र अपने इन्द्रत्व लोप होजानेके डरसे यजमान राजाके अश्वको चुरा लेता था । इन्द्रने राजा सगरका घोडा चुराया था, रघुके नेत्रोंको बचाकर दिलीपके यज्ञका घोडा लेकर भागा था । इस प्रकारके अनेक उपाख्यान संस्कृत ग्रन्थोंमें लिखे हैं । इन बाधाविपत्तियोंसे बचकर कहीं अश्वमेध यज्ञ पूरा हो जाता था । इस यज्ञको कोई बडा चक्रवर्ती राजाही करता था ।

इति प्रणम्य तं प्रीत्या कल्किः परपुरञ्जयः ।
सेनागणैः परिवृतः प्रययौ कीकटं पुरम् ॥ ४० ॥

यह कहकर शत्रुपुरके जीतनेवाले कल्किजीने प्रसन्न हो पिताको नमस्कार किया । फिर वह सेनाके साथ पहले कीकटपुरको (जीतनेके लिये) चले ४०

बुद्धालयं सुविपुलं वेदधर्म्मबहिष्कृतम् ।
पितृदेवार्चनाहीनं परलोकविलोपकम् ॥ ४१ ॥

यह कीकटपुर अत्यन्त विस्तृत नगर है । बौद्धोंका प्रधान आलय है । इस देशमें वैदिक धर्मका अनुष्ठान नहीं, यहांके लोग पितृपूजा या देवपूजा नहीं करते और परलोकका भयभी नहीं रखते ॥ ४१ ॥

देहात्मवादबहुलं कुलजातिविवर्जितम् ।
धनैः स्त्रीभिर्भक्ष्यभोज्यैः स्वपराभेददर्शिनम् ॥ ४२ ॥

इस देशमें बहुत लोग शरीरमेंही आत्माभिमान करते हैं । वह दृश्यमान शरीरके अतिरिक्त और आत्माको स्वीकार नहीं करते । उनको कुलाभिमान या जात्यभिमान कुछभी नहीं है, वह लोग धनके विषयमें, स्त्रीगण करनेके विषयमें या भोजनके विषयमें सबकोही समान समझते हैं, किसीको भी ऊंच या नीच नहीं जानते ॥ ४२ ॥

नानाजनैः परिवृतं पानभोजनतत्परैः ॥ ४३ ॥

इस देशमें अनेक प्रकारके मनुष्य हैं । वह सबही पान भोजनादि रूप (इस लोकके सुखसाधन) करनेमेंही समय बिताते हैं ॥ ४३ ॥

श्रुत्वा जिनो निजगणैः कल्केरागमनं क्रुधा ।
अक्षौहिणीभ्यां सहितः संबभूव पुराद्बहिः ॥ ४४ ॥

इसके उपरान्त जिनने जब सुना कि, कल्कि सेवकोंके साथ युद्ध कर-

नेको आते हैं, तब वह दो अक्षौहिणी (१) सेनाके सहित (संग्राम करनेके अर्थ) नगरसे बाहर निकला ॥ ४४ ॥

गजरथतुरगैः समाचिता भूः कनकविभूषणभूषितैर्वराङ्गैः ।
शतशतरथिभिर्धृतास्त्रशस्त्रैर्ध्वजपटराजिनिवारितातपैर्बभौ सा॥४५॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे बुद्धनिग्रहे कीकट-पुरगमनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

शत २ तुरंगोंसे, शत२ रथोंसे, शत२ हाथियोंसे सुवर्ण-भूषणविभूषित श्रेष्ठवर्णके रथियोंसे और अस्त्र शस्त्रधारी (पदातिसमूह) से पृथ्वी ढकगई । सेनाकी पताकाओंके समूहसे धूपका निवारण होने लगा । तिस कालमें युद्धार्थी लोग अनहुई शोभाको धारण करते हुए ॥ ४५ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे बुद्धनिग्रहे बलदेवप्रसादमिश्रकृत-भाषाटीकायां कीकटपुरगमनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

---

(१) सेनाकी एक विशेष संख्याका नाम है । २१८७०-हाथी, २१८७० रथ, ६५६१० घोडे और १०९३५० पैदलकी एक अक्षौहिणी होती है । सब जोड २१८७०० हुआ ।

कोषकार अमरसिंहने कहा है ।

एकेभैकरथा त्र्यश्वा पत्तिः पञ्चपदातिका । पत्त्यङ्गैस्त्रिगुणैः सर्वैः क्रमादाख्या यथोत्तरम् ॥
सेनामुखं गुल्मगणौ वाहिनी पृतना चमूः । अनीकिनी दशानीकिन्यक्षौहिण्यथ सम्पदि ॥
(अमरकोष स्वर्गवर्ग ८०।८१ श्लोक)

	रथ ।	हाथी ।	घोडे ।	पैदल ।	जोड ।
पत्ति	१	१	३	५	१०
सेनामुख	३	३	९	१५	३०
गुल्म	९	९	२७	४५	९०
गण	२७	२७	८१	१३५	२७०
वाहिनी	८१	८१	२४३	४०५	८१०
पृतना	२४३	२४३	७२९	१२१५	२४३०
चमू	७२९	७२९	२१८७	३६४५	७२९०
अनीकिनी	२१८७	२१८७	६५६१	१०९३५	२१७७०
अक्षौहिणी	२१८७०	२१८७०	६५६१०	१०९३५०	२१८७००

सेनाकी यह प्राचीन गिननेकी रीति है । जैसे अँग्रेजोंके "रेजीमेन्ट" "ब्रिगेड" आदि हैं; वैसेही हमारे यहां पृतना, चमू, पत्ति, अनीकिनी आदिसे सेनाके गणित करनेकी रीति थी ।

द्वितीयांशः ।

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सूत उवाच-ततो विष्णुः सर्व्वजिष्णुः कल्किः कल्कविनाशनः ।
कालयामास तां सेनां कारिणीमिव केसरी ॥ १ ॥

सूतजी बोले-अनंतर सिंह जिस प्रकार हथिनीपर धावमान होता है, वैसेही पापापहारी सर्वविजयी विष्णु कल्किजीने उस बौद्धकी सेनापर धावा किया ॥ १ ॥

सेनाङ्गनां तां रतिसङ्गरक्षतां रक्तात्तवस्त्रां विवृतोरुमध्याम् ।
पलायतीं चारुविकीर्णकेशां विकूजतीं प्राह स कल्किनायकः ॥ २ ॥

नायकरूप सेनानायक कल्किजी, रतियुद्धके समान युद्धमें घायल हुई, रुधिर लगे वस्त्र पहिरे, जिसका मध्यदेश (कमर) खुला हुआ है ऐसी भागती हुई, खुले बालवाली, चिल्लाती हुई सेनारूप स्त्रीसे बोले ॥ २ ॥

रे बौद्धा मा पलायध्वं निवर्त्तध्वं रणाङ्गणे ।
युध्यध्वं पौरुषं साधु दर्शयध्वं पुनर्मम ॥ ३ ॥

रे बौद्धगण ! तुम लोग रणभूमिसे भागो मत, लौटो, युद्ध करो, तुम्हारी जितनी सामर्थ्य है तिसके दिखानेमें कसर मत करो ॥ ३ ॥

जिनो हीनबलः कोपात्कल्केराकर्ण्य तद्वचः ।
प्रतियोद्धुं वृषारूढः खड्गचर्म्मधरो ययौ ॥ ४ ॥

पहले तो जिन (१) हीन हुआथा वह अब कल्किजीके यह वचन सुन क्रोधमें भर ढाल तलवार लेकर युद्ध करनेके लिये कल्किजीके प्रति दौडा ४ ॥

---

(१) जिन-बुद्ध, अर्हत् । बुद्ध वा अर्हत् जयशील होनेसे जिन नाम करके पुकारे जाते हैं, यहांका जिन कल्किजीके समयका एक जिनोक्त धर्मावलम्बी राजा व उक्त सम्प्रदायका नेता मानागया है । स्वयं बुद्धजीके सिवाय, जो लोग बौद्धधर्ममें पूर्णरूपसे पारदर्शी होते वही अर्हत् जिन इत्यादि उपाधि प्राप्त करते थे। कृषि भारद्वाज और सुन्दरिक भारद्वाज नामक दो वैदिक धर्मावलम्बी ब्राह्मणोंने भगवान् बुद्धजीको गुरु बनाय बौद्धधर्मको ग्रहण करके अर्हत् उपाधि पाई थी । (सूत्रनिपात बौद्धोंका ग्रंथ देखो ।)

नानाप्रहरणोपेतो नानायुधविशारदः ।
कल्किना युयुधे धीरो देवानां विस्मयावहः ॥ ५ ॥

वह अनेक प्रकारके अस्त्रोंसे संग्राम करनेमें चतुर था, इस कारण बहुतसे अस्त्र ग्रहण करके कल्किजीके साथ युद्ध करने लगा । उस संग्राम करनेमें निपुण जिनने ऐसा युद्ध करना आरम्भ किया कि, जिसको देखकर देवताओंकोभी विस्मय हुआ ॥ ५ ॥

शूलेन तुरगं विद्धा कल्किं बाणेन मोहयन् ।
क्रोडीकृत्य द्रुतं भूमेर्नाशकत्तोलनाहृतः ॥ ६ ॥

उसने शूल चलाकर घोडोंको बींध डाला और बाणसे कल्किजीको मोहित व अचेतन किया । फिर उसने शीघ्रतासे तिनको (हरण करके ले जानेके मनसे) गोदीमें उठानेकी चेष्टा की; परन्तु किसी प्रकारसे नहीं उठा सका ॥ ६ ॥

जिनो विश्वेश्वरं ज्ञात्वा क्रोधाकुलितलोचनः ।
चिच्छेदास्य तनुत्राणं कल्केः शस्त्रं च दासवत् ॥ ७ ॥

तब जिनने कल्किजीको विश्वम्भर मूर्ति जाना, क्रोधके मारे तिसके नेत्र चलायमान होगये । फिर उसने कल्किजीको बन्दीकी समान समझकर तिनका वर्म (बख्तर) और अस्त्र शस्त्र तोडताड डाले ॥ ७ ॥

विशाखयूपोऽपि तथा निहत्य गदया जिनम् ।
मूर्च्छितं कल्किमादाय लीलया रथमारुहत् ॥ ८ ॥

यह देखकर राजा विशाखयूपने जिनको गदा मारकर घायल किया और लीलासेही मूर्च्छित हुए कल्किजीको ग्रहण करके अपने रथपर चढा ॥ ८ ॥

लब्धसंज्ञस्तथा कल्किः सेवकोत्साहदायकः ।
समुत्पत्य रथात्तस्य नृपस्य जिनमाययौ ॥ ९ ॥

कल्किजीभी चैतन्य हुए । वह भक्तोंके उत्साह देनेको विशाखयूप राजाके रथसे छलांगमार पृथ्वीपर कूदे और जिनके सामने गमन करते हुए ॥ ९ ॥

शूलव्यथां विहायाजौ महासत्त्वस्तुरङ्गमः ।
रिङ्गणैर्भ्रमणैः पादविक्षेपहननैर्मुहुः ॥ १० ॥

महाबली कल्किजीके अश्वभी शूलकी व्यथाको दूर बहाय संग्राम-भूमिमें आय, कूदकर, भ्रमण कर लातें चलाकर ॥ १० ॥

दण्डाघातैः सटाक्षेपैर्बौद्धसेनागणान्तरे ।
निजघान रिपून् कोपाच्छतशोऽथ सहस्रशः ॥ ११ ॥

दांतोंसे काटकर केशोंको चलायमानकर बौद्धसेनाके मध्यमें स्थित हुए सैकडों हजारों शत्रुओंको क्रोधमें भरकन नाश करते हुए ॥ ११ ॥

निश्वासवातैरुड्डीय केचिद् द्वीपान्तरेऽपतन् ।
हस्त्यश्वरथसंबाधाः पतिता रणमूर्द्धनि ॥ १२ ॥

(इन भयंकर घोडोंके) श्वासकी पवनसे कोई कोई वीर दूसरे द्वीपमें उडकर गिरे और कोई इस श्वासकी पवनसे उडतेही हाथी घोडे और रथा-दिसे टकराकर रणभूमिमेंही गिरने लगे ॥ १२ ॥

गर्गा जघ्नुः षष्टिशतं गर्गः कोटिशतायुतम् ।
विशालस्तु सहस्राणां पञ्चविंशं रणे त्वरन् ॥ १३ ॥

गर्ग और तिसके अनुचरोंने थोडे समयके बीचमेंही बौद्धोंकी साठ हजार सेनाका नाश किया । सेनाके सहित गर्गनेभी एक करोड दश हजार सेनाका संहार किया । विशाल और उसकी सेनाने बौद्धोंकी पचीस हजार सेनाको हराया ॥ १३ ॥

अयुते द्वे जघानाजौ पुत्राभ्यां सहितः कविः ।
दशलक्षं तथा प्राज्ञः पञ्चलक्षं सुमन्त्रकः ॥ १४ ॥

संग्राम करके कविने दोनों पुत्रोंकी सहायतासे शत्रुओंकी २० हजार सेनाका संहार किया । इस प्रकारही प्राज्ञने दश लाख और सुमंत्रकने पांच लाख सेनाको हराय रणमें शयन करादिया ॥ १४ ॥

जिनं प्राह हसन् कल्किस्तिष्ठाग्रे मम दुर्मते ।
दैवं मां विद्धि सर्वत्र शुभाशुभफलप्रदम् ॥ १५ ॥

इसके उपरान्त कल्किजीने हँसकर जिनसे कहा, रे दुर्मते ! भागता क्यों है ? सन्मुख आ । सर्वत्र शुभाशुभ फलदाता अदृष्टस्वरूप मुझको समझ । (अर्थात् तुम जैसा पापाचरण करते आये हो, मैं तैसाही फल दूंगा) ॥ १५ ॥

मद्बाणजालभिन्नाङ्गो निःसङ्गो यास्यसि क्षयम् ।
न यावत्पश्य तावत्त्वं बन्धूनां ललितं सुखम् ॥ १६ ॥

तुम अभी मेरे बाणोंसे घायल देहवाले होकर परलोकको जाओगे, तिस कालमें कोईभी तुम्हारे साथ नहीं जायगा, अतएव इस बीचमें तुम भाई बन्धुओंका ललित सुख देखलो ॥ १६ ॥

कल्केरितीरितं श्रुत्वा जिनः प्राह हसन् बली ।
दैवं त्वदृश्यं शास्त्रे ते वधोऽयमुररीकृतः ॥
प्रत्यक्षवादिनो बौद्धा वयं यूयं वृथाश्रमाः ॥ १७ ॥

कल्किजीके यह वचन सुन बलवान् जिनने हँसकर कहा, अदृष्ट कभी प्रत्यक्ष नहीं होता, हम लोग प्रत्यक्षवादी बौद्ध हैं, प्रत्यक्षके सिवाय और किसीको नहीं मानते । शास्त्रमें कहा है कि, अदृष्ट (और प्रत्यक्ष विषय) हमारे द्वारा हत होगा ॥ १७ ॥

यदि वा दैवरूपस्त्वं तथाप्यग्रे स्थिता वयम् ।
यदि भेत्तासि बाणौघैस्तदा बौद्धैः किमत्र ते ॥ १८ ॥

इससे तुम वृथा परिश्रम करते हो, यद्यपि तुम दैवस्वरूप होओ तथापि हम लोग सामने खडे हैं । जो तुम बाणसे हमको बींधलो तो क्या बौद्धगण तुमको क्षमा करेंगे ॥ १८ ॥

सोपालम्भं त्वया ख्यातं त्वय्येवास्तु स्थिरो भव ।
इति क्रोधाद्बाणजालैः कल्किं घोरैः समावृणोत् ॥ १९ ॥

तुमने जो हमारे प्रति तिरस्कारके वचन कहे, सो तुमपरही लौटें, स्थिर होओ । जिनने यह कहकर तीक्ष्ण बाणोंसे कल्किजीको ढकदिया ॥ १९ ॥

स तु बाणमयं वर्षं क्षयं निन्येऽर्कवद्धिमम् ॥ २० ॥

सूर्यके दर्शनसे जिस प्रकार हिमका वर्षना क्षयको प्राप्त होजाता है, तैसेही बाणोंकी वह वर्षा कल्किजीसे क्षयको प्राप्त होने लगी ॥ २० ॥

ब्राह्मं वायव्यमाग्नेयं पार्जन्यं चान्यदायुधम् ।
कल्केर्दर्शनमात्रेण निष्फलान्यभवन् क्षणात् ॥ २१ ॥

ब्रह्मास्त्र, वायव्यास्त्र, आग्नेयास्त्र, मेघास्त्र व और समस्त अस्त्र कल्किजीको देखतेही क्षणभरमें निष्फल होगये ॥ २१ ॥

यथोषरे बीजमुप्तं दानमश्रोत्रिये यथा ।
यथा विष्णौ सतां द्वेषाद्भक्तिर्येन कृताप्यहो ॥ २२ ॥

जिस प्रकार ऊषर खेतमें बीज बोनेसे तिससे नाजकी उत्पत्ति नहीं होती, जिस प्रकार अश्रोत्रिय (वेद न पढा हुआ) पात्रको दान करनेसे फल नहीं प्राप्त होता, जिस प्रकार साधुजनका अनिष्ट करके विष्णुजीके प्रति भक्ति करनेसे पुण्य नहीं होता (वैसेही जिनके समस्त अस्त्र विफल होने लगे)२२

कल्किस्तु तं वृषारूढमवप्लुत्य कचेऽग्रहीत् ।
ततस्तौ पेततुर्भूमौ ताम्रचूडाविव क्रुधा ॥ २३ ॥

इसके उपरान्त कल्किजीने छलांग मारकर बैलपर चढेहुए जिनके केश-ग्रहण करलिये । तब अरुण शिखा (मुर्गे) की समान दोनोंही पृथ्वीमें गिरकर क्रोधसहित (अछाड पछाड और झपट) करने लगे ॥ २३ ॥

पतित्वा स कल्किकचं जग्राह तत्करं करे ॥ २४ ॥

पृथ्वीमें गिरकर जिनने एक हाथसे कल्किजीके केश और एक हाथसे उनका हाथ पकड लिया ॥ २४ ॥

ततः समुत्थितौ व्यग्रौ यथा चाणूरकेशवौ ।
धृतहस्तौ धृतकचावृक्षाविव महाबलौ ॥
युयुधाते महावीरो जिनकल्की निरायुधौ ॥ २५ ॥

फिर चाणूरनामक दैत्य और केशवकी समान दोनों जने तत्काल पृथ्वी-परसे उठे दोनोंने दोनोंके केश और हाथ पकड लिये । यह दोनों महावीर

आयुधहीन हो, दो महाबली रीछोंके समान मल्लयुद्ध करनेलगे (१) ॥२५॥

ततः कल्किर्महायोगी पदाघातेन तत्कटिम् ।
विभज्य पातयामास तालं मत्तगजो यथा ॥ २६ ॥

तब मतवाला हाथी जिस प्रकार ताडके वृक्षको तोड डालता है; तैसेही महावीर कल्किजीने लात मारकर जिनकी कमर तोडकर उसको पृथ्वीमें गिरादिया ॥ २६ ॥

जिनं निपतितं दृष्ट्वा बौद्धा हाहेति चुक्रुशुः ।
कल्केः सेनागणा विप्रा जहृषुर्निहतारयः ॥ २७ ॥

जिनको (रणभूमिमें पडाहुआ) देख बौद्धोंकी सेना हाहाकार करने लगी, हे ब्राह्मणो ! शत्रुके मारे जानेसे कल्किजीकी सेनाके हर्षकी सीमा न रही ॥ २७ ॥

जिने निपतिते भ्राता तस्य शुद्धोदनो बली ।
पादचारी गदापाणिः कल्किं हन्तुं द्रुतं ययौ ॥ २८ ॥

इस प्रकारसे जिनके रणमें गिरनेपर उनका भ्राता महाबली शुद्धोदन(२) गदा ग्रहण करके पैदलही कल्किजीका नाश करनेके अभिप्रायसे तत्काल दौडा ॥ २८ ॥

कविस्तु तं बाणवर्षैः परिवार्य्य समन्ततः ।
जगर्ज्ज परवीरघ्नो गजमावृत्य सिंहवत् ॥ २९ ॥

तब हाथीपर चढेहुए, शत्रु वीरके संहार करनेवाले कविने बाण वर्षाय-कर शुद्धोदनको छायलिया और सिंहके समान गर्जने लगा ॥ २९ ॥

---

(१) चाणूर–मथुराके पति कंसका अनुचर विशेष । कंसके यहां धनुष्ययज्ञमें जाय श्रीकृष्णजीने चाणूर और मुष्टिक मल्लको मारा । (भागवत, विष्णुपुराण)

चाणूर अन्ध्रदेशका रहनेवाला था । (हरिवंश) वर्त्तमान, हैदराबाद दक्षिणमें प्राचीन आन्ध्रदेश था, बस ज्ञात हुआ कि; चाणूर दाक्षिणी था । आन्ध्रका पिछला नाम त्रिकलिंग (तैलंग) है, इस कारण चाणूरको तैलङ्गी भी कहा जासकता है ।

(२) शुद्धोदन–भगवान् शाक्यसिंह बुद्धजीके पिताका नाम शुद्धोदन इस कारण बुद्धको शौद्धोदन शौद्धोदनि कहते हैं । (महावंश, ललितविस्तर)

गदाहस्तं तमालोक्य पात्तिं स धर्म्मवित्कविः ।
पदातिगो गदापाणिस्तस्थौ शुद्धोदनाग्रतः ॥ ३० ॥

शुद्धोदनको गदा हाथमें लिये और पैदल देखकर धर्मका जाननेवाला कविभी (हाथीसे उतरकर) पैदल हो गदा ग्रहण करके शुद्धोदनके सामने खडा होगया ॥ ३० ॥

स तु शुद्धोदनस्तेन युयुधे भीमविक्रमः ।
गजः प्रतिगजेनेव दन्ताभ्यां सगदावुभौ ॥ ३१ ॥
युयुधाते महावीरौ गदायुद्धविशारदौ ।
कृतप्रतिकृतौ मत्तौ नदन्तौ भैरवान् रवान् ॥ ३२ ॥

भीमविक्रम शुद्धोदननेभी तिसके साथ युद्ध करना आरम्भ किया। जिस प्रकार हाथी शत्रुके हाथीके साथ दांतोंसे युद्ध करता है तैसेही गदायुद्ध-विशारद महावीर कवि और शुद्धोदन दोनों गदायुद्ध करने लगे। दोनोंने रणमदमत्त होनेके कारण भयंकर शब्द करना आरम्भ किया और गदासे एक दूसरेकी चोटको निवारण करनेलगे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

कविस्तु गदया गुर्व्या शुद्धोदनगदां नदन् ।
करादपास्याशु तया स्वया वक्षस्यताडयत् ॥ ३३ ॥

इसके उपरान्त कविने सिंहनाद करके गदाके बडे आघात करके शुद्धो-दनके हाथसे गदा गिराकर तत्काल अपनी गदाको तिसकी छातीमें मारा॥ ३३॥

गदाघातेन निहतो वीरः शुद्धोदनो भुवि ।
पतित्वा सहसोत्थाय तं जघ्ने गदया पुनः ॥ ३४ ॥

गदासे घायल होकर वीर शुद्धोदन तत्काल पृथ्वीमें गिरपडा; परन्तु सहसा उठकर फिर गदासे उसको मारा ॥ ३४ ॥

सन्ताडितेन तेनापि शिरसा स्तम्भितः कविः ।
न पपात स्थितस्तत्र स्थाणुवद्विह्वलेन्द्रियः ॥ ३५ ॥

कवि उस गदासे ताडित होकर पृथ्वीपर गिरा तो नहीं; परन्तु विकले-न्द्रिय और अचेतन होकर खम्भके समान खडा रहगया ॥ ३५ ॥

शुद्धोदनस्तमालोक्य महासारं रथायुतैः ।
प्रावृतं तरसा माया-देवीमानेतुमाययौ ॥ ३६ ॥

फिर जब शुद्धोदनने देखा कि, यह महाबली और पराक्रमी है हजारों रथी इसके साथ हैं, तब वह तत्काल (१) मायादेवीके बुलानेको चलागया ॥ ३६ ॥

---

(१) मायादेवी—माया । बौद्धलोग मायावादी हैं, इसीसे इनका दूसरा नाम माया है । युद्धभूमिमें मायादेवीके आनेका भावार्थ ऐसा है:—युद्धमें कल्किजीके पराजित करनेको असमर्थ होकर फिर बौद्धोंने मायायुद्ध करना आरम्भ किया । इस मायायुद्धका उत्पन्न करनेवाला शम्बरासुर था । इसीसे मायाका दूसरा नाम शाम्बरी (सावरि) है । दैत्यलोग बहुधा समरमें मायायुद्ध किया करते थे । इन्द्रजित्, घटोत्कच इत्यादि राक्षस और चित्रसेनादि गन्धर्वगणभी मायायुद्धमें चतुर थे । असुरोंसे किसी किसी मनुष्यनेभी मायायुद्ध सीखा था । राजा दुर्योधनके मामा शकुनिने पाण्डवोंके साथ अनेक प्रकारका मायायुद्ध किया था । मायायुद्धमें अद्भुत बातें हुआ करती हैं । युद्धस्थानमें अचानक सिंह, व्याघ्र, सर्प, अग्नि, जल, आंधी, बिजली आदि उत्पन्न होकर शत्रुओंको डराकर मारदेते हैं । इसी कारण मायाको अघटनघटनापटीयसी और विसदृशप्रतीतिसाधनी कहते हैं ।

विचित्रकार्यकरणा अचिन्तितफलप्रदा । स्वप्नेन्द्रजालवल्लोके माया तेन प्रकीर्त्तिता ॥
(देवीपुराण ४५ अध्याय)

इस ओर माया ईश्वरशक्ति है, इसीसे यह मायादेवी संग्राममें आय कल्किजीके देहमें प्रवेश कर अन्तर्द्धान होगई । मायाके नाम, यथा—प्रकृति, अविद्या, अज्ञान, प्रधान शक्ति, अजा है ।

भगवती दुर्गाके नाम यह हैं—

दुर्गे शिवेऽभये माये नारायणि सनातनि । जये मे मंगलं देहि नमस्ते सर्वमंगले ॥
राजल्लक्ष्मीवचनो माश्च याश्च प्रापणवाचकः । तां प्रापयाति या सद्यः सा माया परिकीर्त्तिता॥
माश्च मोहार्थवचनो याश्च प्रापणवाचनः । तं प्रापयाति या नित्यं सा माया परिकीर्त्तिता॥
(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड २७ अ०)

बौद्धोंका मायावादी होना नीचेके दो श्लोकोंसे प्रगट है । श्रीकृष्णजी कहते हैं—
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया । मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥
न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः । माययाऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥
(गीता ७ अ० १४ । १५ श्लोक)

मायावादी होनेके कारण बौद्धलोग ईश्वरको नहीं मानते इस कारण नास्तिक हैं ।
बौद्ध, आर्हत, जैनादि धर्मावलम्बियोंका नास्तिक और असुरस्वभाव स्वयं कृष्णजीने अर्जुनसे कहा है । भगवद्गीता १६ अध्याय ७ । ८ । ९ । १० । ११ श्लोक देखो ।—

यस्या दर्शनमात्रेण देवासुरनरादयः ।
निःसाराः प्रतिमाकारा भवन्ति भुवनाश्रयाः ॥ ३७ ॥

इस मायादेवीको देखतेही देव, असुर, मनुष्य आदि त्रिलोकीके समस्त प्राणीही तेजरहित और प्रतिमाकी समान चेष्टाहीन होजाते हैं ॥ ३७ ॥

बौद्धाः शौद्धोदनाद्यग्रे कृत्वा तामग्रतः पुनः ।
योद्धुं समागता म्लेच्छकोटिलक्षशतैर्वृताः ॥ ३८ ॥

फिर शौद्धोदन आदि बौद्धगण उस मायादेवीको सामने लाय लाख लाख

–शाक्यसिंह बुद्धदेवकी माताका नामभी मायादेवी है । इसी कारणसे बुद्धदेवका नाम मायासुत और मायादेवीसुत है । (ललितविस्तर, महावंश अमरकोष)

इस और बौद्ध या सौगतके मतसे वाक्, पाणि, चरण, पायु और शिश्न यह पञ्चकर्मेन्द्रिय; नाक, जीभ, नेत्र, खाल और कान, यह पांच ज्ञानेन्द्रिय; मन और बुद्धि इन बारह इन्द्रियोंवाले शरीरकी भलीभांतिसे सेवा करनाही प्रधान कर्म है। (अष्टादश विद्या १ खण्डमें) कहा है । इसीसे देखा जाता है कि, गीतामें कहे हुए असुरस्वभाववाले नास्तिकोंका कामोपभोग और इन बौद्ध वा सौगत लोगोंका १२ स्थानवाले शरीरकी भलिभांतिसे सेवा करना एकही कर्म और धर्म है ।

परन्तु बौद्धधर्मके ग्रंथोंमें लिखा है कि, भगवान् शाक्यसिंह स्वयं काम (मार) को जीतकर कामजित् वा मारजित् हुए थे । उन्होंने औरोंकोभी कामदेवको जीतनेको बहुत उपदेश दियेथे । पालिभाषाके सूत्रनिपातनामक ग्रंथमें लिखा है–

जिसको कामभोगके प्राप्त करनेकी वासना हो और तिसमें वह पुरुष निष्फल हो तो उसके हृदयमें दुःख होता है और वह यहांपर बहुत दुःख पाता है । सर्पपर पांव रखनेकी समान जिसने इन्द्रियसुखको त्याग दिया है, उसने तृष्णा या वासनाको जीत लिया । दास, दासी, गाय, घोडा, चांदी, सोना, पृथ्वी वा अनेक प्रकारके धनोंका जो आदमी बहुत लोभ करता है निश्चय पाप उसको घेरेगा, विपत्तियोंके हाथसे उसका मर्दन होगा । उसके पीछे दुःख इस प्रकार जांयगे जैसे बांध टूटनेपर पानी बहता है, इस कारण अप्रमत्त और चिन्ताशील होना चाहिये, आनन्द सुखको सदा छोडें तब नावमें बैठे हुए यात्रीकी समान पार होजायगा ॥ सूत्रनिपात (बौद्धग्रंथ धर्मराज वन्द्योपाध्यायके द्वारा अनुवादित) इस प्रकार औरभी बहुत कुछ लिखा है ।

म्लेच्छ (१)सेनापतियोंको साथलेकर युद्ध करनेके लिये उपस्थित हुए ३८

(१) म्लेच्छगण–अनार्यगण, अहिन्दूगण । यथाः–

गोमांसखादको यस्तु विरुद्धं बहु भाषते । सर्वाचारविहीनश्च म्लेच्छ इत्यभिधीयते ॥
(प्रायश्चित्ततत्त्वधृतवौधायनवचन)

पौण्ड्रकाश्चौण्डद्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः । पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः॥
मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः । म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥
(मनु० १० अध्याय)

पौण्ड्रक, औण्ड्र, द्रविड, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद, खशादि अनार्य, जातिवाले म्लेच्छ कहलाते हैं ।

म्लेच्छदेश यथाः–

चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानं यस्मिन्देशे न विद्यते । म्लेच्छदेशः स विज्ञेय आर्यावर्त्तस्ततः परम् ॥
(टीकाकार भरत)

म्लेच्छ जातिकी उत्पत्ति महाराज ययातिके पुत्र तुर्वसु और द्रुह्युसे हुई है । जराके ग्रहण न करनेसे ययातिने इनको यह शाप दिया था कि, तुम्हारी सन्तान सन्तति वेदविरुद्ध म्लेच्छ जाति होगी ।　　(भागवत)

म्लेच्छोंकी उत्पत्तिके विषयमें मतभेदभी पाया जाता है । ब्राह्मणोंने जगत्के अहितकारी महापापी वेन राजाको शाप देकर मारडाला; फिर तिसकी देहको मथा । तिसके शरीरसे काले अंजनकी समान प्रभावाली (कृष्णवर्ण) म्लेच्छ जाति उत्पन्न हुई थी । यथाः–

वंशे स्वायम्भुवे ह्यासीदंगो नाम प्रजापतिः । मृत्योस्तु दुहिता तेन परिणीताऽतिदुर्मुखी ॥
सुतीर्था नाम तस्यास्तु वेनो नाम सुतः पुरा । अधर्मनिरतः कामी बलवान् वसुधाधिपः ॥
लोकेऽप्यधर्मकृज्जातः परभार्यापहारकः । धर्माचारप्रसिद्ध्यर्थं जगतोऽस्य महर्षिभिः ॥
अनुनीतोऽपि न ददद्दनुज्ञां स यदा ततः । शापेन मारयित्वैनमराजकभयार्दिताः ॥
ममन्थुर्ब्राह्मणास्तस्य बलाद्देहमकल्मषाः । तत्कायान्मथ्यमानात्तु निष्पेतुर्म्लेच्छजातयः ॥
शरीरे मातृवंशेन कृष्णाञ्जनसमप्रभाः ॥　　(मत्स्यपुराण १० अध्याय)

म्लेच्छ भाषाका सीखना वा अभ्यास करना आर्यगणोंके लिये वर्जित है । यथा–

न पातयेदिष्टकाभिः फलानि वै फलेन तु । न म्लेच्छभाषां शिक्षेत नाकर्षेच्च पदासनम् ॥
(कूर्मपुराण, उपविभाग २५ अध्याय)

महाभारतमेंभी ऐसाही वर्जन है; फिर महाभारतमें यहभी लिखा है कि, कोई २ आर्यजातिवालेभी म्लेच्छभाषाको सीखतेथे । यथाः–जब युधिष्ठिरादि वारणावत नगरको गये, तब महाबुद्धिमान् विदुरजीने धर्मराज युधिष्ठिरको म्लेच्छभाषामें उपदेश दिया था और युधिष्ठिरभी इनके कहनेको समझे थे । महाभारतके आदि पर्वका १४५ अध्याय देखो ।

महर्षि व्यासजीने आर्योंके लिये म्लेच्छभाषाका सीखना न सीखना दोनों बातें क्यों लिखीं इसका गूढ कारण है । कोई कोई वस्तु या विषय एक समयमें अनुकूल होता और फिर एक समयमें प्रतिकूल होजाता है । जब पहलीपहल भारतवर्षमें थोडेसे म्लेच्छ आर्यजातिका कोई कोई कार्य करनेके लिये प्रवेश कर आये थे तब आर्यजातिके लोग उनका विशेष आदर व

यत्न करते उनकी भाषा स्वयं सीखते और उनको अपनी भाषा सिखाते थे । परन्तु किसी बातका बहुत बढना अच्छा नहीं, फिर यहांतक हुआ कि, आर्य लोगोंमें बहुतसे म्लेच्छ बसकर अपने आचार व्यवहारोंको दिखाने लगे । आजकल जिस प्रकार अनेक हिन्दू लोग; मुसल्मान व अँगरेजोंके आचार व्यवहारमें लिप्त हो न खानेके योग्य वस्तुएँ खाते हैं । इसी भांति उस कालमें कोई २ हिन्दू मुसल्मानोंके साथ बहुत हेलमेल करके अखाद्य वस्तुएँ भोजन करते थे । इसही आचार व्यवहारकी रक्षाके लिये महाभारतादि धर्मग्रंथोंमें म्लेच्छका समागम करना तो दूर रहा म्लेच्छभाषाका सीखनातक वर्जित लिखा है । पराई भाषाके सीखनेसे-अपना आचार व्यवहार जितना बिगडता है, उतना और किसी बातसे नहीं बिगडता । प्रथम ज्ञान और युवा अवस्थाके समय धर्मके नाश होनेका विशेष खटका रहता है, सो हिन्दुओंको इसी समय अंग्रेजीकी शिक्षा मिलती है । इसी कारणसे साथही साथ धर्मका नाश होता हुआभी दिखाई देता है ।

शक, पह्लव, पारद, चीन, हूण, यवनादि जातिके लोग प्रथम क्षत्रिय थे, फिर बाहु राजाका राज्य हरलेने और उसको वनवासी करनेसे जब उसके पुत्र महाराज सगर उक्त लोगोंके मारनेको तैयार हुए, तब वे सब प्राणभयसे वसिष्ठजीकी शरणमें आये । वसिष्ठजीने राजा सगरसे कहा कि, शरणागतको मारना नहीं चाहिये । मैं इनको जीवनमृतक किये देता हूं ऐसा करनेसे तुम्हारी प्रतिज्ञा और इनके प्राण इन दोनोंकी रक्षा होजायगी । यह कहकर वसिष्ठजीने राजा सगरसे अपना आभप्राय प्रगट किया, तब राजा सगरने इन क्षत्रियोंको सनातन आर्यधर्म और द्विज-संगसे भ्रष्ट करके अनेक प्रकारके चिह्न इनके करदिये । शक लोगोंका आधा शिर मूंडा गया, यवन और काम्बोज (कम्बोह) लोगोंका समस्त शिर मूँडा गया, पारदोंको मुक्तकेश और पह्लवोंको दाढी मूछ धारण करनेकी आज्ञा दी और दूसरे क्षत्रियोंके स्वाध्याय (वेदाध्ययन) और वषट्कारसे दूर करादिया । दण्डित सब क्षत्रिय अपने धर्मके छूट जानेसे ब्राह्मणोंसे त्यागे जाकर म्लेच्छपनको प्राप्त हुए ।

(विष्णुपुराण ४ अंश, ३ अध्याय)

ज्ञात होताहै कि, भारतवर्षके बौद्धधर्मावलम्बी जिस समय हिन्दुओंसे फटकारे जाकर मध्य एशिया, चीन, काबुल, सिंहल, ब्रह्म, श्याम आदि राज्योंमें भागे और २ तिन स्थानोंके क्षत्रियादि आर्यजातिवाले अपने धर्मको छोड फटकारे या निकाले हुए लोगोंके द्वारा बौद्ध-धर्ममें दीक्षित हुए, उसी समय भारतवर्षके आर्योंने उनको जातिसे निकालकर म्लेच्छ कर-डाला । इन्हीं बातोंको लेकर पुराणोंमें सगर राजा करके शकादिका उपरोक्त दंड व म्लेच्छ-पन दान करनेके विषयमें उपाख्यान बने हैं ।

वाल्मीकीयरामायण और महाभारत यह दोनों ग्रन्थ भगवान् शाक्यसिंह बुद्धदेवके प्रगट होनेसे बहुतही पहलेके बने हैं, फिर किस कारणसे बौद्धोंका विषय इन दोनों ग्रंथोंमें स्थान पासकता है; परन्तु शाक्यसिंह बुद्ध देवके पहलेभी कल्पभेदसे अनेक बुद्धोंने जन्म लिया था, बौद्धशास्त्रसूत्रनिपातग्रंथमें लिखा है कि, शाक्यसिंह बुद्धदेवके पहले भद्रकल्पके तीसरे बुद्धका नाम कश्यपथा । यह शाक्यसिंह बुद्ध ईसूके जन्मसे ५५० वर्ष पहले हुएथे । डाक्टर राजा राजेन्द्र-लालमित्र (L. L. D., C. i. E) कहते हैं, कि, रामायण और महाभारत यह दोनों ग्रन्थ शाक्यसिंह बहुतही पहलेके बने हुएथे । (Indo-Aryans, Vol. I. P. 18) वाल्मीकीय-रामायणके अयोध्याकाण्डमें १०९ सर्गके मध्य श्रीरामचंद्रजी महर्षि जाबालिजीसे कहते हैं:-

सिंहध्वजोत्थितरथां फेरु-काक-गणावृताम् ।
सर्वास्त्रशस्त्रजननीं षड्वर्गपरिसेविताम् ॥ ३९ ॥

सिंहध्वजसे शोभायमान रथपर सवार हो मायादेवी अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र उत्पन्न करतीहुई । कौवे और गीदड तिसको चारों ओरसे घेरकर (घोर शब्द करना आरम्भ करते हुए) काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरता यह छः वर्ग तिसकी सेवा करने लगे ॥ ३९ ॥

नानारूपां बलवतीं त्रिगुणव्यक्तिलक्षिताम् ।
मायां निरीक्ष्य पुरतः कल्किसेना समापतत् ॥ ४० ॥

अनेक प्रकारके रूप धारण करनेवाली बलवती, त्रिगुणरूपवाली मायादेवीको सामने देखकर कल्किजीकी सेना एक २ करके प्रायः सबही गिरगई॥

निःसाराः प्रतिमाकाराः समस्ताः शस्त्रपाणयः ॥ ४१ ॥

वह योधालोग कि, जिनके हाथमें शस्त्र थे निस्तेज प्रतिमाकी समान साररहित हो गये ॥ ४१ ॥

कल्किस्तानालोक्य निजान्भ्रातृज्ञातिसुहृज्जनान् ।
मायया जायया जीर्णान्विभुरासीत्तदग्रतः ॥ ४२ ॥

इसके उपरान्त, अपने भ्राता, जाति और सुहृद लोगोंको मायारूप अपनी भार्यासे अभिभूत और जर्जरित होता हुआ देखकर विभु कल्किजी तिसके निकट पहुँचे ॥ ४२ ॥

तामालोक्य वरारोहां श्रीरूपां हरिरीश्वरः ।
सा प्रियेव तमालोक्य प्रविष्टा तस्य विग्रहे ॥ ४३ ॥

बौद्धको तस्करकी समान दण्ड देना चाहिये और नास्तिकके लिये भी यही दण्ड उचितहै । पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रद्वारा अनुवादित वाल्मीकीयरामायण अयोध्याकाण्ड १०९ सर्ग ॥

इससे भलीभांति प्रमाणित होता है कि, महर्षि वाल्मीकिजीके समयसे पहलेभी भारतवर्षमें बुद्धलोगोंने जन्म लेकर बौद्धधर्मका प्रचार किया था आर तिसकालके आर्य लोगोंकी ताडनासे देशको छोडकर बौद्ध लोग भारतवर्षके बाहर और देशोंको भागगये थे ॥

जब श्रीहरिने श्रीरूपा, श्रेष्ठ मुखवाली मायाकी ओर जैसेही देखा, वैसेही वह मायाभी प्यारी भार्याकी समान तिनके शरीरमें प्रवेश करके लीन होगई ॥ ४३ ॥

तामनालोक्य ते बौद्धा मातरं कतिधा वराः ।
रुरुदुः संघशो दीना हीनस्वबलपौरुषाः ॥ ४४ ॥

अपनी जननी मायाको न देख पायकर प्रधान प्रधान बौद्ध बल और पौरुषहीन होकर सैकडों इकट्ठे हो वारंवार आर्तनाद करने लगे ॥ ४४ ॥

विस्मयाविष्टमनसः क्व गतेयमथाब्रुवन् ।
कल्किः समालोकनेन समुत्थाप्य निजाञ्जनान् ॥ ४५ ॥

वह बडे विस्मित चित्तसे कहने लगे कि (हम लोगोंकी माता माया देवी) कहां चलीगई । इस ओर कल्किजीभी दृष्टि डालकर अपनी सेनाको उठाय ॥ ४५ ॥

निशातमसिमादाय म्लेच्छान् हन्तुं मनो दधे ।
सन्नद्धं तुरगारूढं दृढहस्तधृतत्सरुम् ॥ ४६ ॥

तीक्ष्ण असि ग्रहण करके म्लेच्छोंका नाश करनेके अभिलाषी हुए । उन्होंने तैयार व घोडेपर सवार हो हाथमें दृढतासे खड्गको धारण किया ४६॥

धनुर्निषङ्गमनिशं बाणजालप्रकाशितम् ।
धृतहस्ततनुत्राणगोधाङ्गुलिविराजितम् ॥ ४७ ॥

बाणोंके समूहसे शोभायमान तरकश और धनुष शोभायमान होने लगा । तिनके शरीरमें बख्तर और अंगुलित्राण (गुश्ताना) अपूर्व शोभाको विस्तार करता हुआ ॥ ४७ ॥

मेघोपर्य्युप्ततारामं दंशनस्वर्णविन्दुकम् ।
किरीटकोटिविन्यस्तमणिराजिविराजितम् ॥ ४८ ॥

उनके बख्तरके ऊपरीभागमें सुवर्णके विन्दु लगेथे सो ऐसे ज्ञात होनेलगे मानो नीलजलधर (नीले बादल) की मालामें तारे प्रकाशित होरहे हैं ॥ ४८ ॥

कामिनीनयनानन्दसन्दोहरसमन्दिरम् ।
विपक्षपक्षविक्षेपक्षिप्तरूक्षकटाक्षकम् ॥ ४९ ॥
निजभक्तजनोल्लास-संवासचरणाम्बुजम् ।
निरीक्ष्य कल्किं ते बौद्धास्तत्रसुर्धर्म्मनिन्दकाः ॥ ५० ॥

किरीटके अग्रभागमें लगे हुए अनेक प्रकारकी मणियें शोभायमान होने लगीं, वह विपक्षपक्ष (शत्रुओं) को विक्षिप्त (पागल) करनेके लिये तिनके प्रति रूक्ष (रूखा) कटाक्ष निक्षेप (डालने-चलाने) करने लगे । उनके चरणकमलका दर्शन करनेसे भक्तजनोंका मन हर्षित हुआ । कामिनियोंकी नयनानन्दधाराके रस-मन्दिरस्वरूप उन कल्किजीको देखकर धर्मकी निन्दा करनेवाले बौद्धलोग भयसे व्याकुल होगये ॥ ४९ ॥ ५० ॥

जहृषुः सुरसंघाः खे यागाहुतिहुताशनाः ॥ ५१ ॥

(धर्मनिन्दकोंके परास्त होनेसे) 'अग्निमें यज्ञस्थलके बीच फिर आहुति दीजायगी ' यह कहकर देवतालोग परम प्रसन्न हुए ॥ ५१ ॥

सुबलमिलनहर्षः शत्रुनाशैकतर्षः
समरवरविलासः साधुसत्कारकाशः ।
स्वजनदुरितहर्त्ता जीवजातस्य भर्त्ता
रचयतु कुशलं वः कामपूरावतारः ॥ ५२ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे बौद्धयुद्धो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सजी हुई सेनाके समूहके समागम करके हर्षित हो समस्त शत्रुओंका संहार करनेके अभिलाषी हुए थे, जो महासंग्राममें लीलापूर्वक युद्ध करते हैं, जो साधुवृन्दके सत्कार करनेकी अभिलाषासे अवतरेथे, जो निज जनोंके दुःखोंको दूर करते हैं, जो समस्त जीवोंके स्वामी हैं, जिन्होंने साधुगणोंकी

कामनाके पूर्ण करनेको पृथ्वीमें अवतार लिये हैं वह कल्किजी तुम्हारा मंगल करें ॥ ५२ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे बलदेवप्रसादमिश्रकृत-भाषाटीकायां बौद्धयुद्धो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

समाप्तोऽयं द्वितीयांशः ।

तृतीयांशः ।

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सूत उवाच—ततः कल्किर्म्लेच्छगणान्करवालेन कालितान् ।
बाणैः संताडितानन्याननयद्यमसादनम् ॥ १ ॥

उग्रश्रवा बोले—अनन्तर कल्किजी, म्लेच्छोंमें कुछेकको बाणोंसे बींधकर कुछेकको खड्गसे मारकर यमराजके गृहमें भेजते हुए ॥ १ ॥

विशाखयूपोऽपि तथा कविप्राज्ञसुमन्त्रकाः ।
गार्ग्यभार्ग्यविशालाद्या म्लेच्छान्निन्युर्यमक्षयम् ॥ २ ॥

इसी प्रकारसे विशाखयूप, कवि, प्राज्ञ, सुमंत्रक, गार्ग्य, भार्ग्य, विशाल आदि (वीर लोगों) ने भी इन म्लेच्छोंको यमराजके गृहमें पठाया ॥ २ ॥

कपोतरोमा काकाक्षः काककृष्णादयोऽपरे ।
बौद्धाः शौद्धोदना याता युयुधुः कल्किसैनिकैः ॥ ३ ॥

कपोतरोमा, काकाक्ष, काककृष्णादि बौद्ध और शौद्धोदनगण आकर कल्किजीकी सेनाके साथ संग्राम करने लगे ॥ ३ ॥

तेषां युद्धमभूद्धोरं भयदं सर्व्वदेहिनाम् ।
भूतेशानन्दजनकं रुधिरारुणकर्दमम् ॥ ४ ॥

ऐसा अत्यन्त घोर युद्ध हुआ कि, सर्व प्राणी डरे (यह देखकर सबका संहार करनेवाले तमोगुणयुक्त) भूतनाथ (महेश) आनन्दित हुए । रुधिर करके लालकीचके होनेसे संग्रामभूमि ढकगई ॥ ४ ॥

गजाश्वरथसंघानां पततां रुधिरस्रवैः ।
स्रवन्ती केशशैवाला वाजिग्राहा सुगाहिका ॥ ५ ॥

जो हाथी, घोडे और रथी गिरने लगे तिनके रुधिरकी एक नदी बहने लगी । इस नदीमें केश शिवारके समूहके समान शोभायमान होने लगे । अश्वरूप ग्राह धारमें मग्न (डूब) होगये ॥ ५ ॥

धनुस्तरङ्गा दुष्पारा गजरोधःप्रवाहिणी ।
शिरःकूर्म्मा रथतरिः पाणिमीनाऽसृगापगा ॥ ६ ॥

धनुष तरंगकी समान दिखाई देने लगे, हाथियोंने इस कठिनसे पार होने योग्य नदीके पुलिनकी समान शोभा धारण की । कटे हुए मस्तक इस रुधिरकी नदीमें कछुएकी समान, रथ नावकी समान, कटेहुए हाथ मीनकी समान ॥ ६ ॥

प्रवृत्ता तत्र बहुधा हर्षयन्ती मनस्विनाम् ।
दुन्दुभेयरवा फेरुशकुनानन्ददायिनी ॥ ७ ॥

नगाडोंकी ध्वनि (जलकिलोलके) शब्दकी समान शोभायमान होनें लगी । इस रुधिरकी नदीके किनारेपर गीदड और बाज पक्षियोंके आनन्दकी ध्वनि होने लगी, यह देखकर साधुगण प्रसन्न हुए ॥ ७ ॥

गजैर्गजा नरैरश्वाः खरैरुष्ट्रा रथै रथाः ।
निपेतुर्बाणभिन्नाङ्गाश्छिन्नबाह्वंघ्रिकन्धराः ॥ ८ ॥

गजारूढ (हाथीके सवार) गजारूढ योधाके साथ, घुडसवार घुडसवार योधाके साथ, उष्ट्रारूढ (ऊंटका सवार) उष्ट्रारूढ योधाके साथ, रथी रथीके साथ संग्राम करके बाणोंसे विद्ध और हथ कटे, चरण कटे व शिर कटे होकर गिरने लगे ॥ ८ ॥

भस्मना गुण्ठितमुखा रक्तवस्त्रा निवारिताः ।
विकीर्णकेशाः परितो यान्ति संन्यासिनो यथा ॥ ९ ॥

कुछेक लडवैये (परास्त और डरजानेसे) गेरुआँ कपडे पहर, मुँहपर राख मल, बाल खोले, संन्यासी वन, रोके जानेपरभी तहांसे जाने लगे॥९॥

व्यग्राः केऽपि पलायन्ते याचन्त्यन्ये जलं पुनः ।
कल्किसेनाशुगक्षुण्णा म्लेच्छा नो शर्म लेभिरे ॥ १० ॥

कोई कोई घवडाहटके मारे भागने लगे, कोई कोई वारंवार पानी माँगने लगे। इस प्रकार कल्किजीकी सेनाके बाणोंसे बिंधा हुआ म्लेच्छोंकी सेनाका कोईभी कुशलसे न रहा ॥ १० ॥

तेषां स्त्रियो रथारूढा गजारूढा विहङ्गमान् ।
समारूढा हयारूढाः खरोष्ट्रवृषवाहनाः ॥ ११ ॥

(म्लेच्छ सेनाके हार जानेपर) तिनकी स्त्रियें कोई रथपर चढकर, कोई हाथीपर चढकर, कोई विहङ्गमपर चढकर, कोई घोडेपर चढकर, कोई गधे-पर चढकर, कोई ऊंटपर चढकर, कोई बैलपर चढकर ॥ ११ ॥

योद्धुं समाययुस्त्यक्त्वा पत्यपत्यसुखाश्रयान् ।
रूपवत्यो युवत्योऽतिबलवत्यः पतिव्रताः ॥ १२ ॥

वहांपर युद्ध करनेको आईं जहांपर उनके पति युद्ध कररहे थे । इन रूपवती बलवती पतिव्रता युवती रमणियोंने पतिके सुख या सन्तानके आश्रयकी कामना नहीं की ॥ १२ ॥

नानाभरणभूषाढ्याः सन्नद्धा विशदप्रभाः ।
खड्गशक्तिधनुर्बाणवलयाक्तकराम्बुजाः ॥ १३ ॥

यह उजली कान्तिवाली स्त्रियाँ अनेक गहने पहर, युद्धके साजसे सज धजकर खड्ग, शक्ति, धनुष और बाण धारण करके आईथीं । इनके कर-कमलमें अपूर्व खँडुए शोभायमान हो रहे थे ॥ १३ ॥

स्वैरिण्योऽप्यतिकामिन्यः पुंश्चल्यश्च पतिव्रताः ।
ययुर्योद्धुं कल्किसैन्यैः पतीनां निधनातुराः ॥ १४ ॥

रमणीय आकारवाली इन स्त्रियोंमें कोई स्वैरिणी, कोई पतिव्रता और कोई वारविलासिनी थीं । यह (पिता वा) पतिके मरजानेसे कातर हो कल्किसेनाके साथ युद्ध करनेको आगे बढीं ॥ १४ ॥

मृद्भस्मकाष्ठचित्राणां प्रभुताम्नायशासनात् ।
साक्षात्पतीनां निधनं किं युवत्योऽपि सेहिरे ॥ १५ ॥

शास्त्रमें कहा है कि, मनुष्य, मिट्टी, राख, काष्ठादि वस्तुकी प्रभुता (रक्षा प्राणका दाँव लगाकर) करता है फिर युवतियोंका सामनेही प्राणके समान पतियोंकी मृत्युका सहलेना असम्भव है ॥ १५ ॥

ताः स्त्रियः स्वपतीन्बाणभिन्नान्व्याकुलितेन्द्रियान् ।
कृत्वा पश्चाद्युयुधिरे कल्किसैन्यैर्धृतायुधाः ॥ १६ ॥

इसके उपरान्त म्लेच्छोंकी स्त्रियें अपने २ स्वामियोंको बाणसे विंधा हुआ और विह्वल देखकर तिनको पीछे हटाय अस्त्र ग्रहण करके कल्किजीकी सेनाके साथ संग्राम करने लगीं ॥ १६ ॥

ताः स्त्रीरुद्वीक्ष्य ते सर्वे विस्मयस्मितमानसाः ।
कल्किमागत्य ते योधाः कथयामासुरादरात् ॥ १७ ॥

उन अबलाओंको युद्ध करता हुआ निहार कल्किजीकी सेनाने विस्मययुक्त चित्तसे कल्किजीके निकट आय यत्नसहित सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदित किया ॥ १७ ॥

स्त्रीणामेव युयुत्सूनां कथाः श्रुत्वा महामतिः ।
कल्किः समुदितः प्रायात्स्वसैन्यैः सानुगो रथैः ॥ १८ ॥

युद्ध चाहनेवाली स्त्रियोंका वृत्तान्त सुनकर हर्षित हृदयसे महाबुद्धिमान् कल्किजी रथपर चढीहुई सेनाके साथ और अनुचरों (सेवकों) के साथ उस स्थानमें आये ॥ १८ ॥

ताः समालोक्य पद्मेशः सर्वशस्त्रास्त्रधारिणीः ।
नानावाहनसंरूढाः कृतव्यूहा उवाच सः ॥ १९ ॥

अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारण किये, अनेक वाहनोंपर चढीहुई, व्यूह रचना करके श्रेणी बांधे स्थित म्लेच्छोंकी उन स्त्रियोंको देखकर पद्माके स्वामी कल्किजी कहना आरम्भ करते हुए ॥ १९ ॥

कल्किरुवाच-रे स्त्रियः शृणुतास्माकं वचनं पथ्यमुत्तमम् ।
स्त्रिया युद्धेन किं पुंसां व्यवहारोऽत्र विद्यते ॥ २० ॥

कल्किजी बोले—हे अबलाओ ! मैं तुमसे हित और उत्तम वाक्य कहता हूं, श्रवण करो। स्त्रीके साथ पुरुषको युद्ध करनेका व्यवहार नहीं है ॥२०॥

मुखेषु चन्द्रबिम्बेषु राजितालकपंक्तिषु ।
प्रहरिष्यन्ति के तत्र नयनानन्ददायिषु ॥ २१ ॥

तुम्हारे इस चंद्रमाके समान वदनपर अलकराजि (जुल्फें) शोभायमान होरही हैं। इनको देखकर सबकेही मनमें आनन्द होता है। इस समय कौन पुरुष इस मुखपर प्रहार करेगा ॥ २१ ॥

विभ्रान्ततारभ्रमरं नवकोकनदप्रभम् ।
दीर्घापाङ्गेक्षणं यत्र तत्र कः प्रहरिष्यति ॥ २२ ॥

इस मुखरूपीचंद्रपर दीर्घ अपाङ्गवाले, खिले हुए कमलके समान नेत्रोंमें तारारूपी भ्रमर भ्रमण कररहे हैं। ऐसे मुखपर कौन पुरुष प्रहार करेगा२२॥

वक्षोजशम्भू सत्तार-हारव्यालविभूषितौ ।
कन्दर्पदर्पदलनौ तत्र कः प्रहरिष्यति ॥ २३ ॥

तुम्हारे हृदयमें कुचरूप शंभु विराजमान हो रहे हैं, सुंदर हारने सर्पके समान उन कुचरूपी महादेवजीको विभूषित किया है, सो देखनेसे मदनका दर्पभी चूर्ण होजाता है; (फिर भला) कौन पुरुष उनके ऊपर अस्त्रप्रहार करेगा ॥२३॥

लोललीलालकव्रातचकोराक्रान्तचन्द्रिकम् ।
मुखचन्द्रं चिह्नहीनं कस्तं हन्तुमिहार्हति ॥ २४ ॥

तुम्हारे मुखरूपसुधाकरमें चंचल अलकरूप चकोर चांदनीका पान करते हैं परन्तु इस मुखचंद्रमें (यथार्थ चंद्रमाकी नाईं) कलंक नहीं है, पृथ्वीपर ऐसा कौन पुरुष है जो उस मुखपर प्रहार करसकेगा ॥ २४ ॥

स्तनभार-भराक्रान्त-नितान्तक्षीणमध्यमम् ।
तनुलोमलताबन्धं कः पुमान् प्रहरिष्यति ॥ २५ ॥

तुम्हारा अति पतला मध्यदेश पीनपयोधरों (बडे स्तनों) के बोझसे कुछेक झुकगया है, तहांपर सूक्ष्म २ रोम विराजमान हैं, कौन पुरुष उस अंगमें प्रहार करेगा ? ॥ २५ ॥

नेत्रानन्देन वस्त्रेण समावृतमनिन्दितम् ।
जघनं सुघनं रम्यं बाणैः कः प्रहरिष्यति ॥ २६ ॥

तुम्हारे इन नयनानन्द दायक वस्त्रसे ढके दोषके स्पर्शसे रहित परम रमणीय इस घन जघनको कौन पुरुष बाणसे बींधेगा ? ॥ २६ ॥

इति कल्केर्वचः श्रुत्वा प्रहस्य प्राहुरादृताः ।
अस्माकं त्वं पतीन् हंसि तेन नष्टा वयं विभो ॥
हन्तुं गतानामस्त्राणि कराण्येवागतान्युत ॥ २७ ॥

कल्किजीके यह वचन सुनकर म्लेच्छोंकी स्त्रियें हँसकर बोली, हे महात्मन् ! जब कि, आपने हमारे पतियोंको मारडाला, तब हमाराभी नाश होगया । यह कहकर स्त्रियें कल्किजीका नाश करनेको उद्यत हुई । वह जिन अस्त्रोंको छोडने लगीं, वह उनके हाथमें ही रहे (किसी भांति उनके हाथमेंसे न छूटे) ॥ २७ ॥

खड्ग-शक्ति-धनुर्बाण-शूल-तोमर-यष्टयः ।
ताः प्राहुः पुरतो मूर्त्ताः कात्तस्वरविभूषणाः ॥ २८ ॥

खड्ग, शक्ति (१) धनुष, बाण, शूल, तोमर (२) यष्टि आदि, सुवर्णसे विभूषित शस्त्रोंके देवतालोग मूर्ति धारण करके प्रगट हो म्लेच्छोंकी स्त्रियोंसे कहने लगे ॥ २८ ॥

---

(१) प्राचीन कालके अस्त्र, शस्त्रोंके दो भाग थे;-

अस्यते क्षिप्यते यत्तु मंत्रयंत्राग्निभिश्च तत् । अस्त्रं तदन्यतः शस्त्रमसिकुंतादिकं च यत् ॥
अस्त्रं तु द्विविधं ज्ञेयं नालिकं मान्त्रिकं तथा ॥

(शुक्रनीति ४ अ०, ७ प्रकरण । १९१ । १९२ श्लो०)

अर्थात्;-मंत्र, यंत्र अथवा अग्निकरके जो छोडे जाते हैं तिनको अस्त्र (चलानेके योग्य) कहते हैं । इसके सिवाय प्रहरण हैं । जैसे कुन्त, खड्ग, असि आदिको शस्त्र कहते हैं । अस्त्रोंके नालिक और मांत्रिक यह दो भाग हैं ।

शक्तिभी अस्त्रोंमें गिनी गई है । शुक्रनीतिमें शक्तिका वृत्तान्त नहीं लिखा । डाक्टर रामदासजीने शक्तिका जो वृत्तान्त संकलित किया है, सो लिखते हैं । शक्ति-के आकारका वर्णन इस प्रकारसे है-

-शक्तिर्हस्तद्वयोत्सेधा तिर्यग्गतिरनाकुला । तीक्ष्णजिह्वाग्रनखरा घण्टानादभयङ्करी ॥
व्यादितास्याऽतिनीला च शत्रुशोणितरंजिता । अस्त्रमालापरिक्षिप्ता सिंहास्या घोरदर्शना ॥
बृहत्त्सरुर्दूरगमा पर्वतेन्द्रविदारिणी । भुजद्वयप्रेरणीया युद्धे जयविधायिनी ॥

इस वर्णनको देखकर शक्तिका यथार्थ गठन या आकार स्थिर नहीं होता । जैसा हम संस्कृत जानते हैं वैसाही इसका भाषानुवाद किया । जो समझ सके वह अधिकभी समझले । शक्ति लगभग दोहाथके लम्बी होती है, सिंहके समान मुख और जीभ अति तीक्ष्ण होती है, नखभी तीक्ष्ण होते हैं । मूठ बडी होती है । देखनेमें अतिभयंकर, घण्टानाद करनेसे भयदायी, जिसके अंग शत्रुके रुधिरसे रंगे होते हैं, अस्त्रजालसे जडी हुई, जिसका रंग गाढा नीला है, अत्यन्त दूर जानेवाली, टेढी चालसे युक्त पर्वतोंके राजा हिमवान्कोभी विदीर्ण करनेकी सामर्थ्य रखनेवाली, युद्धमें जयदायिनी, इस प्रकारकी शक्तिको दो हाथसे उठाकर चलाना होता है ।

यह घोररूपवाली शक्ति छः प्रकारके मार्ग अर्थात् क्रियाके आश्रित है । पहली क्रिया उत्तोलन (उठाना), दूसरी भ्रामण अर्थात् घुमाना, तीसरी वल्गन अर्थात् आस्फालन, चतुर्थ नामन अर्थात् ऊपर आस्फालित करके नीचे बागमें धरना, पांचवीं मोचन अर्थात् निशानेपर छोडना, छठा भेदन अर्थात् निशानेका अंगभेद करना । यह ६ प्रकारके शक्ति-कार्य वैशम्पायनोक्त धनुर्वेदमें भी लिखे हैं । यथाः—

तोलनं भ्रामणं चैव वल्गनं नामनं तथा । मोचनं भेदनं चेति षण्मार्गाः शक्तिसंश्रिताः ॥

यह शक्तिअस्त्रका विवरण है । इससे शक्तिका रूप भली भांति नहीं जाना जाता । भारत-रहस्य पुस्तकसे यह वृत्तान्त लिखा गया है-

(२) डाक्टर रामदासने अपनी भारतरहस्य नामक पुस्तकमें लिखा है-' तोमर ' इस अस्त्रका वर्णन तीन प्रकारसे है, वैशम्पायनजीके कहे धनुर्वेदके अनुसार यह एक प्रकारका लौहफलक और काष्ठदण्ड युक्त तीर है । शार्ङ्गधरके मतसे यह फलदार शलाकाकार तीर है; अग्निपुराणमें कहे धनुर्वेदके मतसे यह सीधे पंखवाला तीर है, सबके मतसे यह धनुषके चलानेका तीरही है । धनुर्वेदमें लिखा है कि:-

तोमरः काष्ठकायः स्याल्लौहशीर्षः सुपुच्छवान् । हस्तत्रयोन्नताङ्गश्च रक्तवर्णस्त्ववक्रगः ॥

तोमरका शरीर काठका बना हुआ होता है, तिसका शीर्षक अर्थात् फल लोहेका बना होता है । लम्बाईमें ३ हाथ और पूंछदार होता है । इसकी गति अवक्र अर्थात् सीधी होती है । इस अर्थको ठीक रखकर शार्ङ्गधरने एक बात अधिक कही है यथाः-

फलवच्छीर्षदेशः स्यात्तोमरस्त्वायसस्तथा ।

अर्थात् सर्पके फनकी समान फलवाले लोहेके तीरका नाम तोमर है । अग्निपुराणके धनुर्वेदमें इसका आकार या गठन कुछ नहीं लिखा । परन्तु क्रियायें समस्त लिखी हैं । यथाः-

दृष्टिघातं भुजाघातं पार्श्वघातं द्विजोत्तम । ऋजुपक्षेषुणापातं तोमरस्य प्रकीर्तितम् ॥

तोमरास्त्रका कार्यभी तीन प्रकारका है । वैशम्पायन मुनिजी लिखते हैं । यथाः-

उद्धानं विनियुक्तं च वेधनं चेति तत्रिकम् । वल्गितं शस्त्रतत्त्वज्ञाः कथयन्ति नराधिपाः ॥

शस्त्रतत्त्वके जाननेवाले राजालोग कहते हैं कि, तोमरका कार्य तीन प्रकारका है- प्रथम उद्धान (ऊंचा करना), द्वितीय विनियुक्ति अर्थात् प्रयोग और तीसरा वेधन अर्थात् निशानेमें छेद करना । (आर्यजातिके युद्धास्त्र, भारतरहस्य)

शस्त्राण्यूचुः-यमासाद्य वयं नार्य्यौ हिंसयामः स्वतेजसा ।
तमात्मानं सर्व्वमयं जानीत कृतनिश्चयाः ॥ २९ ॥

अस्त्र बोले-हे स्त्रियो ! हमने जिनसे तेज पाया है और जिस तेज करके हम प्राणियोंकी हिंसाकरते हैं, सो इनको वही परमात्मा सर्वमय ईश्वर जानो और दृढ विश्वास करो ॥ २९ ॥

तमीशमात्मना नार्य्यश्चरामो यदनुज्ञया ।
यत्कृता नामरूपादिभेदेन विदिता वयम् ॥ ३० ॥

हे स्त्रियो ! हम इन्हीं ईश्वरकी आज्ञाके अनुसार विचरण किया करते हैं, तिनसेही हम नामरूपको प्राप्त होकर विख्यात हुए हैं ॥ ३० ॥

रूप-गन्ध-रस-स्पर्श-शब्दाद्या भूतपञ्चकाः ।
चरन्ति यदधिष्ठानात्सोऽयं कल्किः परात्मकः ॥ ३१ ॥

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, इन पंचगुणके आधार पंचभूत जिन करके अधिष्ठित होकरही अपना अपना कार्य करते हैं, यह कल्किजी वही परमात्मा हैं ॥ ३१ ॥

काल-स्वभाव-संस्कार-नामाद्या प्रकृतिः परा ।
यस्येच्छया सृजत्यण्डं महाहङ्कारकादिकान् ॥ ३२ ॥

तिनकी आज्ञाके अनुसारही काल, स्वभाव, संस्कार, नामादिकी आदि-भूत परमप्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकारतत्त्वादि समस्त ब्रह्माण्डको उत्पन्न करती है ॥ ३२ ॥

यन्मायया जगद्यात्रा सर्गस्थित्यन्तसंज्ञिता ।
य एवाद्यः स एवान्ते तस्या यः सोऽयमीश्वरः ॥ ३३ ॥

सृष्टि, स्थिति, प्रलयरूप जगत्प्रपंच तिसकी मायाके सिवाय और कुछ नहीं है। वही सबके आदि और अन्त हैं। तिनसेही संसारकी समस्त शुभ बातें होती हैं। यह बली ईश्वर है ॥ ३३ ॥

असौ पतिर्मे भार्य्याऽहमस्य पुत्राप्तबान्धवाः ।
स्वप्नोपमास्तु तन्निष्ठा विविधाश्चेन्द्रजालवत् ॥ ३४ ॥

यह हमारा पति, मैं इनकी स्त्री, यह मेरा पुत्र, यह मेरा आत्मीय, यह मेरा बन्धु, स्वप्नकी समान यह सब हैं; इन्द्रजालके समान विविध व्यवहार इससेही प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ३४ ॥

स्नेहमोहनिबन्धानां यातायातदृशां मतम् ।
न कल्किसेविनां रागद्वेषविद्वेषकारिणाम् ॥ ३५ ॥

जो लोग स्नेह और मोहके अधीन हो (जन्ममृत्युको केवल) आना जाना समझते हैं, जिन्होंने राग, द्वेष, हिंसा आदिको उखाड डाला है, जो लोग कल्किके सेवक हैं, वह (इस इन्द्रजालकी बातोंको सत्य) नहीं समझते ॥ ३५ ॥

कुतः कालः कुतो मृत्युः क्व यमः क्वास्ति देवताः ।
स एव कल्किर्भगवान्मायया बहुलीकृतः ॥ ३६ ॥

काल कहांसे हुआ ? मृत्यु कहांसे आती है ? यम कौन है ? देवतालोग कौन हैं ? केवल यह भगवान् कल्किजीही माया करके बहुतसे हो गये हैं ॥ ३६ ॥

न शस्त्राणि वयं नार्य्यः संप्रहार्य्या न च क्वचित् ।
शस्त्रप्रहर्तृभेदोऽयमविवेकः परात्मनः ॥ ३७ ॥

हे नारियो ! हम शस्त्र नहीं हैं, हममें किसीपर प्रहार करनेकी शक्ति नहीं है । यह परम देवताही शस्त्र हैं और यह परमदेवताही शस्त्रका प्रहार कर-सकते हैं । यह दो भेद हैं सो तो केवल परमात्माकी माया है ॥ ३७ ॥

कल्किदासस्यापि वयं हन्तुं नार्हास्तथाऽद्भुतम् ।
हनिष्यामो दैत्यपतेः प्रह्लादस्य यथा हरिम् ॥ ३८ ॥

जब दैत्यपति प्रह्लादके कहेके अनुसार नारायणजीने नृसिंहमूर्तिको धारण कियाथा, तब उनपर हम जिस प्रकार आघात नहीं करसकेथे, वैसेही कल्किजीके सेवकोंपरभी आघात करनेकी सामर्थ्य हममें नहीं है ॥ ३८ ॥

इत्यस्त्राणां वचः श्रुत्वा स्त्रियो विस्मितमानसाः ।
स्नेहमोहविनिर्मुक्तास्तं कल्किं शरणं ययुः ॥ ३९ ॥

अश्वोंके यह वचन सुनकर स्त्रियोंके हृदय विस्मयसे युक्त हुए । तब वह स्नेह और मोहको छोडकर उन कल्किजीकी शरणमें आने लगीं ॥ ३९ ॥

ताः समालोक्य पद्मेशः प्रणता ज्ञाननिष्ठया ।
प्रोवाच प्रहसन् भक्ति-योगं कल्मषनाशनम् ॥ ४० ॥

म्लेच्छोंकी उन समस्त स्त्रियोंको ज्ञान और निष्ठासे प्रणत होते देख पद्माके पति कल्किजीने मुस्कायकर उनसे पापपुंजका नाश करनेवाला भक्तियोग कहना आरम्भ किया ॥ ४० ॥

कर्म्मयोगं चात्मनिष्ठं ज्ञानयोगं भिदाश्रयम् ।
नैष्कर्म्यलक्षणं तासां कथयामास माधवः ॥ ४१ ॥

फिर उन्होंने आत्मनिष्ठ ज्ञानयोग और भेद ज्ञानका कारण कर्मयोग और किस प्रकारसे भाग्याधीन होना नहीं पडता, सो समस्त वृत्तान्त स्त्रियोंसे कहा ॥ ४१ ॥

ताः स्त्रियः कल्कि-गदित-ज्ञानेन विजितेन्द्रियाः ।
भक्त्या परमवापुस्तद्योगिनां दुर्ल्लभं पदम् ॥ ४२ ॥

फिर वह स्त्रियें कल्किजीके वचनोंसे ज्ञान पाय, इन्द्रियोंको जीत भक्ति करके उस दुर्लभ परमपद मोक्षको प्राप्त हुईं जो पद योगियोंकोभी दुर्लभ है ॥ ४२ ॥

दत्त्वा मोक्षं म्लेच्छबौद्धप्रियाणां कृत्वा युद्धं भैरवं भीमकर्म्मा ।
हत्वा बौद्धान् म्लेच्छसंघांश्च कल्किस्तेषां ज्योतिःस्थान-
मापूर्य्य रेजे ॥ ४३ ॥

इस प्रकारसे भयंकर कर्म करनेवाले कल्किजीने भयंकर युद्ध करके बौद्ध और म्लेच्छोंका नाश किया । फिर वह उनकी स्त्रियोंको मुक्तिपद दे मृतक हुए इन म्लेच्छ और बौद्धोंको ज्योतिर्मय (प्रकाशित) स्थानमें भेजकर शोभायमान होने लगे ॥ ४३ ॥

ये शृण्वन्ति वदन्ति बौद्धनिधनं म्लेच्छक्षयं सादरा-
ल्लोकाः शोकहरं सदा शुभकरं भक्तिप्रदं माधवे ।

तेषामेव पुनर्न जन्ममरणं सर्व्वार्थसम्पत्करं
मायामोहविनाशनं प्रतिदिनं संसारतापच्छिदम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे म्लेच्छनिधनं
नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

म्लेच्छोंका यह क्षय और बौद्धोंका नाश जो लोग आदरपूर्वक कहेंगे या सुनेंगे, तिनके समस्त शोक दूर होंगे, वे सदा कल्याणभाजन होंगे, माधवके प्रति उनको भक्ति उत्पन्न होगी, इससे फिर उनका जन्म न होगा, न मृत्यु होगी। इस वृत्तान्तके श्रवण करनेसे समस्त सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं, मायामोह दूर हो जाता है और फिर संसारके ताप नहीं सहने पडते ॥ ४४ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे बलदेव० भाषाटीकायां
म्लेच्छनिधनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

तृतीयांशः ।

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

ततो बौद्धान् म्लेच्छगणान्विजित्य सह सैनिकैः ।
धनान्यादाय रत्नानि कीकटात्पुनराव्रजत् ॥ १ ॥

उग्रश्रवा बोले—बौद्ध और म्लेच्छोंको पराजित कर धन रत्न ले कल्किजी सेनाके साथ कीकट नगरसे लौटे ॥ १ ॥

कल्किः परमतेजस्वी धर्म्माणां परिरक्षकः ।
चक्रतीर्थं समागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥ २ ॥

इसके उपरान्त धर्मकी रक्षा करनेवाले उन परम तेजस्वी कल्किजीने चक्रतीर्थ (१) में आय विधि विधानसे स्नान किया ॥ २ ॥

---

(१) चक्रतीर्थ—नैमिषारण्यका एक तीर्थ । लखनऊके वायुकोणमें ४५ माइल दूरपर बाईं ओर विख्यात नैमिषारण्य है । वर्त्तमान नीमसार है । पहला गौरव कुछभी नहीं, केवल चक्रतीर्थही विद्यमान है, इसी स्थानमें विष्णुजीके चक्रकी नेमि शीर्ण हुई थी । चक्रतीर्थ एक षट्कोण सरोवर है, इसके चारों ओर मन्दिर है । सरोवरका विस्तार ८० हाथ है । कुण्डसे जल दक्षिण दिशाकी ओरसे १४ हाथ चौडे गोदावरीके नालेके द्वारा बाहर निकलता है । उत्तरमें ११० फीट लम्बा, ४०० फीट चौडा और ५०० फीट ऊँचा एक किला है ।

भ्रातृभिर्लोकपालाभैर्बहुभिः स्वजनैर्वृतः ।
समायातान्मुनींस्तत्र ददृशे दीनमानसान् ॥ ३ ॥

वह कल्किजी लोकपालके समान भ्राताओं और बहुतसे आत्मीय स्वजनोंसे युक्त होकर वहांपर वास करने लगे । एक समय कल्किजीने देखा कि, कुछ मुनिलोग हृदयमें दुःख पाय वहांपर आये हैं ॥ ३ ॥

समुद्विग्यागतांस्तत्र परिपाहि जगत्पते ।
इत्युक्तवन्तो बहुधा ये तानाह हरिः परः ॥ ४ ॥

यह मुनिलोग भयके मारे कल्किजीके निकट जाय वारंवार कहने लगे— हे जगन्नाथ ! रक्षा करो । फिर नारायणजीने तिनसे कहा ॥ ४ ॥

वालखिल्यादिकानल्पकायांश्चीरजटाधरान् ।
विनयावनतः कल्किस्तानाह कृपणान्भयात् ॥ ५ ॥

और वालखिल्यादि (१) छोटे शरीरधारी, छिन्न वसन पहरे जो महर्षि लोग कातर होकर आये थे तिनके निकटभी विनयसे झुककर कहने लगे ॥५॥

कस्माद्यूयं समायाताः केन वा भीषिता बत ।
तमहं निहनिष्यामि यदि वा स्यात्पुरन्दरः ॥ ६ ॥

आपलोग कहांसे आते हैं ? आप किससे भीत हुए हैं सो कहो ? जो वह देवराज इन्द्रभी होगा तोभी मैं तिसका नाश करूंगा ॥ ६ ॥

इत्याश्रुत्य कल्किवाक्यं तेनोल्लासितमानसाः ।
जगदुः पुण्डरीकाक्षं निकुम्भदुहितुः कथाः ॥ ७ ॥

---

(१) इन मुनियोंकी देहका परिमाण अंगुष्ठके पोरुएकी समान है । गिनतीमें यह ६०,००० हैं । इन अत्यन्त प्रभाववालोंने पुलस्त्यकी कन्याके गर्भमें क्रतुके औरससे जन्म लियाथा । यह लोकपति धर्मका विचार किया करते थे । महाभारतमें जहां कण्वमुनिके आश्रमका वृत्तान्त है तहांपर इनको यति लिखा है । यथाः—

यतिभिर्वालखिल्यैश्च वृतं मुनिगणान्वितम् ॥

कल्किपुराणम वालखिल्योंको मुनि कहा है महाभारतमें भी यतिशब्दसे पुकारे गये हैं । यति और मुनि एक नहीं है यतिधर्म और मुनिधर्ममें पृथक्ता है ।

कमलदलके समान नेत्रवाले कल्किजीके यह वचन सुनकर ऋषि मुनियोंके चित्तमें आनन्द हुआ और उन्होंने राक्षसी निकुम्भकी पुत्रीकी कथाका कहना आरम्भ किया ॥ ७ ॥

मुनय ऊचु–शृणु विष्णुयशःपुत्र कुम्भकर्णात्मजात्मजा ।
कुथोदरीति विख्याता गगनार्द्धसमुत्थिता ॥ ८ ॥

मुनि बोलेः–हे विष्णुयशोनन्दन ! कहते हैं श्रवण कीजिये। कुम्भकर्णके पुत्र निकुम्भकी एक कन्या है, वह आकाशमंडलसे आधी ऊंची है, तिसका नाम कुथोदरी है ॥ ८ ॥

कालकञ्जस्य महिषी विकञ्जजननी च सा ।
हिमालये शिरः कृत्वा पादौ च निषधाचले ।
शेते स्तनं पाययन्ती विकञ्जं प्रस्रुतस्तनी ॥ ९ ॥

यह राक्षसी, कालकञ्ज नामक राक्षसकी भार्या है। इसके पुत्रका नाम विकञ्ज है । यह राक्षसी (१) हिमालय पर्वतपर मस्तक रक्खे और

(१) हिमालय–पर्वत विशेष। हिन्दोस्थानके उत्तरमें यह पर्वत है । पुराणोंमें इसको पर्वतराज कहा है। इसकी भार्या, पितृगणोंकी कन्या मैना (मेनका) हुई । इसके पुत्रका नाम मैनाक और पुत्रियोंका नाम गंगा व उमा हुआ। गंगा और उमा शिवजीकी भार्या हैं। परन्तु ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके मतसे गंगाजी विष्णुजीकी भार्या हैं। पुराणोंमें कहा है कि, पहले पर्वतोंके पंख थे इस कारण वह जहां तहां उडते फिरते हुए प्राणियोंका अनभल किया करते थे, तब इन्द्रने वज्र मारकर तिनके पंखोंको काटडाला। हिमालयका पुत्र मैनाक इस डरसे कि, कहीं इन्द्र वज्र चलाकर मेरे पंखोंको भी न काटडाले; समुद्रके भीतर जाकर छिपा। एकवार मैंने एक समाचार पत्रमें देखाथा कि, किसी एक समुद्रके मध्यमें एक प्रकारके पर्वत हैं, जो कि, अतिवेगसे एक स्थानसे एक दूसरे दूर स्थानको चले जाते हैं। जो यह बात सत्य हो तो देखा जाता है कि, पर्वतोंके अचल सचल दोनों नामोंका चलन हुआ। एक बात यह है कि, जब पर्वत चल सकता है, तब पौराणिक ऋषियोंका यह कहना कि, 'पर्वत चलते थे' अविश्वासके योग्य नहीं है । यद्यपि एक मैनाक समुद्रमें स्थित है, तथापि दो मैनाक पर्वत स्थलमें और पाये जाते हैं । तिनमें एक मैनाक शोणनदकी उत्पत्तिका स्थान है । इसीसे शोणनदका दूसरा नाम मैनाकप्रभ है । दूसरा मैनाक चट्टग्रामकी ओर है–

निषधाचल (१) पर चरण स्थापित किये विकंकके निकट स्तन रखकर उसको स्तनपान करा रही है ॥ ९ ॥

हिमालयसे निम्न लिखित नदियें उत्पन्न हुई हैं।

प्राचीन नाम	वर्त्तमान नाम ।
अलकानन्दा	अलकनन्दा ।
गङ्गा	गंगा ।
सरस्वती	सरस्वती (सरसुत)
सिन्धु	सिन्धु (Indus)
चन्द्रभागा (असिक्री)	चन्द्रभागा (Chenab)
यमुना (कालिन्दी)	यमुना, जमना (Jamna)
शतद्रु	शतद्रु (Sutlej)
वितस्ता	वितस्ता (Jhelum)
ऐरावती (इरावती)	इरावती (Ravi)
कुहू	को (Koh) वा कावुलनदी (Elbet)
गोमती	गोमती (Goomti)
धूतपापा	धोबा (Dhoba) साहावाद देश ।
बाहुदा	महानन्दा, मालदहके निकट (Wilford)
दृषद्वती	कागार (Wilford)
विपाशा	विपाशा (Beas)
देविका (सरयू)	घर्घरा (Gogra)
वङ्क्षु (चक्षु)	अक्सस (Oxus) हिमालयके उत्तर विभागमें
विशाला	सरस्वती नदीकी एक शाखा ।
गण्डकी	गण्डकी (Gundaki)
कौशिकी	कुशी, कुरुक्षेत्रकी ओर एक कौशिकी नदी है ।
चुलुका	(Chaulkoya) काम रूप देशमें (Smith's Geography of India)
कुण्डला	(Kundela) ब्रह्मपुत्रमें गिरती है, लक्ष्मीपुरविभागमें।
सदानीरा	गण्डकी और सरयूके बीचमें बहती है अमरकोषमें इसका दूसरा नाम करतोया है ।
सुधामा	(Sudhama) अयोध्या देशके गोण्डा (Gonda) भागमें बहती है । (Smith's Geography of India)

(१) निषध-पर्वतविशेष । यह इलावृत और हरिवर्षका सीमापर्वत है, इलावृतके दक्षिण में स्थित है । (भागवत, पंचमस्कन्ध १६ अध्याय)

तस्या निश्वासवातेन विवशा वयमागताः ।
दैवेनैव समानीताः सम्प्राप्तास्त्वत्पदास्पदम् ॥
मुनयो रक्षणीयास्ते रक्षःसु च विपत्सु च ॥ १० ॥

हम, उनके श्वासकी पवनसे विवश होकर यहांपर आये हैं । दैवही हमको यहांपर लाया है। तिससेही हम आपके चरणोंको प्राप्त हुए । आपका कर्तव्य कर्म यह है कि, विपत्कालमें राक्षससे हमारी रक्षा करो ॥ १० ॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा कल्किः परपुरञ्जयः ।
सेनागणैः परिवृतो जगाम हिमवद्गिरिम् ॥ ११ ॥

मुनियोंके यह वचन सुनकर शत्रुपुरके जीतनेवाले कल्किजी सेनाको साथ ले हिमालयपर्वतपर गये ॥ ११ ॥

उपत्यकां समासाद्य निशामेकां निनाय सः ।
प्रातर्जिगमिषुः सैन्यैर्ददृशे क्षीरनिम्नगाम् ॥ १२ ॥

उन्होंने हिमालयकी तराईमें पहुँचकर वहांपर एक रात्रि विताई थी । फिर जब प्रातःकालही सेनाके सहित यात्रा करनेके अभिलाषी हुए कि, इतनेहीमें एक दूधकी नदी देखी ॥ १२ ॥

शंखेन्दुधवलाकारां फेनिलां बृहतीं द्रुतम् ।
चलन्तीं वीक्ष्य ते सर्व्वे स्तम्भिता विस्मयान्विताः ॥ १३ ॥

यह नदी शंखके समान और चन्द्रमाके समान श्वेतवर्ण और बडी थी, चारों ओर झाग उठरहे, नदीका दुग्ध अतिवेगसे बह रहा । ऐसी दूधकी नदीको देख कल्किजीके सेवक विस्मययुक्त होकर घबडासेगये ॥ १३ ॥

सेनागणगजाश्वादिरथयोधैः समावृतः ।
कल्किस्तु भगवांस्तत्र ज्ञातार्थोऽपि मुनीश्वरान् ॥ १४ ॥

इसके उपरान्त भगवान् कल्किजी यद्यपि तिसका कारण जानतेथे, तथापि यह गज, अश्व, रथ, पैदल आदि समस्त योधाओंसे युक्त हो महर्षियोंसे ॥ १४ ॥

पप्रच्छ का नदी चेयं कथं दुग्धवहाऽभवत् ।
ते कल्केस्तु वचः श्रुत्वा मुनयः प्राहुरादरात् ॥ १५ ॥

पूछते हुए कि, इस नदीका नाम क्या है? और दूध किस कारणसे इसमें बहता है? कल्किजीके यह वचन सुनकर मुनियोंने आदरपूर्वक कहा॥१५॥

शृणु कल्के पयस्वत्याः प्रभवं हिमवद्गिरौ ।
समायाता कुथोदर्याः स्तनप्रस्रवणादिह ॥ १६ ॥

हे कल्कि! इस दुग्धवती नदीके उत्पत्तिका वृत्तान्त कहते हैं श्रवण करो. कुथोदरी नामक राक्षसीके एक स्तनका दूध इस हिमालयपर गिरनेसे सोई नदीरूपसे बहा है ॥ १६ ॥

घटिकासप्तकैश्चान्या पयो यास्यति वेगितम् ।
हीनसारा तटाकारा भविष्यति महामते ॥ १७ ॥

इसके उपरान्त सात घडी पीछे और एक दूधकी नदी बहैगी (राक्षसीके दूसरे स्तनके दूधसे उस नदीकी उत्पत्ति है) हे महाबुद्धिमन्! फिर यह नदी जलहीन और किनारेके समान होजायगी ॥ १७ ॥

इति श्रुत्वा मुनीनां तु वचनं सैनिकैः सह ।
अहो किमस्या राक्षस्याः स्तनादेका त्वियं नदी ॥ १८ ॥

यह वचन सुनकर कल्किजी और उनकी सेना कहने लगी—कैसा आश्चर्य है । इस राक्षसीके स्तनके दूधसे यह बडी नदी उत्पन्न हुई है॥१८॥

एकं स्तनं पाययति विकञ्जं पुत्रमादरात् ।
न जानेऽस्याः शरीरस्य प्रमाणं कतिधा भवेत् ॥ १९ ॥

एक स्तन विकञ्जको आदरपूर्वक पान कराती है (तिससे यह नदी उत्पन्न हुई है) इसके शरीरका परिमाण कितना है,सो बुद्धिके जानने योग्य नहीं है १९

बलं वाऽस्या निशाचर्य्या इत्यूचुर्विस्मयान्विताः ।
कल्किः परात्मा सन्नह्य सेनाभिः सहसा ययौ ॥ २० ॥

और इस राक्षसीमें बल कितना है ? सबने विस्मयसे युक्त होकर यह कहा, तब परमात्मा कल्किजी एकसाथ सजधजकर और सेना ले निशाचरीके निकट चले ॥ २० ॥

मुनिदर्शितमार्गेण यत्रास्ते सा निशाचरी ।
पुत्रं स्तनं पाययन्ती गिरिमूर्ध्नि घनोपमा ॥ २१ ॥

मुनिगण उस राक्षसीके वासस्थानका मार्ग दिखाने लगे । उन्होंने जायकर देखा कि, मेघाकार राक्षसी पर्वतके शिखरपर बैठकर पुत्रको स्तन पिलारही है ॥ २१ ॥

श्वासवातातिवातेन दूराक्षिप्ता वनद्विपाः ।
यस्याः कर्णबिलावासे प्रसुप्ताः सिंहसंकुलाः ॥ २२ ॥

तिसके श्वासकी पवनसे टकराकर वनैले हाथी दूर फिंक रहे हैं, कानोंके छेदोंमें सिंहगण शयन कर रहे हैं ॥ २२ ॥

पुत्रपौत्रैः परिवृता गिरिगह्वरविभ्रमाः ।
केशमूलमुपालम्ब्य हरिणाः शेरते चिरम् ॥ २३ ॥

गिरिगुहाके भ्रमसे बेटे पोतोंके साथ हरिणगण तिसके रोम-च्छिद्रोंमें शयन कर रहे हैं ॥ २३ ॥

यूका इव न च व्यग्रा लुब्धजातङ्कया भृशम् ।
तामालोक्य गिरेर्मूर्ध्नि गिरिवत्परमाद्भुताम् ॥ २४ ॥
कल्किः कमलपत्राक्षः सर्व्वास्तानाह सैनिकान् ।
भयोद्विग्नान्बुद्धिहीनांस्त्यक्तोद्यमपरिच्छदान् ॥ २५ ॥

वह व्याधसे कुछभी न डरते हैं, बरन् लीखकी समान लगे हुए हैं । पर्वतके शिखरपर दूसरे पर्वतके समान उस राक्षसीको देखकर कमलके समान नेत्रवाले कल्किजी भयसे कातर, हतबुद्धि और अस्त्रादि त्याग करनेके लिये तैयार हुए सिपाहियोंसे कहने लगे ॥ २४ ॥ २५ ॥

कल्किरुवाच-गिरिदुर्गे वह्निदुर्गं कृत्वा तिष्ठन्तु मामकाः ।
गजाऽश्वरथयोधा ये समायान्तु मया सह ॥ २६ ॥

कल्किजी बोले-इस पहाडी दुर्गमें तुम लोग अग्नि करके दुर्ग बनायकर वास करो । हाथियोंके सवार, घुडसवार और रथपर सवार हुए जो लडवैये हैं वह सब हमारे साथ आवें ॥ २६ ॥

अहं स्वल्पेन सैन्येन याम्यस्याः सम्मुखं शनैः ।
प्रहर्त्तुं बाणसन्दोहैः खङ्गशक्तिपरश्वधैः ॥ २७ ॥

मैं थोडीसी सेना ले बाणसमूह, खङ्ग, शक्ति और परशुसे प्रहार करनेके लिये इसके सम्मुखकी ओर क्रमसे गमन करताहूं ॥ २७ ॥

इत्युक्त्वास्थाऽऽप्य पश्चात्तान्बाणैस्तामहनद्बली ।
सा क्रुधोत्थाय सहसा ननर्द परमाद्भुतम् ॥ २८ ॥

कल्किजी यह कह सेनाको पीछे रख बाणसे राक्षसीपर आघात करने-लगे । राक्षसीनेभी औचक क्रोधके साथ उठकर अति अद्भुत ध्वनि की ॥२८॥

तेन नादेन महता वित्रस्ताश्चाभवञ्जनाः ।
निपेतुः सैनिकाः सर्वे मूर्च्छिता धरणीतले ॥ २९ ॥

उस महान् शब्दसे समस्तही भीत होगये । सेनापति लोग मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ २९ ॥

सा रथांश्च गजांश्चापि विवृतास्या भयानका ।
जघास प्रश्वासवातैः समानीय कुथोदरी ॥ ३० ॥

तब वह भयानक कुथोदरी मुख फैलाय प्रश्वास (अर्थात् खैंचनेकी पवन) से रथ, हाथी और घोडे आदिको खैंचकर भोजन करने लगी॥ ३०॥

सेनागणास्तदुदरं प्रविष्टाः कल्किना सह ।
यथर्क्षमुखवातेन प्रविशन्ति पिपीलिकाः ॥ ३१ ॥

जिस प्रकारसे रीछ मुखपवनसे खैंचता है तो (वहांकी) समस्त चींटियें उसके मुखमें प्रवेश करजाती हैं, ऐसेही सेनाके साथ कल्किजीने उस राक्ष-सीके उदरमें प्रवेश किया ॥ ३१ ॥

तद्दृष्ट्वा देवगन्धर्वा हाहाकारं प्रचक्रिरे ।
तत्रस्था मुनयः शेपुर्जेपुश्चान्ये महर्षयः ॥ ३२ ॥

यह देखकर देवता और गन्धर्वगण हाहाकार करने लगे । मुनियोंने शाप दिया और कोई कोई महर्षिने कल्किजीकी कुशलकामनासे मंत्रका जप करना आरम्भ किया ॥ ३२ ॥

निपेतुरन्ये दुःखार्त्ता ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ।
रुरुदुः शिष्टयोधा ये जहृषुस्तन्निशाचराः ॥ ३३ ॥

और वेदके जाननेवाले ब्राह्मण लोग दुःखित हो उस स्थानमें गिरगये । प्रभुभक्त सिपाहीलोग रोने लगे । निशाचर लोगोंने आनन्द प्रगट करना आरम्भ किया ॥ ३३ ॥

जगतां कदनं दृष्ट्वा सस्मारात्मानमात्मना ।
कल्किः कमलपत्राक्षः सुरारातिनिषूदनः ॥ ३४ ॥

देवताओंके शत्रुओंको मारनेवाले कल्किजीने इस प्रकारसे संसारका दुःख देखकर अपने आपही अपनेको स्मरण किया ॥ ३४ ॥

बाणाग्निं चैलचर्म्मभ्यां कर्म्मणे यानदारुभिः ।
प्रज्वाल्योदरमध्ये तु करवालं समाददे ॥ ३५ ॥

तब उन्होंने अंधकारमय उदरमें बाणसे अग्नि प्रगट की और वस्त्र चर्म व रथ काष्ठादिसे अग्निको चैतन्य कर खड्ग उठाया ॥ ३५ ॥

तेन खड्गेन महता कुक्षिं निर्भिद्य बन्धुभिः ।
बलिभिर्भ्रातृभिर्वाहैर्वृतः शस्त्रास्त्रपाणिभिः ॥ ३६ ॥
बहिर्बभूव सर्वेशः कल्किः कल्कविनाशनः ।
सहस्राक्षो यथा वृत्रकुक्षिं दम्भोलिनेमिना ॥ ३७ ॥

जिस प्रकार इन्द्र वज्रसे वृत्रासुरकी कोख भेदकर निकले थे वैसेही सर्वेश्वर पापके हरण करनेवाले कल्किजीने उस बडे खड्गसे राक्षसीकी दाहिनी कोखको भेद डाला और बलवान् अस्त्र शस्त्रधारी भाई बन्धुओंके सहित निकल आये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

योनिरन्ध्राद्गजरथास्तुरगाश्चाभवन् बहिः ।
नासिकाकर्णविवरात्केऽपि तस्या विनिर्गताः ॥ ३८ ॥

उस राक्षसीके योनिमार्गसेभी कितने एक हाथी, घोडे, रथ और पैदल निकले ॥ ३८ ॥

ते निर्गतास्ततस्तस्याः सैनिका रुधिरोक्षिताः ।
तां विव्यधुर्निक्षिपन्तीं तरसा चरणौ करौ ॥ ३९ ॥

तब रुधिरवाले भीगे शरीरवाले सिपाहियोंने निकलकर देखा कि; राक्षसी हाथ और पांव चला रही है, तब वे तत्काल बाण चलाकर उसको बींधने लगे ॥ ३९ ॥

ममार सा भिन्नदेहा भिन्नकुक्षिशिरोधरा ।
नादयन्ती दिशो द्योखं चूर्णयन्ती च पर्वतान् ॥ ४० ॥

जब उसके उदर मस्तक आदि समस्त अंग छिन्न भिन्न हो गये, तब उसने शब्दसे दशों दिशाओंको भर दिया और आस्फालन (हाथ पांवके पटकने) से पर्वतोंको चूर्ण कर उस राक्षसीने प्राणोंको छोडा ॥ ४० ॥

विकञ्जोऽपि तथा वीक्ष्य मातरं कातरोऽभवत् ।
स विकञ्जः क्रुधाऽधावत्सेनामध्ये निरायुधः ॥ ४१ ॥

माताकी यह अवस्था देखकर विकञ्ज कातर हुआ और क्रोधित हो विना अस्त्रकेही सेनामें प्रवेश करगया ॥ ४१ ॥

गजमालाकुलो वक्षोवाजिराजिविभूषणः ।
महासर्पकृतोष्णीषः केसरीमुद्रिताङ्गुलिः ॥ ४२ ॥

उसकी छातीमें हाथियोंकी माला, सब अंगोंमें घोडोंकी श्रेणीके आभरण, मस्तकोंपर कुछेक बडे अजगरोंकी पगडी और हाथकी उँगलियोंमें सिंहसमूह अँगूठी रूपसे पडे हुए हैं ॥ ४२ ॥

ममर्द कल्किसेनां तां मातुर्व्यसनकर्षितः ।
स कल्किस्तं ब्राह्ममस्त्रं रामदत्तं जिघांसया ॥ ४३ ॥
धनुषा पञ्चवर्षीयं राक्षसं शस्त्रमाददे ।
तेनास्त्रेण शिरस्तस्य च्छित्त्वा भूमावपातयत् ॥ ४४ ॥

वह माताके शोकसे कातर होकर कल्किजीकी सेनाको पीडा देनेलगा, कल्किजीने उस पांच वर्षके बालकका नाश करनेके अर्थ ब्रह्मास्त्र धारण किय और उस अस्त्रसे उसका मस्तक काटकर पृथ्वीपर डाला ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

रुधिराक्तं धातुचित्रं गिरिशृङ्गमिवाद्भुतम् ।
सपुत्रां राक्षसीं हत्वा मुनीनां वचनाद्विभुः ॥ ४५ ॥

मुनियोंके वचनसे कल्किजीने गेरु आदिसे चित्रित पर्वतके शिखरके समान अतिअद्भुत रुधिरसे लिप्त पुत्रसहित राक्षसीका नाश किया ॥ ४५ ॥

गङ्गातीरे हरिद्वारे निवासं समकल्पयत् ।
देवानां कुसुमासारैर्मुनिस्तोत्रैः सुपूजितः ॥ ४६ ॥

देवतालोग फूल वर्षाते हुए, मुनिलोग स्तुति करने लगे । फिर तहांसे जाय कर कल्किजीने हरिद्वारमें (१) स्थित गंगाजीके किनारे जायकर सेनाकी छावनी डाली ॥ ४६ ॥

---

(१) हरिद्वार-तीर्थ विशेष । इसका दूसरा नाम हरद्वार, गंगाद्वार और मायापुर है। मायादेवीकी मूर्ति होनेसे इसका नाम मायापुर है । सात मोक्षदायक पुरियोंमेंसे यहभी एक है । हरिद्वार एक साधारण कसबा है । यहांपर गंगाजी हिमवान्‌की शैवालिक श्रेणीको बगलमें रखकर पर्वती देशोंको छोडती हुई भारतकी समतल (इकसार) भूमिमें प्रवेश करती हैं । जहांपर पर्वतोंको छोडा है तहां दो धारा होकर दक्षिणकी बही हैं, दोनोंके बीचमें एक द्वीपसा होगया है । पश्चिमकी धाराके किनारे तीर्थादि हैं; परन्तु दोनों धाराओंके विभक्त होनेके ऊपर विष्णुपदघाट है (हारिकी पैरी) घाटकी ३९ सीढी हैं । मानसिंहका बनाया पहला घाट छोटा था, शैव और वैष्णव संन्यासियोंने एकवार स्नानके लिये झगडा करके बहुतसे आदमियोंका नाश किया इस कारण गवर्नमेन्टने सन् १८१९ में वर्तमान घाटपर विष्णुचरण युक्त किया । इस घाटपर गंगाजीका विस्तार ६७० हाथ है। घाटके ऊपर अनेक मन्दिर और घर हैं । कुछ दूर दक्षिणको एक नदी गंगाजीमें गिरती है। सर्वनाथका मन्दिर यहांपर विख्यात है । मन्दिरकी मूर्ति बुद्धजीके समान है । और दो खडीहुई मूर्ति हैं । वेदीके निकट चक्र और सिंह शोभायमान है । इस मन्दिरके कुछ दूर दाक्षिणमें भैरवमन्दिर है, तदुपरान्त मायादेवी है, मायादेवीका मन्दिर पत्थरका बनाहुआ है, द्वारपर ९०० वर्षका खुदा हुआ पत्थर लगा है, भीतर त्रिमस्तक, ४ हाथवाली असुरसंहारिणी दुर्गाजी हाथोंमें चक्र, त्रिशूल और मुण्ड लिये हुए हैं, निकटही आठ हाथकी शिवमूर्ति और नांदिया बैल है । दक्षिणमें मायापुर है । मायापुरके दक्षिणकी गंगाजीमेंसे नहर निकालकर रुडकीको गई है । नहरमें भतनानदीका मुख है । इस स्थानमें नारायण शिलामन्दिर है । मन्दिरकी प्रत्येक ईंट चारों ओर अर्ध हाथ लम्बी और तीन अंगुल चौडी है। निकटही ५०० हाथ समचतुष्कोण राजा वेनका किला है । जो इन वस्तुओंके देखनेकी इच्छा न हो तो मायापुरके दक्षिणमें नहर जहांसे आरम्भ हुई हैं तहांसे पार हो कुछ दूर दक्षिणको जाना चाहिये । वहांपर पहले कहे हुए द्वीपके शेषमें पूर्व दिशाकी धारासे एक धारा आकर पश्चिम धारामें मिलती है । इस संगमस्थानमें जलका विस्तार दो हजार हाथ है।

निनाय तां निशां तत्र कल्किः परिजनावृतः ।
प्रातर्ददर्श गङ्गायास्तीरे मुनिगणान् बहून् ॥
तस्याः स्नानमिषाद्विष्णोरात्मनो दर्शनाकुलान् ॥ ४७ ॥

उस रात्रिको विष्णुजीका अवतार कल्किजी परिजनोंके साथ उसी स्थानमें बिताकर प्रातःकाल देखते हुए कि, मुनिलोग गंगास्नानके मिषसे तिनको देखनेके लिये व्याकुल हो रहे हैं ॥ ४७ ॥

हरिद्वारे गंगातटनिकटपिण्डारकवने
वसन्तं श्रीमन्तं निजगणवृतं तं मुनिगणाः ।

—इसके दक्षिणमें प्रसिद्ध कनखल तीर्थ है, इस स्थानमें शिवजीने दक्षका यज्ञ नष्ट करादिया था । यहांपर सतीकुण्ड या दक्षेश्वर शिवजी हैं, प्राचीन मन्दिर वटवृक्षसे टूट जानेके कारण नया मन्दिर शकाब्द १७७० में बना है । नेपालके राजाका दियाहुआ एक घंटा भीतर लगा है । विष्णुपदघाटसे कनखल १॥ कोश है । हरिद्वारके हिमालयका नाम शिवालिक पर्वत है, पुराणमें इसकाही नाम कनखल श्रेणी है । कनखल पर्वतके ऊपर देखने योग्य अनेक वस्तुएँ हैं । बहुधा यात्री जिस पर्वतपर चढते हैं सो हरिद्वारकी ओरको झुका हुआ है परन्तु कटी हुई मिट्टी और पत्थरोंके टुकडोंके पडे रहनेके कारण सावधानीसे चढना पडता है । पर्वतके ऊपर वेदीमें नौ हाथ ऊंचा एक पत्थरका त्रिशूल गडा हुआ है । त्रिशूलके ऊपर चंद्रमा सूर्यकी मूर्ति और त्रिशूलके दण्डमें गणेशजीकी मूर्ति है । नीचेकी ओर पूर्व दिशामें कालिकादेवी और पश्चिममें हनुमान्जीकी मूर्ति है । शीतकालमें हरिद्वारमें बडा शीत और बर्फ पडता है, यहां-तक कि, लोहेकी वस्तुभी अगर छुई जाय तो वहभी जलाती है । चैत्रसंक्रान्तिमें स्नानका समय है, बारह वर्षके अन्तमें जब बृहस्पति कुम्भराशिमें प्रवेश करता है तब बडा भारी मेला होता है । शकाब्द १७८८ और १८०० में बडे मेले हुए थे । मेलेमें नागे और संन्या-सियोंका बडा जोर रहता है । भय फौजके गवर्नमेन्ट सावधान रहती है । भारतवर्षीय राजा-लोग और गुरुकी प्रधानताके अनुसार संन्यासीलोग टुकडियोंमें बैठकर स्नान करते हैं । जब हाथीके ऊपर महन्तजी और नीचे लम्बी २ डाढी मूछवाले जटाधारी कुछ नंगे, खाकी, माध्वाचारी, रामानुजी, नागा आदि भारतवर्षकी असंख्य सम्प्रदायें स्वर्णछत्र, चामर और पताकादि लेकर झुंडके झुंड चिल्लाते २ हरिद्वारके तंग रास्तेसे होते हुए विष्णुपदघाटको जाते हैं और जब दोनों ओर गवर्नमेण्टके साथ रक्षकगण सावधानीसे शब्द करते हैं, तब मनमें एक अनिर्वचनीय भावका उदय होता है । कितने एक " हर हर बम् बम् " कहते हुए जलमें जाकर गिरते हैं । उनके बादमें दूसरा दल " नारायण, हरे नारायण " कहता हुआ आगे बढता है । एक दल " जय शिव शम्भो जय शिव शम्भो " कहकर आनेलगा सन्ध्या-तक ऐसीही भीड रहा करती है । जो हरिद्वारके निकट मयदान और पर्वत न होते तो इस असंख्य फौज फर्रे और संन्यासी लोगोंको कहांसे स्थान मिलता ।

स्तवैः स्तुत्वा स्तुत्वा विधिवदुदितैर्जह्नुतनयां
प्रपश्यन्तं कल्किं मुनिजनगणा द्रष्टुमगमन् ॥ ४८ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कुथोदरीवधानन्तरं मुनिदर्शनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

हरिद्वारमें गंगातीरके निकट निजजनोंके साथ कल्किजी वास करते हैं। और जह्नुकी पुत्री (गंगा) का दर्शन करते हैं, ऐसे समयमें आय मुनिलोग दर्शन करके विधिबोधित स्तुतिवाक्य करके वारंवार तिनका स्तोत्र करने लगे ॥ ४८ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे बलदेवप्रसादमिश्रकृत-भाषाटीकायां कुथोदरीवधानन्तरं मुनिदर्शनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयांशः ।

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सूत उवाच-सुस्वागतान्मुनीन्दृष्ट्वा कल्किः परमधर्म्मवित् ।
पूजयित्वा च विधिवत्सुखासीनानुवाच तान् ॥ १ ॥

सूतजी बोले परमधार्मिक कल्किजीने मुनियोंको सुखसे आयाहुआ और सुखसे बैठाहुआ देखकर विधिविधानसे तिनकी अर्चना करके कहा ॥ १ ॥

कल्किरुवाच-के यूयं सूर्य्यसङ्काशा मम भाग्यादुपस्थिताः ।
तीर्थाटनोत्सुका लोकत्रयाणामुपकारकाः ॥ २ ॥

कल्किजी बोले-साक्षात् सूर्यके समान तेजस्वी, तीर्थ भ्रमण करनेमें तत्पर त्रिलोकीका हितसाधन करनेमें रत आपलोग कौन हैं ? आज हमारे भाग्यसेही आपलोग यहांपर आन पहुँचे हैं ॥ २ ॥

वयं लोके पुण्यवन्तो भाग्यवन्तो यशस्विनः ।
यतः कृपाकटाक्षेण युष्माभिरवलोकिताः ॥ ३ ॥

आज हम लोकमें पुण्यवान्, भाग्यवान् और यशस्वी हुए, क्योंकि आपलोगोंने आज हमको कृपाकटाक्षसे अवलोकन किया ॥ ३ ॥

ततस्ते वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठो गालवो भृगुः ।
पराशरो नारदोऽश्वत्थामा रामः कृपस्त्रितः ॥ ४ ॥

इसके उपरान्त वामदेव, अत्रि (१), वसिष्ठ (२), गालव (३), भृगु (४),

---

(१) अत्रिमुनि सप्तर्षिमण्डलमें हैं, ब्रह्माजीके नेत्रोंसे इनका जन्म हुआ । ब्रह्माजीकी छायासे कर्दमनामक प्रजापतिकी उत्पत्ति हुई थी । इनकी स्त्रीका नाम देवहूति था । देवहूतिके गर्भसे कर्दमजीके एक पुत्र और कला अनसूया आदि ९ कन्या जन्मीं । पुत्रका नाम कपिलदेवजी था । कर्दममुनिकी अनसूयाकन्याके साथ अत्रिमुनिका विवाह हुआ । इनके दत्त, दुर्वासा और चंद्र यह तीन पुत्र जन्मे । भागवतमें इनका वृत्तान्त लिखा है ।

(२) वसिष्ठ—ब्रह्माजीके प्राणसे वसिष्ठजीका जन्म हुआ । कर्दममुनिकी कन्या अरुन्धती इनकी भार्या हुई । मित्र और वरुणके औरससे तिनका जन्म हुआ । इस कारणसे इनको मैत्रावरुणि कहते हैं । यथाः—

इति पृष्टो नरेन्द्रेण कथ्यतामिति भूपते । वसिष्ठं नोदयामासुः समस्तं ते तपोधनाः ॥
मुनिभिः प्रेरितः सोऽपि यथावद्यतमानसः । योगमास्थाय सुचिरं मैत्रावरुणिरात्मवान् ॥
(अग्निपुराण—मृतधेनुविधि अध्याय)

इन श्लोकोंमें मैत्रावरुणि शब्द प्रयुक्त हुआ है, अग्निपुराणके वराहप्रादुर्भाव अध्यायमें कहा हैः—

मित्रावरुणयोश्चैव कुण्डिनो ये परिश्रुताः । एकार्षेयास्तथैवान्ये वसिष्ठा नाम विश्रुताः ॥
(अग्निपुराण)

कूर्मपुराणमें सप्तर्षियोंको वसिष्ठजीका पुत्र कहा है । यथाः—

वसिष्ठश्च तथोर्ज्जायां सप्तपुत्रानजीजनत् । कन्यां च पुण्डरीकाक्षां सर्वशोभासमन्विताम् ॥
रजोगात्रोर्ध्वबाहुश्च मनवश्चानवस्तथा । सुतपाः शुक्र इत्येते सप्त पुत्रा महौजसः ॥
सर्वे तपस्विनः प्रोक्ताः सर्वयज्ञेषु भाविनः । अयज्वानश्च यज्वानः पितरो ब्रह्मणः सुताः ॥
(कूर्मपुराण १२ अध्याय)

कूर्मपुराणके इस श्लोकसे वह प्रमाणित होता है कि, सप्तर्षिगण वसिष्ठजीके पुत्र थे । यही वसिष्ठजी सूर्यवंशके कुलगुरु हुए ।

(३) गालव—तपस्वी, एक धर्मात्मा मुनि थे । इनका अधिक वृत्तान्त नहीं पायागया ॥

(४) भृगु—मुनिविशेष । यह मुनि ब्रह्माजीकी त्वक्से उत्पन्न हुए थे । इनके साथ कर्दम मुनिकी कन्या ख्यातिका विवाह हुआ था । भृगुकी कन्याका नाम श्री है । ऊपर भागवतका मत कहा अब अग्निपुराणका मत कहते हैं—

कथितस्ते यदा सर्गः पृष्टः सूत त्वयाऽनघ । भृगुसर्गात्प्रभृत्येष सर्गो नः कथ्यतां पुनः ॥
भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना श्रीसूर्यमुदधेः पुनः । तथा धाता विधाता च तस्यां जातौ भृगोः सुतौ॥
आयतिर्नियतिश्चैव मेरुकन्ये महाप्रभो । धातुर्विधातुस्ते भार्ये ययोर्जातौ सुतावुभौ ॥
प्राणश्चैव मृकण्डुश्च मार्कण्डेयो मृकण्डुतः । ततो वेदशिरा जज्ञे प्राणस्य द्युतिमान्सुतः ॥

पराशर, (१) नारद, (२) अश्वत्थामा, परशुराम, कृपाचार्य, त्रित ॥ ४ ॥

-भृगुकी कन्या लक्ष्मी, दूसरी बार (समुद्र मथनेके समय) समुद्रसे उत्पन्न हुई थी, भृगुके पुत्रोंका नाम धाता और विधाता था । मेरुकी कन्या आयति और नियतिके साथ धाता और विधाताका विवाह हुआ । तिनके प्राण और मृकण्डुनामक दो पुत्र जन्मे । मृकण्डुके मार्कण्डेय नामक पुत्र हुआ । मार्कण्डेय मुनिके पुत्रका नाम वेदशिरा हुआ । प्राणके यहां द्युतिमान् नामक एक पुत्र जन्मा । यही भृगुजीकी संक्षिप्त वंशावली है ।

(१) पराशर-शक्तिके पुत्र थे। इनके पुत्र वेदव्यासजी कृष्णद्वैपायन नामसे प्रसिद्ध हुए । औरभीः-

सुतं तज्जनयच्छक्तेरदृश्यन्ती पराशरम् । काली पराशराज्जज्ञे कृष्णद्वैपायनं मुनिम् ॥

(अग्निपुराण)

पराशरजी एक जालजीवी जातिवालेकी कन्याके रूपपर मोहित हुए थे। तिसकेही गर्भसे वेदव्यासजीका जन्म हुआ ।

(२) नारदजी-देवर्षिविशेष । यह ब्रह्माजीके शापसे ऊप८ इन नामक गन्धर्व होकर जन्मे । फिर ब्राह्मणके औरससे शूद्रीके गर्भमें जन्मेथे ।

कान्यकुब्जे च देशे च द्रुमिलो गोपराजकः । कलावती तस्य पत्नी,वन्ध्या चापि पतिव्रता॥
स्वामिदोषेण सा वन्ध्या काले च भर्त्तुराज्ञया । उपस्थितं वने घोरे नारदं काश्यपं मुनिम् ॥
क्रोशमानं च श्रीकृष्णं ज्वलन्तं ब्रह्मवर्चसा । तस्थौ सुवेषं कृत्वा सा ध्यानान्तं च मुनेः पुरः॥
उवाच विनयेनैव कृत्वा च श्रीहरिं हृदि । गोपिकाऽहं द्विजश्रेष्ठ द्रुमिलस्य च कामिनी ॥
पुत्रार्थिनी चागताऽहं त्वन्मूलं भर्त्तुराज्ञया । वीर्याधानं कुरु मयि स्त्री नोपेक्ष्या ह्युपस्थिता ॥
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा । वृषलीवचनं श्रुत्वा चुकोप मुनिपुङ्गवः ॥
वृषली तत्पुरस्तस्थौ शुष्ककण्ठौष्ठतालुका । एतस्मिन्नन्तरे तेन पथा यास्यति मेनका ॥
तस्या ऊरुस्थलं दृष्ट्वा मुनिर्वीर्यं पपात है । ऋतुस्नाता च वृषली कृत्वा तद्भक्षणं मुदा ॥
सा विप्रगेहे साध्वी च सुषाव तनयं वरम् । तप्तकाञ्चनवर्णाभं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, ब्रह्मखण्ड)

कान्यकुब्ज (कनोज) में द्रुमिल नामक एक गोपराज था, तिसकी भार्या कलावती अत्यन्त पतिव्रता थी परन्तु स्वामीके दोषसे वह बांझ हुई थी । निकटके घोर वनमें काश्यप नारद तप करते थे, पतिकी आज्ञासे कलावती वहां गई । मुनिजीका ध्यानभंग होनेके पीछे श्रेष्ठ वेष धारण कर कलावती तिनसे बोली-हे मुने! मुझमें वीर्य आधान करो । नारदजी अत्यन्त क्रोधित हुए । इसी समयमें मेनका नामक देवकामिनी उस मार्गसे जाती थी । काश्यप नारदजी तिसके ऊरुकी सुन्दरताई देखकर मोहित हुए । तिनका वीर्य गिरपडा । कलावतीने ऋतुस्नान किया था । इसने उस वीर्यको आनन्दसे भक्षण करलिया । इसके उपरान्त साध्वी कलावतीने किसी ब्राह्मणके गृहमें ब्रह्मतेजसे दीप्तिमान् एक बालक जना । वह बालक उत्तरकालमें नारद नामसे प्रसिद्ध हुआ था । यथाः-

अनावृष्ट्यवशेषे च काले बालो बभूव ह । नारं ददौ जन्मकाले तेनायं नारदाभिधः ॥

–ददाति नारं ज्ञानं च बालकेभ्यश्च बालकः । जातिस्मरो महाज्ञानी तेनायं नारदाभिधः ॥
वीर्येण नारदस्यैव बभूव बालको मुने । मुनीन्द्रस्य वरेणैव तेनायं नारदाभिधः ॥
कल्पान्तरे ब्रह्मकण्ठाद्बभूवुर्बहवो नराः । नरान्ददौ तत्कण्ठं च तेन तन्नारदः स्मृतः ॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्मखण्ड)

अनावृष्टिके अंतमें नारदजीका जन्म हुआ । उनके जन्म लेतेहीपर पृथ्वीपर जल बरसा । इसी कारण 'नारद अर्थात् जलदान किया है' इस अर्थसे तिनका नाम नारद हुआ । इत्यादि अनेक अर्थसे नारद नाम हुआ था फिर ब्रह्माजीने उनका नाम नारद रक्खा । वह बालक नारदजी ब्राह्मणके गृहमें वास करने लगे । इसी समयमें चार ब्राह्मण उस ब्राह्मणके घरपर आये । तिनमेंसे एक ब्राह्मणने यह जानकर कि, नारदजी ब्राह्मणके पुत्र हैं, इनको विष्णुमंत्र दान किया । बालक नारदजीने विष्णुमंत्रको पाय गंगातीरपर जाय दिव्य हजार वर्षतक तप किया । उन्होंने एक समय ध्यानमें मुरलीधारी, चन्दन लगाये दो भुजावाली बालक मूर्त्तिको देखा । तिनका समस्त शोक जाता रहा । फिर उस बालकको पीपलकी जडमें खडाहुआ न देख पाकर नारदजी रोने लगे । तब देववाणी हुई कि, एकवार गोविन्दजीकी मूर्ति देखली. अब उसका दर्शन नहीं मिलेगा । मृत्युके पीछे उस मूर्तिका दर्शन फिर मिलेगा । बालक नारद इस देववाणीको सुनकर परम प्रसन्न हुए, फिर काल पायकर शरीर छोडा । वह शापसे छुटकारा पाय ब्रह्मपदमें लीन हो अमृतानन्दको भोगने लगे । तत्पश्चात् कई कल्प बीतनेपर जब फिर संसारकी सृष्टि होने लगी तब मरीचि आदि मुनियोंके साथ नारदजीने ब्रह्माके कंठसे जन्म लिया इस प्रकार ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है ।

श्रीमद्भागवत और ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके मध्य नारदजीके पूर्व जन्मकी माताके सम्बन्धमें विरोध है । ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके मतसे गोपराजकी रानीके गर्भसे नारदजीका जन्म हुआ । परन्तु भागवतके मतानुसार एक ब्राह्मणकी दासीके गर्भसे नारदजीका जन्म हुआ । श्रीमद्भागवतमें व्यासजी और नारदजीका साक्षात् होनेपर नारदजीने कहाथाः–

अहं पुराऽतीतभवेऽभवं मुने दास्याश्च कस्याश्चन वेदवादिनाम् ।
निरूपितो बालक एव योगिनां शुश्रूषणे प्रावृषि निर्विविक्षताम् ॥
(श्रीमद्भागवत, १ स्कन्ध, ५ अध्याय, २३ श्लोक)

प्रथम वयसमेंही नारदजी धर्मानुरागी थे । माताके स्नेहसे अपनी अभिलाषाको पूरी नहीं करसके । एक समय उनकी माता दूध दोहन कररहीथी कि, इतनेमें एक कालसर्पने उसको डसालिया । इसीसे इनकी माता मरगई । तब नारदजी निष्कण्टक होकर तप करने लगे । एक दिन नारायणजीका दर्शन हुआ । यह बातें ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमेंभी लिखी हैं । फिर नारदजीने ब्रह्मदेहमें प्रवेश कियाथा । सृष्टिके समय फिर मूर्ति धारण की, दूसरे जन्ममें वीणा लिये त्रिभुवनमें घूमते रहाकरतेथे । हरिके प्रसादसे तिनकी गति बेरोक थी । यथाः–

अन्तर्बहिश्च लोकांस्त्रीन् पर्येम्यस्कन्दितव्रतः । अनुग्रहान्महाविष्णोरविघातगतिः क्वचित् ॥
देवदत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषिताम् । मूर्च्छयित्वा हरिकथां गायमानश्चराम्यहम् ॥
(श्रीमद्भागवत, प्रथमस्कन्ध, ६ अध्याय ३२ । ३३ श्लो०)

इस प्रकार हरिगुणगान करते हुए नारदजी त्रिभुवनमें घूमाकरतेथे । नारदजी परम प्रेमिक और भक्त थे ।

दुर्वासा देवलः कण्वो वेदप्रमितिरङ्गिराः ।
एते चान्ये च बहवो मुनयः संशितव्रताः ॥ ५ ॥

दुर्वासा (१), देवल (२), कण्व (३), वेदप्रमिति और अंगिरा (४) यह समस्त मुनिगण व और २ बहुतसे महाव्रतवाले ऋषिलोग ॥ ५ ॥

कृत्वाऽग्रे मरुदेवापी चन्द्रसूर्य्यकुलोद्भवौ ।
राजानौ तौ महावीर्य्यौ तपस्याभिरतौ चिरम् ॥ ६ ॥

चन्द्रसूर्यकुलमें उत्पन्न हुए महावीर्यशाली तपस्यामें निरत महाराज मरु और देवापिको सम्मुख देखकर ॥ ६ ॥

ऊचुः प्रहृष्टमनसः कल्किं कल्कविनाशनम् ।
महोदधेस्तीरगतं विष्णुं सुरगणा यथा ॥ ७ ॥

पापके नाश करनेवाले कल्किजीसे कहने लगे—जैसे हर्षित अन्तःकरणवाले देवताओंने महासागरके तीरपर स्थित हुए विष्णुजीसे कहाथा, वैसेही ऊपर कहेहुए ऋषिलोगोंने कल्किजीके निकट (अपना अपना) अभिप्राय प्रगट करनेकी इच्छा की ॥ ७ ॥

मुनय ऊचुः—जयाशेषजगन्नाथ विदिताखिलमानस ।
सृष्टिस्थितिलयाध्यक्ष परमात्मन्प्रसीद नः ॥ ८ ॥

---

(१) भागवतमें दुर्वासाजीको अत्रिमुनिका पुत्र बताया है । महादेवजीके अंशसे इनका जन्म हुआ । विष्णुपुराणमें भी इनको महादेवजीका अंश कहा है । " दुर्वासाः शङ्करस्यांशश्चचार पृथिवीमिमाम् "—इस आधे श्लोकसे यह प्रमाणित होता है । ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें भी कहा है कि, और्वमुनिकी कन्या कन्दली तिनकी भार्या हुई ।

(२) देवलमुनि धर्मशास्त्रके वक्ता थे । इन्होंने रम्भानामक अप्सराके शापसे अष्टावक्रके नामको धारण कर जन्म लिया था । ऐसा ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है ।

(३) कण्वमुनिजीने पुत्र (रु) वंशीय अप्रतिरथ नामक क्षात्रियके औरससे जन्म लिया था । यथाः—

सुमतिर्ध्रुवोऽप्रतिरथः कण्वोऽप्रतिरथात्मजः । तस्य मेधातिथिस्तस्मात् प्रस्कण्वाद्या द्विजातयः ॥
(भागवतम्)

(४) महर्षिअंगिराजीका वर्णन इस प्रकार भागवतमें लिखाहै कि, यह ब्रह्माजीके मुखसे उत्पन्न हुए । कर्दममुनिकी कन्या श्रद्धा इनकी स्त्री हुई । इनके उतथ्य और बृहस्पति नामका दो पुत्र हुए और सिनीवाली, कुहू, राका, अनुमति यह चार कन्या हुई ।

मुनिलोग कहने लगे—हे जगन्नाथ ! तुमने सबको जीत लिया है, तुम त्रिलोकीके अन्तःकरणकी वृत्तिको जानते हो । हे परमात्मन् ! तुम अनन्त संसारकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते हो, इस समय प्रसन्न होवो ॥ ८ ॥

कालकर्म्मगुणावास प्रसारितनिजक्रिय ।
ब्रह्मादिनुतपादाब्ज पद्मानाथ प्रसीद नः ॥ ९ ॥

हे पद्मानाथ ! तुम कालस्वरूप हो, जगत्‌के गुणकर्म तुममेंही विद्यमान हैं, ब्रह्मादि देवता लोगभी तुम्हारे चरणकमलकी स्तुति किया करते हैं, तुम इस समय हमारे प्रति प्रसन्न होवो ॥ ९ ॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा कल्किः प्राह जगत्पतिः ।
कावेतौ भवतामग्रे महासत्त्वौ तपस्विनौ ॥ १० ॥

इस प्रकार मुनियोंके वचन सुनकर जगत्पति कल्किजी कहने लगे—हे मुनिगण ! तुम्हारे सम्मुख यह जो महाबली पराक्रमी और तपमें रत दो जने दीखते हैं यह कौन हैं ? ॥ १० ॥

कथमत्रागतौ स्तुत्वा गंगां मुदितमानसौ ।
का वा स्तुतिस्तु जाह्नव्या युवयोर्नामनी च के ॥ ११ ॥

यह किस निमित्तसे गंगाजीका स्तोत्र कर संतुष्ट चित्तसे यहांपर आये हैं ? (कल्किजी उन दोनों आये हुओंसे कहने लगे) तुम किस कारणसे गंगाजीका जप करते हो, तुम कौन हो ? और तुम्हारा नाम क्या है ? (यह समस्त वृत्तान्त हमसे प्रगट करके कहो) ॥ ११ ॥

तयोर्मरुः प्रमुदितः कृताञ्जलिपुटः कृती ।
आदावुवाच विनयी निजवंशानुकीर्त्तनम् ॥ १२ ॥

इसके उपरान्त उन दोनों जनोंमेंसे कार्य करनेमें चतुर मरु संतुष्ट होकर हाथ जोडकर खडा होगया और विनययुक्त वचनसे अपने वंशका कीर्त्तन करने लगा ॥ १२ ॥

मरुरुवाच—सर्वं वेत्सि परात्मापि अन्तर्यामिन् हृदि स्थितः ।
तवाज्ञया सर्वमेतत् कथयामि शृणु प्रभो ॥ १३ ॥

मरुने कहा—आप हृदयके परमात्मा और अन्तर्यामी हैं, हे प्रभो ! आप सबही कुछ जानते हैं, आपकी आज्ञासे समस्त कहता हूं, श्रवण कीजिये ॥ १३॥

तव नाभेरभूद्ब्रह्मा मरीचिस्तत्सुतोऽभवत् ।
ततो मनुस्तत्सुतोऽभूदिक्ष्वाकुः सत्यविक्रमः ॥ १४ ॥

आपकी नाभिसे ब्रह्माने जन्म लिया, ब्रह्माके पुत्र मरीचि, मरीचिसे मनु, मनुसे सत्य विक्रमकारी इक्ष्वाकु उत्पन्न हुए थे ॥ १४ ॥

युवनाश्व इति ख्यातो मान्धाता तत्सुतोऽभवत् ।
पुरुकुत्सस्तत्सुतोऽभूदनरण्यो महामतिः ॥ १५ ॥

इक्ष्वाकुका पुत्र युवनाश्व, युवनाश्वका पुत्र मान्धाता, मान्धाताका पुत्र पुरुकुत्स, पुरुकुत्ससे महाबुद्धिमान् अनरण्य जन्मे ॥ १५ ॥

त्रसद्दस्युः पिता तस्माद्धर्य्यश्वस्त्वरुणस्ततः ।
त्रिशङ्कुस्ततो धीमान्हरिश्चन्द्रः प्रतापवान् ॥ १६ ॥

अनरण्यका पुत्र त्रसद्दस्यु, तिससे हर्यश्व, हर्यश्वका पुत्र अरुण हुआ। अरुणका पुत्र बुद्धिमान् त्रिशंकु, त्रिशंकुसे प्रतापवान् महाराज हरिश्चन्द्रने (१) जन्म लिया था ॥ १६ ॥

हरितस्तत्सुतस्तस्माद्भरुकस्तत्सुतो वृकः ।
तत्सुतः सगरस्तस्मादसमञ्जस्ततोंऽशुमान् ॥ १७ ॥

महाराज हरिश्चन्द्रका पुत्र हरित, (कोई कोई रोहित कहते हैं) हरितका पुत्र भरुक, भरुकका पुत्र वृक, वृकका पुत्र असमञ्जा, असमञ्जासे अंशुमान् उत्पन्न हुए ॥ १७ ॥

---

(१) महाराज हरिश्चन्द्र अत्यन्त सत्यवादी राजा थे। इन्होंने सत्यके लिये राजपाट, धन दौलत स्त्री पुत्रको त्यागा वरन् अपने शरीरतकको बेंच दिया था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजीने "सत्य हरिश्चन्द्र" नाटकमें इन्हींके चरित्रका चित्र उतारा है। उक्त पुस्तक भारतजीवन प्रेस बनारसमें मिलती है हरिश्चन्द्रके सत्य विषयमें उक्त बाबूसाहबने क्याही उत्तम लिखा है यथाः—

चंद्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यौहार । पै दृढ श्रीरामचंद्रको, मिटै न सत्य विचार ॥
बेचि देह दारा सुवन, होय दासहू मन्द । रखि है निजवच सत्यकारि, अभिमानी हरिचंद॥

ततो दिलीपस्तत्पुत्रो भगीरथ इति स्मृतः ।
येनानीता जाह्नवीयं ख्याता भागीरथी भुवि ।
स्तुता नुता पूजितेयं तव पादसमुद्भवा ॥ १८ ॥

अंशुमान्का पुत्र दिलीप, दिलीपके भगीरथ नामक विख्यात पुत्र थे, गंगाको वही लायेथे, इस कारणसे गंगा भागीरथी नामसे विख्यातहैं। आपके चरणसे उत्पन्न होनेके कारण संसारमें लोग इनका स्तोत्र करते, प्रणाम करते और पूजा करते हैं ॥ १८ ॥

भगीरथात्सुतस्तस्मान्नाभस्तस्मादभूद्बली ।
सिन्धुद्वीपसुतस्तस्मादयुतायुस्ततोऽभवत् ॥ १९ ॥

भगीरथका पुत्र नाभ, नाभका पुत्र बलवान् सिन्धुद्वीप और सिन्धुद्वीपसे अयुतायुने जन्म ग्रहण किया ॥ १९ ॥

ऋतुपर्णस्तत्सुतोऽभूत्सुदासस्तत्सुतोऽभवत् ।
सौदासस्तत्सुतो धीमानश्मकस्तत्सुतो मतः ॥ २० ॥

अयुतायुका पुत्र ऋतुपर्ण, ऋतुपर्णका पुत्र सुदास, सुदासका पुत्र सौदास और सौदासका पुत्र बुद्धिमान् अश्मक हुआ ॥ २० ॥

मूलकात्स दशरथस्तस्मादेडविडस्ततः ।
राजा विश्वसहस्तस्मात्खट्वाङ्गो दीर्घबाहुकः ॥ २१ ॥

अश्मकका पुत्र मूलक, मूलकका पुत्र दशरथ, दशरथसे एडविडने जन्म लिया। एडविडका पुत्र विश्वसह, विश्वसहका पुत्र खट्वाङ्ग, खट्वाङ्गका पुत्र दीर्घबाहु था ॥ २१ ॥

ततो रघुरजस्तस्मात्सुतो दशरथः कृती ।
तस्माद्रामो हरिः साक्षादाविर्भूतो जगत्पतिः ॥ २२ ॥

दीर्घबाहुका पुत्र रघु, रघुसे अज, अजके पुत्र दशरथ और दशरथजीसे साक्षात् जगन्नाथ हरिने श्रीरामरूपसे अवतार लिया ॥ २२ ॥

रामावतारमाकर्ण्य कल्किः परमहर्षितः ।
मरुं प्राह विस्तरेण श्रीरामचरितं वद ॥ २३ ॥

रामावतारकी कथा सुनकर कल्किजी परम हर्षको प्राप्त हुए और विस्तारसहित श्रीरामचरित्रके वर्णन करनेको मरुसे कहा ॥ २३ ॥

सीतापतेः कर्म्म वक्तुं कः समर्थोऽस्ति भूतले ।
शेषः सहस्रवदनैरपि लालायितो भवेत् ॥ २४ ॥
तथापि शेमुषी मेऽस्ति वर्णयामि तवाज्ञया ।
रामस्य चरितं पुण्यं पापतापप्रमोचनम् ॥ २५ ॥

मरुने कहा—इस पृथ्वीमें ऐसा कौन है जो सीतानाथ रामचन्द्रजीके कार्योंका वर्णन करसके वरन् हजार मुखवाले अनन्तजीभी वर्णन करनेको समर्थ नहीं हैं; तथापि आपकी आज्ञासे अपनी बुद्धिके अनुसार पवित्र और पाप तापका दूर करनेवाला श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र वर्णन करताहूं २४॥२५

अजादिविबुधार्थितोऽजनि चतुर्भिरंशैः कुले
रवेरजसुतादजो जगति यातुधानक्षयः ।
शिशुः कुशिकजाध्वरक्षयकरक्षयो यो बला-
द्बली ललितकन्धरो जयति जानकीवल्लभः ॥ २६ ॥

पूर्वकालमें ब्रह्मादि देवताओंकी प्रार्थनासे सूर्यवंशके विषय राम, लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न इन चार अंशोंकरके दशरथजीसे राक्षसोंका अन्त करनेवाले जानकीके पति श्रीरामचन्द्रजीने अवतार लिया, जिन्होंने शैशवावस्थामें विश्वामित्रजीके यज्ञके मध्यमें विघ्न करनेवाले राक्षसोंको बलसे नष्ट करके श्रेष्ठताको प्रकाशित किया ॥ २६ ॥

मुनेरनु सहानुजो निखिलशस्त्रविद्यातिगो
ययावतिवनप्रभो जनकराजराजत्सभाम् ।
विधाय जनमोहनद्युतिमतीव कामद्रुहः
प्रचण्डकरचण्डिमा भवनभञ्जने जन्मनः ॥ २७ ॥

जिनकी महिमासे फिर कामनापूर्ण जगत्में फिर पुनर्जन्म नहीं होता, जो अत्यन्त बलवान् और प्रभासम्पन्न हैं ऐसे समस्त शस्त्रविद्याके जाननेवाले

श्रीरामचन्द्रजी जनमोहनरूप धारण करके लक्ष्मणजीके सहित मुनियोंके साथ साथ राजा जनकजीकी सभामें गमन करते हुए ॥ २७ ॥

तमप्रतिमतेजसं दशरथात्मजं सानुजं
मुनेरनु यथा विधेः शशिवदादिदेवं परम् ।
निरीक्ष्य जनको मुदा क्षितिसुतापतिं सम्मतं
निजोचितपणक्षमं मनसि भर्त्सयन्नाययौ ॥ २८ ॥

ब्रह्माजीके पीछे जिस प्रकार चन्द्रमाजी बैठे हों तैसेही वह अनुपम तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित विश्वामित्र मुनिके पीछे विधिके अनुसार बैठे, आदिदेव परमश्रेष्ठ भगवान्को देखकर जनकजीने विचारा कि, यह जानकीके योग्य वर हैं अतः निज पणको अनुचित समझ अपनेको मनहीं मनमें धिक्कारते हुए श्रीरामचन्द्रजीके निकट गये ॥ २८ ॥

स भूपपरिपूजितो जनकजेक्षितैरर्चितः
करालकठिनं धनुः करसरोरुहे संहितम् ।
विभज्य बलवद्दृढं जय रघूद्वहेत्युच्चकै-
र्ध्वनिं त्रिजगतीगतं परिविधाय रामो बभौ ॥ २९ ॥

जनकजीके आदर और जानकीजीके कटाक्षसे सत्कार पाय श्रीरामचंद्र-जीने वह अत्यन्त कठिन धनुष हाथमें लेकर दो टुकडे करडाला । तब "श्रीरामचन्द्रजीकी जय !" इस ऊंची ध्वनिने त्रिलोकीको व्याप्त किया, तिससे श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त शोभायमान होने लगे ॥ २९ ॥

ततो जनकभूपतिर्दशरथात्मजेभ्यो ददौ
चतस्र उशतीर्मुदा वरचतुर्भ्य उद्वाहने ।
स्वलंकृतनिजात्मजाः पथि ततो बलं भार्गव-
श्चकार उररी निजं रघुपतौ महोग्रं त्यजन् ॥ ३० ॥

इसके उपरान्त राजा जनकने राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न दशरथजीके इन चार पुत्रोंको सीता, ऊर्मिला, माण्डवी और श्रुतकीर्ति अपनी यह

चार अलंकृता कन्या आनन्दसे दान करदीं । फिर यह सब विवाह करके अयोध्याको आ रहे हैं कि, इसी समय मार्गमें भृगुनन्दन परशुरामजीने रामचन्द्रजीके ऊपर अपना अमित विक्रम प्रगट किया ॥ ३० ॥

ततः स्वपुरमागतो दशरथस्तु सीतापतिं
नृपं सचिवसंयुतो निजविचित्रसिंहासने ।
विधातुममलप्रभं परिजनैः क्रियाकारिभिः
समुद्यतमतिं तदा द्रुतमवारयत्केकयी ॥ ३१ ॥

फिर राजा दशरथजीने अयोध्यामें आय मंत्रियोंके साथ सलाह कर सीतापति श्रीरामचन्द्रजीको अपने विचित्र सिंहासनके देनेका संकल्प किया। अभिषेककी समस्त तैयारियें होने लगीं । परिजनलोग अभिषेककी सामग्री इकट्ठी करनेमें लगे । इसी समयमें कैकेयीने आय रामाभिषेकमें उद्योग करते हुए दशरथजीको शीघ्र रोका ॥ ३१ ॥

ततो गुरुनिदेशतो जनकराजकन्यायुतः
प्रयाणमकरोत्सुधीर्यदनुगः सुमित्रासुतः ।
वनं निजगणं त्यजन् गुहगृहे वसन्नादरात्
विसृज्य नृपलाञ्छनं रघुपतिर्जटाचीरभृत् ॥ ३२ ॥

फिर पिताकी आज्ञासे सीता और लक्ष्मणजीके साथ श्रीरामचन्द्रजी वनको गये, फिर साथ आतेहुए पुरवासियोंको छोड (१) गुहके गृहमें जाय राजचिह्नोंको त्याग जटा, वल्कल धारण किये ॥ ३२ ॥

प्रियानुजयुतस्ततो मुनिमतो वने पूजितः
स पञ्चवटिकाश्रमे भरतमातुरं सङ्गतम् ।
निवार्य्य मरणं पितुः समवधार्य्य दुःखातुर-
स्तपोवनगतोऽवसद्रघुपतिस्ततस्ताः समाः ॥ ३३ ॥

---

(१) गुहगृह । गुह अनार्य निषाद जातिका स्वामी था इसके गुणोंको देखकर श्रीरामचन्द्रजीने इसके साथ मित्रता की और आदरसहित हृदयसे लगाया । गंगाके उत्तर किनारे पर शृंगवेरपुर (वर्त्तमान संगरूर) Sungroor नामक नगरमें इसकी राजधानी थी ।

तहांपर मुनिवेषसे पूजित हो (१) पञ्चवटीके आश्रममें वास करते हुए। इस स्थानमें (२) चित्रकूटमें भरतजी कातर हो तिनके निकट आये। उन्होंने भरतको समझाया और पिताजीके मरणकी वार्ता सुन दुःखित हुए और शेषवर्ष तपोवनमें बिताते हुए ॥ ३३ ॥

---

(१) पंचवटीवनं। दण्डकारण्यके अन्तर्गत गोदावरी नदीके किनारेपर यह वन है। इसका वर्तमान नाम नासिकतीर्थ है। "नादगांवके वाद कईएक स्टेशन पार होनेक पीछे नासिकरोड है। स्टेशनसे नासिक नगर उत्तर-पश्चिममें ६ माइल है । नजदीकही चार जनोंके बैठने लायक तांगा नामक गाडी पाई जाती है। यह गाडी घंटेमें ७ मील चलती है । दिन भरका भाडा २॥) रु० है। नासिक नगरके देखनेसे काशीकी याद आती है । विस्तारित, थाई और तेजधारवाली गोदावरीके किनारे प्रायः आध मैलतक घाट और मंदिरोंकी शोभा है। किनारेपर कोई स्नान करता है, कोई जप करता है, कोई चीज वस्तुको साफ करता है और कोई "त्र्यम्बकस्य जटोद्भूते गौतमस्याघनाशिनि।" कहकर गोदावरीकी स्तुति कर रहा है। कोई ऊपर मन्दिरमें दौड रहा है, कोई दुकानदारोंसे सौदा मोल ले रहा है, यौवनमदमाती कामिनियोंसे नगर कंपायमानसा है । विशेष हिवर आदि भ्रमण कारियोंने कहा है, नारियलके वर्णकी भारत-कामिनियें, विलायतकी श्वेतरंगवाली स्त्रियोंसे अच्छी हैं । यहांपर ३५००० आदमियोंकी वस्ती हैं; तिनमें १०००० ब्राह्मण हैं। गौतमीके (गोदावरीके) उत्तर तटपर स्थित इस नगरमें प्रवेश करके हम पंचवटीके रघुनाथजीके मन्दिरमें पहुँचे। पंचवटीमें पंचवटी विद्यमान है, इसके सिवाय और कोई वन नहीं। नासिक बडा भारी तीर्थ है। यहांपर लक्ष्मणजीने शूर्पणखाकी नाक काटी, इसी कारणसे इनका नाम नासिक हुआ है। रामचंद्रजीने सीताजीके लिये यहांपर बडा विलाप किया था। इस स्थानका वर्णन करके वाल्मीकिजीने जगत्को मोहित किया है। यहांसे बहुत दूर झिडिकाल्लुमें मारीचका वध हुआ था। सत्य हो वा मिथ्या हो, इस स्थानमें दौडते हुए हरिणके पदचिह्न पत्थरपर साफ दिखाई देते हैं।" (भारतभ्रमण)

(२) चित्रकूट-पर्वतविशेष। पयस्विनी (पिसानी-Pissani) नदीके किनारे स्थित है, बुन्देलखण्डके बान्दा नगरसे चित्रकूट प्रायः २५ कोश दक्षिण पूर्वको है । इस पवित्र स्थानमें अनेक मन्दिर हैं। रामलक्ष्मणजीका मन्दिर प्रधान है। यहांपर महर्षि वाल्मीकिजीका आश्रम है। यह स्थान वैष्णवोंका परम पूज्य है । विशेष करके रामोपासक लोग इसका अत्यन्त आदर करते हैं। यहांपर 'सीताफल' नामक एक फल पाया जाता है । (Calcutta Review Vol. XXIII) यहांपर मन्दाकिनी नामक एक नदी है । ग्यारेट साहब कहते हैं कि, इस मन्दाकिनी नदीका वर्त्तमान नाम पिसानी (Pissani) है। (Garrett's Classical Dictionary of India)

इसके पीछे मारकुण्डा स्टेशन है चारों ओर पहाड और जंगलही दिखाई देते हैं। इस स्टेशनसे ६ कोश दूर हमीरपुरसे चित्रकूटको जाना पडता है । चित्रकूट पर्वतकी वनशोभा-

दशाननसहोदरां विषमबाणवेधातुरां
समीक्ष्य वररूपिणीं प्रहसतीं सतीं सुन्दरीम् ।
निजाश्रयमभीप्सतीं जनकजापतिर्लक्ष्मणात्
करालकरवालतः समकरोद्विरूपां ततः ॥ ३४ ॥

फिर कामबाणसे पीडित, श्रेष्ठ वेषवाली सुन्दरी, हास्ययुक्त, अपने प्रति अभिलाषा किये रावणकी बहिन शूर्पणखाको देखकर रामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीको इशारा किया, लक्ष्मजणीने भी तीक्ष्ण करवाल (तलवार) से राक्षसीको कुरूप कियाथा अर्थात् इसके नाक कान काटडाले ॥ ३४ ॥

समाप्य पथि दानवं खरशरैः शनैर्नाशयन्
चतुर्दशसहस्रकं समहनत्खरं सानुगम् ।
दशाननवशानुगं कनकचारुचञ्चन्मृगं
प्रियाप्रियकरो वने समवधीद्बलाद्राक्षसम् ॥ ३५ ॥

फिर मार्गमें दानवको नष्ट कर चौदह हजार सेनाके स्वामी रावणके वशमें हुए (मातहद) खर दूषणको (उसके) अनुचरोंके साथ संहार किया, सीतजीकी प्रिय कामनासे चंचल सुवर्णमय मृगरूपी राक्षसका वध किया ॥ ३५ ॥

ततो दशमुखस्त्वरंस्तमभिवीक्ष्य रामं रुषा
व्रजन्तमनु लक्ष्मणं जनकजां जहाराश्रमे ।
ततो रघुपतिः प्रियां दलकुटीरसंस्थापितां
न वीक्ष्य तु विमूर्च्छितो बहु विलप्य सीतेति ताम् ॥३६॥

—अत्यन्त सुन्दर है। एक ओर मन्दाकिनी वहती है, तिसके किनारे तीर्थमन्दिर पर्वतके ऊपर श्रीराम, सीता और लक्ष्मणजीकी पाषाणमयी मूर्त्ति हैं। यहांपर रामघाट, देवाङ्गना, हनुमानधरा, फटिकशिला, गुप्त गोदावरी, पर्वतपर अनसूयाकी प्रतिमा, भरतकुण्ड, कामाख्यानाथपर्वत, पयोष्णी नदी, दासहनुमानस्थान, वीरहनुमानस्थान, बालदिवाकर और गफ हनुमानस्थान आदिके दर्शन होते हैं।

कलकत्तारिवियूसे पहले दिखा आये हैं कि, चित्रकूटकी पयोष्णी नदीकाही वर्त्तमान नाम पिसानी है और भारतभ्रमण पुस्तकमें भी मन्दाकिनी और पयोष्णी दो नदियोंका नाम लिखा है इससे ज्ञात होता है, कि ग्यारेट साहबने मन्दाकिनीको पयोष्णी (Pissani) नदी कहकर धोखा खाया है।

इसके उपरान्त मार्गमें रामलक्ष्मणको गमन करता हुआ देख, रावणने शीघ्रही आश्रमसे सीताजीको हरण किया। पर्णकुटीमें सीताजीको न देखपाय " हा सीते ! " कह बहुत विलापकर श्रीरामचन्द्रजी मूर्च्छित हुए ॥ ३६ ॥

वने निजगणाश्रमे नगतले जले पल्वले
विचित्य पतितं खगं पथि ददर्श सौमित्रिणा ।
जटायुवचनात्ततो दशमुखाहृतां जानकीं
विविच्य कृतवान्मृते पितरि वह्निकृत्यं प्रभुः ॥ ३७ ॥

फिर ऋषियोंके आश्रम, पर्वत, गुहा, जल और गढोंमें सब कहीं सीताजीको खोजकर मार्गमें गिरे हुए जटायुको देखा। और तिससे रावण करके सीताका हराजाना सुना। जब उस पितृतुल्य जटायुकी मृत्यु होगई तब उसका मृतककर्म किया ॥ ३७ ॥

प्रियाविरहकातरोऽनुजपुरःसरो राघवो
धनुर्धरधुरन्धरो हरिबलं नवालापिनम् ।
ददर्श ऋषभाचलाद्रविजवालिराजानुज-
प्रियं पवननन्दनं परिणतं हितं प्रेषितम् ॥ ३८ ॥

सीताजीके वियोगसे धनुषधारियोंकी धुर धारण करनेवाले लक्ष्मणजीके साथ श्रीरामचंद्रजीने नई जानीहुई वानरसेनाके साथ साक्षात् किया और सूर्यपुत्र वालिके लघुभ्राता सुग्रीव (जो कि ऋष्यमूकपर (१) रहतेथे) के मंत्री हनुमान्जीको देखा ॥ ३८ ॥

---

(१) वृषभ पर्वत—वाल्मीकीय रामायणमें इसका नाम ऋष्यमूक पर्वत है। " विलारी " (मद्रासप्रान्त) से ३० कोश दूर हाम्पि और आनिगन्धिमें किष्किन्धादि पर्वत है। किष्किन्धासे ४ कोश दूर ऋष्यमूक है। ऋष्यमूककी तराईमें पम्पासरोवर है। पम्पाको नदी वा सरोवर दोनों नामसे पुकारा जा सकता है। सरोवरका जल छोटी नदीके मेलसे बगलमें बहती हुई तुंगभद्रा नदीमें गिरता है। मतङ्गसरोवर पंपाका अंश है। पम्पाके पश्चिममें शबरीका आश्रम है। निकटही सरोवरके सामनेकी गुफामें सुग्रीवादि चार वानर रहा करते थे। किष्किन्धासे दूसरी ओर माल्यवान् पर्वत है। वर्षाकालके समय श्रीरामचन्द्रजी यहीं रहे थे। ईशानदिशाकी ऊँची गुफामें तिनका वासस्थान था। नीचे नदी बहती है। अबतक भी यह पर्वत स्वभावकी शोभासे सुन्दर है। (भारतभ्रमण) पूर्वघाट और नीलागिरि—

ततस्तदुदितं मतं पवनपुत्रसुग्रीवयो-
स्तृणाधिपतिभेदनं निजनृपासनस्थापितम् ।
विविच्य व्यवसायकैर्निजसखाप्रियं वालिनं
निहत्य हरिभूपतिं निजसखं स रामोऽकरोत् ॥ ३९ ॥

फिर रामचंद्रजीने सुग्रीव और हनुमान्जीके प्रार्थना करनेपर सप्त तालको भेद डाला और बाणसे वालिको मार सुग्रीवके साथ मित्रता कर तिसको वानरोंके राज्यपर स्थापित किया ॥ ३९ ॥

अथोत्तरमिमां हरिर्जनकजां समन्वेषयन्
जटायुसहजोदितैर्जलनिधिं तरन्वायुजः ।
दशाननपुरं विशञ्जनकजां समानन्दय-
न्नशोकवनिकाश्रमे रघुपतिं पुनः प्राययौ ॥ ४० ॥

इसके उपरान्त पवनकुमार हनुमान्जी जानकीजीको खोजते हुए संपातिके कहनेके अनुसार समुद्रको उतरगये और लंकापुरीमें प्रवेश करके अशोकवनमें सीताजीको संभाषण करके आनन्द देते हुए और फिर रघुनाथजीके निकट आये ॥ ४० ॥

ततो हनुमता बलादमितरक्षसां नाशनं
ज्वलज्ज्वलनसंकुलज्वलितदग्धलङ्कापुरम् ।
विविच्य रघुनायको जलनिधिं रुषा शोषयन्
बबन्ध हरियूथपैः परिवृतो नगैरीश्वरः ॥

—नामक पर्वतश्रेणीके मध्यका पर्वत है। इस स्थानसे कावेरी नदी उत्पन्न हुई है। (भागवत) बहुतसे ऋषभपर्वत हैं, यथा–१कैलासका निकटका एक पर्वत । यह हिमालयका स्वर्णमय शृंग है। इसकी बगलमेंही रजतमय कैलास है। इन दोनों पर्वतोंके मध्यमें मृतसञ्जीवनी, विशल्यकारिणी, सन्धिनी और सुवर्णकरणी नामक औषधि हैं। (रामरसायन लंकाकांड-१३ अ०)। २–दक्षिण सागरका एक पर्वत है। यहांपर रोहितनामक गन्धर्व रहते हैं। शैलूष (विभीषणका श्वशुर) ग्रामणी, शिक्ष, शुक और बभ्रू यह पांच गन्धर्व रोहितोंके स्वामी हैं। (वा० किष्कि० ४१ सर्ग)। ३–पूर्व सागरका एक धवलवर्ण पर्वत है। इस पर्वतपर सुदर्शन नामक एक सरोवर है। (वा. कि. ४२ सर्ग)

बभञ्ज पुरपत्तनं विविधसर्गदुर्गक्षमं
निशाचरपतेः क्रुधा रघुपतिः कृती सद्गतिः ॥ ४१ ॥

फिर रामचंद्रजीने हनुमान् करके बलपूर्वक राक्षसोंका नाश और लंकाका जलाना जान क्रोधसे पर्वतद्वारा समुद्रको बाँध वानरयूथके साथ लंकामें गमन किया और राक्षसोंके स्वामी रावणके पुर प्राचीर (शहर-पनाह) किले आदि समस्त तोडडाले ॥ ४१ ॥

ततोऽनुजयुतो युधि प्रबलचण्डकोदण्डभृत्
शरैः खरतरैः क्रुधा गजरथाश्वहंसाकुले ।
करालकरवालतः प्रबलकालजिह्वाग्रतो
निहत्य वरराक्षसान्नरपतिर्बभौ सानुगः ॥ ४२ ॥

अनन्तर लक्ष्मणजीके सहित महीपाल श्रीरामचन्द्रजी, अतिउग्र शरासन (धनुष) धारण कर हाथी, घोडे रथसे युक्त तीक्ष्णावण और कराल खड्गसे राक्षसोंका संहार करके कराल कालकी जीभकी नोकके समान शोभयमान होने लगे ॥ ४२ ॥

ततोऽतिबलवानरैर्गिरिमहीरुहोद्यत्करैः
करालतरताडनैर्जनकजारुषा नाशितान् ।
निजघ्नुरमरार्दनानतिबलान्दशास्यानुगान्
नलाङ्गदहरीश्वराऽऽशुगसुतर्क्षराजादयः ॥ ४३ ॥

फिर नल, अंगद, वानरराज सुग्रीव, पवनकुमार हनुमान्, जाम्बवान् व और दो महाबली वानरोंने वृक्ष चलाय, पर्वत चलाय, भयंकर प्रहारों करके महाबली पराक्रमी देवताओंके वैरी रावणके सेवक राक्षसोंका संहार किया जो राक्षस कि, जानकीजीकें क्रोधमें भरनेसे पहलेही नष्टसे हो रहे थे॥ ४३॥

ततोऽतिबललक्ष्मणस्त्रिदशनाथशत्रुं रणे
जघान घनघोषणानुगगणैरसृक्प्राशनैः ।

प्रहस्तविकटादिकानपि निशाचरान्सङ्गतान्
निकुम्भमकराक्षकान्निशितखड्गपातैः क्रुधा ॥ ४४ ॥

महाघोर शब्दकारी, रुधिर पीनेवाले, अनुचरोंसे घिरेहुए, इन्द्राजित्को महाबलवान् लक्ष्मणजीने मारडाला, फिर इन्होंनेही क्रोध करके प्रहस्त, निकुम्भ, मकराक्ष और विकटादि आये हुए राक्षसोंको मारडाला ॥ ४४ ॥

ततो दशमुखो रणे गजरथाश्वपत्तीश्वरै-
रलङ्घ्यगणकोटिभिः परिवृतो युयोधायुधैः ।
कपीश्वरचमूपतेः पतिमनन्तदिव्यायुधं
रघूद्वहमनिन्दितं सपदि सङ्गतो दुर्जयः ॥ ४५ ॥

इसके उपरान्त रावण लंघन करनेके अयोग्य करोड करोड गजारूढ, रथसवार, घुडसवार और पयदलोंकी सेनाके साथ संग्रामस्थलमें वानर-सेनाके स्वामी सुग्रीवके प्रभु असीम दिव्यास्त्रोंके धारण करनेवाले श्रीराम-चन्द्रजीके निकट आय अस्त्रोंसे युद्ध करना आरम्भ करता हुआ ॥ ४५ ॥

दशाननमरिं ततो विधिवरस्मयावर्द्धितं
महाबलपराक्रमं गिरिमिवाचलं संयुगे ।
जघान रघुनायको निशितसायकैरुद्धतं
निशाचरचमूपतिं प्रबलकुम्भकर्णं ततः ॥ ४६ ॥

तब रघुवीर श्रीरामचन्द्रजीने ब्रह्माके निकट वर पानेसे वृद्धिको प्राप्त महाबली पराक्रमी संग्रामभूमिमें पर्वतकी समान अचल ऊधमी शत्रु, राक्षस-सेनाके पति रावणको और महाबलवान् कुम्भकर्णको तीक्ष्ण बाणोंसे बींधडाला ॥ ४६ ॥

तयोः खरतरैः शरैर्गगनमच्छमाच्छादितं
बभौ घनघटासमं मुखरमत्तडिद्वह्निभिः ।
धनुर्गुणमहाशनिध्वनिभिरावृतं भूतलं
भयङ्करानिरन्तरं रघुपतेश्च रक्षःपतेः ॥ ४७ ॥

इसके उपरान्त राम और रावणके परस्पर तीक्ष्ण बाणोंके चलनेसे आकाश ढकगया और ऐसा जान पडने लगा मानो बादलोंकी घटासे आकाशमंडल ढकगयाहै । बाणोंके परस्पर टकरानेसे शब्दसहित आगकी चिनगारियें निकलने लगीं, तिनसे शब्दायमान बिजलीकी समान शोभा हुई। वज्रके शब्दकी समान धनुषके रोदेके शब्दसे पृथिवी व्याप्त होगई, उस समय संग्रामस्थलने अत्यन्त भयंकर आकार धारण किया ॥ ४७ ॥

ततो धरणिजारुषा विविधरामबाणौजसा
पपात भुवि रावणस्त्रिदशनाथविद्रावणः ।
ततोऽतिकुतुकी हरिर्ज्वलनरक्षितां जानकीं
समर्प्य रघुपुङ्गवे निजपुरीं ययौ हर्षितः ॥ ४८ ॥

इसके उपरान्त इन्द्रको भी भयदायक रावण, सीताजीकी क्रोधाग्नि और रामचंद्रजीके अस्त्राग्नि इन दोनों अग्नियोंसे भस्महोकरही मानो पृथ्वीपर गिर-गया । रावणके मारे जानेपर कपिश्रेष्ठ हनुमान्जीने जानकीजीको शुद्ध किया और रामचंद्रजीको समर्पणकर हर्षित चित्तसे अपने स्थानको चलेगये॥४८॥

पुरन्दरकथादरः सपदि तत्र रक्षःपतिम् ।
विभीषणमभीषणं समकरोत्ततो राघवः ॥ ४९ ॥

फिर देवराज इन्द्रके कहे अनुसार श्रीरामचंद्रजीने अभीषण (शान्त) विभीषण तत्काल राक्षसराज्यपर अभिषेकित किया ॥ ४९ ॥

हरीश्वरगणावृतोऽवनिसुतायुतः सानुजो
रथे शिवसखेरिते सुविमले लसत्पुष्पके ।
मुनीश्वरगणार्चितो रघुपतिस्त्वयोध्यां ययौ
विविच्य मुनिलाञ्छनं गुहगृहेऽतिसख्यं स्मरन् ॥ ५० ॥

वानर राजाओंके साथ सीता और लक्ष्मणजीको संग ले विमल शोभाय-

मान पुष्पकविमानमें सवार हो श्रीरामचंद्रजी अयोध्या (१) में आये। चलनेके समय मार्गमें, वनके मध्य प्रवेश करनेके समय अपना मुनिवेष और गुह चाण्डालके साथ मित्रताका स्मरण करने लगे। फिर मुनिजनोंने आयकर तिनकी पूजा की ॥ ५० ॥

ततो निजगणावृतो भरतमातुरं सान्त्वयन्
स्वमातृगणवाक्यतः पितृनिजासने भूपतिः ।
वसिष्ठमुनिपुङ्गवैः कृतनिजाभिषेको विभुः
समस्तजनपालकः सुरपतिर्यथा सम्बभौ ॥ ५१ ॥

फिर निजजनोंसे युक्त हो, मनके दुःखसे कातर हुए भरतजीको समझाया बुझाया। वे (रामजी) माताओंकी आज्ञाके अनुसार पितृसिंहासनपर बैठकर राज्यमें अभिषेकित हुए। वसिष्ठादि महर्षियोंने तिनका अभिषेक किया। फिर वह इन्द्रजीकी समान समस्त लोकोंके स्वामी हो शोभायमान होनेलगे ॥ ५१ ॥

---

१ महाकवि तुलसीदासजीने अयोध्यापुरीको प्रायः अवधपुरी कहकर स्वरचित रामायणमें लिखाहै। यथा-

अवधपुरी रघुकुल मणिराऊ । वेदविदित तेहि दशरथ नाऊँ ॥ (बालकाण्ड)

अयोध्या उत्तरकोशलाकी राजधानी है। वैवस्वत मनुकी आज्ञासे विश्वकर्माजीने सरयू नदीके किनारे अयोध्या नगरीको बनाया और बसाया। प्राचीन अयोध्याकी लम्बाई ४८ कोश और चौडाई बारह १२ कोश थी। रामचन्द्रजीके पुत्र कुशने अयोध्याको छोड कुछ दिनतक कुशावतीमें राज्य किया, किन्तु अयोध्याकी अधिष्ठात्री देवीकी कातरतासे फिर यहीं चले आये (रघुवंश देखो)। अयोध्याका दूसरा नाम विनीता है। (कल्पद्रुमकालिका) इसका टूटा फूटा चिह्न देखनेसे केवल वैराग्य आजाता है। इस समय यह जंगलसे पूर्ण और दिल्लीसे १८० कोश दूर है। यह हुयैनसांगकी अयुतो वा अयुदो और तिघतवालोंकी बागद वा भागद है। तिघतवालोंके ग्रन्थमें लिखा है कि, साम्पर्क नामक एक शाक्य कपिलसे बागदमें निकाला गया उस समय वह वहांसे (कपिलसे) बुद्धजीके केश और नख ले आया था और इस नगरीके स्थानमें उनको गाडकर उसके ऊपर एक मन्दिर बनाया जिसका नाम साम्पर्कस्तप है। अयोध्याका एक नाम साकेतपत्तन है। (अध्यात्मरामायण, आरण्यकाण्ड, भार्गवविजय) अयोध्याको विशाख वा विशाखपत्तनभी कहते हैं।

CunninGhma's Ancient Geography of India.

नरा बहुधनाकरा द्विजवरास्तपस्तत्पराः
स्वधर्म्मकृतनिश्चयाः स्वजनसंगता निर्भयाः ।
घनाः सुबहुवर्षिणो वसुमती सदा हर्षिता
भवत्यतिबले नृपे रघुपतावभूत्सज्जगत् ॥ ५२ ॥

इस प्रकार अतिबलवान् पराक्रमी रघुवीरके राज्यारंभ करनेपर समस्त प्रजा ऐश्वर्यवान् (निधियुक्त) हुई । ब्राह्मणलोग सदा तप करने लगे । सबही निजजनोंसे मिलकर निर्भयचित्तसे अपने अपने धर्मका अनुष्ठान करने लगे । समयपर बादरोंके सुवर्षा करनेसे वसुमती (पृथिवी) हर्षयुक्त हुई, समस्त जगत् सन्मार्गमें खडा होगया ॥ ५२ ॥

गतायुतसमाः प्रियैर्निजगुणैः प्रजा रञ्जयन्
निजां रघुपतिः प्रियां निजमनोभवैर्मोहयन् ।
मुनीन्द्रगणसंयुतोऽप्ययजदादिदेवान्मखै-
र्धनैर्विपुलदक्षिणैरतुलवाजिमेधैस्त्रिभिः ॥ ५३ ॥

इस प्रकारसे दश हजार वर्षतक श्रीरामाभिरामने अपने गुणग्रामसे प्रजा-रंजन किया । उन्होंने मनोरथ पूर्ण करके अपनी प्यारी जानकीजीके मनको आनन्दित कियाथा । वह महर्षियोंके सहित बहुतसी दक्षिणा दे देकर अनेक यज्ञ करके देवताओंको संतुष्ट करते और तीन अश्वमेध यज्ञभी इन्होंने निर्विघ्न करे ॥ ५३ ॥

ततः किमपि कारणं मनसि भावयन्भूपति-
र्जहौ जनकजां वने रघुवरस्तदा निर्घृणः ।
ततो निजमतं स्मरन्समनयत्प्रचेतःसुतो
निजाश्रममुदारधी रघुपतेः प्रियां दुःखिताम् ॥ ५४ ॥

फिर श्रीरामचन्द्रजीने निर्दयी हो, अन्तःकरणमें किसी एक कारणको शोचकर जानकीको वनमें छोडदिया । फिर उदार चित्तवाले

वाल्मीकिजी, अपनी बनाई हुई रामायणको स्मरण करके, दुःखित हुई श्रीरामचन्द्रजीकी प्यारी जानकीजीको अपने आश्रममें ले गये (१) ॥ ५४ ॥

---

(१) वाल्मीकि–जगत्प्रसिद्ध रामायणके रचयिता ऋषि । यह प्रचेताके पुत्र है । प्रचेता और वरुण एक मुनिका नाम है । पुराणमें १० प्रचेताओंका नाम हैं । हविर्द्धानके औरससे धिषणा नामक पत्नीके गर्भमें प्राचीनवर्हिके सहित समुद्रकी पुत्री सवर्णाका विवाह हुआ । प्राचीनवर्हिके औरससे सवर्णाके गर्भमें १० पुत्र उत्पन्न हुए । इन पुत्रोंका नाम प्रचेता हुआ इन्होंने पिताकी आज्ञासे तप करके महादेवजीसे नारायणजीके माहात्म्यको जाना । फिर जब इन्होंने दश हजार वर्षतक समुद्रमें शयन करके विष्णुजीकी आराधना की तब कण्डु-मुनिकी कन्या मारिषा इनकी भार्या हुई । (भागवत, विष्णुपुराण, अग्निपुराण कूर्मपुराण, गरुडपुराण) इनसे पहले उत्पन्न हुए दश पुत्र राक्षस थे । तदुपरान्त दक्षजीका जन्म हुआ । महाभारत, रामायण और दूसरे पुराणोंमें इस बातका कोई वर्णन नहीं कि, वाल्मीकिजी-प्रचेताके पुत्र थे । वाल्मीकिजीके पिता भृगुवंशीय एक प्रचेता मुनि थे, इसी कारण वाल्मीकि जीको भार्गव कहागया है । यथाः–

रावणान्तकरो राजा रघूणां वंशवर्द्धनः । वाल्मीकिर्यस्य चरितं चक्रे भार्गवसत्तमः ॥

(मत्स्यपुराण १२ अध्याय)

महर्षि वाल्मीकिजीका आश्रम पहले चित्रकूट पर्वतपर था । वाल्मीकिरामायण, अयोध्या-काण्ड ५६ सर्गमें रामजीका वाल्मीकिजीके आश्रममें जाना देखो । परन्तु रघुनन्दन गोस्वामीने चित्रकूटके वाल्मीकिजीको दूसरा वाल्मीकि कहा है । यथाः—

सो रजनी करि तहीं निवासा । भोरहि चित्रकूटके पासा ॥
तहां विद्वान सर्व गुणधामा । दूसर वाल्मीकि तेहि नामा ॥
गये तहां प्रभु करुणाकन्दा । पुलकि मिलेउ ऋषि भयउ अनन्दा ॥

(श्रीमद्रामरसायन अयोध्याकाण्ड ५ अध्याय)

भक्तमाल नामक ग्रंथमें दूसरे वाल्मीकिजीके नामसे एक दूसरे वाल्मीकि मुनिके चरित्रका वर्णन हुआ है । यह मुनि, महाराज युधिष्ठिरके यज्ञमें गये थे ।

फिर उनका आश्रम प्रयागविभागके अन्तर्गत तमसा नदीके किनारे था । यह तमसा नदी चित्रकूटके पहाडी देशसे उत्पन्न होकर बराबर पूर्वोत्तर दिशामें बहती हुई प्रयागके कुछ दूर नीचेकी ओर गंगाजीके साथ मिलती है । महाकवि कालिदासजी कहते हैं:–

रथात्स यंत्रा निगृहीतवाहात्तां भ्रातृजायां पुलिनेऽवतार्य ।
गंगा निषादाहृतनौविशेषस्ततार सन्धामिव सत्यसन्धः ॥ (रघुवंश १४ सर्ग ५२ श्लो०)

अस्यार्थः–सुमंत्र सारथीके द्वारा घोडोंकी लगाम खैंची जानेपर, सत्यसन्ध लक्ष्मणजीने भ्रातृजाया (भाभी) सीताजीको रथसे पुलिनमें (नदीके तीरपर) उतारा और निषाद करके लाई हुई नावमें तिनको सवार कराकर अपनी प्रतिज्ञा और गंगा दोनोंकेही पार हुए ॥ ५२ ॥ (पं. ज्वालाप्रसादमिश्रद्वारा अनुवादित रघुवंश) तदुपरान्तः–

अशून्यतीरां मुनिसन्निवेशैस्तमोऽपहन्त्रीं तमसां वगाह्य ।
तत्सैकतोत्संगवलिक्रियाभिः सम्पत्स्यते ते मनसः प्रसादः ॥ (रघु० १४ स० ७६ श्लो०)

अस्यार्थः–(वाल्मीकिजी सीताजीसे कहते हैं) मुनियोंकी कुटियोंसे घिरी हुई तीर-

ततः कुशलवौ सुतौ प्रसुषुवे धरित्रीसुता
महाबलपराक्रमौ रघुपतेर्यशोगायनौ ।

वाली, पाप दूर करनेहारी तमसामें स्नान कर उसके किनारे इष्टदेवताके पूजन करनेसे तेरे मनमें प्रसन्नता होगी ॥ ७६ ॥ (पं. ज्वालाप्रसादमिश्रद्वारा अनुवादित रघु० ४५३ सफा ६ पं०)

महर्षि वाल्मीकि और महाकवि कालिदासजीके वर्णनसे भलीभाँति जाना जाता है कि, जिस स्थानमें गंगाजीके साथ तमसाका संगम होता है तिसके कुछही दूरपर तमसाकी बांई ओर महर्षि वाल्मीकिजीका आश्रम था, नकशेमें यह तमसानदी (South Tonse) लिखी गई है, उत्तर तमसा (North Tonse) नदी अयोध्याकी भूमिमें सरयू और गोमतीके बीच बहती हुई पूर्व दक्षिणकी ओर आकर प्रयागसे कुछ दूर गंगाजिके साथ मिलगई है ।

बहुत आदमी कहते हैं और मैंभी कहताहूं कि, वर्त्तमान कानपुरसे कुछ दूर गंगाजीके किनारे विठूर नामक स्थानमें महर्षि वाल्मीकिजीका आश्रम था । लक्ष्मणजी गंगाके पार हो इसी आश्रममें सीताजीको छोड आये थे । अबभी सुना जाता है कि, विठूरमें गंगाजीके किनारे बहुतसे मन्दिर और रामसीता आदिकी मूर्त्ति हैं । यात्री लोग इस स्थानकोही महर्षि वाल्मीकिजीका आश्रम बताते हैं । परन्तु यहांपर तमसा नामक कोई नदी नहीं है । पहली कहीं उत्तरतमसाभी, विठूरके निकट गंगाके उत्तरमें जो गोमती है, तिसके उत्तरमें बहती है । अतएव इस समय भलीभांति जाना जाता है कि, महर्षि वाल्मीकिजीका आश्रम विठूरमें नहीं था, बरन्न प्रयागके निकट गंगापारमें दाक्षिण तमसाके तटपर था । लक्ष्मण व सीताजीके सहित रामचंद्रजी वनगमनके समयमें अयोध्यासे बराबर दक्षिण दिशामें आये शृङ्गवेरपुरमें गंगाजीके पार हो महर्षि भरद्वाजजीके आश्रममें आये थे । लक्ष्मणजीभी इसी मार्गसे सीताजीको महर्षि वाल्मीकिजीके आश्रममें लाये थे । परन्तु भेद इतना है कि, शृङ्गवेरपुरमें गंगाजीके पार न होकर बराबर गंगाजीके उत्तर किनारेपर आये प्रयागके कुछ दूर दक्षिण गंगाके पार हुए थे । तिसकेही कुछ दूर पश्चात् दक्षिण तमसाके तटपर महर्षि वाल्मीकिजीका आश्रम वा तपोवन है । इनके प्रधान शिष्यका नाम भारद्वाज था । महर्षि वाल्मीकिजीने तिसके दाक्षिण तमसा नदीके आश्रममेंही, रावणादि वध और सीता उद्धारके पीछे राज्यभोगके समय अपनी प्रसिद्ध अनन्त अमृतसागररूपी रामायण महाकाव्यकी रचना की ।

इनहीं महर्षिजीने प्रथम अनुष्टुप् छन्दको निर्माण किया । तमसानदीके किनारे एक व्याध करके क्रौञ्च पक्षीके मारेजानेको देखकर तिनकी रसनासे यह प्रथम अनुष्टुप् छन्दका श्लोक निकलाथाः—

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः । यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

(वा० रामा० बा० २ सर्ग)

पद्मपुराणमें यह श्लोक कुछ बदला हुआसा है । यथाः—

मा निषाद ! प्रतिष्ठास्त्वमगमः शाश्वतीः समाः । यत् क्रौञ्चपक्षिणोरेकमवधीः काममोहितम् ॥

(पद्मपु० पातालखंड, ९४ अ०)—

स तामपि सुतान्वितां मुनिवरस्तु रामान्तिके
समर्पयदनिन्दितां सुरवरैः सदा वन्दिताम् ॥ ५५ ॥

कुश और लव नामक दो महाबली पराक्रमी पुत्रोंको धरतीकी पुत्री सीताजीने उत्पन्न किया । इन कुमारोंने रामचन्द्रजीके पास आय तिनके यशको गाया । इन दो पुत्रोंके साथ मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजीने निन्दारहित देवताओंसे पूजित सीताजीको श्रीरामचन्द्रजीके निकट समर्पण किया॥५५॥

ततो रघुपतिस्तु तां सुतयुतां रुदन्तीं पुरो
जगाद दहने पुनः प्रविश शोधनायात्मनः ।
इतीरितमवेक्ष्य सा रघुपतेः पदाब्जे नता
विवेश जननीयुता मणिगणोज्ज्वलं भूतलम् ॥ ५६ ॥

सन्मुखही रोती हुई पुत्रोंके सहित जानकीजीसे श्रीरामचंद्रजीने कहा- तुम अपनी शुद्धिके निमित्त (सबके सौंही) फिर अग्निमें प्रवेश करो; सीता-जीने रामचंद्रजीका यह वाक्य सुनकर उनके चरणकमलमें प्रणाम किया और आई हुई माता पृथ्वीके साथ मणियोंसे उज्ज्वल हुए पातालमें प्रवेश करगई ॥ ५६ ॥

निरीक्ष्य रघुनायको जनकजाप्रयाणं स्मरन्
वसिष्ठगुरुयोगतोऽनुजयुतोऽगमत्स्वं पदम् ।
पुरः स्थितजनैः स्वकैः पशुभिरीश्वरः संस्पृशन्
मुदा सरयुजीवनं रथवरैः परीतो विभुः ॥ ५७ ॥

-प्रधानतः इन अनुष्टुप् छन्दोंमेंही रामायण माहाकाव्य बनाया गया । इनके सिवाय मालिनी आदि कई प्रकारके छन्द भी और स्थानोंमें विशेषतः प्रति सर्गके पिछे व्यवहारमें आये हैं । किसी किसीका मत है कि, रामचंद्रजीकी जन्म होनेसे साठ हजार वर्ष पहले वाल्मीकिजीने रामायण बनाईथी । कोई कोई कहते हैं कि, महर्षि वाल्मीकिजी पहले जन्ममें रत्नाकर एक चोर निषाद थे । इन्होंने रामका उलटा नाम जपकर (मरा मरा) बहुत दिनोंतक तप किया। इनके शरीरपर बमई जम गई थी, रामनामके जपसे इनके समस्त पाप छूटे और यह सिद्ध हुये तब ब्रह्माजीने आकर इनको पुकारा इन्होंने वल्मीकके ठियेसे निकलकर उनको प्रणाम किया, ब्रह्माजीने वर देकर रामायण महाकाव्य बनानेकी आज्ञा दी । इनके समस्त अंगमें वल्मीक उत्पन्न होगई थी, इससेही वाल्मीक नाम हुआ ।

रामचंद्रजी जानकीजीका इस प्रकारसे पातालमें समाना देख; इस बातका स्मरण करते गुरु वसिष्ठ, अनुजगण, पुरवासी लोग और पशुओंके साथ प्रसन्न चित्तसे सरयू नदीके जलको स्पर्श करके दिव्य विमानमें सवार हो वैकुण्ठधामको चलेगये ॥ ५७ ॥

ये शृण्वन्ति रघूद्वहस्य चरितं कर्णामृतं सादरात्
संसारार्णवशोषणं च पठतामामोददं मोक्षदम् ।
रोगाणामिह शान्तये धनजनस्वर्गादिसम्पत्तये
वंशानामपि वृद्धये प्रभवति श्रीशः परेशः प्रभुः ॥ ५८॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे सूर्य्यवंशानुवर्णने श्रीरामचन्द्रचरितं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस कर्णामृत श्रीरामचरित्रको जो लोग आदरपूर्वक सुनेंगे श्रीश परमेश प्रभु श्रीरामचंद्रजीकी कृपासे तिनकी बाधा दूर होगी, रोगकी शान्ति होजायगी, वंश बढेगा और धनसम्पत्ति, जन सम्पत्ति, स्वर्गादिसम्पत्ति तिनको प्राप्त होगी । इसके पाठ करनेसे अन्तःकरणमें आनन्द उत्पन्न होगा, संसारसागर सूखजायगा और परमपुरुषार्थ मुक्तिपद प्राप्त होगा ॥ ५८ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां सूर्यवंशानुवर्णने श्रीरामचंद्रचरितं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

तृतीयांशः ।

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

रामात्कुशोऽभूदतिथिस्ततोऽभून्निषधान्नभः ।
तस्मादभूत्पुण्डरीकः क्षेमधन्वाऽभवत्ततः ॥ १ ॥

श्रीरामचंद्रजीका पुत्र कुश, कुशका पुत्र अतिथि, अतिथिका पुत्र निषध, निषधका पुत्र नभ, नभका पुत्र पुण्डरीक, पुण्डरीकका पुत्र क्षेमधन्वा ॥ १ ॥

देवानीकस्ततो हीनः पारिपात्रोऽथ हीनतः ।
बलाहकस्ततोऽर्कश्च रजनाभस्ततोऽभवत् ॥ २ ॥

क्षेमधन्वाका पुत्र देवानीक, देवानीकका पुत्र हीन, हीनका पुत्र पारिपात्र, पारिपात्रका पुत्र बलाहक, बलाहकका पुत्र अर्क, अर्कका पुत्र रजनाभ॥२॥

खगणाद्विधृतस्तस्माद्धिरण्यनाभसंज्ञितः ।
ततः पुष्पाद्ध्रुवस्तस्मात्स्यन्दनोऽथाग्निवर्णकः ॥ ३ ॥

रजनाभका पुत्र खगण, खगणका पुत्र विधृत, विधृतका पुत्र हिरण्यनाभ, हिरण्यनाभका पुत्र पुष्प, पुष्पका पुत्र ध्रुव, ध्रुवका पुत्र स्यन्दन स्यंदनका पुत्र अग्निवर्ण ॥ ३ ॥

तस्माच्छीघ्रोऽभवत्पुत्रः पिता मेऽतुलविक्रमः ।
तस्मान्मरुं मां केऽपीह बुधं चापि सुमित्रकम् ॥ ४ ॥

अग्निवर्णका पुत्र शीघ्र हुआ । यही अतुल विक्रमवाले शीघ्र हमारे पिता हैं, मैं शीघ्रका पुत्र हूं । मेरा नाम मरु है । कोई २ मुझको बुध और कोई कोई मुझको सुमित्र कहते हैं ॥ ४ ॥

कलापग्राममासाद्य विद्धि सत्तपसि स्थितम् ।
तवावतारं विज्ञाय व्यासात्सत्यवतीसुतात् ॥ ५ ॥

इतने दिनतक मैं कलाप ग्राम (१) में रहकर तप करता था । सत्यवतीके पुत्र व्यासके मुखसे आपके अवतारका वृत्तान्त सुनकर मैं ॥ ५ ॥

प्रतीक्ष्य कालं लक्षाब्दं कलेः प्राप्तस्तवान्तिकम् ।
जन्मकोटचंहसां राशेर्नाशनं धर्म्मशासनम् ।
यशःकीर्तिकरं सर्वकामपूरं परात्मनः ॥ ६ ॥

कलिके लक्ष वर्ष समयकी प्रतीक्षा करके आपके निकट आया हूं । आप परमात्मा हैं, आपके समीप आनेसे कोटि जन्मके पापपुञ्ज क्षय होजाते हैं,

---

(१) कलापग्राम–यह ग्राम हिमालयपर्वतके दक्षिणमें है । यदुकुलका क्षय होनेपर श्रीकृष्णजीकी दूसरी रानी सत्यभामा तप करनेको इस ग्राममें गई थी ।

धर्मकी वृद्धि होती है, यश कीर्तिकी बढती होती है, समस्त कामना पूर्ण होती हैं ॥ ६ ॥

कल्किरुवाच—ज्ञातस्तवान्वयस्त्वं च सूर्यवंशसमुद्भवः ।
द्वितीयः कोऽपरः श्रीमान्महापुरुषलक्षणः ॥ ७ ॥

कल्किजी बोले—तुम्हारी वंशावलीको अब हमने जाना; ज्ञात हुआ कि, तुम सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए राजा हो; परन्तु तुम्हारे साथ यह दूसरे जो दिखाई देते हैं, यह श्रीमान् और महापुरुषके लक्षणोंसे युक्त हैं सो यह कौन हैं ? ॥ ७ ॥

इति कल्किवचः श्रुत्वा देवापिर्मधुराक्षराम् ।
वाणीं विनयसम्पन्नः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ८ ॥

कल्किजीके ऐसे मधुर वचन सुनकर देवापिने विनययुक्त वचनोंसे कहना आरम्भ किया ॥ ८ ॥

देवापिरुवाच—प्रलयान्ते नाभिपद्मात्तवाभूच्चतुराननः ।
तदीयतनयादत्रेश्चन्द्रस्तस्मात्ततो बुधः ॥ ९ ॥

देवापिने कहा—प्रलयके अन्तमें आपके नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए थे । ब्रह्माजीका पुत्र अत्रि, अत्रिका पुत्र चन्द्रमा चन्द्रमाका पुत्र बुध॥९॥

तस्मात्पुरूरवा जज्ञे ययातिर्नहुषस्ततः ।
देवयान्यां ययातिस्तु यदुं तुर्वसुमेव च ॥ १० ॥

बुधका पुत्र पुरूरवा, पुरूरवाका पुत्र नहुष, नहुषका पुत्र ययाति हुआ । ययातिने देवयानीमें यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ १० ॥

शर्मिष्ठायां तथा द्रुह्युं चानुं पूरुं च सत्पते ।
जनयामास भूतादि भूतानीव सिसृक्षया ॥ ११ ॥

हे साधुपालक ! इस ययातिने शर्मिष्ठामें द्रुह्यु अनु और पूरु यह तीन पुत्र उत्पन्न किये थे । सृष्टिके समय भूतादि अर्थात् तामस अहंकार जिस

प्रकार पंचभूतको उत्पन्न करता है, तैसेही ययातिने इन पांचों पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ११ ॥

पूरोर्ज्जन्मेजयस्तस्मात्प्रचिन्वनभवत्ततः ।
प्रवीरस्तन्मनस्युवैं तस्माच्चाभयदोऽभवत् ॥ १२ ॥

पूरुका पुत्र जन्मेजय, जन्मेजयका पुत्र प्राचिन्वान्, प्रचिन्वान्का पुत्र प्रवीर, प्रवीरका पुत्र मनस्यु, मनस्युका पुत्र अभयद ॥ १२ ॥

उरुक्षयाच्च त्र्यरुणिस्ततोऽभूत्पुष्करारुणिः ।
बृहत्क्षेत्रादभूद्धस्ती यन्नाम्ना हस्तिनापुरम् ॥ १३ ॥

अभयदका पुत्र उरुक्षय, उरुक्षयका पुत्र त्र्यरुणि, त्र्यरुणिका पुत्र पुष्करारुणि, पुष्करारुणिका पुत्र बृहत्क्षेत्र, बृहत्क्षेत्रका पुत्र हस्ती हुआ । इस हस्ती राजाकेही नामसे (१) हस्तिनापुर नगर स्थापित हुआथा ॥ १३ ॥

---

(१) हस्तिनापुर दिल्लीसे प्रायः ३० कोश पूर्वउत्तरके ओर दारानगरसे १२ कोश दक्षिण पश्चिमदिशामें वर्त्तमान गंगानदीके ५॥ कोश पश्चिममें प्राचीन गंगाजीके किनारे पर स्थित है। यह कुरु पाण्डवोंकी राजधानी थी । जब गंगाजीने इसको ध्वंस करादिया तब पिछले कुरुपाण्डवोंके वंशवालोंने एलाहाबादके पश्चिममें यमुनाके तटपर बसी हुई कौशाम्बी नगरीमें आनकर वास किया था।(Ptolemy's Ancient India. PP. 72. 122. 212)आजकल वहांके रहनेवाले इसको हत्नापुर कहते हैं। (Journal. As. Bengal1881 Part I. P. 109 मेरठसे पचीस मील ईशानकोणमें गंगाजीके दाहिने किनारे प्रसिद्ध हस्तिनापुर है । युधिष्ठिरसे पांच पीढी पीछेही गंगाजीने हस्तिनापुरको ग्रास कर लिया (भारतभ्रमण) शचिचन्द्रदत्तके मतसे यदि मिशर (Egypt) देशकी प्राचीन इमारतोंके चिह्न मसीहसे ४००० वर्ष पहलेकेभी हों तो भारतवर्षकीभी प्राचीन इमारतोंके चिह्न तिनकेही समयके हैं । पृथ्वीके जितने स्थानोंमें जितनी प्रकारकी ईंटें पाई गई हैं तिनमें प्राचीन हस्तिनापुरके खंडरही ईंटही सबसे बडी हैं । प्रत्येक ईंटकी लम्बाई २० इंच, चौडाई १० इंच और वेध २०॥ इंच हैं । वह ईंटें प्राचीन वाविलन नगरकी ईंटोंसे बडी हैं । (Ruins of the old world P. 146)

अब एक बडा संदेह होताहै कि, महाभारत आदिपर्वके ९५ अध्यायमें कहा है कि, महाराज हस्तीने हस्तिनापुरको स्थापन किया, परन्तु इसही महाभारतमें आदिपर्वके ७४ अध्यायमें लिखा है कि, महाराज (दुष्यन्त) की राजधानीभी हस्तिनापुरमें थी । यथाः-

तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे प्रातिष्ठन्त महौजसः । शकुन्तलां पुरस्कृत्य सुपुत्रां गजसाह्वयम् ॥

शब्दरत्नावलीकोषके मतसे गजाह्व, गजाह्वय वा गजसाह्वय शब्दका अर्थ हस्तिनापुर है । दुष्यन्तसे ग्रहण करनेपर हस्ती पांच पुरुष नीचआहे । इस शंकाको कौन दूर कर सकता है ? ॥

अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढस्तु तत्सुताः।
अजमीढादभूदृक्षस्तस्मात्संवरणात्कुरुः ॥ १४ ॥

हस्तीके तीन पुत्र हुए अजमीढ, द्विमीढ और पुरुमीढ, अजमीढका पुत्र ऋक्ष, ऋक्षका पुत्र संवरण, संवरणका पुत्र कुरु (१) हुआ ॥ १४ ॥

---

(१) कुरु–इसनेही कुरुक्षेत्र वसाया। स्थाणुतीर्थसे इसका नाम स्थाण्वीश्वर हुआ है। जाते २ स्थान २ में आमके कुंज दिखाई देते हैं। पंजाबमें कटहलका वृक्ष नहीं होता। आमभी बहुत नहीं होते, पानभी महँगे रहते हैं। प्राचीन स्थाण्वीश्वरनगर सब टूट गया। तिसकेंही ऊपर वर्त्तमान नगर बसाहै। स्थाण्वीश्वरके निकट कुरुक्षेत्रका बडा भारी मयदान सांय सांय करता है। यही मैदानमें एक बडा सरोवर है, चारों ओर सीढियें बनी हुई हैं। सरोवर पूर्वपश्चिममें २३६४ हाथ लम्बा और उत्तरदक्षिणमें १२६६ हाथ चौडा है। बीचों बीचमें ३८६ हाथ बडा एक चौकोन टापू है। उत्तरदक्षिणसे १८ हाथके विस्तारवाले सेतुने दोनों ओरसे इसको स्पर्श कियाहै। टापूमें चारों ओर दीवार खिंचरही है। तिसके मध्य पश्चिमविभागमें चन्द्रकूप है। यह सरोवर महातीर्थ है। सूर्यग्रहणके समय बहुतसे यात्री स्नान करते और किनारेपर श्राद्धभी करते हैं। अकबरके समयमें वीरवलने चारों ओरसे इसको बँधवायाथा। औरंगजेबने इसको बहुतेरा वरवाद किया। यहांतक हुक्म दे रक्खाथा कि, जो यात्री स्नान करते हों, वीचके टापूमेंसे उनपर गोली चलाई जाय। सरोवरसे उत्तर और पीछे पश्चिममें जानेपर तीन मिले हुए मार्ग दिखाई देते हैं। बाईं ओरका मार्ग कैथलको, बीचका मार्ग पृथुदको और दाईं ओरका मार्ग आयुजस घाटपर गया है। सरस्वती सूखसी गई हैं, जल बहुत थोडा है, सरस्वतीके आसरेसे जानेपर आयुजसके उत्तरमें अस्थिपुर पाया जाता है, सन् ६३४ ई० में होयानसेन यहांपर बडी २ हड्डियें देखगया है। अस्थिपुरके उत्तरमें क्षीरवास घाट है, फिर विख्यात स्थाणुतीर्थ और तदुपरांत गंगातीर्थ इत्यादि हैं। आयुजसघाटसे लेकर स्थाण्वीश्वरके उत्तरपूर्वमें रत्नयक्षतक ५ मैलके बीचमें ९१ तीर्थ हैं, मनुष्यके आकारसेभी बडी मूर्ति विष्णुजीकी–जो चक्रतीर्थमें थी–महमूद गजनवीके हाथसे तोडीगई। सरोवरके उत्तरमें अम्बालेकी सडकके वगलमें दिलीपगढकी समस्त हिन्दुओंकी कीर्तियोंको नष्ट करके मुसलमानोंने मद्रसा, पत्थरकी मस्जिद, सैय्यद जलाली और जुम्मा-मस्जिद बनाई है।

सरोवरसे ढाईकोश दक्षिणपूर्वमें आमीना वा अभिमन्युवधका स्थान है। कुछ दूर दक्षिणमें पंडालोग स्यमन्तपंचकके और चार कुण्ड दिखा देते हैं। सरोवरके एक मैल दक्षिण पश्चिममें कर्णगढ है। इसकी भीत नीचेको ५३३ हाथ और ऊपरमें ३३३ हाथ लम्बी है। भीतकी उंचाई २६ हाथ, मध्य स्थलमें ३६ हाथ गंभीर और २६ हाथ वेष्टनका एक सूखा कुँआँ है। निकटही कुरुध्वजतीर्थ और टूटे टाटे मन्दिर हैं। इनकी ईंटें अतिश्रेष्ठ हैं। कुरुक्षेत्रकी सीमाका निर्णय करना सहज बात नहीं है। मनुजीके मतसे सरस्वती और दृषद्वतीके मध्यमें ब्रह्मावर्त्त है, वर्तमान घाघराही दृषद्वती है। महाभारतमें लिखाहै कि, तरन्तक, अरन्तक, रामह्रद और समचक्रुकमें पांच योजनके विस्तारवाली पितामहकी उत्तर वेदी है।–

–झिन्दके राजा कहते हैं कि, रामह्रदसा पवित्रस्थान अवश्यही हमारे राज्यमें है । इस प्रकारसे राजा और पंडाओंने अपना २ मत स्थापन करते २ एक गडबड कीहै । एक मत यह है कि, अरन्तक उत्तर पश्चिमकोणमें पिहोर दो कोश पश्चिममें है । दूसरे मतसे उसकाही नाम बहरयक्ष है, यह सरस्वती किनारेपर पिहोरसे ११ कोश और रत्नयक्षसे २० कोश पश्चिमको है, एक मत यह है, कि, रामह्रद, झिन्दसे दो कोश निकट है; दूसरे मतसे पुन्र्री वा पुण्डरीकतीर्थके समीपही है । पंडालोग रत्नयक्ष, बहरयक्ष और तृक्यक्षादिसे सीमा नियत करते हैं । दर्शक लोगोंको चाहिये कि, अब पंडालोगोंके झगडोंको छोडें । कुरुक्षेत्र एक बडा स्थान है । पहले इस स्थानमें बहुत दूरतक फैला हुआ कुरुजाङ्गल नामक जंगल था । महाभारतमें लिखा है कि, यमुना कुरुक्षेत्रके बीचमें बह रही है । श्रीकृष्णजीने जो हिरण्वतीके किनारे पाण्डवोंका डेरा स्थापन कियाथा, सोभी कुरुक्षेत्रके बीचमें है । उत्तरमें सरस्वती और दक्षिणमें दृषद्वती है, इसके मध्यमें जो कुरुक्षेत्र है, तिसका नाम ब्रह्मावर्त्त है । विनशन प्रदेश अर्थात् जहांपर सरस्वती लोप हुई है तिसके पूर्वस्थ जो कुरुक्षेत्र है सो मध्यदेश गिना जाता है । मत्स्य और पांचालके साथ जो कुरुक्षेत्र लगा है सो ब्रह्मर्षिदेशमें धरा जाता है । स्थान भेदसे पुण्यताका है । कृष्ण और भीष्मजीने सेनाकी छावनी डालनेके समयमें तीर्थस्थानोंको छोड दियाथा । अधिक क्या कहा जाय तथापि इतना कहना ही काफी होगा कि, पानीपथ, स्थाण्वीश्वर और कर्नाल आदिको लेकर यह वडा स्थान एक महातीर्थ है, सैकडों मारके इस स्थानमें होगये । यज्ञका कुलाहल, युद्धका भयंकर शोर और गीदडोंके हा हा करनेसे कितनीही वार यह मयदान कम्पायमान होगया है । छः भारतवीर इस मयदानको अपना कहकर हर्षित हुयेथे और राजालोग इसके निकलजानेसे रोये थे । इसी मयदानमें हमारे पूर्व पुरुषोंने भारतके लिये भयंकर युद्धमें प्राणोंको दान कर दिया । आज उनही वीरोंकी अस्थियोंके ऊपर पांव धरकर चलनेसे मन चंचल हो जाता है । अहमदशाह आबिदअलीके विरुद्ध भी पांच लक्ष महाराष्ट्रीवीर इकठ्ठे हुए । अबतक भी मानो तलवारका झंझाशब्द और सदाशिवजीके कंठका स्वर सुनाई आता है । अबतकभी मानो सदाशिव कह रहे हैं अरे वीरगण ! अनन्तकालके लिये अपनी संतानकी दासत्व जंजीर शत्रुके हाथमें देखो । पराये कार्यके लिये इनको भुजाओंकी उत्पात्ति नहीं हुई है, लोहेका बोझ लादनेको भी हमने खड्ग धारण नहीं किया । मिट्टीके नीचेसे भीष्म और द्रोणाचार्यकी हड्डियें उत्साहित करती हैं कि, यही कुरुक्षेत्रका मयदान है । या जय होगी, अथवा स्वर्ग तो मिलेहीगा । इसी सरस्वतीके तीरपर आये लोगोंने प्रथम वास कियाथा और इस स्थानसेही राज्यको बढायाथा । इस नदीने अपने किनारेपर कितनीही बार ऋषि मुनियोंके मुखसे निकले वेदगानको श्रवण किया है । और कितनीही वार उत्साहपूर्ण वीरोंकी मुखकान्तिको देखा है, इस जलके गुणसेही समस्त वेद, असंख्य पुराण और अनंत दर्शन प्रगट हुएथे । क्या इस जलके पीनेसे फिर वह भाव उदय नहीं होगा ? वह तेज क्या फिर प्रगट नहीं होगा ? वीरपूजिता सरस्वतीजी क्रमसे लोप होरही हैं । इस देशके दक्षिणपश्चिममें हिसार वा हरियानेके जंगलमें सिंह पाया जाता है । यहांकी गायें बडे डीलवाली, सुन्दर और दुधारी होती हैं । एक २ बैल ४ । ५ हाथतक ऊंचा होता है । पीतलके वर्त्तन पानीपतमें अच्छे बनते हैं ।

कुरोः परीक्षित्सुधनुर्जह्नुर्निषध एव च ।
सुहोत्रोऽभूत्सुधनुषश्च्यवनाच्च ततः कृती ॥ १५ ॥

कुरुका पुत्र परीक्षित्, परीक्षित्के पुत्र सुधनु, जह्नु और निषध हुए। सुधनुका पुत्र सुहोत्र, सुहोत्रका पुत्र च्यवन ॥ १५ ॥

ततो बृहद्रथस्तस्मात्कुशाग्रादृषभोऽभवत् ।
ततः सत्यजितः पुत्रः पुष्पवान्नहुषस्ततः ॥ १६ ॥

च्यवनका पुत्र बृहद्रथ, बृहद्रथका पुत्र कुशाग्र, कुशाग्रका पुत्र ऋषभ, ऋषभका पुत्र सत्यजित्, सत्यजित्का पुत्र पुष्पवान्, पुष्पवान्का पुत्र नहुष हुआ ॥ १६ ॥

बृहद्रथान्यभार्य्यायां जरासन्धः परन्तपः ।
सहदेवस्ततस्तस्मात्सोमापिर्यच्छ्रुतश्रवाः ॥ १७ ॥

बृहद्रथकी दूसरी भार्यामें शत्रुओंको सन्ताप देनेवाले जरासन्धकी उत्पत्ति हुई। जरासन्धका पुत्र सहदेव, सहदेवका पुत्र सोमापि, सोमापिका पुत्र श्रुतश्रवा ॥ १७ ॥

सुरथाद्विदूरथस्तस्मात्सार्वभौमोऽभवत्ततः ।
जयसेनाद्रथानीकोऽभूद्युतायुश्च कोपनः ॥ १८ ॥

श्रुतश्रवाका पुत्र सुरथ, सुरथका पुत्र विदूरथ, विदूरथका पुत्र सार्वभौम, सार्वभौमका पुत्र जयसेन, जयसेनका पुत्र रथानीक हुआ, रथानीकसे क्रोधी स्वभाववाले युतायुका जन्म हुआ ॥ १८ ॥

तस्माद्देवातिथिस्तस्मादृक्षस्तस्माद्दिलीपकः ।
तस्मात्प्रतीपकस्तस्य देवापिरहमीश्वर ॥ १९ ॥

युतायुका पुत्र देवातिथि, देवातिथिका पुत्र ऋक्ष, ऋक्षका पुत्र दिलीप, दिलीपका पुत्र प्रतीपक हुआ। हे ईश्वर! मैं प्रतीपकका पुत्र देवापि हूं॥ १९॥

राज्यं शान्तनवे दत्त्वा तपस्येकधिया चिरम् ।
कलापग्राममासाद्य त्वां दिदृक्षुरिहागतः ॥ २० ॥

मैं शान्तनुको अपना राज्य देकर कलापग्राममें रहा करताथा । तहां-पर एकान्तचित्तसे तप करताथा, इसके उपरान्त आपके दर्शनोंकी अभि-लाषासे यहांपर आयाहूं ॥ २० ॥

मरुणाऽनेन मुनिभिरेभिः प्राप्य पदाम्बुजम् ।
तव कालकरालास्याद्यास्याम्यात्मवतां पदम् ॥ २१ ॥

मैंने इन मरुके साथ और इन समस्त मुनियोंके साथ आपके चरण-सरोजको प्राप्त किया, इससे अब हमको कालके कराल कौरमें गिरना नहीं पडैगा, हमको ब्रह्मज्ञानियोंका पद प्राप्त होगा ॥ २१ ॥

तयोरेवं वचः श्रुत्वा कल्किः कमललोचनः ।
प्रहस्य मरुदेवापी समाश्वास्य समब्रवीत् ॥ २२ ॥

मरु और देवापिके ऐसे वचन सुनकर कमलदलके समान नेत्रवाले कल्किजी हँसे और उनको धैर्य बँधाकर कहनेलगे ॥ २२ ॥

कल्किरुवाच—युवां परमधर्म्मज्ञौ राजानौ विदितावुभौ ।
मदादेशकरौ भूत्वा निजराज्यं भरिष्यथः ॥ २३ ॥

कल्किजी बोले—मैं जानता हूं कि, तुम दोनों परम धर्मज्ञ राजा हो । इस समय तुम हमारी आज्ञाके अनुसार राजा होकर अपने २ राज्यको पालन करो ॥ २३ ॥

मरो त्वामभिषेक्ष्यामि निजायोध्यापुरेऽधुना ।
हत्वा म्लेच्छानधर्म्मिष्ठान्प्रजाभूतविहिंसकान् ॥ २४ ॥

हे मरो ! इस समयमें प्रजापीडक प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले अधर्मी म्लेच्छोंका नाश करके तुमको तुम्हारी निज राजधानी अयोध्यापुरीमें अभिषेकित करूंगा ॥ २४ ॥

देवापे तव राज्ये त्वां हस्तिनापुरपत्तने ।
अभिषेक्ष्यामि राजर्षे हत्वा पुक्कसकान् रणे ॥ २५ ॥

हे राजर्षि देवापे ! मैं संग्रामभूमिमें पुक्कस लोगोंका संहार करके तुमको तुम्हारी राजधानी हस्तिनापुरमें राज्याभिषेकित करूंगा ॥ २५ ॥

मथुरायामहं स्थित्वा हरिष्यामि तु वो भयम् ।
शय्याकर्णानुष्ट्रमुखानेकजङ्घान्विनोदरान् ॥ २६ ॥

मैं मथुरा (१) नगरीमें रहकर तुम्हारा भय दूर करूंगा । शय्याकर्ण-लोगोंको, उष्ट्रमुखलोगोंको, एकजंघलोगोंको मैं ॥ २६ ॥

हत्वा कृतं युगं कृत्वा पालयिष्याम्यहं प्रजाः ।
तपोवेशं व्रतं त्यक्त्वा समारुह्य रथोत्तमम् ॥ २७ ॥

संहार करके सत्ययुगको स्थापित कर प्रजाओंका पालन करूंगा, तुम-लोगभी तपस्वी वेश और व्रतको छोडकर महारथपर सवार होवो ॥ २७ ॥

युवां शस्त्रास्त्रकुशलौ सेनागणपरिच्छदौ ।
भूत्वा महारथौ लोके मया सह चरिष्यथः ॥ २८ ॥

क्योंकि तुमलोग शस्त्र अस्त्र चलानेमें कुशल हो महारथी हो । तुम हमारे साथ (म्लेच्छादि धर्मसे विद्वेष करनेवाले पामरोंका नाश करनेको) विचरण करना ॥ २८ ॥

विशाखयूपभूपालस्तनयां विनयान्विताम् ।
विवाहे रुचिरापाङ्गीं सुन्दरीं त्वां प्रदास्यति ॥ २९ ॥

हे मरो ! विशाखयूप नामक राजा विनयसे युक्त रुचिर अंगवाली परम सुन्दरी अपनी पुत्रीके साथ तुम्हारी विवाह करदेगा ॥ २९ ॥

साधो भूपाल लोकानां स्वस्तये कुरु मे वचः ।
रुचिराश्वसुतां शान्तां देवापे त्वं समुद्वह ॥ ३० ॥

हे मरो ! तुम राजा होकर संसारके मंगलके लिये हमारे वचनको

---

(१) मथुरा—यमुनाके निकट मधुवन नामक स्थानमें मधुदैत्यके पुत्र लवणका नाश करके रामचन्द्रजीके छोटे भ्राता शत्रुघ्नजीने मथुरापुरी बसाई । (वा० रामायण उत्तरकाण्ड) ध्रुवने इस स्थानमें तप करके भगवान्के दर्शन पाये थे । (भागवत) श्रीकृष्णजीने इस मथुराके कारागारमें वसुदेवके औरससे देवकीके आठवें गर्भमें जन्म लेकर बडे भ्राता बल-देवजीके साथ मिलकर कंसका नाश किया था । (भागवत, हरिवंश) मन्दिर और घाट-युक्त मथुरा यमुनाके दाहिनी ओर स्थित है । वहांसे ३ कोश वृंदावन है । यमुनाके वामभागमें (दूसरी पार) गोकुल है । (भारतभ्रमण) एरिएन, प्लिनि, टलेमी आदि प्राचीन अँगरेज भूगोल जाननेवाले मथुराको मेथोरा (Methora) कहते हैं । (Ptolemy's Ancient India P. 94)

प्रतिपालन करो । हे देवापे ! तुमभी शान्तानामक रुचिराश्वकी पुत्रीसे विवाह करो ॥ ३० ॥

इत्याश्वासकथाः कल्केः श्रुत्वा तौ मुनिभिः सह ।
विस्मयाविष्टहृदयौ मेनाते हरिमीश्वरम् ॥ ३१ ॥

कल्किजीके यह वचन जो कि, आशायुक्त थे-सुनकर, देवापि और मरु मुनिगणोंके साथ हृदयमें विस्मित हो संदेह छोड निश्चय करते हुए कि, यही हरि और ईश्वर है ॥ ३१ ॥

इति ब्रुवत्यभयदे अकाशात्सूर्य्यसन्निभौ ।
रथौ नानामणिव्रातघटितौ कामगौ पुरः ॥
समायातौ ज्वलद्दिव्यशस्त्रास्त्रैः परिवारितौ ॥ ३२ ॥

कल्किजी इस प्रकारसे अभय वचन कह रहे हैं कि, इतनेहीमें आकाश-मार्गसे इच्छानुसार चलनेवाले दो रथ उतरे । सूर्यके समान इन दोनों रथोंका तेज था, अनेक प्रकारके रत्नोंसे (१) बने हुएथे, उज्ज्वल दिव्य अस्त्र शस्त्र इनमें भरे थे ॥ ३२ ॥

---

(१) मूल्यवान् पाषाणखंडको रत्न कहते हैं । वराहमिहिरने कहा है:-
द्विपहयवनितादीनां स्वगुणविशेषेण रत्नशब्दोऽस्ति ।
इह तूपलरत्नानामधिकारो वज्रपूर्वाणाम् ॥ (बृहत्संहिता ८० अध्याय)
हाथी, अश्व, स्त्री आदि अपने २ गुणविशेष करके रत्नशब्दसे युक्त होते हैं । (जैसे अश्व-रत्न, रमणीरत्न आदि) परन्तु यहांपर हीरे आदि उपल रत्नोंका अधिकार समझना चाहिये । (म० अनुवादित बृहत्संहिता) यहांपर रत्नशब्द इस अर्थमें प्रयुक्त हुआ है । रत्नकी उत्पत्ति सुनिये:-
अवध्यः सर्वदेवानां बलो नामासुरोऽभवत् । त्रिदिवेशोपकाराय त्रिदशैः प्रार्थितो मखे ॥
ततस्तेनात्मनः कायो देवानां सम्मुखे धृतः । देहे समर्पिते शक्रस्तद्वज्रेणाहनच्छिरः ॥
जातानि रत्नकूटानि वज्रेणाहतमस्तके । वज्रसंज्ञा कृता देवैः सर्वरत्नोत्तमोत्तमे ॥
(अगस्तिमत ५ । ६ । ७)
बल नामक एक असुर था देवतालोग उसको वध नहीं करसके । एक समय बलने यज्ञ किया था । इन्द्रका मंगल करनेके लिये इस अवसरमें देवताओंने बलसे तिसकी देहको मांगा बलने तत्काल अपनी देह अर्पी (चाहनेवाले) को देकर देवताओंके सम्मुख स्थापित की । तब इन्द्रने बलके मस्तकपर वज्रप्रहार किया । वज्रसे हत हुए उस असुरके मस्तकमें रत्नकूट उत्पन्न हुए । देवताओंने इनका वज्र नाम रक्खा ॥-

–भावप्रकाश कहता है कि, धन चाहनेवाले इससे अत्यन्त आनन्दित होते हैं इस कारण शब्दशास्त्रविशारद पंडितोंने इस पदार्थका रत्न नाम रक्खा है। यथाः–

धनार्थिनो जनाः सर्वे रमन्तेऽस्मिन्नतीव यत्। ततो रत्नमिति प्रोक्तं शब्दशास्त्रविशारदैः ॥

महर्षि शुक्राचार्यने शुक्रनीतिमें कहा है यथाः–

वज्रं मुक्ता प्रवालं च गोमेदश्चेन्द्रनीलकः। वैडूर्यं पुष्परागश्च पाचिर्माणिक्यमेव च।
महारत्नानि चैतानि नव प्रोक्तानि सूरिभिः॥ (शुक्रनीति ४ अ० २ प्रकरण ४१ श्लो०)

वज्र (हीरा), मुक्ता (मोती), प्रवाल (मूँगा), गोमेद, इन्द्रनील (नीलम), वैडूर्य, पुष्पराग (पुखराज, पद्मराग), पाचि (मरकत) और माणिक्य पंडितलोग इन नौको महारत्न कहते हैं। भावमिश्र कहते हैं:–

वज्रं गारुत्मतं पुष्परागो माणिक्यमेव च। इन्द्रनीलश्च गोमेदस्तथा वैदूर्यमित्यपि ॥
मौक्तिकं विद्रुमाश्चेति रत्नान्युक्तानि वै नव ॥ (भावप्रकाश)

विष्णुधर्मोत्तरमें कहा है:–

मुक्ताफलं हीरकं च वैदूर्यः पद्मरागकम्। पुष्परागं च गोमेदं नीलं गारुत्मतं तथा ॥
प्रवालयुक्तान्येतानि महारत्नानि वै नव। (भावप्रकाशधृतविष्णुधर्मोत्तरवचन॥)

शुक्राचार्य, भावमिश्र और विष्णुधर्मोत्तरकारने नौ प्रकारके महारत्न कहे हैं। फिर विष्णु-धर्मोत्तरमें यहभी कहा है कि, रत्न ३६ संज्ञावाले हैं। निःसन्देह रत्न ३६ प्रकारके हैं, परन्तु तिनमें नौ महारत्न थे। अग्निपुराणमें भी ३६ प्रकारके रत्न लिखे हैं। यथाः–

रत्नानां लक्षणं वक्ष्ये रत्नं धार्यमिदं नृपैः। वज्रं मरकतं रत्नं पद्मरागं च मौक्तिकम् ॥
इन्द्रनीलं महानीलं वैदूर्यं गन्धशस्यकम्। चन्द्रकान्तं सूर्यकान्तं स्फटिकं पुलकं तथा ॥
कर्केतनं पुष्परागं तथा ज्योतीयकं द्विज। स्फटिकं राजपर्यङ्कं तथा राजमयं शुभम् ॥
सौगन्धिकं तथा गन्धं शंखं ब्रह्ममयं तथा। गोमेदं रुधिराक्षं च तथा भल्लातकं द्विज ॥
धूलीं मरकतं चैव तुथकं सीसमेव च। पीलुं प्रवालकं चैव गिरिवज्रं द्विजोत्तम ॥
भुजङ्गममणिं चैव तथा वज्रमणिं शुभम्। टिट्टिभं च भाग्यपिण्डं भ्रामरं च तथोत्पलम् ॥

यह ३६ प्रकारके रत्न हैं। इनमें जो उत्तम हैं तिनको महारत्न कहते हैं। इस कारण रत्नकी संख्या ३६ है, तिनमें ९ महारत्न हैं॥ वराहमिहिर कहते हैं:–

रत्नानि बलाद्दैत्याद्दधीचितोऽन्ये वदन्ति जातानि। केचिद्भुवः स्वभावात् वैचित्र्यं प्राहुरुपलानाम् ॥ (बृहत्संहिता, ८० अध्याय)

कोई कहते हैं कि, बलनामक दैत्यसे रत्नकी उत्पत्ति हुई है, कोई दधीचिसे रत्नकी उत्पत्ति हुई बतलाते हैं, कुछ लोग कहते हैं कि, पृथ्वीके स्वभाववशसे पत्थरोंमें विचित्रता हो जाती है; तिनकोही फिर रत्न कहते हैं। यह पिछला मतही युक्तियुक्त और संभवज्ञात होता है, पूर्व-कालके समय रत्न मांगलिक पदार्थोंमें गिना जाता था। यथाः–

रत्नेन शुभेन शुभं भवति नृपाणामशुभमशुभेन। यस्मादतः परीक्ष्यं दैवं रत्नाश्रितं तज्ज्ञैः ॥
(बृहत्संहिता, ८० अध्याय)

शुभरत्न धारण करनेसे राजाओंका शुभ और अशुभ रत्न धारण करनेसे अशुभ होता है। इस कारण जो लोग रत्नके दोष गुणसे जानकार हैं, तिनकरके, दैव, दोष और गुणकी परीक्षा करना उचित है॥

पहले समयमें रत्नका बडा गौरव और आदर था। आदमी इसको शुभ व पवित्र समझा करते थे॥ (म० अनुवादित बृहत्संहिता)

दद्दशुस्ते सदोमध्ये विश्वकर्म्मविनिर्मितौ ।
भूपा मुनिगणाः सभ्याः सहर्षाः किमितीरिताः ॥ ३३ ॥

सभामें बैठे हुए मुनिगण, भूपाल व और जो कोई थे वह सबही विश्वकर्माके बनाये हुए रथोंको सभामें आया हुआ देखकर हर्षित हुए । और यह क्या है ? ऐसा कहकर विस्मय प्रगट करने लगे ॥ ३३ ॥

कल्किरुवाच–युवामादित्यसोमेन्द्रयमवैश्रवणाङ्गजौ ।
राजानौ लोकरक्षार्थमाविर्भूतौ विदन्त्यमी ॥ ३४ ॥

कल्किजी बोले–सबही जानते हैं कि, तुम दोनों राजा हो और संसारकी रक्षाके लिये पृथ्वीका पालन करनेको सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, यम और कुबेरके अंशसे अवतरे हो ॥ ३४ ॥

कालेनाच्छादिताकारौ मम संगादिहागतौ ।
युवां रथावारुहतां शक्रदत्तं ममाज्ञया ॥ ३५ ॥

इतने दिनोंतक तुम अपने अपने आकारको छिपाये हुए रहतेथे । अब (मेरा अवतार होनेपर) हमारे साथ मिलनेके लिये यहांपर आये हो । अब तुम हमारी आज्ञाके अनुसार इन्द्रजीके दिये हुए इन रथोंपर चढो ॥ ३५ ॥

एवं वदति विश्वेशे पद्मानाथे सनातने ।
देवा ववर्षुः कुसुमैस्तुष्टुवुर्मुनयोऽग्रतः ॥ ३६ ॥

पद्माके स्वामी, संसारके पति कल्किजी इस प्रकारसे वचन कह रहे हैं कि, इसी समयमें देवतालोग फूलोंकी वर्षा करने लगे । और मुनिलोग सामने आय स्तोत्र करते हुए ॥ ३६ ॥

गंगावारिपरिक्लिन्नशिरोभूतिपरागवान् ।
शनैः पर्व्वतजासङ्गशिववत्पवनो ववौ ॥ ३७ ॥

तहांपर मन्द पवन चलने लगा, महादेवजीके जटाजूटमें गंगाजलके मिलनेसे विभूति गीली होगईथी, सुमन्दपवन महादेवजीके ऐसे विभूति परागको उडा रहीथी । वही पवन भगवती पार्वतीके अंगको स्पर्श करके मंगलमय गुणको प्राप्त हुआथा ॥ ३७ ॥

तत्रायातः प्रमुदिततनुस्तप्तचामीकराभो
धर्म्मावासः सुरुचिरजटाचीरभृद्दण्डहस्तः ।
लोकातीतो निजतनुमरुन्नाशिताऽधर्म्मसंघ-
स्तेजोराशिः सनकसदृशो मस्करी पुष्कराक्षः ॥ ३८ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे चन्द्रवंशानु-
कीर्त्तनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इसी समयमें सनकमुनिके समान तेजःपुंजशाली एक दण्डधारी ब्रह्मचारी वहांपर आये । इनके देहसे तपाये हुए सुवर्णके समान झिलमिलाती हुई प्रभा निकल रहीथी । धर्मके भवनरूप वह जटाधारी ब्रह्मचारी मनोहर वस्त्र पहरे हुएथे। उन कमलदलकी नाईं नेत्रवाले अलौकिक महापुरुषकी देहसे सुखका अक्षय भाव दिखाई दे रहाथा । तिनके तेजःपुंजमय देहके प्रबल स्पर्शसे लोकके पापपुंज दूर होरहेथे ॥ ३८ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे वलदेवप्रसादमिश्रकृत-
भाषाटीकायां चन्द्रवंशानुकीर्त्तनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

तृतीयांशः ।

पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

सूत उवाच-अथ कल्किः समालोक्य सदसाम्पतिभिः सह ।
समुत्थाय ववन्दे तं पाद्यार्घ्याचमनादिभिः ॥ १ ॥

सूतजी बोले—उस भिक्षुकको देखतेही सभासदोंके साथ कल्किजी उठ खडे हुए पाद्य, अर्घ्य व आचमनीय आदिसे तिसकी पूजा की ॥ १ ॥

वृद्धं संवीक्ष्य तं भिक्षुं सर्वाश्रमनमस्कृतम् ।
पप्रच्छ को भवानत्र मम भाग्यादिहागतः ॥ २ ॥

समस्त आश्रमके पूज्य उस भिक्षुकको बैठायके कल्किजीने पूछा आप हमारे सौभाग्यहीसे यहां आये हैं । आप कौन हैं ? ॥ २ ॥

प्रायशो मानवा लोके लोकानां तारणेच्छया ।
चरन्ति सर्वसुहृदः पूर्णा विगतकल्मषाः ॥ ३ ॥

जो मनुष्य पापरहित हैं, जो पूर्ण हैं और सबके सुहृद हैं वे मनुष्य बहुधा लोकका उद्धार करनेके अर्थ पृथ्वीपर घूमते हैं ॥ ३ ॥

मस्कर्य्युवाच-अहं कृतयुगं श्रीश तवादेशकरं परम् ।
तवाविर्भावविभवप्रेक्षणार्थमिहागतम् ॥ ४ ॥

मस्करीने कहा-हे श्रीनाथ ! मैं आपकी आज्ञाका पालनेवाला सत्ययुग हूं । आपका यह अवतार और प्रभाव देखनेकी अभिलाषासे यहांपर आयाहूं ॥ ४ ॥

निरुपाधिर्भवान्कालः सोपाधित्वमुपागतः ।
क्षणदण्डलवाद्यङ्गैर्मायया रचितं त्वया ॥ ५ ॥

आप उपाधिरहित कालस्वरूप हैं । आप क्षण, दण्ड लवादि अंगों करके इस समय सोपाधि हुए हैं । आपकीही मायासे समस्त जगत् उत्पन्न हुआ है ॥ ५ ॥

पक्षाहोरात्रमासर्तुसंवत्सरयुगादयः ।
तवेक्षया चरन्त्येते मनवश्च चतुर्दश ॥ ६ ॥

आपके निकट रहनेसे पक्ष, दिनरात, मास, संवत्सर, युगादि और चौदह मनु यह समस्तही नियमित होकर घूमते हैं ॥ ६ ॥

स्वायम्भुवस्तु प्रथमस्ततः स्वारोचिषो मनुः ।
तृतीय उत्तमस्तस्माच्चतुर्थस्तामसः स्मृतः ॥ ७ ॥

पहला स्वायम्भुवनामक मनु, दूसरा स्वारोचिषनामक मनु, तीसरा उत्तमनामक मनु, चौथा तामसनामक मनु ॥ ७ ॥

पञ्चमो रैवतः षष्ठश्चाक्षुषः परिकीर्त्तितः ।
वैवस्वतः सप्तमो वै ततः सावर्णिरष्टमः ॥ ८ ॥

पांचवां रैवतनामक मनु, छठा चाक्षुष नामक मनु, सातवां वैवस्वत नामक मनु, आठवां, सावर्णिनामक मनु ॥ ८ ॥

नवमो दक्षसावर्णिर्ब्रह्मसावर्णिकस्ततः ।
दशमो धर्म्मसावर्णिरेकादशः स उच्यते ॥ ९ ॥

नवम दक्षसावर्णिनामक मनु, दशम ब्रह्मसावर्णिनामक मनु, एकादश धर्म्मसावर्णिनामक मनु ॥ ९ ॥

रुद्रसावर्णिकस्तत्र मनुर्वै द्वादशः स्मृतः ।
त्रयोदशमनुर्वेदसावर्णिर्लोकविश्रुतः ॥ १० ॥

द्वादश रुद्रसावर्णिनामक मनु, त्रयोदश सर्वत्र विख्यात वेदसावर्णिनामक मनु ॥ १० ॥

चतुर्दशेन्द्रसावर्णिरेते तव विभूतयः ।
यान्त्यायान्ति प्रकाशन्ते नामरूपादिभेदतः ॥ ११ ॥

चतुर्दश इन्द्रसावर्णिनामक मनु । यह सबही आपकी विभूतिके स्वरूप हैं, यह सभी नामरूपादि भेदसे गमनागमन करते और प्रकाशित होते हैं ॥ ११ ॥

द्वादशाब्दसहस्रेण देवानां च चतुर्युगम् ।
चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं सहस्रगणितं मतम् ॥ १२ ॥

देवताओंके बारह हजार वर्षका एक चौकडी युग होता है । ऐसेही चार हजार वर्षमें, तीन हजार वर्षमें, दो हजार वर्षमें और एक हजार वर्षमें (क्रमसे) सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग होता है ॥ १२ ॥

तावच्छतानि चत्वारि त्रीणि द्वे चैकमेव हि ।
सन्ध्याक्रमेण तेषां तु सन्ध्यांशोऽपि तथाविधः ॥ १३ ॥

इन चारों युगोंकी पूर्वसन्ध्या क्रमानुसार चार शत (४००), तीन शत (३००), दो शत (२००) और एक शत (१००) वर्षकी होती है । इस चौकडी युगकी शेषसंध्याका परिमाणभी ऐसाही है ॥ १३ ॥

एकसप्ततिकं तत्र युगं भुङ्क्ते मनुर्भुवि ।
मनूनामपि सर्वेषामेवं परिणतिर्भवेत् ॥
दिवा प्रजापतेस्तत्तु निशा सा परिकीर्त्तिता ॥ १४ ॥

प्रत्येक मनु इकहत्तर चौकडी युगतक पृथ्वीको भोगता है। ऐसेही सब मनु बदलते हैं। जितने कालतक चौदह मनुका अधिकार रहता है, सो ब्रह्माका दिन है। इस कालकी समान समय ब्रह्माकी एक रात है ॥ १४ ॥

अहोरात्रं च पक्षस्ते माससंवत्सरर्त्तवः ।
तदुपाधिकृतः कालो ब्रह्मणो जन्ममृत्युकृत् ॥ १५ ॥

इस प्रकारसे काल, दिन, रात, पक्ष, मास, वत्सर, ऋतु आदि उपाधि धारण करके ब्रह्माकी जन्ममृत्यु आदिका विधान करते हैं ॥ १५ ॥

शतसंवत्सरे ब्रह्मा लयं प्राप्नोति हि त्वयि ।
लयान्ते त्वन्नाभिमध्यादुत्थितः सृजति प्रभुः ॥ १६ ॥

जब ब्रह्माकी आयु शतवर्षकी होजाती है तब वह आपमें लयको प्राप्त हो जाते हैं। फिर प्रलयकालके बीतजानेपर प्रभु ब्रह्माजी आपके नाभिकमलसे उत्पन्न होते हैं ॥ १६ ॥

तत्र कृतयुगान्तेऽहं कालं सद्धर्म्मपालकम् ।
कृतकृत्याः प्रजा यत्र तन्नाम्ना मां कृतं विदुः ॥ १७ ॥

इसके बीच मैं कालका (एक) अंश कृतयुग हूं। मेरे अधिकारमें उत्तम धर्म प्रतिपालित होता है। हमसे प्रजा, धर्मानुष्ठान करके कृतकृत्य होती है, इसी कारण मैं कृतयुगनामसे विख्यात हुआ हूं ॥ १७ ॥

इति तद्वच आश्रुत्य कल्किर्निजजनावृतः ।
प्रहर्षमतुलं लब्ध्वा श्रुत्वा तद्वचनामृतम् ॥ १८ ॥

सत्ययुगके यह वचन सुनकर कल्किजी अपने अनुचरोंके साथ अपार आनन्दको भोगते हुए ॥ १८ ॥

अवहित्थामुपालक्ष्य युगस्याह जनान् हि तान् ।
योद्धुकामः कलेः पुर्य्यां हृष्टो विशसने प्रभुः ॥ १९ ॥

कालिका संहार करनेमें समर्थ कल्किजी सत्ययुगके आगमनको देखकर कलिके अधिकारकी विशसननामक पुरीमें संग्राम करनेकी अभिलाषा करके अपने पीछे आनेवाले मनुष्योंसे कहते हुए ॥ १९ ॥

गजरथतुरगान्नरांश्च योधान्कनकविचित्रविभूषणाचिताङ्गान् ।
धृतविविधवरास्त्रशस्त्रपूगान् युधि निपुणान् गणयध्वमानयध्वम् ॥ २०

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कृत-
युगागमनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जो वीरगण हाथीपर चढकर युद्ध करतेहैं, जो रथोंपर सवार होकर युद्ध करनेमें समर्थ हैं, जो पयदल सेना हैं, जिन लोगोंका शरीर सुवर्णके विचित्र विचित्र आभूषणोंसे भूषित है; जो कि, अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारण करनेमें समर्थ हैं, जो लोग संग्राम करनेमें निपुण हैं ऐसे वीरोंको लाओ और तिनकी गिनती करो ॥ २० ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे बलदेव० भाषाटीकायां
कृतयुगागमनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

तृतीयांशः ।

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सूत उवाच–इति तौ मरुदेवापी श्रुत्वा कल्केर्वचः पुरः ।
कृतोद्वाहौ रथारूढौ समायातौ महाभुजौ ॥ १ ॥

सूतजी बोले–मरु और देवापिने (इससे पहले कल्किजीकी आज्ञासे) विवाह करलिया था । इस समय वह दोनों महाबाहु वीर पुरुष दिव्य रथपर चढे हुए वहांपर आये ॥ १ ॥

नानायुधधरैः सैन्यैरावृतौ शूरमानिनौ ।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणौ दंशितौ बद्धहस्तकौ ॥ २ ॥

वे दोनों अगणित सेनाको साथ लिये और अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारण किये हुए थे । स्वयं अपने महावीर होनेका अभिमान करनेवाले, हाथमें और सर्व शरीरको वर्मसे ढके हुए और उंगलियोंमें दस्ताने लगाये हुए हैं ॥ २ ॥

पदातिभिर्द्विलक्षैश्च सन्नद्धैर्धृतकार्मुकैः ।
वातोद्धूतोत्तरोष्णीषैः सर्वतः परिवारितः ॥ ५ ॥

तिसके साथ दो लाख पयदल सेना सजीहुई धनुष धारण किये आईथी, पवनसे उनकी पगडियें और दुपट्टे काँपतेथे ॥ ५ ॥

रुधिराश्वसहस्राणां पञ्चाशद्भिर्महारथैः ।
गजैर्दशशतैर्मत्तैर्नवलक्षैर्वृतो बभौ ॥ ६ ॥

इसके सिवाय उसके साथ पचास हजार लाल रंगके घोडे और दश हजार मतवाले हाथी, बहुतसे महारथी और नौ लाख पयदल सेना थी ॥ ६ ॥

अक्षौहिणीभिर्दशभिः कल्किः परपुरञ्जयः ।
समावृतस्तथा देवैरेवमिन्द्रो दिवि स्वराट् ॥ ७ ॥

–रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म्म ।
तत्रा रथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ॥
(ऋग्वेदसंहिता, ६ मंडल, पंचसप्तति सूक्त ८ ऋक्)

" हव्य जिस प्रकार अग्निको बढाता है, वैसेही इस राजाका रथ वाहित धन इसे बढावै । रथमें इसके अस्त्रकवचादि रहते हैं, हमलोग सदा प्रसन्न मनसे उस रथकारी रथके समीप गमन करें । "–(श्रीयुतरमेशचन्द्रदत्त C. S. कमिश्नर)

इनके कई एक ऋचाओंमें रथमें एक प्रकारका स्थूल वृत्तान्त पाया जाता है ।

(१) रथके बनानेवाले कारीगर थे ।
(२) रथ बनानेवाले सूत्रधारोंको ' भृगु ' कहते थे ।
(३) अतएव ऐसा अनुमान किया जाता है कि, रथ काठका बनताथा ।
(४) युद्धमें रथका व्यवहार होता था ।
(५) युद्धके रथमें गोचर्मका आच्छादन रहता था ।
(६) घोडे रथको खींचते थे ।
(७) सारथी रथको चलाते थे ।
(८) लगामसे घोडे रथमें जुडते और चलते थे ।
(९) रथके भीतर लडवैयेके अस्त्रशस्त्र रक्खेजाते थे ।

पीछेकी ऋचाओंमें प्रमाण है कि, रथकी रक्षाके लिये रक्षक नियत होता था । अब यही पिछला अनुमान किया जाता है कि, उस समय बहुतायतसे रथका व्यवहार होता था और आगे उसकी विशेष उन्नति हुई थी । फिर एकाएक यह लोप होगया । उपनिषद् पुराण और काव्योंमें रथोंका विशेष वर्णन पाया जाता है । अतएव रथका व्यवहार भारतवर्षमें अति प्राचीन कालसे होता था, यदि नई रोशनीवाले महाशयोंके मतसे ऋग्वेदको ४००० वर्षका माना जाय तौ भी प्रमाणित होता है कि, ४००० वर्ष पहले भी हिन्दुस्थानमें रथ बनते थे । (ग्रन्थकार)

शत्रुके पुरको जीतनेवाले कल्किजी इस प्रकारसे देवलोकमें स्थित हुए देवराज इन्द्रके समान दश अक्षौहिणी सेनासे युक्त होकर शोभायमान होने लगे ॥ ७ ॥

भ्रातृपुत्रसुहृद्भिश्च मुदितः सैनिकैर्वृतः ।
ययौ दिग्विजयाकांक्षी जगतामीश्वरः प्रभुः ॥ ८ ॥

इस प्रकार भ्राता, पुत्र, सुहृद् और सेनाके समूहसे युक्त होकर जगत्‌के ईश्वर प्रभु कल्किजीने दिग्विजय करनेकी अभिलाषासे यात्रा करी ॥ ८ ॥

काले तस्मिन्द्विजो भूत्वा धर्म्मः परिजनैः सह ।
समाजगाम कलिना बलिनापि निराकृतः ॥ ९ ॥

बलवान् कल्किके द्वारा निगृहीत हुआ धर्मभी इसी समय ब्राह्मणका वेश धारण करके उस स्थानमें आया ॥ ९ ॥

ऋतं प्रसादमभयं सुखं मुदमथ स्वयम् ।
योगमर्थं ततोऽदर्पं स्मृतिं क्षेमं प्रतिश्रयम् ॥ १० ॥

उसके सेवकोंमें ऋत, प्रसाद, अभय, सुख, प्रीति, योग, अर्थ, अनहंकार, स्मृति, क्षेम और प्रतिश्रय ॥ १० ॥

नरनारायणौ चोभौ हरेरंशौ तपोव्रतौ ।
धर्म्मस्त्वेतान्समादाय पुत्रान्स्त्रीश्चागतस्त्वरन् ॥ ११ ॥

नारायणजीके अंश नरनारायण थे, जो कि, तपमें निष्ठ हैं, इन सबको ग्रहण करके और स्त्रीपुत्र लेकर धर्म शीघ्रतासे उस स्थानमें आया ॥ ११ ॥

श्रद्धा मैत्री दया शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः ।
बुद्धिर्मेधा तितिक्षा च ह्रीर्मूर्तिर्धर्मपालकाः ॥ १२ ॥

श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री, धर्मपालक यह मूर्ति ॥ १२ ॥

एतास्तेन सहायाता निजबन्धुगणैः सह ।
कल्किमालोकितुं तत्र निजकार्य्यं निवेदितुम् ॥ १३ ॥

अपने बंधुओंसे युक्त हो कल्किजीका दर्शन करनेके लिये और अपने कार्यको निवेदन करनेके निमित्त उस स्थानमें आया ॥ १३ ॥

कल्किर्द्विजं समासाद्य पूजयित्वा यथाविधि ।
प्रोवाच विनयापन्नः कस्त्वं कस्मादिहागतः ॥ १४ ॥

कल्किजीने ब्राह्मणका दर्शन करके विनयसहित विधिविधानसे उनकी पूजा की और कहा—आप कौन हैं ? कहांसे आते हैं ॥ १४ ॥

स्त्रीभिः पुत्रैश्च सहितः क्षीणपुण्य इव ग्रहः ।
कस्य वा विषयाद्राज्ञस्तत्तत्त्वं वद तावतः ॥ १५ ॥

आप पुण्यक्षीण हुए पुरुषके समान स्त्री और पुत्रोंके साथ किस राजाके अधिकारमेंसे आये हैं ? सो ठीक २ हमसे कहिये ॥ १५ ॥

पुत्राः स्त्रियश्च ते दीना हीनस्वबलपौरुषाः ।
वैष्णवाः साधवो यद्वत्पाखण्डैश्च तिरस्कृताः ॥ १६ ॥

पाखण्ड करके पराजित विष्णुपरायण साधुओंके समान आपके पुत्र, स्त्रियें आदि जन बल पौरुषहीन और अत्यन्त कातर हुए हैं ॥ १६ ॥

कल्केरिति वचः श्रुत्वा धर्म्मः शर्म्म निजं स्मरन् ।
प्रोवाच कमलानाथमनाथस्त्वतिकातरः ॥ १७ ॥

अनाथ और अतिकातर हुए धर्मने कमलाके पति कल्किजीका यह वचन सुनकर अपने मंगलके लिये उत्तर दिया ॥ १७ ॥

पुत्रैः स्त्रीभिर्निजजनैः कृताञ्जलिपुटैर्हरिम् ।
स्तुत्वा नत्वा पूजयित्वा मुदितं तं दयापरम् ॥ १८ ॥

पहले तो वह पुत्र, स्त्री व अनुचरोंके साथ हाथ जोडे हुए आनन्दमय दयामय नारायणजीकी पूजा करके नमस्कार कर स्तुति करने लगा ॥ १८ ॥

धर्म्म उवाच—शृणु कल्के ममाख्यानं धर्म्मोऽहं ब्रह्मरूपिणः ।
तव वक्षःस्थलाज्जातः कामदः सर्वदेहिनाम् ॥ १९ ॥

इसके उपरान्त धर्मने कहा—हे कल्के ! अपना वृत्तान्त कहता हूं श्रवण

कीजिये । पितामह (ब्रह्मा) रूपी आपकी छातीसे मैं उत्पन्न हुआहूं । मेरा नाम धर्म है समस्त प्राणियोंके अभिप्रायको सिद्ध करताहूं ॥ १९ ॥

देवानामग्रणीर्हव्यकव्यानां कामधुग्विभुः ।
तवाज्ञया चराम्येव साधुकीर्तिकृदन्वहम् ॥ २० ॥

देवताओंमें प्रथम गिननेके योग्य मैं यज्ञके मध्य हव्य कव्यके अंशका भागी हूं । मैं यज्ञके फलको दान करके साधुओंकी कामनाको पूर्ण किया करताहूं । आपकी आज्ञाके अनुसार मैं सदा साधुओंका कार्य करता हुआ विचरण करताहूं ॥ २० ॥

सोऽहं कालेन बलिना कलिनापि निराकृतः ।
शककाम्बोजशबरैः सर्वैरावासवासिना ॥ २१ ॥

इस समय शक (१), काम्बोज (२), शबर (३) आदि म्लेच्छ जातियें कलिके अधिकारमें वास करती हैं । उस बलवान् कलिकरके मैं कालके क्रमसे पराजित हुआ हूं ॥ २१ ॥

---

(१) शक–शकि (Sacoe) बासिथिय (Scythian) जाति है । शकजातिकी आदिमें वासभूमिका नाम शाकद्वीप है । ग्रीक इतिहासके जाननेवाले और भूगोलवेत्ता शाकद्वीपको शाकतॉई और सिथिया (Seythia) कहा करते थे । प्राचीन इतिहासका जाननेवाला ष्टोवा कहता है कि, मध्य एशियाके अन्तर्गत कास्पियनह्रदके पूर्वमें बसे हुए देशका नाम सिथिया है । (राज्यस्थान प्रथमखण्ड, २१ । २२ पृष्ठ) परन्तु प्राचीन भूगोलिक टेलमीके मतसे शक अर्थात् शकाई (Sakai) और सिथिया (Seythia) दो भिन्न देश हैं । शकाई देशकी पश्चिम सीमा साग्डयानई (Sogdianoi) सिथिया देशकी इयाकजर्तिस (Iixartes) नदीतक है, पूर्वसीमा सिथियादेशकी सीमावाली अस्कटंकस (Askatangkas) पर्वतश्रेणी और हिमालय (Tmoos) पर्वत है और दक्षिणसीमा हिमालय पर्वत है । (Ptolemy's AncientIndia, PP.283, 284)

(२) काम्बोज–अनार्य जाति । ग्रिफिथ साहब अनुमान करते हैं कि, आरोचेसिया (Arochasia) के निवासीही काम्बोज हैं । डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र (एल्, एल, डी, सी, आई, ई,) कहते हैं कि, प्राचीन काबुल राज्यही काम्बोज देश है । और हिन्दूकुश पर्वतके रहवासीही काम्बोज जाति है । (Indo Aryans Voll. PP. 172 332) म्याक्रिण्डल साहब कहते हैं टेलेमिका आराखोसिया (Arakhosia) वर्तमान अफगानिस्तानके पूर्वांश सिन्धुनदतक और उत्तरसीमा घुर (Cpur) पर्वत है । अर्थात् हिन्दूकुश पर्वतके पश्चिमांशतक फैली हुई है । (Ptolemy'sAncient India, P. 317)

अधुना तेऽखिलाधार पादमूलमुपागताः ।
यथा संसारकालाग्निसन्तप्ताः साधवोऽर्दिताः ॥ २२ ॥

हे जगदाधार ! इस समय साधुलोग संसाररूप कालके अग्निसे संतापित होकर पीडित हुए हैं । इसी कारण मैं आपके चरण समीप आया हूं ॥ २२ ॥

इति वाग्भिरपूर्वाभिर्धर्म्मेण परितोषितः ।
कल्किः कल्कहरः श्रीमानाह संहर्षयञ्छनैः ॥ २३ ॥

धर्मके यह अपूर्व वचन सुनकर पापका नाश करनेवाले श्रीमान् कल्किजी सबको हर्ष उपजाते हुए धीरे २ बोले ॥ २३ ॥

धर्म्म कृतयुगं पश्य मरुं चण्डांशुवंशजम् ।
मां जानासि यथा जातं धातृप्रार्थितविग्रहम् ॥ २४ ॥

हे धर्म ! यह देखो, सत्ययुग आपहुँचा है । इस सूर्यवंशी राजाका नाम मरु है । मैंने ब्रह्माजीकी प्रार्थनाके अनुसार जिस प्रकार शरीर धारण किया है सो तुम जानते हो ॥ २४ ॥

–ऐसा हो तो डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्रकी मीमांसाही ठीक है । क्योंकि, काबुल वा अफगानिस्तान एकही देश है और हिन्दुकुश पर्वतका नामभी मिलता है । परन्तु " वाल्मीकि और तत्सामयिक भूवृत्तान्त " नामक ग्रंथका बनानेवाला अनुमान करता है कि, यह काम्बोज उपसागरके निकटका देश होगा । परन्तु हम इस मतको ठीक नहीं समझते ।

(३) शबर–यह अनार्य जाति हिन्दोस्थानके पर्वतीदेशोंके वासी हैं । यह लोग मोरके पंखोंको एक अच्छा गहना समझते हैं । नागपुरसे कटकतक सुरदा नामक स्थानके जंगलोंमें और और (Sours) गोदावरी नदीके दुतर्फा जंगलमें और (Sourns) नामक दो अनार्य जाति हैं । क्या यही प्राचीन शबर हैं ?

कनिंहाम साहब टोलमीके शबराई (Sabarai) जातिको प्लिनीकी सुआरि (Suari) जातिके रूपसे ग्रहण करके प्राचीन अनार्य शबर जातिका निश्चय किया है । कनिंहाम कहते हैं कि, इस जातिका कोई नियत वासस्थान नहीं है, यह लोग वन और जंगलोंमें घूमा करते हैं । दक्षिणपश्चिममें पंजाब तकभी इनका वास है । इस शबर वा सुआरि (Suari) जातिके अनेक लोग ग्वालियरके दक्षिण पश्चिममें नरवर (नलवर) और दक्षिण राजपूताने के सुरिअस (Surias) नामसे परिचित पाये जाते हैं । [illegible] दक्षिण [illegible] सुरतके इनका वासस्थान निर्णय करते हैं । (Ptolemy's Ancient India P. 173)

कीकटैबौद्धदलनमिति मत्वा सुखी भव।
अवैष्णवानामन्येषां तवोपद्रवकारिणाम् ॥
जिघांसुर्यामि सेनाभिश्चर गां त्वं विनिर्भयः ॥ २५ ॥

कीकट देशमें बौद्धोंका दमन किया, तिसको जानकर तुम सुखी होगे। जो वैष्णव नहीं हैं, जो लोग तुम्हारे प्रति उपद्रव किया करतेहैं, तिनका संहार करनेके लिये मैं सेनाके सहित यात्रा करताहूं, इस समय तुम चित्तमें निर्भय होकर पृथ्वीमें विचरण करो ॥ २५ ॥

का भीतिस्ते क्व मोहोऽस्ति यज्ञदानतपोव्रतैः।
सहितैः सञ्चर विभो मयि सत्ये ह्युपस्थिते ॥ २६ ॥

जब कि, मैं आ पहुंचाहूं, जब कि, सत्ययुग आगया, तब तुमको क्या भय है? तुम किस कारण मोहसे व्याकुल हुए हो। इस समय तुम यज्ञदान और व्रतके साथ विचरण करो ॥ २६ ॥

अहं यामि त्वया गच्छ स्वपुत्रैर्बान्धवैः सह।
दिशां जयार्थं त्वं शत्रुनिग्रहार्थं जगत्प्रिय ॥ २७ ॥

हे धर्म! तुम जगत्के प्यारे हो, तुम पुत्रोंके और बन्धुओंके साथ दिग्विजयके लिये और शत्रुओंका दमन करनेके लिये यात्रा करो। मैंभी तुम्हारे साथ चलताहूं ॥ २७ ॥

इति कल्केर्वचः श्रुत्वा धर्मः परमहर्षितः।
गन्तुं कृतमतिस्तेन आधिपत्यमसुं स्मरन् ॥ २८ ॥

कल्किजीके यह वचन सुन अपार आनन्दको प्राप्त हो धर्मने अपने स्वामीपनको स्मरण किया और कल्किजीके साथ गमन करनेकी अभिलाषा की ॥ २८ ॥

सिद्धाश्रमे निजजनानवस्थाप्य स्थिरस्तदा ॥ २९ ॥

यात्राके समय धर्म स्त्री और पुत्रोंको सिद्धाश्रम (१) में रखगया ॥ २९ ॥

सन्नद्धः साधुसत्कारैर्वेदब्रह्ममहारथः ।
नानाशास्त्रान्वेषणेषु संकल्पवरकार्मुकः ॥ ३० ॥

जिस समय युद्ध करनेके लिये धर्म चला तब साधुओंका सत्कार उसका संग्राम वेश हुआ । वेद और ब्रह्म महारथके रूपसे आये । अनेक अनेक शस्त्रोंके खोजने (विचारने) के विषयमें जो संकल्प है, वह धर्मका धनुष हुआ॥ ३०॥

सप्तस्वराश्वो भूदेवसारथिर्वह्निराश्रयः ।
क्रियाभेदबलोपेतः प्रययौ धर्म्मनायकः ॥ ३१ ॥

वेदके सात स्वर (२) तिसके रथके घोडे सात हुए, ब्राह्मण उसके सारथी हुए । अग्नि तिसका आश्रय अर्थात् उसके बैठनेका आसन हुआ । इस प्रकारसे धर्मरूप सेनानीने अनेक प्रकारके क्रियानुष्ठानरूप बडे बलसे युक्त होकर यात्रा करी ॥ ३१ ॥

---

(१) सिद्धाश्रम–तीर्थविशेष । सिद्धाश्रमा दो हैं । एक विश्वामित्रजीका, दूसरा गणेशजीका । शौनकादि मुनियोंको समस्त ब्रह्मवैवर्त्तपुराण सुनाकर सूतजी कहते हैं:—

युष्माकं पादपद्मानि दृष्ट्वा पुण्यानि शौनक । अथ सिद्धाश्रमं यामि यत्र देवो गणेश्वरः ॥
(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड १३३ अध्याय)

इस सिद्धाश्रमका दूसरा नाम नारायणाश्रम है । यही सूत कहते हैं:—

विदाय देहि विप्रेन्द्र यामि नारायणाश्रमम् ।
(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड १३३ अ०)

यह दूसरा सिद्धाश्रमतीर्थ हिमालयपर्वतपर स्थित है, हरिद्वारतीर्थ भी हिमालयमें है । उस स्थानमें भगवान् कल्किजीके निकट धर्म आया । इस कारण जान पडता है कि,हरिद्वारके निकटका कोई स्थान यह सिद्धाश्रम होगा ।

(२) स्वरके साथ वेद गाया जाता है । सामवेदमें गेय गान, ऊह्यगानादि दिखाई देतेहैं । जिन स्वरोंके संयोगसे यह वैदिकगान गाये जाते हैं इनको वैदिकस्वर कहते हैं । वेदमें प्रयोग करनेसे वैदिक और लोकमें प्रयोग करनेसे लौकिक कहते तो हैं परन्तु मूल सप्तस्वर एक हैं; वैदिक और लौकिक भेदसे मूलस्वरोंमें पृथक्ता नहीं है । महर्षि पाणिनिने शिक्षाग्रन्थमें कहा है:–

उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः । ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अचि ॥
उदात्तो निषादगान्धारावनुदात्त ऋषभधैवतौ । स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः ॥
(पाणिनीयशिक्षा, ११ । १२ श्लोक)

उदात्त, अनुदात्त और स्वरित यह तीन स्वर हैं । निषाद और गान्धार उदात्त, ऋषभ—

यज्ञदानतपःपात्रैर्यमैश्च नियमैर्वृतः ।
खशकाम्बोजकान्सर्वाञ्छबरान्बर्बरानपि ॥ ३२ ॥

यज्ञ, दान, तप, यम, नियम आदि पात्रोंसे युक्त होकर इस प्रकार कल्किजी खश (१), काम्बोज, शबर और बर्बरादि म्लेच्छोंको ॥ ३२ ॥

–और धैवत अनुदात्त और स्वरितसे षड्ज, मध्यम और पंचमस्वर उत्पन्न होता है । उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत इन तीन भागोंमें विभक्त थे ।

संगीतविद्यामें अहोबल बडे होशियार थे । संस्कृत भाषामें तिनका बनाया हुआ "संगीत-पारिजात" नामक एक संगीत ग्रन्थ है । इस पुस्तकमें कहा गया है:–

रञ्जयति स्वतः स्वान्तं श्रोतॄणामिति ते स्वराः । षड्जर्षभौ च गान्धारस्तथा मध्यमपञ्चमौ ॥
धैवतश्च निषादोऽयमिति नामाभिरीरिताः । शुद्धत्वविकृतत्वाभ्यां स्वरा द्वेधा प्रकीर्त्तिताः ॥
(संगीतपारिजात ६३ । ६४)

स्वरसे स्वभावकरकेही श्रवण करनेवालोंका चित्त प्रसन्न होजाता है । षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद इन सात स्वरोंकेभी दो भाग हैं; शुद्ध और विकृत । उनका लिखना निष्प्रयोजन है । किस स्वरमें किस स्वरका अधिकार है सो कहा जाता है:–
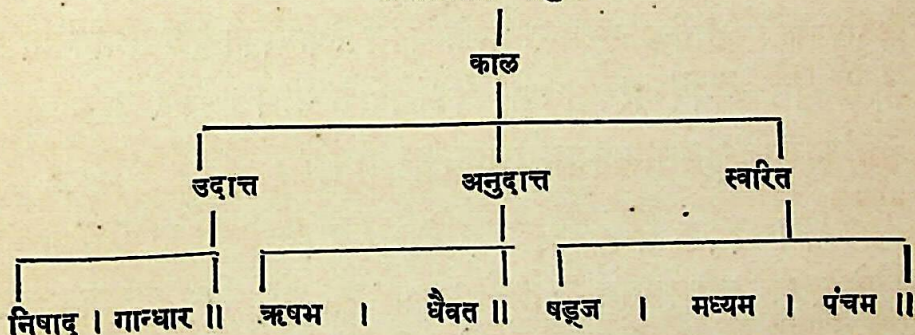
फिर प्रत्येकके शुद्ध और विकारमें बहुत भेद हैं । ऋक् और यजुर्वेदके तीन स्वर हैं, परन्तु सामवेदमें पांच या सात स्वरका व्यवहार होता है ।

(१) खश–अनार्यजाति:विशेष । यह जाति कश्मीरके बगली पर्वतोंपर वास करती है । (wilsson's Vishnupuran) खशजातिका वर्त्तमान नाम खशियाह (Khasihs) यह लोग भोट (भोटिया) जातिके निकट रहते हैं । गढवाल व कुमायूंके पहाडोंपर और अलकनन्दा व काली गंगानदीके बीच पहाडी देशोंमें यह लोग रहते हैं ।–(The Wild Trides of India P. 128) (ग्रन्थकार)

जेतुं कल्किर्ययौ यत्र कलेरावासमीप्सितम् ।
भूतावासबलोपेतं सारमेयवराकुलम् ॥ ३३ ॥

पराजित करनेके लिये, कलिके मनमाने स्थानमें गये । कलिका वासस्थान भूतोंका आवासरूप होनेसे दृढ होगया था, इस स्थानके चारों ओर कुत्ते बराबर भूंक रहे थे ॥ ३३ ॥

गोमांसपूतिगन्धाढ्यं कालोलूकशिवावृतम् ।
स्त्रीणां दुर्द्यूतकलहविवादव्यसनाश्रयम् ॥ ३४ ॥

इस स्थानमें गोमांसकी दुर्गन्ध आरहीथी, इस स्थानको काग और उल्लू घेर रहे थे । यह स्थान नारियोंके क्लेश विवाद (झगडा) अनेक प्रकारके व्यसन (लतें) और जुआ खेलनेका आश्रय था ॥ ३४ ॥

घोरं जगद्भयकरं कामिनीस्वामिनं गृहम् ।
कलिः श्रुत्वोद्यमं कल्केः पुत्रपौत्रवृतः क्रुधा ॥ ३५ ॥

यह पुरी घोररूपवाली और जगत्को भयदायी थी । इस पुरीमें सबही कोई स्त्रियोंकी आज्ञाके अनुसार चलते थे। कल्किजीकी युद्धयात्राकी तैयारी सुनकर कलि क्रोधमें भरगया और बेटे पोतोंके साथ ॥ ३५ ॥

पुराद्विशसनात्प्रायात्पेचकाक्षरथोपरि ।
धर्मः कलिं समालोक्य ऋषिभिः परिवारितः ॥ ३६ ॥

ऐसे रथपर चढ जिसमें उल्लूकी ध्वजा लगी थी, विशसननामक नगरसे बाहर निकला । कलिको देखकर धर्म ऋषियोंके साथ ॥ ३६ ॥

युयुधे तेन सहसा कल्किवाक्यप्रचोदितः ।
ऋतेन दम्भः संग्रामे प्रसादो लोभमाह्वयत् ॥ ३७ ॥

कल्किजीकी आज्ञाके अनुसार तिसके साथ युद्ध करना आरंभ करता हुआ, ऋतके साथ दम्भका युद्ध होने लगा । प्रसादने लोभको युद्ध करनेके लिये ललकारा ॥ ३७ ॥

समयादभयं क्रोधो भयं सुखमुपाययौ ।
निरयो मुदमासाद्य युयुधे विविधायुधैः ॥ ३८ ॥

अभयके साथ क्रोधका और सुखके साथ भयका संग्राम होनेलगा। प्रीतिके निकट आयकर निरय अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे युद्ध करने लगा॥ ३८॥

आधियोंगेन च व्याधिः क्षेमेण च बलीयसा ।
प्रश्रयेण तथा ग्लानिर्जरा स्मृतिमुपाह्वयत् ॥ ३९ ॥

आधि योगके सहित और व्याधि बलवान् क्षेमके साथ संग्राम करने लगी, ग्लानि प्रश्रयके साथ युद्ध करने लगी, जराने स्मृतिके साथ युद्ध किया॥ ३९॥

एवं वृत्तो महाघोरो युद्धः परमदारुणः ।
तं द्रष्टुमागता देवा ब्रह्माद्याः खे विभूतिभिः ॥ ४० ॥

इस प्रकारसे परमदारुण महाघोर युद्ध आरम्भ हुआ, ब्रह्मादि देवता उस युद्धके देखनेको अपनी २ विभूतिके साथ आकाशमार्गमें आये ॥ ४० ॥

मरुः खशैश्च काम्बोजैर्युयुधे भीमविक्रमैः ।
देवापिः समरे चीनैर्बर्बरैस्तद्गणैरपि ॥ ४१ ॥

भयंकर पराक्रमवाले खश और काम्बोज लोगोंके साथ मरु संग्राम करने लगा, चीन (चोल) बर्बर और इनके सेवकोंके साथ देवापिने संग्राम किया ॥ ४१ ॥

विशाखयूपभूपालः पुलिन्दैः श्वपचैः सह ।
युयुधे विविधैः शस्त्रैरस्त्रैर्दिव्यैर्महाप्रभैः ॥ ४२ ॥

राजा विशाखयूपने पुलिन्द और श्वपच लोगोंके साथ महा प्रभावशाली विविध दिव्य अस्त्रसमूहोंसे संग्राम किया ॥ ४२ ॥

कल्किः कोकविकोकाभ्यां वाहिनीभिर्वरायुधैः ।
तौ तु कोकविकोकौ च ब्रह्मणो वरदर्पितौ ॥ ४३ ॥

सेनाके सहित कल्किजी विविध उत्तम अस्त्र शस्त्र चलायकर कोक और विकोकके साथ संग्राम करने लगे। यह कोक और विकोक ब्रह्माजीसे वरदान पाकर अत्यंत दर्पित हुये थे ॥ ४३ ॥

भ्रातरौ दानवश्रेष्ठौ मत्तौ युद्धविशारदौ ।
एकरूपौ महासत्त्वौ देवानां भयवर्धनौ ॥ ४४ ॥

यह दोनों भ्राता दानवोंमें श्रेष्ठ अत्यन्त उन्मत्त और संग्राम करनेमें उत्तम चतुर थे परस्पर यह दोनों भ्राता एक आत्मा और महाबलशाली थे, देवताओंको भी भय पहुंचानेवाले थे ॥ ४४ ॥

पदातिकौ गदाहस्तौ वज्राङ्गौ जयिनौ दिशाम् ।
शुम्भैः परिवृतौ मृत्युजितावेकत्र योधनात् ॥ ४५ ॥

इनका शरीर वज्रके समान कठिन था, दिग्विजयी थे । वह दोनों भ्राता इकट्ठे होकर संग्राम करैं तो मृत्युकोभी जीत सकते हैं । यह दोनों महावीर सेनासे युक्त होकर गदा हाथमें ले पैदलही युद्ध करना आरम्भ करते हुए४५॥

ताभ्यां स युयुधे कल्किः सेनागणसमन्वितः ।
शुभानां कल्किसैन्यानां समरस्तुमुलोऽभवत् ॥ ४६ ॥

सेनासे युक्त होकर कल्किजी इस कोक और विकोकके साथ घोरसंग्राम करनेलगे, कल्किजीकी सेनाके प्रधान २ लडवैये घोर युद्ध करनेलगे॥ ४६॥

हेषितैर्बृंहितैर्दन्तशब्दैष्टङ्कारनादितैः ।
शूरोत्क्रुष्टैर्बाहुवेगैः संशब्दस्तलताडनैः ॥ ४७ ॥

घोडोंके हिनहिनानेसे, हाथियोंके चिंघाडने और दातोंके शब्दसे, धनुषकी टंकारसे, शूरवीरोंकी भुजाओंके वेगसे, घूसोंके आघात और चपतोंके आघातसे महाशब्द उत्पन्न होने लगा ॥ ४७ ॥

सम्पूरिता दिशः सर्वा लोका नो शर्म्म लेभिरे ।
देवाश्च भयसन्त्रस्ता दिवि व्यस्तपथा ययुः ॥ ४८ ॥

इस शब्दसे दशों दिशाएँ भरगईं । तिस काल कोई मनुष्यभी छुटकारा नहीं पासका । देवतालोग भयके मारे त्रासित हो आकाशमार्गके टेढे उलटे मार्गसे गमन करने लगे ॥ ४८ ॥

पाशैर्दण्डैः खड्गशक्त्यृष्टिशूलैर्गदाघातैर्बाणपातैश्च घोरैः ।
युद्धे शूराश्छिन्नबाह्वंघ्रिमध्याः पेतुः संख्ये शतशः कोटिशश्च ॥४९॥
इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कल्किसेनासंग्रामो
नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस संग्राममें पाश (१), खड्ग, दण्ड और शक्ति, ऋष्टि (२), शूल और गदा (३) से घोर बाणोंसे करोड २ वीरोंके हाथ चरण और कमरके छिन्न भिन्न होनेसे रणभूमि व्याप्त होने लगी ॥ ४९ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां
कल्किसेनासंग्रामो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

---

(१) पाश–प्राचीन युद्धास्त्रविशेष । श्रीयुक्त रामदाससेनप्रणीत भारतरहस्य पुस्तकमें लिखा है कि, " पाश "–वैशम्पायनजीके कहे हुए धनुर्वेदमें पाशास्त्रका जिस प्रकार वर्णन है, ऐसा वर्णन आग्नेय धनुर्वेदमें नहीं बरन् बिलकुल अलग है । दोनों पुस्तकोंसे जाना जाता है कि, पाशास्त्र दो प्रकारका था । महाभारतादि ग्रन्थोंमेंभी वारुणपाश और पाश इन दोनोंका अलग २ वर्णन है । वैशम्पायनजीके कहे हुए धनुर्वेदकी पाश ऐसी होती है ।

पाशः सूक्ष्मावयवो लौहधातुस्त्रिकोणवान् । प्रादेशपरिधिः सीसगुलिकाभरणान्वितः ॥

लोहेके वडे सूक्ष्म २ टुकडोंसे पाश बनता है । त्रिकोणयुक्त, प्रादेशपरिमाणके घेरेसे युक्त और सीसेकी गोलियोंसे शाभायमान होता है, इसके विषयमें आग्नेय धनुर्वेद लिखता है–

दशहस्तो भवेत्पाशो वृत्तः करमुखस्तथा । गुणकार्पासमुञ्जानामर्कस्नायवचर्मणाम् ॥
अन्येषां सुदृढानां च सुकृतं परिवेष्टितम् । तथा त्रिंशत्समं पाशं बुधः कुर्यात्सुवर्त्तितम् ॥

वृत्त अर्थात् गोल और लम्बाईमें दश हाथ ऐसा पाश गुणरज्जु, कपासकी रस्सी, मूंजकी रस्सी, (किसी पशुविशेषकी स्नायु) (तमसा), आककी छालका सूत्र और किसी विशेष चमडेसे वनता है । इसके अतिरिक्त उन पदार्थोंसे जो कि, दृढ हैं और जिनसे सूत तैयार होता है–बनसकताहै । ३० सूक्ष्म तार मिलाय भली भांति बाटकर वनाया जाता है । इस पाशास्त्रकी क्रिया ऐसी है:–

कर्त्तव्यं शिक्षकैः स्थानं तस्य कक्षासु वै सदा । वामहस्तेन संगृह्य दक्षिणेनोद्धरेत्ततः ॥
कुण्डलस्याकृतिं कृत्वा भ्राम्यैकेन शिरोपरि । क्षिपेत्.......................................
वलिते च प्लुते चैव तथा प्रव्रजितेषु च । समयोगविधिं ज्ञात्वा प्रयुञ्जीत सुशिक्षितः ॥
विजित्वा तु यथान्यायं ततो बन्धं समाचरेत् । कट्यां बध्वा ततः खड्गं वामपार्श्वावलम्बिनम् ॥
दृढं विगृह्य वामेन निष्कर्षेद्दक्षिणेन च ॥

अर्थात् यह कक्षस्थानमें रक्खा जाता है, चलाने (प्रयोग) के समय कुण्डलाकार करके मस्तकके ऊपर एक बार घुमायकर चलाना होता है । इस अस्त्रके चलानेकी तीन प्रकारकी गति हैं । तिनके नाम वलगन, प्लवन और प्रव्रजन । इससे इच्छानुसार बांधकर अपने निकटको खैंच तलवारसे वध किया जाता है । अतिरिक्त इसके २५० अध्यायमें और क्रिया लिखी है । यथाः–

-परावृत्तमपावृत्तं गृहीतं लघुसंहितम् । ऊर्ध्वक्षिप्तमधः क्षिप्तं सन्धारितविधावितम् ॥
श्येनपातं गजपातं ग्राहग्राह्यं तथैव च । एवमेकादशविधा ज्ञेयाः पाशविधारणाः ॥
वैशंपायनजीने जोपाश कहा है तिसका कार्य ऐसा है:—

प्रसारणं वेष्टनं च कर्त्तनं चेति ते त्रयः। योगाः पाशाश्रिता लोके पाशाः क्षुद्रसमाश्रिताः॥
पहले तिसका फैलाना, फिर तिससे शत्रुको घेरलेना, फिर दूसरे अस्त्रसे काटना, पांशके प्रयोग यह तीन प्रकारके हैं और यह क्षुद्र लडवैय्येके आश्रित हैं।

ऋज्वायतं विशालं च तिर्यग्भ्रामितमेव च । पञ्चकर्म विनिर्दिष्टं व्यस्ते पाशे महात्मभिः॥
और एक प्रकारका पाश है; पांच कार्य तिसके महात्मा लोगोंने कहे हैं । यह पांचों पहले कहे हुएकी समान हैं । (श्रीयुत डाक्टर रामदाससेन)

(२) ऋष्टि—अत्यन्त प्राचीन अस्त्र है । युद्धकालमें इसका व्यवहार होताथा । ऋग्वेदमें ऋष्टिका वृत्तान्त लिखाहै । यथाः—

आरुक्मैरायुधानर ऋषा ऋष्टीरसृक्षत ।
अरावेनाँ अह विद्युतो मरुतो जच्छतीरिव भानुरतात्मनादिवः ॥
(ऋग्वेदसंहिता ५ मं० ५२ सू० ६ ऋचा)

“ (ऋष्टिके) नेता और बलशाली मरुद्गण उज्ज्वल आभरण और विशेष अस्त्रसे दीप्ति पाते हैं और (विद्युद्रूप) “ ऋष्टि (१) ” चलाते हैं, तडिद्गणभी गर्जनेवाले जलकी राशिके समान प्रतिदिन तिनका अनुसरण करते हैं । दीप्तिमान् मरुद्गणोंकी प्रभा अपने आपही प्रवृत्त होकर वेगसे निकलती है । (श्रीयुतरमेशचन्द्रदत्त C. S. कमिश्नर)

टीका । (१) “ मूलमें ऋष्टीः ” है । “ आयुधाविशेषान् ” । सायणे ।
(श्रीरमेशचन्द्र दत्त C S. कमिश्नर) औरभीः—

वाशीमंत ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषंगिणः ।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम् ॥
(ऋग्वेदसंहिता । पञ्चम मण्डल ५७ सूक्त २ ऋचा)

“ हे श्रेष्ठ बुद्धिवाले मरुद्गण ! तुम्हारी वाशी और “ ऋष्टि ” (१) व श्रेष्ठ धनुष, बाण, तरकश श्रेष्ठ अश्व और रथ है। तुम लोग अस्त्रसे सजो, हे पृश्निपुत्रगण ! हमारा कल्याण करनेके लिये आगमन करो । ” (श्रीमान् रमेशचन्द्रदत्त C. S. कमिश्नर)

टीका—“ (१) वाशी ” अर्थसे अस्त्रविशेष और ऋष्टिअर्थसेभी अस्त्रविशेष । परन्तु इनमेंसे कौन कौनसा अस्त्र है, सो बताना कठिन है । सायनाचार्यने १।३७२ ऋचामें “ वाशी ” शब्दका अर्थ युद्धका गरजना किया था, परन्तु यहांपर “ तक्षणसाधनमायुधम् ” अर्थात् सूत्रधारोंका “ वाइश ” किया है । (Wilson) ने “ वाशी ” का अर्थ (Swords) और ऋष्टिका अर्थ (Sonces) किया है । ” (श्रीरमेशचन्द्रदत्त C. S. कमिश्नर)

श्रीमान् रमेशचन्द्रदत्तके मतानुसार ऋष्टिका अर्थ वा आधुनिक नाम—‘ वर्षा ’ है ।

(३) गदा प्राचीन अस्त्रविशेष । भारतरहस्यमें लिखा है, “ गदा ” गदा नामक अस्त्रका आकार और क्रिया ऐसी है ।

अष्टास्रा पृथुबुध्रा तु गदा हृदयसम्मिता ॥
अर्थात् मूठ बडी होती है, आकार (अंग) अठपहलू होता है, हृदयतक लम्बी होती है (डाक्टर रामदाससेन)

वजनमें गदा २०सेरके लगभग होती है, इस गदाको लेकर जो वीरगण युद्ध करते हैं उनकी वीरताका ध्यान करनेसेभी शरीर पुलकायमान होजाता है, हृदयमें विस्मयरस प्रगट होता है।

तृतीयांशः ।

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सूत उवाच-एवं प्रवृत्ते संग्रामे धर्म्मः परमकोपनः ।
कृतेन सहितो घोरं युयुधे कलिना सह ॥ १ ॥

उग्रश्रवा बोले-जब इस प्रकारसे महासंग्राम आरंभ हुआ, तब धर्मने अत्यन्त क्रोध करके सत्ययुगके साथ मिल कलिके सहित घोर युद्ध करना आरंभ किया ॥ १ ॥

कलिर्दमित्रबाणौघैर्धर्म्मस्यापि कृतस्य च ।
पराभूतः पुरीं प्रायात्त्यक्त्वा गर्दभवाहनम् ॥ २ ॥

फिर धर्म और सतयुगके भयंकर बाणझुण्डसे कलि हारकर अपनी सवारी गधेको छोड अपनी पुरीमें प्रवेश करता हुआ ॥ २ ॥

विच्छिन्नपेचकरथः स्रवद्रक्ताङ्गसञ्चयः ।
छछुगन्धः करालास्यः स्त्रीस्वामिकमगाद्गृहम् ॥ ३ ॥

उलूक ध्वजवाला उसका रथ छिन्नभिन्न होगया । उसके सब शरीरसे रुधिर चूने लगा । उसके गात्रसे छछून्दरकी गन्ध निकलने लगी । तिसके मुखका आकार अत्यन्त भयंकर होगया । इस प्रकारकी अवस्थाको प्राप्त होकर कलि स्त्रीस्वामिक (१) गृहमें प्रवेश करताहुआ ॥ ३ ॥

---

(१) जिस घरमें स्वामी अथवा पुरुषजातिका अधिकार नहीं होता, स्त्रियांही सब प्रकारसे घरकी मालकिन होती हैं, उसको स्त्रीस्वामिक गृह कहते हैं । जो पुरुष स्त्रैण नहीं होते हैं; तो वह किसी प्रकार स्त्रीजातिको सम्पूर्ण अधिकार नहीं सौंपते ।

क्योंकि अधिकार करनेपर तिसकी सखी स्वेच्छाचारिताका आश्रय लेना पडता है । जिस घरमें सहजबुद्धि अवलाजातिका अधिकार होता है वहांपर अशांतिके अतिरिक्त अनेक प्रकारके दोष उत्पन्न होते हैं । पूर्वाचार्योंने कहा है यथा-

स्त्री पुंवच्च प्रभवाति यदा तद्धि गेहं विनष्टम् ।

अर्थात्-जिस घरमें स्त्री पुरुषकी समान आचरण करती है वह घर अवश्य नाशको प्राप्त होता है ॥ इसकाही प्रगट करना स्त्रीस्वामिकशब्दका अभिप्राय जानपडता है । महर्षि मनुजीने कहा है-"न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति ।" जहां धर्मशास्त्रसे इस विधिका उल्लंघन होता है तहांपर जाति-बन्धन ढीला पडजाता है । तहांके रहनेवाले सनातनधर्मके विरोधी होते हैं । कल्किपुराणमें इस विषयको भलीभांति प्रकाशित करनेके लिये ग्रन्थकारने यहांपर "स्त्रीस्वामिक" शब्दका प्रयोग किया है ।

दम्भः सम्भोगरहितोद्धृतबाणगणाहतः ।
व्याकुलः स्वकुलाङ्गारो निःसारः प्राविशद्गृहम् ॥ ४ ॥

अपने कुलका अंगार स्वरूप साररहित दम्भ सम्भोगरहित करके छोडे हुए बाणोंसे घायल हो व्याकुल हृदयवाला हो अपने घरमें घुसगया ॥ ४ ॥

लोभः प्रसादाभिहतो गदया भिन्नमस्तकः ।
सारमेयरथं छिन्नं त्यक्त्वाऽगाद्रुधिरं वमन् ॥ ५ ॥

लोभको प्रसादने मारा गदाके लगनेसे उसका मस्तक चूर्ण होगया। तिसका कुत्ते जुता हुआ रथ चूर्ण होनेसे वह उसको छोड रुधिर उगलते उगलते भाग गया ॥ ५ ॥

अभयेन जितः क्रोधः कषायीकृतलोचनः ।
गन्धाखुवाहं विच्छिन्नं त्यक्त्वा विशसनं गतः ॥ ६ ॥

अभयके साथ संग्राम करनेमें क्रोध पराजित हुआ, तिसके नेत्र लाल होगये । उसका वह रथ कि, जिसमें दुर्गन्ध आरहीथी और चूहे जुड रहे थे जब छिन्नभिन्न होगया, तब वह उसको छोडकर विशसन नगरके भीतर घुसगया ॥ ६ ॥

भयं सुखतलाघातगतासु न्यपतद्भुवि ।
निरयो मुदमुष्टिभ्यां पीडितो यममाययौ ॥ ७ ॥

सुखने भयको चनकटा मारा, तब वह मृतक होकर पृथ्वीपर गिरपडा। प्रीतिके घूसेसे पीडित होकर निरय यमराजके यहां चलागया ॥ ७ ॥

आधिव्याध्यादयः सर्वे त्यक्त्वा वाहमुपाद्रवन् ।
नानादेशान्भयोद्विग्नाः कृतबाणप्रपीडिताः ॥ ८ ॥

आधि, व्याधि आदि सबही सत्ययुगके बाणोंसे पीडित हो अपने अपने वाहनोंको छोड चित्तमें डरकर अनेक देशोंमें भाग गईं ॥ ८ ॥

धर्म्मः कृतेन सहितो गत्वा विशसनं कलेः ।
नगरं बाणदहनैर्ददाह कालिना सह ॥ ९ ॥

फिर कृतयुगके साथ मिलकर धर्मने ' कलिकी प्रधान राजधानी ' विशसननामक नगरमें प्रवेश किया और बाणकी अग्निसे कालके साथ इस नगरको भस्म करडाला ॥ ९ ॥

कलिर्विप्लुष्टसर्वाङ्गो मृतदारो मृतप्रजः ।
जगामैको रुदन् दीनो वर्षान्तरमलक्षितः ॥ १० ॥

कलिके समस्त अंग जलगये । उसके स्त्रीपुत्र सबही यमराजके यहांके पाहुने हुए, वह अकेला दीन अन्तःकरणसे रोते २ गुप्त भावसे दूसरे वर्षमें भागगया ॥ १० ॥

मरुस्तु शककाम्बोजाञ्जघ्ने दिव्यास्त्रतेजसा ।
देवापिः शबरांश्चोलान्बर्बरांस्तद्गणानपि ॥ ११ ॥

इस ओर दिव्यास्त्रसमूहके तेजसे मरुने शक और काम्बोजोंको मारडाला, देवापिने भी शबर, चोल और बर्बरोंकोभी ऐसेही मारडाला ॥ ११ ॥

दिव्यास्त्रशस्त्रसम्पातैरर्दयामास वीर्यवान् ।
विशाखयूपभूपालः पुलिन्दान्पुक्कसानपि ॥ १२ ॥

परम तेजस्वी विशाखयूपराजाने दिव्य अस्त्र शस्त्र चलाय पुलिन्द और पुक्कसोंको (१) पराजित किया ॥ १२ ॥

---

(१) कोई २ कहते हैं कि, पुक्कस शब्द चाण्डाल जातिका दूसरा नाम है । मनुमें पुक्कस जातिका वर्णन है । यथाः—

जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति पुक्कसः । शूद्राज्जातो निषाद्यां तु स वै कुक्कुटकः स्मृतः ॥
(मनु० १० अध्याय १८ श्लो०)

निषादके औरस वा शूद्रास्त्रीके गर्भसे जिसका जन्म होता है, तिसको निषाद कहते हैं । निषादः—

ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते । निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते ॥
(मनु० १० अध्याय ८ श्लो०)

ब्राह्मणकी व्याहता शूद्राके गर्भमें निषादकी उत्पत्ति होती है, निषादका दूसरा नाम पारशव है । इस निषादके औरससे शूद्राके गर्भमें पुल्कसकी उत्पत्ति है । पुल्कस वर्णसंकर कहलाते हैं । यह अतिनीचजाति व दुःशील थे, खोज करनेसे अब भी हमारे देशमें इस नीच जातिका होना पाया जाता है ।

जघान विमलप्रज्ञः खड्गपातेन भूरिणा ।
नानास्त्रशस्त्रवर्षैस्ते योधा नेशुरनेकधा ॥ १३ ॥

बराबर खड्गके प्रहारसे और बहुतसे अस्त्र शस्त्रोंको वर्षाकर निर्मल बुद्धिवाला विशाखयूप शत्रुओंका संहार करने लगा । इस प्रकार शत्रुसेनाके वीरोंमेंसे बहुतसे मारेगये ॥ १३ ॥

कल्किः कोकविकोकाभ्यां गदापाणिर्युधां पतिः ।
युयुधे विन्यासविज्ञो लोकानां जनयन् भयम् ॥ १४ ॥

गदा चलानेमें चतुर महावीर कल्किजी गदा हाथमें ले समस्त लोकोंको भय उपजाते हुए कोक और विकोकके साथ संग्राम करने लगे ॥ १४ ॥

वृकासुरस्य पुत्रौ तौ नप्तारौ शकुनेर्हरिः ।
तयोः कल्किः स युयुधे मधुकैटभयोर्यथा ॥ १५ ॥

यह दोनों भ्राता वृकासुरके पुत्र और शकुनिके पोते थे । पूर्वकालमें जिस प्रकार नारायणजीने मधु और कैटभके साथ संग्राम कियाथा (१) वैसेही कल्किजी इन दोनों महावीरोंके साथ संग्राम करने लगे ॥ १५ ॥

तयोर्गदाप्रहारेण चूर्णितांगस्य तत्पतेः ।
कराच्च्युताऽपतद्भूमौ दृष्ट्वोचुरित्यहो जनाः ॥ १६ ॥

कोक और विकोकने जब गदा मारी तब भगवान् कल्किजीका शरीर चूर्ण होगया, तिनके हाथसे गदा छूटकर पृथ्वीपर गिरगई । लोग विस्मययुक्त नेत्रोंसे इस बातको देखने लगे ॥ १६ ॥

---

(१) प्रलयकालके समय नारायणजी जलके मध्य शेषजीपर शयन कर रहे थे । तिस काल उनकी नाभिसे एक कमल उत्पन्न हुआ कि, जिससे ब्रह्माजीने जन्म लिया । उस समय विष्णुजीके कानमेंसे मैल निकलकर गिराथा; उस मैलसे ‘ मधु ’ ‘ कैटभ ’ नामक दो दानवोंने जन्म लिया कि, जिन्होंने ब्रह्माजीके साथ युद्ध करना आरम्भ किया, परन्तु तबभी भगवान् निद्रासे नहीं उठे । ब्रह्माजी दानवोंकी वीरतासे पराजित और व्याकुल हो नारायणजीकी कृपाको चाहने लगे । ब्रह्माजीके स्तोत्र करनेसे नारायणजीकी निद्रा भंग हुई । उन्होंने इन दोनों दानवोंका प्राणसंहार करके ब्रह्माजीकी शंकाको दूर किया, अंतको इन दानवोंकी मेदसे पृथ्वी बनाई गई । मेदसे निर्मित होनेके कारण पृथ्वीका दूसरा नाम मेदिनी हुआ इत्यादि उपाख्यान पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं ।

ततः पुनः क्रुधा विष्णुर्जगज्जिष्णुर्महाभुजः ।
भल्लकेन शिरस्तस्य विकोकस्याच्छिनत्प्रभुः ॥ १७ ॥

इसके उपरान्त त्रिलोकविजयी महावीर संसारके स्वामी विष्णुजीने फिर क्रोधित हो भल्ल (१) नामक अस्त्रसे विकोकका मस्तक काटडाला ॥ १७ ॥

मृतो विकोकः कोकस्य दर्शनादुत्थितो बली ।
तद्दृष्ट्वा विस्मिता देवाः कल्किश्च परवीरहा ॥ १८ ॥

महाबलवान् विकोककी मृत्यु तो हुई परन्तु वह अपने भ्राता विकोककी दृष्टिके पडतेही मृत्युजीकी शेजपरसे उठ खडा हुआ । यह देखकर देवतालोग और शत्रुका संहार करनेवाले कल्किजी अत्यन्तही विस्मयको प्राप्त हुए ॥ १८ ॥

प्रतिकर्त्तुर्गदापाणेः कोकस्याप्यच्छिनच्छिरः ।
मृतः कोको विकोकस्य दृष्टिपातात्समुत्थितः ॥ १९ ॥

गदा हाथमें लिये कोकको, विकोकके फिर जी जानेका कारण होनेसे, कल्किजीने उसका मस्तक काटडाला, कोक मृतक हो तो गया; परन्तु विकोकके देखतेही तत्काल जीवनको प्राप्त हो उठ खडा हुआ ॥ १९ ॥

पुनस्तौ मिलितौ तेन युयुधाते महाबलौ ।
कामरूपधरौ वीरौ कालमृत्यू इवापरौ ॥ २० ॥

इसके उपरान्त अभिलाषाके अनुसार रूप धारण करनेवाले महाबलवान् कोक और विकोक दोनों फिर मिलकर दूसरे काल और मृत्युके समान कल्किजीके साथ युद्ध करने लगे ॥ २० ॥

खड्गचर्मधरौ कल्किं प्रहरन्तौ पुनः पुनः ।
कल्किः क्रुधा तयोस्तद्वद्बाणेन शिरसी हते ॥ २१ ॥

वह ढाल तलवार लेकर कल्किजीके ऊपर वारंवार चोट चलाने लगे । कल्किजीने क्रोधकरके बाणसे तिन दोनोंके मस्तककोही काटडाला ॥ २१ ॥

(१) भल्ल-प्राचीन युद्धके योग्य अस्त्र विशेष । इसका व्यवहार बाणके समान है । यादवकोषमें कहा है:-" स्नुहीदलफलो भल्लः " अर्थात् जिस बाणका फलक सेंढके पत्तेकी समान आकारवाला हो उसको भल्ल कहते हैं । यह अस्त्र धनुषमें चढाकर चलाया जाता है ।

पुनर्लग्ने समालोक्य हरिश्चिन्तापरोऽभवत् ।
विसत्त्वत्वमथालोक्य तुरगस्तावताडयत् ॥ २२ ॥

दोनोंके मस्तकको दूसरी वार लगा हुआ देखकर नारायणजीको अत्यन्तही चिन्ता हुई । फिर कल्किजीके घोडेने कोक विकोकको प्रहार करते देखकर कठिन प्रहार किया ॥ २२ ॥

कालकल्पौ दुराधर्षौ तुरगेणार्दितौ भृशम् ।
कल्केस्तं जघ्नतुर्बाणैरमर्षात्ताम्रलोचनौ ॥ २३ ॥

यमकी समान दुर्द्धर्ष कोक और विकोक कल्किजीकेघोडे करके अत्यन्त प्रहारित हो क्रोधमें भर लाल नेत्र कर तिनके ऊपर बाणोंसे प्रहार करने लगे ॥ २३ ॥

तयोर्भुजान्तरं सोऽश्वः क्रुधा समदशद्भृशम् ।
तौ तु प्रभिन्नास्थिभुजौ विशस्ताङ्गदकार्मुकौ ।
पुच्छं जगृहतुः सतेगौंपुच्छं बालकाविव ॥ २४ ॥

तिस काल घोडेनेभी क्रोधमें आय कोक और विकोककी भुजाके जडमें काटखाया कि, जिससे उनकी बाहोंकी हड्डियें चूरचूर होगईं । बाजू और धनुष टूटगया फिर जिस प्रकार बालक गायकी पूंछको पकडता है, तैसेही उन दोनों महावीरोंने घोडेकी पूंछ पकडली ॥ २४ ॥

धृतपुच्छौ मूर्च्छितौ तौ तत्क्षणात्पुनरुत्थितौ ।
पश्चात्पद्भ्यां दृढं जघ्ने तयोर्वक्षसि वज्रवत् ॥ २५ ॥

उनको पूंछ पकडता हुआ देखकर घोडेको अत्यन्त क्रोध आया और पिछाडीके पांवोंसे दृढ हो वज्रके समान उनकी छातीमें प्रचण्ड प्रहार किया ॥ २५ ॥

त्यक्तपुच्छौ मूर्च्छितौ तौ तत्क्षणात्पुनरुत्थितौ ।
पुरतः कल्किमालोक्य बभाषाते स्फुटाक्षरौ ॥ २६ ॥

मूर्च्छित होकर कोक और विकोकने पूंछको छोडदिया (और

पृथ्वीमें गिरकर) तत्काल फिर उठ बैठे, फिर तिन कल्किजीको सम्मुख देखकर तिन कोक और विकोकने स्पष्ट वाणीसे कल्किजीको युद्ध करनेके लिये पुकारा ॥ २६ ॥

ततो ब्रह्मा तमभ्येत्य कृताञ्जलिपुटः शनैः ।
प्रोवाच कल्किं नैवामू शस्त्रास्त्रैर्वधमर्हतः ॥ २७ ॥

इसी समय कल्किजीके निकट ब्रह्माजी आय हाथ जोडकर धीरे २ बोले कि, यह कोक और विकोक अस्त्र शस्त्रसे नहीं मारे जायँगे ॥ २७ ॥

कराघातादेककाले उभयोर्निर्मितो वधः ।
उभयोर्दर्शनादेव नोभयोर्मरणं क्वचित् ॥
विदित्वेति कुरुष्वात्मन्युगपच्चानयोर्वधम् ॥ २८ ॥

हे परमात्मन् ! एक समयमेंही थप्पड मारकर दोनोंका वध किया जा सकता है । इन दोनोंके मध्यमें एक जनेके देखते रहनेसे दूसरेकी मृत्यु नहीं होगी, आप इस बातको जानकर एक साथही दोनोंका नाश कीजिये ॥२८॥

इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा त्यक्तशस्त्रास्त्रवाहनः ।
तयोः प्रहरतोः स्वैरं कल्किर्दानवयोः क्रुधा ।
मुष्टिभ्यां वज्रकल्पाभ्यां बभञ्ज शिरसी तयोः ॥ २९ ॥

ब्रह्माजीके यह वचन सुनकर कल्किजीने वाहनको छोड अस्त्र शस्त्रोंको त्याग दिया । अल्प अल्प (थोडा थोडा) प्रहार करनेवाले उन दोनों दानवोंके बीचमें होकर कल्किजीने वज्रके समान दो घूंसे मारकर एकही साथ उनके मस्तकको चूर करडाला ॥ २९ ॥

तौ तत्र भग्नमास्तिष्कौ भग्नशृङ्गावगाविव ।
पेततुर्दिवि देवानां भयदौ भुवि बाधकौ ॥ ३० ॥

देवताओंके लोकमें स्थित देवताओंकोभी भयकारी, सबका अनभल करनेवाले यह दोनों दानव शिर टूट जानेसे, शिखर टूटे दो पर्वतोंके समान पृथ्वीमें गिरपडे ॥ ३० ॥

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्य्यं गन्धर्व्वाप्सरसां गणाः ।
ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्च मुनयः सिद्धचारणाः ॥
देवाश्च कुसुमासारैर्ववर्षुर्हर्षमानसाः ॥ ३१ ॥

इस अद्भुत कार्यको देखकर गन्धर्व लोग गाने लगे, अप्सराओंने नाचना आरम्भ किया, मुनिलोग स्तुति करने लगे, देवगण, सिद्धगण और चारणगण हर्षित हृदयसे फूल वर्षाने लगे ॥ ३१ ॥

दिवि दुन्दुभयो नेदुः प्रसन्नाश्चाभवन् दिशः ।
तयोर्वधप्रमुदितः कविर्दशसहस्रकान् ॥
साश्वान्महारथान्साक्षाद्दहनाद्दिव्यसायकैः ॥ ३२ ॥

कोक और विकोकका मारा जाना देखकर आनन्दित और उत्साहित हो कविने दिव्य अस्त्रोंके समूहसे घोडे और रथोंके साथ दश हजार महारथ वीरों (१) का आपही नाश किया ॥ ३२ ॥

प्राज्ञः शतसहस्राणां योधानां रणमूर्द्धनि ।
क्षयं निन्ये सुमन्त्रस्तु रथिनां पञ्चविंशतिम् ॥ ३३ ॥

---

(१) महारथकी उपाधि अत्यन्त सन्मानसूचक है। महारथकी शक्तिका परिमाण नहीं। यथा—

एको दशसहस्राणि योधयेद्यस्तु धन्विनाम् । शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च स महारथ उच्यते ॥

शस्त्र और शास्त्रमें प्रवीण जो वीरपुरुष अकेला दशहजार धनुर्धारी वीरोंको लडाता है उसको महारथ कहते हैं और भी:—

आत्मानं सारथिं चाश्वान् रक्षन्युध्येत यो नरः । स महारथसंज्ञः स्यादित्याहुर्नीतिकोविदाः॥

नीति जाननेवाले पंडित लोग कहते हैं कि, जो पुरुष अपने सारथिकी और घोडोंकी रक्षा करके युद्ध करसके तिसको महारथ कहते हैं।

रथेनैकेन यः शत्रून्सहुङ्कारो व्रजत्यलम् । महारथः स विज्ञेयो युद्धशास्त्रविशारदः ॥

युद्धशास्त्रमें विशारद जो वीर अकेले रथकी सहायतासे हुंकार करके शत्रुओंके सामने हो सकता है, उसको महारथ जानना चाहिये ।

इन तीन श्लोकोंमें महारथका वृत्तान्त लिखा है । जो लिखा है इसका विचार करनेसे महारथीकी वीरताको देख मनमें आश्चार्य होता है। (ग्रंथकार)

उस रणभूमिमें प्राज्ञने एक लक्ष लडवैय्योंको मारडाला, सुमंत्रके हाथसे भी पचीस रथी मारे गये ॥ ३३ ॥

एवमन्ये गार्ग्यभर्गविशालाद्या महारथान् ।
निजघ्नुः समरे क्रुद्धा निषादान् म्लेच्छबर्बरान् ॥ ३४ ॥

इस प्रकारसे गार्ग्य, भर्ग विशालादि वीरोंने क्रोधित होकर उस समय म्लेच्छ, बर्बर और निषादोंका संहार किया ॥ ३४ ॥

एवं विजित्य तान्सर्वान् कल्किर्भूपगणैः सह ।
शय्याकर्णैश्च भल्लाटनगरं जेतुमाययौ ॥ ३५ ॥
नानावाद्यैर्लोकसंघैर्वरास्त्रैर्नानावस्त्रैर्भूषणैर्भूषिताङ्गैः ।
नानावाहैश्चामरैर्वीज्यमानैर्यातो योद्धुं कल्किरत्युग्रसेनः ३६॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कोकविकोकादीनां वधो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

बडी भारी सेनाको साथ लेकर युद्ध करनेके लिये कल्किजी चले, तिस कालमें अनेक प्रकारके बाजोंकी ध्वनि होने लगी, अनेक प्रकारके उत्तम उत्तम अस्त्रोंके समूह अनेक प्रकारके लोग तिनके साथ साथ चले ॥ ३५ ॥ तिनके साथ अनेक प्रकारकी सवारियें आने लगीं, चारों ओरसे चामर व्यजन होना आरम्भ हुआ ॥ ३६ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां एवं कोकविकोकादीनां वधो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

तृतीयांशः ।

अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

सूत उवाच-सेनागणैः परिवृतः कल्किर्नारायणः प्रभुः ।
भल्लाटनगरं प्रायात्खड्गधृक्सप्तिवाहनः ॥ १ ॥

उग्रश्रवाजी बोले—प्रभु नारायण कल्किजी घोडेपर सवार हो खड्ग धारण कर बहुत सारी सेनाके साथ भल्लाट नगर (१) को गये ॥ १ ॥

स भल्लाटेश्वरो योगी ज्ञात्वा विष्णुं जगत्पतिम् ।
निजसेनागणैः पूर्णो योद्धुकामो हरिं ययौ ॥ २ ॥

कल्किजीको संसारका स्वामी हरि और विष्णुजीका पूर्ण अवतार जानकर परमयोगी भल्लाटका राजा संग्राम करनेका विचारकर सेनाके सहित (नगरसे बाहर) निकला ॥ २ ॥

स हर्षोत्पुलकः श्रीमान् दीर्घाङ्गः कृष्णभावनः ।
शशिध्वजो महातेजा गजायुतबलः सुधीः ॥ ३ ॥

हर्षमें भरनेसे उसके रोमाञ्च होगये, यह राजा कृष्णजीका ध्यान किया करताथा । यह बुद्धिमान् श्रीमान् बडे डील डौलवाला और महातेजवान् था । नाम इसका शशिध्वज था ॥ ३ ॥

तस्य पत्नी महादेवी विष्णुव्रतपरायणा ।
सुशान्ता स्वामिनं प्राह कल्किना योद्धुमुद्यतम् ॥ ४ ॥

इस राजा शशिध्वजकी सुशान्ता नामक भार्या महादेवी विष्णुजीके व्रतको करनेवाली थी । अपने स्वामीको कल्किजीके साथ युद्ध करनेको तैयार देख सुशान्ताने कहा ॥ ४ ॥

नाथ कान्तं जगन्नाथं सर्व्वान्तर्यामिणं प्रभुम् ।
कल्कि नारायणं साक्षात्कथं त्वं प्रहरिष्यसि ॥ ५ ॥

---

(१) ठीक नहीं कहा जासकता कि, यह नगर कहां है तोभी बोध होता है कि, सह्य पर्वतके उत्तर–पूर्वकोणमें जो शाखापर्वत इस समय षट्पुर वा षट्पुरा पहाडके नामसे विख्यात है यहींपर कहीं भल्लाट नगर होसकता है ? पश्चिम घाट पर्वतके उत्तरांशका नाम सह्यपर्वत होसकता है । इस प्रकार अनुमान करनेका एक कारण है, यह कहागया है कि, भल्लाट नगरमें शय्याकण नामक जाति वास करती है परन्तु उसको शय्याकर्ण न कहकर सह्यकर्ण कहलिया जाय तो भी ठीक है । षट्पुर वा षट्पुरापहाड सह्यपर्वतका कर्णस्वरूप है । इस कारण तहांके लोग सह्यकर्णजाति अर्थात् सह्यपर्वतका कर्णवासी जाति है ।

हे नाथ ! संसारके जो स्वामी हैं, जगत्के प्रार्थनीय सर्वान्तर्यामी प्रभु साक्षात् नारायण हैं, उन कल्किजीके ऊपर आप किस प्रकारसे प्रहार करेंगे ? ॥ ५ ॥

शशिध्वज उ०–सुशान्ते परमो धर्म्मः प्रजापतिविनिर्मितः ।
युद्धे प्रहारः सर्व्वत्र गुरौ शिष्ये हरेरिव ॥ ६ ॥

शशिध्वजने कहा–हे सुशान्ते ! पितामह ब्रह्माजीने इस प्रकार परम धर्म स्थिर कियाहै कि, संग्रामके स्थानमें नारायणजीके समान गुरुके शरीरमें वा शिष्यके शरीरमें बराबर प्रहार किया जा सकता है ॥ ६ ॥

जीवतो राजभोगः स्यान्मृतः स्वर्गे प्रमोदते ।
युद्धे जयो वा मृत्युर्वा क्षत्रियाणां सुखावहः ॥ ७ ॥

जो जीवित रहकर संग्रामभूमिसे लौट आवै तब तो अखण्डराज्यका भोग होता है और जो मृत्यु हो जाय तो स्वर्गमें आनन्दसन्दोह भोग कर सकता है, इस कारण क्षत्रियोंके लिये युद्धमें मृत्यु हो वा जय हो दोनोंही बातें परम सुखकी देनेवाली हैं ॥ ७ ॥

सुशान्तोवाच–देवत्वं भूपतित्वं वा विषयाविष्टकामिनाम् ।
उन्मदानां भवेदेव न हरेः पादसेविनाम् ॥ ८ ॥

सुशान्ता बोली–जो लोग कामी हैं, जिनके चित्त सदाही विषयमें आसक्त होरहे हैं, जो लोग विषयके मदमें मतवाले हैं, उनहीके लिये युद्धमें जय होनेपर अखण्डराज्य और पराजय होनेपर देवत्वका प्राप्त होना गिना गया है, परन्तु जो लोग नारायणजीके चरणोंकी सेवा करते हैं, उनके लिये वह कुछ हैही नहीं ॥ ८ ॥

त्वं सेवकः स चापीशस्त्वं निष्कामः स चाप्रदः ।
युवयोर्युद्धमिलनं कथं मोहाद्भविष्यति ॥ ९ ॥

आप सेवक और वह ईश्वर हैं, आप निष्काम और वह फलके दान करनेवाले नहीं हैं । ऐसी अवस्थामें जो मोहका कार्य है, तैसा दोनों जनोंका युद्ध होना किस प्रकारसे सम्भावित होसकताहै ? ॥ ९ ॥

शशिध्वज उ०—द्वन्द्वातीते यदि द्वन्द्वमीश्वरे सेवके तथा ।
देहावेशाल्लीलयैव सा सेवा स्यात्तथा मम ॥ १० ॥

राजा शशिध्वजने कहा—परम पुरुष भगवान् सुख दुःखादि द्वंद्वों (१) से परे हैं । यदि उस ईश्वर और सेवकमें देह धारण करनेके कारण द्वन्द्व हो जाय तो वह विलास लीलाका सेवारूप माना जायगा ॥ १० ॥

देहावेशादीश्वरस्य कामाद्या दैहिका गुणाः ।
मायाङ्गा यदि जायन्ते विषयाश्च न किं तथा ॥ ११ ॥

जब कि, भगवान्‌जीने मूर्ति धारण करी, तब कामादि मायाके अंश-स्वरूप शरीरके गुणोंकी परम्परा उन नारायणजीके शरीरमें आरोपित होती है, कामादिके आरोपित होनेसे तिनकी देहमें कामादिके विषय क्यों नहीं आरोपित होंगे ? ॥ ११ ॥

ब्रह्मतो ब्रह्मतेशस्य शरीरित्वे शरीरिता ।
सेवकस्याभेददृशस्त्वेवं जन्मलयोदयाः ॥ १२ ॥

जब ईश्वरमें पूर्ण स्वरूप और ब्रह्मता रहती है, तब उसको ब्रह्म कहते हैं । जब भगवान् मूर्ति ग्रहण वा शरीर धारण करते हैं, तब उनको शरीरी कहते हैं । जिस सेवककी भेददृष्टि अलग होकर अभेद ज्ञानका संचार हुआ है उसका जन्म लय और उदयभी ऐसेही होता है ॥ १२ ॥

सेव्यसेवकता विष्णोर्माया सेवेति कीर्तिता ।
द्वैताऽद्वैतस्य चेष्टैषा त्रिवर्गजनिका सताम् ॥ १३ ॥

सेव्य और सेवकभावही सेवा कही जाती है । यह केवल वैष्णवी मायाकाही कार्य है । इस द्वैताद्वैत चेष्टा करके साधुओंको त्रिवर्गकी प्राप्ति होती है ॥ १३ ॥

---

(१) सुख और दुःख, शीत और ग्रीष्मादि परस्पर विरुद्ध धर्मावलम्बी दो पदार्थोंको द्वन्द्व कहते हैं । सुख और दुःख एकपदार्थ नहीं बरन् परस्पर अत्यन्त विरुद्ध पदार्थ हैं । सुख और दुःखमें कभी समानता नहीं; इस कारण सुख और दुःख द्वन्द्व नामसे पुकारे जाते हैं । ग्रीष्ममें उष्णता, शीतमें शरदी, बस यह पदार्थ परस्पर विरुद्ध धर्मावलम्बी हैं, इसी कारण ग्रीष्म और शीतको द्वन्द्व कहाजाता है ।

अतोऽहं कल्किना योद्धुं यामि कान्ते स्वसेनया ।
त्वं तं पूजय कान्तेऽद्य कमलापतिमीश्वरम् ॥ १४ ॥

हे कान्ते ! इसी कारणसे मैं कल्किजीके साथ संग्राम करनेके अर्थ सेनाके साथ जाता हूं, हे प्रिये ! उन स्वामी नारायणजीकी तुम अब पूजा करो॥ १४॥

सुशान्तोवाच—कृतार्थाऽहं त्वया विष्णुसेवासम्मिलितात्मना ।
स्वामिन्निह परत्रापि वैष्णवी प्रथिता गतिः ॥ १५ ॥

सुशान्ता बोली—हे स्वामिन् ! आप विष्णुजीकी सेवा करके विष्णुजीमेंही लीन होगये, इससे मैं कृतार्थ होगई । क्या इस लोक और क्या परलोकमें केवल विष्णुकी पूजाके सिवाय दूसरी गति नहीं है ॥ १५ ॥

इति तस्या वल्गुवाग्भिः प्रणतायाः शशिध्वजः ।
आत्मानं वैष्णवं मेने साश्रुनेत्रो हरिं स्मरन् ॥ १६ ॥

जब सुशान्ताने विनयपूर्वक ऐसे मनोहर वचन कहे, तब नेत्रोंमें नीर भरकर महाराज शशिध्वज विष्णुजीका स्मरण करने लगे और अपनेको परम वैष्णव समझा ॥ १६ ॥

तामालिङ्ग्य प्रमुदितः शूरैर्बहुभिरावृतः ।
वदन्नाम स्मरन् रूपं वैष्णवैर्योद्धुमाययौ ॥ १७ ॥

अनन्तर राजा शशिध्वजने हर्षित हृदयसे प्यारी सुशान्ताको हृदयसे लगाय बहुतसे वीरोंके साथ हरिनाम स्मरण करते २ और युद्ध करनेके निमित्तभी वैष्णवोंको साथ ले यात्रा की ॥ १७ ॥

गत्वा तु कल्किसेनायां विद्राव्य महतीं चमूम् ।
शय्याकर्णगणैर्वीरैः सन्नद्धैरुद्यतायुधैः ॥ १८ ॥

राजा शशिध्वजने कल्किजीकी सेनामें प्रवेश करके कल्किजीकी बडी भारी सेनाको तितर बितर करदिया । तैयार हुए महावीर शय्याकर्ण लोग अस्त्र शस्त्र उठाय तिसके साथ मिलकर संग्राम करने लगे ॥ १८ ॥

शशिध्वजसुतः श्रीमान्सूर्य्यकेतुर्महाबलः ।
मरुभूपेन युयुधे वैष्णवो धन्विनां वरः ॥ १९ ॥

महाधनुषधारी, महाबलवान् परम वैष्णव शशिध्वजका पुत्र श्रीमान् सूर्यकेतु, सूर्यवंशके राजा मरुके साथ युद्ध करने लगा ॥ १९ ॥

तस्यानुजो बृहत्केतुः कान्तः कोकिलनिस्वनः ।
देवापिना स युयुधे गदायुद्धविशारदः ॥ २० ॥

सूर्यकेतुका छोटा भ्राता बृहत्केतु, अत्यन्त कमनीय मूर्तिवाला कोयलके समान मधुर ध्वनिकारी और गदायुद्धमें विशारद था । यह देवापिके साथ संग्राम करने लगा ॥ २० ॥

विशाखयूपभूपस्तु शशिध्वजनृपेण च ।
युयुधे विविधैः शस्त्रैः करिभिः परिवारितः ॥ २१ ॥

राजा विशाखयूप हाथियोंके समूहसे युक्त हो अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र ले राजा शशिध्वजके साथ युद्ध करने लगा ॥ २१ ॥

रुधिराश्वो धनुर्धारी लघुहस्तः प्रतापवान् ।
रजस्यनेन युयुधे भर्गः शान्तेन धन्विना ॥ २२ ॥

लालरंगके घोडेपर चढकर फुरतीले हाथवाला धनुषधारी प्रतापवाला भर्ग, धूरिपटलके मध्यमें धनुषधारी शान्तके साथ संग्राम करने लगा ॥ २२ ॥

शूलैः प्रासैर्गदाघातैर्बाणशक्त्यृष्टितोमरैः ।
भल्लैः खड्गैर्भुशुण्डीभिः कुन्तैः समभवद्रणः ॥ २३ ॥

इस प्रकार शूलसे, प्रास (१) से, गदासे, बाणसे, शक्तिसे, ऋष्टि, तोमर,

---

(१) प्रास–प्राचीन अस्त्रविशेष । यह अस्त्र युद्धके समयमें व्यवहार किया जाता था । शुक्रनीति पुस्तकमें प्रास नामक अस्त्रका संक्षिप्त वर्णन है । यथाः–

'प्रासः स्याच्तु चतुर्हस्तदण्डयुक्तः क्षुराननः ' (शुक्रनीति ४ अ० ७ प्रकरण, १५ श्लोक)

प्रास अस्त्रका डंडा ४ हाथका होता है, इसके मुखका आकार छुरेकी समान होता है । इस वर्णनको देखकर बर्छाका आकार ध्यानमें आता है, परन्तु यह नहीं कहा जासकता कि, बर्छाही प्रासका दूसरा नाम या कुछ रूपान्तर है ।

भल्ल, खड्ग, भुशुण्डी और कुन्त(१)अस्त्रके प्रहारसे युद्ध चलने लगा॥ २३॥

पताकाभिर्ध्वजैश्चिह्नैस्तोमरैश्छत्रचामरैः ।
प्रोद्धूतधूलिपटलैरन्धकारो महानभूत् ॥ २४ ॥

रणभूमिमें धूरि उडने लगी । ध्वज चामर और ध्वजा पताकाकी छायासे और माटी धूरिके उडनेसे संग्रामभूमिमें महान् अंधकार होगया ॥ २४ ॥

गगनेऽनुघना देवाः के वा वासं न चक्रिरे ।
गन्धर्वैः साधुसन्दर्भैर्गायनैरमृतायनैः ॥ २५ ॥

देवतालोग मेघके अन्तरमें स्थित होकर युद्धको देखने लगे, गन्धर्वलोग अमृतके समान मधुर स्वरसे गाते गाते युद्धके देखनेको आये ॥ २५ ॥

द्रष्टुं समागताः सर्व्वे लोकाः समरमद्भुतम् ।
शंखदुन्दुभिसन्नादैरास्फोटैर्बृंहितैरपि ॥ २६ ॥

समस्त लोकही उस अद्भुत संग्रामको देखनेके लिये आये, संग्रामभूमिमें शंख और नगाडोंके शब्दसे, वीरोंके ताल ठोकनेसे, हाथियोंकी चिंघाडसे २६

हेषितैर्योधनोत्कृष्टैर्लोका मूका इवाभवन् ।
रथिनो रथिभिः सार्कं पदातिश्च पदातिभिः ॥ २७ ॥

घोडोंके हिनहिनानेसे, युद्धास्त्रोंके परस्पर टकरानेसे, सब लोक मूककी समान ज्ञात होने लगे अर्थात् कोई किसीकी बातको नहीं सुनसका । रथी लोग रथियोंके साथ, पैदल पैदलोंके साथ ॥ २७ ॥

---

(१) प्रासकी समान कुन्तभी एक अस्त्र है । प्रासका डंडा चार हाथका और कुन्तका डंडा दश हाथका होता है । कुन्तका अग्रभाग हलकी अनीके नोककी समान और मूलभाग खम्भके समान होता है । शुक्रनीति पुस्तकमें लिखा है–

दशहस्तमितः कुन्तः फालाग्रः शंकुबुध्नकः ॥ (४ अध्याय, ७ प्रकरण, २१५ श्लोक)

“ कुन्तके (धारण करनेका) डंडा दश हाथ होता है । उसकी नोक (पेंड या सीता) हलके फलककी नाई और मूलभाग शंकु (कील) की समान होता है ।” कोई कोई अनुमान करके कहते हैं कि, आजकल जिसको चलितभाषामें बल्लम कहते हैं, वही तबका कुन्त है अथवा बल्लमही कुन्तका बदला हुआ रूप है । शुक्रनीति पुस्तकमें तो इतनाही लिखा है; फिर अनुमान पर निर्भर करके इसका विचार या मीमांसा करना निःसन्देह अत्यन्त युक्तिविरुद्ध है ।

हया हयैरिभाश्चेभैः समरोऽमरदानवैः।
यथाऽभवत्स तु घनो यमराष्ट्रविवर्धनः॥ २८॥

घुडसवार घुडसवारोंके साथ संग्राम करने लगे। पहले जिस प्रकार देवासुर संग्राम हुआथा, वैसेही यह युद्ध यमराजके यहांकी प्रजा संख्याको बढाने लगा॥ २८॥

शशिध्वजचमूनाथैः कल्किसेनाधिपैः सह।
निपेतुः सैनिका भूमौ छिन्नबाह्वंघ्रिकन्धराः॥ २९॥

शशिध्वज सेनापति लोग कल्किजीकी सेनाके पति व सिपाही लोग, हथकटे, चरणकटे और शिरकटे होकर पृथ्वीपर गिरने लगे॥ २९॥

धावन्तोऽतिब्रुवन्तश्च विकुर्व्वन्तोऽसृगुक्षिताः।
उपर्य्युपरि संछन्ना गजाश्वरथमर्दिताः॥ ३०॥

कोई कोई घायल होकर भाग रहा है, कोई कोई चिल्लाता है, कोई कोई विकृत स्वरसे आर्त्तनाद करता है, किसी किसीका सब अंग रुधिरकी धारसे भीग रही है, कोई कोई एकके ऊपर एक गिरकर पृथ्वीको ढके हुए हैं, कोई कोई हाथीके पांवसे, कोई घोडेके पांवसे, कोई रथके पहियेके नीचे कुचल रहे हैं॥ ३०॥

निपेतुः प्रधने वीराः कोटिकोटिसहस्रशः।
भूतेशानन्दसन्दोहाः स्रवन्तो रुधिरोदकम्॥ ३१॥

इस भांति इस संग्राममें सहस्र सहस्र कोटि कोटि वीर पुरुष गिरे। संग्रामभूमिमें रुधिरकी नदी बहने लगी। रुधिरकी नदीका यह प्रवाह पिशाच, राक्षस, शृगाल, गृध्रादि प्राणियोंका आनन्दको देनेवाले हुआ॥ ३१॥

उष्णीषहंसाः संछिन्नगजरोधोरथप्लवाः।
करोरुमीनाभरणमसिकाञ्चनवालुकाः॥ ३२॥

इस रुधिरके प्रवाहमें जो पगडियें गिरीथीं, वह हंसोंकी समान दिखाई देने लगीं, गिरेहुए हाथी टापुओंके समान जानपडे, रणसमूह नावसमूहकी समान दिखाई देने लगे, कटेहुए हाथ कटेहुए पांव मच्छ समूहकी समान दिखाई देने लगे, खड्ग सुवर्णकी रेतीके समान ज्ञात हुए॥ ३२॥

एवं प्रवृत्ताः संग्रामे नद्यः सद्योऽतिदारुणाः ।
सूर्य्यकेतुस्तु मरुणा सहितो युयुधे बली ॥ ३३ ॥

इस प्रकार तत्कालही संग्रामभूमिमें अतिदारुण नदी उत्पन्न हुई । बलवान् सूर्यकेतु मरुके साथ संग्राम करने लगा ॥ ३३ ॥

कालकल्पो दुराधर्षो मरुं बाणैरताडयत् ।
मरुस्तु तत्र दशभिर्मार्गणैरार्दयद्भृशम् ॥ ३४ ॥

कालके समान दुर्द्धर्ष सूर्यकेतुने बाणोंसे मरुको घायल किया, मरुने भी दश बाणोंसे सूर्यकेतुको अत्यन्त विद्ध किया ॥ ३४ ॥

मरुबाणाहतो वीरः सूर्य्यकेतुरमर्षितः ।
जघान तुरगान्कोपात्पादोद्घातेन तद्रथम् ॥ ३५ ॥

वीर सूर्यकेतु मरुके बाणोंसे घायल हुआ और इसको क्रोध आगया तब इसने बडे क्रोधसे मरुके समस्त घोडोंका संहार किया और लात मार तिसका रथ ॥ ३५ ॥

चूर्णयित्वाऽथ तेनापि तस्य वक्षस्यताडयत् ।
गदाघातेन तेनापि मरुर्मूर्च्छामवाप ह ॥ ३६ ॥

चूर्ण करडाला । फिर गदासे उसकी छातीमें दारुण आघात किया । तिससे मरु मूर्च्छित होकर गिरपडा ॥ ३६ ॥

सारथिस्तमपोवाह रथेनान्येन धर्म्मवित् ।
बृहत्केतुश्च देवापिं बाणैः प्राच्छादयद्बली ॥ ३७ ॥

धर्मका जाननेवाला सारथि अपने प्रभु मरुको और एक रथमें उठाकर लेगया । बाणोंके समूहसे बलवान् बृहत्केतुने देवापिको ढकदिया ॥ ३७ ॥

धनुर्विकृष्य तरसा नीहारेण यथा रविम् ।
स तु बाणमयं वर्षं परिवार्य्य निजायुधैः ॥ ३८ ॥

जिस प्रकार सूर्य कुहरेसे ढक जाता है, तैसेही बाणोंसे ढके हुए देवापिने

तत्काल धनुष ग्रहण करके अपने बाणोंके वर्षण करनेसे शत्रुकी बाणधाराका निवारण किया ॥ ३८ ॥

बृहत्केतुं दृढं जघ्ने कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ।
भिन्नं शूलमथालोक्य धनुर्गृह्य पतत्रिभिः ॥ ३९ ॥

शिलापर शान लगे और तीक्ष्ण बाणोंसे जब अपने शूलतकको टूटा हुआ देखा, तब उसने फिर धनुष ग्रहण करके तिसमें (बाण चढाये) ॥ ३९ ॥

शितधारैः स्वर्णपुंखैर्गार्द्धपत्रैरयोमुखैः ।
देवापिमाशुगैर्जघ्ने बृहत्केतुः ससैनिकम् ॥ ४० ॥

सुवर्णखचित, लोहेके मुखवाले गिद्धोंके पंखोंसे युक्त तीक्ष्ण बाण-जालको वर्षायकर देवापिपर और उसकी सेनाके ऊपर प्रहार करना आरंभ किया ॥ ४० ॥

देवापिस्तद्धनुर्दिव्यं चिच्छेद निशितैः शरैः ।
छिन्नधन्वा बृहत्केतुः खड्गपाणिर्जिघांसया ॥ ४१ ॥

देवापिने भी तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर बृहत्केतुका वह दिव्य धनुष काट डाला, जब बृहत्केतुका धनुष कटा, तब उसने देवापिका वध करनेके अभि-प्रायसे खड्ग हाथमें लिया ॥ ४१ ॥

देवापेः सारथिं साश्वं जघ्ने शूरो महामृधे ।
स देवापिर्धनुस्त्यक्त्वा तलेनाहत्य तं रिपुम् ॥ ४२ ॥

फिर उस वीरने उस महासंग्रामके बीच देवापिके घोडेको मारकर सारथिका वध किया, तब देवापिने धनुष छोड उस शत्रुपर एक चपत चलाया ॥ ४२ ॥

भुजयोरन्तरानीय निष्पिपेष स निर्दयः ।
तं द्व्यष्टवर्षं निष्क्रान्तं मूर्च्छितं शत्रुणाऽर्दितम् ॥ ४३ ॥

तिसको दोनों भुजाओंमें दबाय निर्दयी हो पीसना आरम्भ किया । तिस काल षोडश वर्षका बृहत्केतु शत्रुकरके पीडित हो मूर्च्छित और मृत-कके समान होगया ॥ ४३ ॥

अनुजं वीक्ष्य देवापिमूर्ध्नि सूर्य्यध्वजोऽवधीत् ।
मुष्टिना वज्रपातेन सोऽपतन्मूर्च्छितो भुवि ॥
मूर्च्छितस्य रिपुः क्रोधात्सेनागणमताडयत् ॥ ४४ ॥

अपने छोटे भ्राताकी यह दशा देखकर राजा सूर्यकेतुने देवापिके शिरपर एक वज्रके समान घूंसा मारा तिसके प्रहारसे देवापिभी मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिरपडा । देवापिके शत्रु सूर्यकेतुने देवापिको मूर्च्छित निहार क्रोधमें भरकर उसकी सेनाके ऊपर प्रहार करना आरम्भ किया ॥ ४४ ॥

शशिध्वजः सर्व्वजगन्निवासं कल्किं पुरस्तादभिसूर्य्यवर्च्चसम् ।
श्यामं पिशङ्गाम्बरमम्बुजेक्षणं बृहद्भुजं चारुकिरीटभूषणम् ॥ ४५ ॥

इस ओर राजा शशिध्वजने संग्रामभूमिके मध्य सामनेही कल्किजीको देखा । यह कल्किजी सूर्यके समान तेजस्वी हैं, केवल यही समस्त ब्रह्माण्डके आधार हैं, इनके दोनों नेत्र कमलके समान हैं, यह पीताम्बर धारण किये हुए हैं । इनकी बाँहें बडी हैं । इनका मस्तक मनोहर किरीटसे शोभायमान होरहा है ॥ ४५ ॥

नानामणिव्रातचिताङ्गशोभया निरस्तलोकेक्षणहृत्तमोमयम् ।
विशाखयूपादिभिरावृतं प्रभुं ददर्श धर्मेण कृतेन पूजितम् ॥ ४६ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे शशिध्वज-
कल्किसेनयोर्युद्धं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

बहुत प्रकारके मणिसमूहोंसे विभूषित शोभा करके यह लोगोंके नेत्र और हृदयके अन्धकारको लीन करते हैं । विशाखयूप आदि राजालोग इनके चारों ओर खडे हुए हैं । सत्य और धर्म उन सनातन भगवान्की पूजा कर रहे हैं ॥ ४६ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे बलदेवप्रसादमिश्रकृत-
भाषाटीकायां शशिध्वजकल्किसेनयोर्युद्धं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

तृतीयांशः ।

नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

सूत उवाच-हृदि ध्यानास्पदं रूपं कल्केर्दृष्ट्वा शशिध्वजः ।
पूर्णं खड्गधरं चारुतुरगारूढमब्रवीत् ॥ १ ॥

उग्रश्रवा बोले-हृदयमें ध्यान करनेके योग्य, मनोहर घोडेपर चढेहुए, खड्ग धारण किये, पूर्ण अवतार कल्किजीका रूप देखकर राजा शशिध्वज कहने लगा ॥ १ ॥

धनुर्बाणधरं चारुविभूषणवराङ्गकम् ।
पापतापविनाशार्थमुद्यतं जगतां परम् ॥ २ ॥

क्योंकि यह जगत्पति कल्किजी, धनुर्बाण धारण करके मनोहर आभूषणोंसे भूषित हो पाप तापका नाश करनेके लिये तैयार हुए हैं ॥ २ ॥

प्राह तं परमात्मानं हृष्टरोमा शशिध्वजः ।
एह्येहि पुण्डरीकाक्ष प्रहारं कुरु मे हृदि ॥ ३ ॥

रोमाञ्चित शरीरवाला हो राजा शशिध्वजने उन परमात्मासे कहा-हे पुण्डरीकाक्ष ! आगमन करो । हमारे हृदयमें प्रहार करो ॥ ३ ॥

अथवाऽऽत्मन् बाणभिया तमोऽन्धे हृदि मे विश ।
निर्गुणस्य गुणज्ञत्वमद्वैतस्यास्त्रताडनम् ॥ ४ ॥

अथवा हे परमात्मन् ! हमारे बाणोंके गिरनेके डरसे तमके समूह करके अन्धे मेरे हृदयमें प्रवेश करके छिप रहो । जो निर्गुण होकरभी गुणको जानते हैं । जो अद्वैत होकरभी अस्त्रप्रहार करनेको तैयार हुए हैं ॥ ४ ॥

निष्कामस्य जयोद्योगसहायं यस्य सैनिकम् ।
लोकाः पश्यन्तु युद्धे मे द्वैरथे परमात्मनः ॥ ५ ॥

जिन्होंने निष्काम होकरभी जयके उद्योगके निमित्त सेनाका संहार किया है उसी परमात्माके साथ द्वैरथ युद्ध करताहूं सबहीं दर्शन करें ॥ ५ ॥

परबुद्धिर्यदि दृढं प्रहर्त्ता विभवे त्वयि ।
शिवविष्णवोर्भेदकृतां लोकं यास्यामि संयुगे ॥ ६ ॥

तुम विभु हो, मैं तुमपर दृढ प्रहार करूंगा। परन्तु प्रहार करनेके समय जो मैं आपको दूसरा (पर अपनेसे अलग) समझूं तो मुझको वह लोक प्राप्त हो कि, जो लोक शिव और विष्णुमें भेद समझनेवालोंको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

इति राज्ञो वचः श्रुत्वा अक्रोधः क्रुद्धवद्विभुः ।
बाणैरताडयत्संख्ये धृतायुधमरिन्दमम् ॥ ७ ॥

अस्त्रधारी, शत्रु सन्तापकारी राजा शशिध्वजके इन वचनोंको सुनकर विभु कल्किजीका क्रोधरहित होकरभी क्रोधितके समान आकार देखा और उस संग्रामभूमिमें बाणोंसे तिनपर प्रहार करने लगा ॥ ७ ॥

शशिध्वजस्तत्प्रहारमगणय्य वरायुधैः ।
तं जघ्ने बाणवर्षेण धाराभिरिव पर्वतम् ॥ ८ ॥

राजा शशिध्वजने उस प्रहारको प्रहारही न समझा वरन् मेघ जिस प्रकार पर्वतके ऊपर जल वर्षाता है तैसेही वह उनपर अनेक प्रकारके अस्त्र वर्षाने लगा८

तद्बाणवर्षभिन्नान्तः कल्किः परमकोपनः ।
दिव्यैः शस्त्रास्त्रसंघातैस्तयोर्युद्धमवर्त्तत ॥ ९ ॥

उन बाणों करके शरीर छिन्नभिन्न होनेके कारण कल्किजी अपार क्रोधित हुए । फिर दिव्यास्त्रोंसे उन दोनोंका महायुद्ध होने लगा ॥ ९ ॥

ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रैर्वायव्यस्य च पार्वतैः ।
आग्नेयस्य च पार्ज्जन्यैः पन्नगस्य च गारुडैः ॥ १० ॥

ब्रह्मास्त्रसे ब्रह्मास्त्र, पर्वतास्त्रसे वायव्य अस्त्र, मेघास्त्रसे आग्नेय अस्त्र और गारुडास्त्रसे पन्नगास्त्र (खंडित होने लगे) (१) ॥ १० ॥

---

(१) पन्नगास्त्र–देवलब्ध अस्त्रविशेष । इन अस्त्रोंका मंत्र उच्चारण करके प्रयोग और संहार किया जाता है । संस्कृत साहित्यमें इन अस्त्रोंका वर्णन पाया जाता है। रामायणके युद्ध-काण्डमें और महाभारतके किसी किसी पर्वमें इन दैवास्त्रोंका वर्णन है। वायव्य अस्त्रके प्रयोग करनेसे प्रबल वायु चलने लगती है और वह शत्रुको या निशानेको उडाकर लेजाती है । मेघास्त्रका प्रयोग करनेसे मेघ, बिजली, वज्रघात और मूसलधारसे वर्षा होती है, शत्रुगण मरते हैं। आग्नेयास्त्रका प्रयोग करनेसे भयंकर अग्नि अतिवेगसे जल उठती है, उस अग्निकी कराल ज्वालासे त्रिलोकीके भस्म होनेका डर रहता है, जब कोई आग्नेयास्त्रका प्रयोग करता तो दूसरा मेघास्त्र चलाता, वृष्टिधारासे आग्नेयास्त्र विफल हो जाताथा। पन्नगास्त्रके प्रयोग करनेसे विसियर सर्प उत्पन्न हो जातेथे, उनके डसनेसे शत्रुगण मरतेथे अथवा गारुडास्त्रका प्रयोग करनेसे पन्नगास्त्र विफल होता था । गारुडास्त्रके प्रयोग करनेसे शत शत गरुड आयकर सर्पोंका भक्षण किया करतेथे । पुराणोंमें इस प्रकारसे अस्त्रशस्त्रोंका वृत्तान्त पाया जाता है । (ग्रंथकार)

एवं नानाविधैरस्त्रैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
लोकाः सपालाः संत्रस्ता युगान्तमिव मेनिरे ॥ ११ ॥

इस प्रकारसे परस्पर कल्किजी और राजा शशिध्वज अनेक प्रकारके दिव्यास्त्रोंसे प्रहार करने लगे । लोग और लोकपाल सबही महाभीत हुए, वह मनमें समझने लगे कि, आज प्रलयका समय आपहुँचा है ॥ ११ ॥

देवा बाणाग्निसंत्रस्ता अगमन् खगमाः किल ।
ततोऽतिवितथोद्योगौ वासुदेवशशिध्वजौ ॥ १२ ॥

जो देवता लोग युद्धको देखनेके लिये आकाशके मार्गसे आयेथे, वह बाणोंकी आगसे भीत होने लगे । इस प्रकार कल्किजी और राजा शशिध्वज दोनों देवास्त्रका प्रयोग विफल होते देखकर ॥ १२ ॥

निरस्त्रौ बाहुयुद्धेन युयुधाते परस्परम् ।
पदाघातैस्तलाघातैर्मुष्टिप्रहरणैस्तथा ॥ १३ ॥

अस्त्र छोड परस्पर बाहुयुद्ध करने लगे । लात मारकर, थप्पड मारकर, घूंसा मारकर (दोनोंका) संग्राम होने लगा ॥ १३ ॥

नियुद्धकुशलौ वीरौ मुमुदाते परस्परम् ।
वराहोद्धृतशब्देन तं तलेनाऽहनद्धरिः ॥ १४ ॥

दोनोंही वीर और दोनोंही युद्ध करनेमें भली भांति कुशल हैं,इस कारण परस्पर युद्धकी चतुरता देखकर प्रसन्न हुए । सृष्टिके आरंभकालमें जब वराहजीने पृथ्वीका उद्धार किया, तब जैसा शब्द हुआ था; वैसेही महाशब्दसे कल्किजीने चपत मारकर प्रहार किया ॥ १४ ॥

स मूर्च्छितो नृपः कोपात्समुत्थाय च तत्क्षणात् ।
मुष्टिभ्यां वज्रकल्पाभ्यामवधीत्कल्किमोजसा ॥
स कल्किस्तत्प्रहारेण पपात भुवि मूर्च्छितः ॥ १५ ॥

राजा शशिध्वज मूर्च्छित होगया और तत्काल उठ क्रोधमें भर बलपूर्वक वज्रके समान घूंसा कल्किजीके मारा, उस प्रहारसे मूर्च्छित होकर कल्किजी पृथ्वीमें गिरपडे ॥ १५ ॥

धर्म्मः कृतं च तं दृष्ट्वा मूर्च्छितं जगदीश्वरम् ।
समागतौ तमानेतुं कक्षे तौ जगृहे नृपः ॥ १६ ॥

जगदीश्वर कल्किजीको मूर्च्छित देखकर उनको लेजानेके लिये धर्म और सत्ययुग वहांपर आये, राजा शशिध्वजने धर्म और सत्ययुगको दो कक्षाओंमें लिया ॥ १६ ॥

कल्किं वक्षस्युपादाय लब्धार्थः प्रययौ गृहम् ।
युद्धे नृपाणामन्येषां पुत्रौ दृष्ट्वा सुदुर्ज्जयौ ॥ १७ ॥

फिर वह कल्किजीको गोदमें उठाय कृतकृत्य हो अपने गृहकी ओर चलागया और विचारने लगा कि, और कोई राजा मेरे दोनों पुत्रोंको संग्राममें पराजित नहीं कर सकेगा ॥ १७ ॥

कल्किं सुराधिपपतिं प्रधने विजित्य
धर्म्मं कृतं च निजकक्षयुगे निधाय ।
हर्षोल्लसद्धृदय उत्पुलकः प्रमाथी
गत्वा गृहं हरिगृहे ददृशे सुशान्ताम् ॥ १८ ॥

इस प्रकारसे राजा शशिध्वज देवताओंके भी स्वामी कल्किजीको संग्राममें पराजित कर धर्म और सत्ययुग दोनोंको कांखमें ग्रहण कर हर्षमें भर प्रमुदितहृदय और पुलकायमान शरीरसे सेनाके समूहको मर्दन व उच्छिन्न कर अपने गृहको गया और देखा कि, रानी सुशान्ता नारायणजीके गृहमें विराजमान है ॥ १८ ॥

दृष्ट्वा तस्याः सुललितमुखं वैष्णवीनां च मध्ये
गायन्तीनां हरिगुणकथास्तामथ प्राह राजा ।
देवादीनां विनयवचसा शम्भले जन्मना वा
विद्यालाभं परिणयविधिं म्लेच्छपाखण्डनाशम् ॥ १९ ॥

उसके चारों ओर वैष्णवियें बैठी हुई नारायणजीके गुणोंकी कथा गायनकर रही हैं। सुशान्ताका ललित वदनकमल देखकर राजाने कहा, जिन्होंने देवताओंके विमल वचन कहनेसे शम्भलग्राममें जन्म ग्रहण किया

है, (वही यह आये हैं) इन्होंने इस इस प्रकारसे विद्या पाई है, इस इस प्रकारसे विवाह किया तथा पाखण्डी और म्लेच्छोंको उजाड किया है ॥ १९ ॥

कल्किः स्वयं हृदि ममायमिहागतोऽद्धा मूर्च्छाच्छलेन तव सेवनमीक्षणार्थम् । धर्म्मं कृतं च मम कक्षयुगे सुशान्ते कान्ते विलोकय समर्च्चय संविधेहि ॥ २० ॥

हे सुशान्ते ! जो कल्किजी मेरे हृदयमें रहते हैं वह इस समय तुम्हारी भक्ति देखनेके निमित्त मायाका अवलम्बन करके मूर्च्छाके छल (मिस) से यहींपर आये हैं । हे कान्ते ! यह देखो धर्म और सत्ययुग हमारी दोनों कक्षाओंमें स्थित हैं । तुम इनकी पूजा करो ॥ २० ॥

इति नृपवचसा विनोदपूर्णा हरिकृतधर्म्मयुतं प्रणम्य नाथम् । सह निजसखिभिर्ननर्त्त रामा हरिगुणकीर्त्तनवर्त्तना विलज्जा ॥ २१ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे धर्मकल्किकृतानामानयनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

राजा शशिध्वजके ऐसे वचन सुनकर सुशान्ता अत्यन्त प्रसन्न हुई । शशिध्वजकी छातीमें नारायण और दोनों कक्षाओंमें सत्ययुग और धर्म थे, तिनको प्रणाम करके रानी सुशान्ता हरिनाम कीर्त्तन करने लगी । क्रमसे उसकी लाज दूर होगई । वह और उसकी सखियें (नारायणजीके प्रेममें विह्वल हो) नृत्य (१) करने लगीं ॥ २१ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे बलदेव० भाषाटीकायां धर्मकल्किकृतानामानयनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

(१) हाव और भावव्यञ्जक अंगविक्षेप चेष्टाका नाम नृत्य है । साहित्यशास्त्रमें नृत्यका वर्णन पाया जाता है । बहुत दिनोंसे भारतवर्षमें नृत्यकी रीति चली आती है । संगीत-पारिजात नामक संस्कृत संगीतपुस्तकमें कहा है । यथाः—

ब्रह्मणोऽधीत्य भरतः संगीतं मार्गसंज्ञितम् । अप्सरोभिश्च गन्धर्वैः शम्भोरग्रे प्रयुक्तवान् ॥
ततोऽपि ताण्डवं ज्ञात्वा लास्यं ज्ञात्वोमयोदितम् । तत्सर्वं शिष्यसंघेभ्यः प्रोक्तवान् भरतो मुनिः ॥
(संगीत-पारिजात, २२।२३)

भरतमुनिने ब्रह्माजीके पास संगीतको सीखकर अप्सरा व गन्धर्वोंके द्वारा तिसका महादेवजीके सामने (अभिनय) किया । फिर महादेवजीसे ताण्डव और पार्वतीसे लास्यको-

तृतीयांशः ।

दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

सुशान्तो०–जय हरेऽमराधीशसेवितं तव पदाम्बुजं भूरिभूषणम् ।
कुरु ममाग्रतः साधुसत्कृतं त्यज महामते मोहमात्मनः॥१॥

–सिखकर सब शिष्योंको यह विषय सिखाया । संस्कृतनाटकशास्त्र कहता है:–

देवरुच्या प्रतीतो यस्तालमानरसाश्रयः । सविलासोऽङ्गविक्षेपो नृत्यमित्युच्यते बुधैः ॥
(संगीतदामोदर)

ताल, मान और रसाश्रय, देवताओंके रुचिसंगत, सविलास अंगविक्षेपको पंडितलोग नृत्य कहते हैं । ताण्डव और लास्य दो प्रकारका नृत्य है । फिर ताण्डवभी दो प्रकारके हैं–पेवालि और बहुरूप । लास्यकीभी दो श्रेणी हैं । छुरित और यौवत यह दो प्रकारके लास्य हैं ।
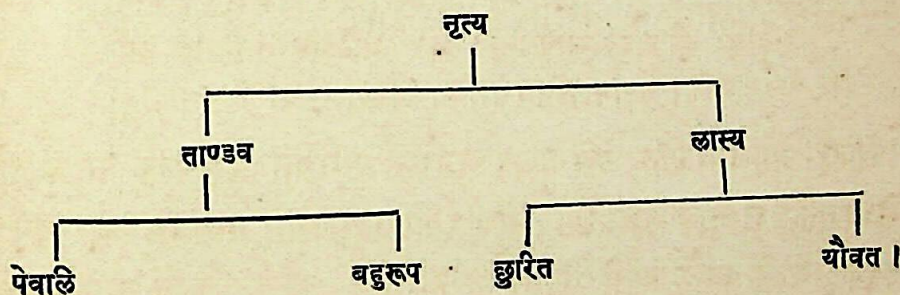
यह नृत्यका विभाग है । (संगीतदामोदरमें कहा है:–)

ताण्डवं च तथा लास्यं द्विविधं नृत्यमुच्यते । पेवलिर्बहुरूपं च ताण्डवं द्विविधं मतम् ॥
अंगविक्षेपबाहुल्यं तथाऽभिनयशून्यता । यत्र सा पेवलिस्तस्याः संगादेशीति लोकतः ॥
छेदनं भेदनं यत्र बहुरूपा मुखावली । ताण्डवं बहुरूपं तद्वारुणागलमुद्धतम् ।
छुरितं यौवतं चेति लास्यं द्विविधमुच्यते । यत्राभिनयाद्यैर्भावै रसैराश्लेषचुम्बनैः ॥
नायिकानायकौ रङ्गे नृत्यतश्छुरितं हि तत् । मधुरं बद्धलीलाभिर्नर्टीभिर्यत्र नृत्यते ॥
वशीकरणविद्याभं तल्लास्यं यौवतं मतम् ॥

इस प्रकार कार्यविशेषसे नृत्यके विशेष नाम हुए । इनके सिवाय नृत्यके औरभी अनेक भेद हैं, बहुतायतके भयसे यहांपर न लिखे । संगीतदामोदरमें कहा है:–

गेयादुत्तिष्ठते वाद्यं वाद्यादुत्तिष्ठते लयः । लयतालसमारब्धं ततो नृत्यं प्रवर्त्तते ॥
(संगीतदामोदर)

गीतसे बाजेकी उत्पात्ति है, बाजेसे लयकी उत्पात्ति है, इसके उपरान्त लय और तालके आरम्भमें नृत्य होता है ।

सुशान्ता बोली-हरे जय हो ! अपने ऊपरकी मोहकी आच्छन्नताको छोडो. हे महामते! साधु लोगोंकरके और इन्द्र करके सेवित अनेक प्रकारके भूषणोंसे भूषित यह तुम अपने चरणकमल हमारे सन्मुख स्थापन करो॥ १॥

तव वपुर्जगद्रूपसम्पदा विरचितं सतां मानसे स्थितम् ।
रतिपतेर्मनोमोहदायकं कुरु विचेष्टितं कामलम्पटम् ॥ २ ॥

तुम्हारा यह शरीर संसारकी श्रेष्ठरूप सम्पत्तिसे बनाहै । तुम्हारा यह रूप साधुओंके हृदयमें जागरहाहै । तुम्हारे इस रूपका दर्शन करनेसे कामदेवके मनमें भी मोह होता है, इस समय जिससे हमारी मनोकामना पूर्ण हो सो आप करें ॥ २ ॥

तव यशो जगच्छोकनाशनं मृदुकथामृतप्रीतिदायकम् ।
स्मितसुधोक्षितं चन्द्रवन्मुखं तव करोत्वलं लोकमङ्गलम् ॥ ३ ॥

तुम्हारे यशका गान श्रवण करनेसे जगत्का शोक दूर होताहै । मधुर वचनरूप अमृत वर्षाकर तुम्हारा यह चन्द्रमुख सबको प्रसन्न करताहै। तुम्हारा यह मुख मुस्कानरूपी अमृतसे प्रवाहित है । हे भगवन् ! तुम्हारा वदनकमल संसारका मंगलविधान करे ॥ ३ ॥

मम पतिस्त्वयं सर्वदुर्जयो यदि तवाप्रियं कर्म्मणाऽऽचरेत् ।
जहि तदात्मनः शत्रुमुद्यतं कुरु कृपां न चेदीदृगीश्वरः ॥ ४ ॥

कोई भी हमारे पतिको पराजित नहीं कर सकाहै, जो इन्होंने किसी कार्यको करके आपको अप्रसन्न कियाहो तो तुम इस शत्रुभावको छोडकर कृपा करो, नहीं तो लोग तुमको कृपासागर परमेश्वर क्यों कहेंगे ॥ ४ ॥

महदहंयुतं पञ्चमात्रया प्रकृतिजायया निर्म्मितं वपुः ।
तव निरीक्षणाल्लीलया जगत्स्थितिलयोदयं ब्रह्मकल्पितम् ॥५॥

प्रकृति तुम्हारी भार्या है, सो महत्तत्त्व और अहंकारतत्त्व और पंचतन्मात्रा आदि (उपादान) से शरीरको निर्माण करतीहै । तुम्हारे पलक

मारने और खोलनेसे इस (१) ब्रह्मकल्पित संसारमें सृष्टि, स्थिति और प्रलय होती है ॥ ५ ॥

भूवियन्मरुद्वारितेजसां राशिभिः शरीरेन्द्रियाश्रितैः ।
त्रिगुणया स्वया मायया विभो कुरु कृपां भवत्सेवनार्थिनाम्॥६॥

हे देव ! क्षिति, जल, तेज, पवन और आकाश यह पंचभूत देहके और इन्द्रियोंके आश्रय हैं; तुम उसही भूतपंचक और त्रिगुणमयी अपनी मायासे अपने भक्तोंपर कृपाकटाक्ष करो ॥ ६ ॥

तव गुणालयं नाम पावनं कलिमलापहं कीर्त्तयन्ति ये ।
भवभयक्षयं तापतापिता मुहुरहो जनाः संसरन्ति नो ॥ ७॥

हे भगवन् ! तुम्हारे नामके गुणसे कलिकालके पाप ढेर दूर हो जाते हैं। अनंत गुणोंके स्थान भवभयभंजन तुम्हारे पवित्र नामको जो लोग संसारके पापतापसे जर्जर होकर स्मरण करते हैं, फिर उनका जन्म नहीं होता॥७॥

तव जन्नुः सतां मानवर्द्धनं निजकुलक्षयं देवपालकम् ।
कृतयुगार्पकं धर्म्मपूरकं कलिकुलान्तकं शन्तनोतु मे ॥८॥

तुम्हारे अवतार लेनेसे साधुओंका मान बढता है, ब्राह्मणोंकी लक्ष्मी बढती है, देवताओंका (२) पालन होता है, सत्ययुगको फिर अधिकारकी प्राप्ति होती है, धर्मकी वृद्धि और कलिकुलका संहार होता है। इस समय तुम्हारे इस अवतारसे हमारा मंगल हो ॥ ८ ॥

मम गृहं पतिपुत्रनप्तृकं गजरथैर्ध्वजैश्चामरैर्धनैः ।
मणिवरासनं सत्कृतिं विना तव पदाब्जयोः शोभयन्ति किम्॥९॥

---

(१) ब्रह्म सत्य, जगन्मिथ्या; यही वेदान्तका प्रतिपाद्य है । वेदान्ती लोग कहते हैं कि, यह प्रत्यक्ष परिदृश्यमान जगत् ब्रह्मकल्पित हुआ। यह अविद्याके प्रभावसे सत्यस्वरूपसा जान पडता है, परन्तु वास्तविक सत्य नहीं है ।

(२) याग यज्ञ होनेपर देवताओंको हव्य मिलता है। जब यज्ञादि न होते तब देवता लोग अतृप्त रहा करते थे। इस समय यज्ञानुष्ठान होनेसे देवता लोगोंका पालन होने लगा; यह तात्पर्य है ।

हमारे गृहमें हमारे पति, पुत्र, पौत्र, हाथी, रथ, ध्वज, चामर, ऐश्वर्य, मणिमय आसनादि सबही विद्यमान हैं, परन्तु तुम्हारे चरणकमलकी पूजाके विना इन सबकी कुछभी शोभा नहीं है ॥ ९ ॥

तव जगद्वपुः सुन्दरस्मितं मुखमनिन्दितं सुन्दरारवम् ।
यदि न मे प्रियं वल्गुचेष्टितं परिकरोत्यहो मृत्युरस्त्विह ॥ १० ॥

हे जगदात्मन् ! सुन्दर मुस्कानसे शोभायमान सर्वाङ्ग सुन्दर मनोहर वाक्यविभूषित रमणिक चेष्टासे युक्त आपका यह मुख जो हमारा प्रिय-कार्य न करे, तो अभी हमारी मृत्यु हो ॥ १० ॥

हयचरभयहरकरहरशरणखरतरवरशरदशबलमदन ।
जयहतपरभरभववरनशनशशधरशतसमरसभरवदन ॥ ११ ॥

तुम सबके भयको दूर करते हुए घोडेपर चढकर विचरण करते हो, हे देव ! तुम्हारे पैने बाणोंके प्रहारसे बहुतसे वीरपुरुष मृतक हुए हैं; जो बलवान् लडवैय्ये संग्राममें मारे गये हैं, तुम उनका प्रतिपालन करते हो । तुम्हारे रसदार वदनमण्डलपर शत शत चन्द्रमाओंकी कान्ति विराजमान है । महादेव और ब्रह्माजी तुम्हारे आश्रयकी भीख चाहते हैं । हे देव ! तुम निःसन्देह सनातन पूर्णब्रह्म हो ॥ ११ ॥

इति तस्याः सुशान्ताया गीतेन परितोषितः ।
तत्तस्थौ रणशय्यायाः कल्किर्युद्धस्थवीरवत् ॥ १२ ॥

अनन्तर कल्किजी इस प्रकार सुशान्ताके गीतसे संतुष्ट हो संग्राममें स्थित हुए वीरकी समान रणसेजसे उठे ॥ १२ ॥

सुशान्तां पुरतो दृष्ट्वा कृतं वामे तु दक्षिणे ।
धर्मं शशिध्वजं पश्चात्प्राहेति व्रीडिताननः ॥ १३ ॥

उन्होंने सन्मुख सुशान्ताको, बायें सत्ययुगको, दाहिने धर्मको और पीछे राजा शशिध्वजको देखकर लाजसे झुके हुए मुख करके कहा ॥ १३ ॥

का त्वं पद्मपलाशाक्षि मम सेवार्थमुद्यता ।
कान्ते शशिध्वजः शूरो मम पश्चादुपस्थितः ॥ १४ ॥

अयि पद्मपलाशाक्षि ! तुम कौन हो ? किस कारण हमारी सेवा करनेके लिये तैय्यार हुईहो ? यह महावीर शशिध्वज किस कारण हमारे पीछे आये हैं ? ॥ १४ ॥

हे धर्म्म हे कृतयुग कथमत्रागता वयम् ।
रणाङ्गणं विहायास्याः शत्रोरन्तः पुरे वद ॥ १५ ॥

हे धर्म ! हे कृतयुग ! कहो कि, हमलोग रणभूमिको छोडकर किस निमित्तसे शत्रुके अन्तःपुरमें आये ॥ १५ ॥

शत्रुपत्न्यः कथं साधु सेवन्ते मामरिं मुदा ।
शशिध्वजः शूरमानी मूर्च्छितं हन्ति नो कथम् ॥ १६ ॥

मैं शत्रु हूं, शत्रुकी स्त्रियां किस कारण प्रसन्न हृदयसे हमारी सेवा करती हैं ? मैं मूर्च्छित होगयाथा, शूरमानी शशिध्वजने किस कारणसे मेरा नाश नहीं किया ॥ १६ ॥

सुशान्तो०–पाताले दिवि भूमौ वा नरनागसुरासुराः ।
नारायणस्य ते कल्के के वा सेवां न कुर्व्वते ॥ १७ ॥

सुशान्ता बोली–पृथ्वीके रहनेवाले स्वर्गवासी वा रसातलवासी मनुष्य देवता असुर वा नाग इनमें कौन नारायण कल्किजीकी सेवा नहीं करता है॥१७॥

यत्सेवकानां जगतां मित्राणां दर्शनादपि ।
निवर्त्तन्ते शत्रुभावस्तस्य साक्षात्कुतो रिपुः ॥ १८ ॥

जगत् जिसका सेवक है, जगत् जिसका मित्ररूप है, जिसका दर्शन करनेसे शत्रुभाव दूर होजाता है, कोई क्या साक्षात् सम्बन्धसे उसका शत्रु होसकता है ? ॥ १८ ॥

त्वया सार्द्धं मम पतिः शत्रुभावेन संयुगे ।
यदि योग्यस्तदानेतुं किं समर्थौ निजालयम् ॥ १९ ॥

जो हमारे स्वामी शत्रुभावसे तुम्हारे साथ संग्राम करते तो क्या तुमको अपने स्थानमें लासकते थे ? ॥ १९ ॥

तव दासो मम स्वामी अहं दासी निजा तव ।
आवयोः संप्रसादाय आगतोऽसि महाभुज ॥ २० ॥

हमारे स्वामी तुम्हारे दास हैं, मैं तुम्हारी दासी हूं, हे महाभुज ! हमारे प्रति प्रसन्न होकर तुम आपही यहांपर आये हो ॥ २० ॥

धर्म्म उ०–अहं तवैतयोर्भक्त्या नामरूपानुकीर्त्तनात् ।
कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कलिक्षय॥२१॥

धर्म बोला–हे कलिनाशन ! यह दोनोंही जिस प्रकार आपके प्रति भक्ति करते हैं, जिस प्रकारसे आपका नामकीर्तन करते हैं, जिस प्रकारसे स्तोत्र करते हैं, तिसको देखकर अत्यन्त कृतार्थ हुआ ३ ॥ २१ ॥

कृतयुग उ०–अधुनाऽहं कृतयुगं तव दासस्य दर्शनात् ।
त्वमीश्वरो जगत्पूज्यसेवकस्यास्य तेजसा ॥ २२ ॥

कृतयुगने कहा–आज मैं आपके इस दासका दर्शन पायकर सत्ययुग नामसे गिना गया । आपभी इस सेवकके तेज करके ईश्वर और जगत्पूज्य हुए ॥ २२ ॥

शशिध्वज उ०–दण्ड्यं मां दण्डय विभो योद्धृत्वादुद्यतायुधम् ।
येन कामादिरागेण त्वय्यात्मन्यपि वैरिता ॥ २३ ॥

शशिध्वजने कहा–हे विभो ! मैंने युद्ध करके आपके शरीरमें अस्त्रका आघात किया है । आप हमारे आत्मा हैं । मैंने काम क्रोधादि रागके वश होकर आपके साथ शत्रुता की है ॥ २३ ॥

इति कल्किर्वचस्तेषां निशम्य हसिताननः ।
त्वया जितोऽस्मीति नृपं पुनः पुनरुवाच ह ॥ २४ ॥

उन सबके यह वचन सुनकर मुस्काय कल्किजीने बारम्बार कहा कि, तुमनेही हमको जीत लियाहै ॥ २४ ॥

ततः शशिध्वजो राजा युद्धादाहूय पुत्रकान् ।
सुशान्ताया मतिं बुद्ध्वा रमां प्रादात्स कल्कये ॥ २५ ॥

इसके उपरान्त राजा शशिध्वजने संग्रामस्थलसे पुत्रोंको बुलाय शान्ताके अभिप्रायको जान कल्किजीको रमानामक कन्या दान करदी ॥ २५ ॥

तदैत्य मरुदेवापी शशिध्वजसमाहृतौ ।
विशाखयूपभूपश्च रुधिराश्वश्च संयुगात् ॥ २६ ॥

तिस कालमें मरु, देवापि, विशाखयूपराजा और रुधिराश्व यह लोग राजा शशिध्वज करके बुलाये जाकर संग्रामस्थलसे ॥ २६ ॥

शय्याकर्णनृपेणापि भल्लाटं पुरमाययुः ।
सेनागणैरसंख्यातैः सा पुरी मर्दिताऽभवत् ॥ २७ ॥

शय्याकर्ण नामक राजाके साथ भल्लाट नगरमें गये । अगणित सेनाके समूहसे वह पुरी मर्दित होने लगी ॥ २७ ॥

गजाश्वरथसम्बाधैः पत्तिच्छत्ररथध्वजैः ।
कल्किनापि रमायाश्च विवाहोत्सवसम्पदाम् ॥ २८ ॥

हाथी, घोडे और रथ समूहके परस्पर भिडजानेसे रथसमूहके अडजानेसे पयदल, रथ और पताकासमूह करके कल्कि और रमाका परस्पर विवाहोत्सव पूरा हुआ ॥ २८ ॥

द्रष्टुं समीयुस्त्वरिता हर्षात्सबलवाहनाः ।
शंखभेरीमृदङ्गानां वादित्राणां च निस्वनैः ॥ २९ ॥

सबही हर्षके हेतु सबल और वाहनके सहित तिस उत्सवको देखनेके लिये

आये । शंख भेरी (१), मृदंग (२) और दूसरे बाजोंकी ध्वनिसे॥२९॥

नृत्यगीतविधानैश्च पुरस्त्रीकृतमंगलैः ।
विवाहो रमया कल्केरभूदतिसुखावहः ॥ ३० ॥

नृत्यगीतादिके अनुष्ठान करके और नगरकी स्त्रियोंके किये हुए मंगलाचरणसे रमा और कल्किजीका विवाह अत्यन्त सुखदायी हुआ ॥ ३० ॥

नृपा नानाविधैर्भोज्यैः पूजिता विविशुः सभाम् ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चावरजातयः ॥ ३१ ॥

राजालोगोंने अनेक प्रकारके भक्ष्य भोज्य करके सत्कार पाय सभामें प्रवेश किया । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व और दूसरी जातिवाले ॥३१॥

विचित्रभोगावरणाः कल्किं द्रष्टुमुपाविशन् ।
तस्यां सभायां शुशुभे कल्किः कमललोचनः ॥ ३२ ॥

विचित्र भूषण व अनेक प्रकारकी भोग्यवस्तु पाय कल्किजीका दर्शन कर लेनेके लिये उस सभामें बैठते हुए, कमलके समान नेत्रवाले कल्किजी उस सभामें शोभायमान होने लगे ॥ ३२ ॥

---

(१) शंखभेरी—वाद्ययंत्रविशेष । एक प्रकारका बडा ढक्का । अनेक दिनसे भारतवर्षमें भेरीके बजनेकी रीति चली आई है । आनक, दुन्दुभि यह दो शब्द भेरीके पर्याय हैं ।।

(२) मृदंग—वाद्ययंत्र विशेष । आजकल, इसको भाषामें " पखावज " कहते हैं, विशेषतः वैष्णवलोग इसका अधिक व्यवहार करते हैं, काठका बनाहो तो " पखावज " और मिट्टीका बनाहो तो " मृदंग " कहते हैं । पखावज और मृदंगके बनानेकी रीति एकही है; यथाः—

मृत्तिकानिर्मितश्चैव मृदंगः परिकीर्तितः ।। (संगीतदामोदर)

इसका परिमाण यह है:—

सार्द्धहस्तप्रमाणं तु दैर्घ्यमस्य विधीयते । त्रयोदशांगुलं वाममथवा द्वादशांगुलम् ।।
दक्षिणं च भवेद्धीनमेकेनर्द्धांगुलेन वा । करणानद्धवदनो मध्ये चैवं पृथुर्भवेत् ।।
(संगीतदामोदर)

लम्बाई डेढ हाथकी होती है । बायें भागका वेध १३ या १२ अंगुल होता है । बायें भागकी बनिस्वत दहिना भाग एक या आधा अंगुल कम होता है । दोनों सिरे छोटे और बिचला भाग मोटा होता है । चमडेसे मढकर ' थरलि ' मलते हैं । संगीतदामोदरमें ' थरलि ' बनानेकी रीतिभी लिखी है ।

नक्षत्रगणमध्यस्थः पूर्णः शशधरो यथा ।
रेजे राजगणाधीशो लोकान्सर्वान्विमोहयन् ॥ ३३ ॥

तारोंमें जिस प्रकार पूर्णचन्द्रमा शोभायमान होता है, तैसेही राजाओंके अधिपति कल्किजी समस्त लोकको मोहित करके शोभायामन होने लगे ॥ ३३ ॥

रमापतिं कल्किमवेक्ष्य भूपः सभागतं पद्मदलायतेक्षणम् ।
जामातरं भक्तियुतेन कर्म्मणा विबुध्य मध्ये निषसाद तत्र ह॥३४॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कल्किना
रमाविवाहो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

कमलदलके समान नेत्रवाले कल्किजीने रमाका पाणिग्रहण किया यह देखकर और तिनको जामातृभावसे प्राप्त हो राजा शशिध्वज सभामें भक्तिके सहित विराजने लगे ॥ ३४ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे बलदेव०कृतभाषाटीकायां
कल्किना रमाविवाहो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

तृतीयांशः ।

एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

सूत उवाच-तत्राहुस्ते सभामध्ये वैष्णवं तं शशिध्वजम् ।
मुनिभिः कथिताशेष-भक्तिव्यासक्तविग्रहम् ॥ १ ॥

उग्रश्रवा बोले-महर्षियोंने जहांतक भक्ति (१) की सीमा वर्णन की है,

---

(१) भक्तिरसामृतनामक पुस्तकमें लिखा है:-
अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् । आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु प्रथमलहरी ९)

जिस कृष्णानुशीलनमें कृष्णजीके अतिरिक्त और किसी विषयकी कामना न हो, जो ज्ञान और कर्मसे न ढकै और जिसमें अनुकूल भावसे कृष्णजीका अनुशीलन करा जाय, तिसको उत्तम भक्ति कहते हैं ।

अर्थात् निष्काम होकर उपासना करना उचित है। जिसमें ज्ञान और कर्मका अनुष्ठान करनेसे भक्तिका सोत रुक न जाय, ऐसे ज्ञान और कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये । जिन व्रत योगादि विषयोंमें ईश्वरका नियम लंघन होता हो प्रतिकूलता हो, उनको छोडकर-

उस भक्तिसे पूर्ण है देह जिसका ऐसे परम वैष्णव शशिध्वज राजाको ॥१॥

सुशान्तां च कृतेनापि धर्म्मेण विधिवद्युताम् ॥ २ ॥

और कृतयुगके सहित व धर्मके साथ मिली हुई सुशान्ताको देखकर आये हुए राजाओंने और ब्राह्मणोंने कहा ॥ २ ॥

राजान ऊचुः—युवां नारायणस्यास्य कल्केः श्वशुरतां गतौ ।
वयं नृपा इमे लोका ऋषयो ब्राह्मणाश्च ये ॥ ३ ॥

राजाओंने कहा—इस समय आप लोग साक्षात् नारायण कल्किजीके श्वशुर हुए । परन्तु हम और यह सब राजालोग, ऋषि यह सारे ब्राह्मण और यह सारे वैश्यादि साधारण जन ॥ ३ ॥

प्रेक्ष्य भक्तिवितानं वां हरौ विस्मितमानसाः ।
पृच्छामस्त्वामियं भक्तिः क्व लब्धा परमात्मनः ॥ ४ ॥

हरिमें आपलोगोंकी भक्तिका विस्तार देखकर विस्मययुक्त हुए हैं और जाननेकी इच्छा करते हैं कि, आपलोगोंको यह परमात्मविषयक भक्ति कहांसे प्राप्त हुई है ? ॥ ४ ॥

कस्य वा शिक्षिता राजन् किंवा नैसर्गिकी तव ।
श्रोतुमिच्छामहे राजन् त्रिजगज्जनपावनीम् ॥
कथां भागवतीं त्वत्तः संसाराश्रमनाशिनीम् ॥ ५ ॥

हे राजन् ! यह भक्ति क्या किसीसे सीखी है ? अथवा यह आपलोगोंकी स्वाभाविक भक्ति है । हे राजन् आपसे हमने इस भगवद्भक्तिका कारण जाननेकी इच्छा की है, इसके श्रवण करनेसे भी त्रिलोकीके लोग पवित्र होते हैं और इससे संसारप्रवृत्ति उखड जाती है ॥ ५ ॥

—भक्तिका अनुशीलन करना चाहिये । इस प्रकार जो भक्तिका रस उफनता है उसको उत्तमा भक्ति कहते हैं । नारदपंचरात्रमें कहा है:—

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम् । हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते ॥
(भक्तिरसामृतधृतनारदपंचरात्रीयवचन)

अनुकूल भाव (और) एकाग्रचित्तसे कायिक, वाचिक और मानसिक इन तीन उपाधियोंसे रहित हो कृष्णका अनुशीलन करनेसे तिसको उत्तमा भक्ति कहते हैं ।

शशिध्वज उ०—स्त्रीपुंसोरावयोस्तत्तच्छृणुतामोघविक्रमाः ।
वृत्तं यज्जन्मकर्म्मादि स्मृतिं तद्भक्तिलक्षणाम् ॥ ६॥

राजा शशिध्वजने कहाः—हे अमोघविक्रम राजाओ ! हमारे स्त्रीपुरुषोंके जैसे जन्म कर्मादि हुए हैं और जिस प्रकारसे भक्तिकी स्मृति (याद) हुई है वह श्रवण कीजिये ॥ ६ ॥

पुरा युगसहस्रान्ते गृध्रोऽहं पूतिमांसभुक् ।
गृध्रीयं मे प्रियाऽरण्ये कृतनीडौ वनस्पतौ ॥ ७ ॥

सहस्र युग बीते पहले मैं सडेहुए मांसका खानेवाला गृध्र था । यह हमारी प्रिया सुशान्ता गिद्धिनी थी । यह गीध गिद्धिनी एक बडे वृक्षपर घोंसला बनाकर रहा करते थे ॥ ७ ॥

चचार कामं सर्वत्र वनोपवनसङ्कुले ।
मृतानां पूतिमांसौघैः प्राणिनां वृत्तिकल्पकौ ॥ ८ ॥

वन और उपवनयुक्त सब स्थानोंमें यह रुचिके अनुसार घूमा करते थे, हम दोनोंही मृतक हुए जीवोंके दुर्गन्धवाले मांससे जीवनयात्रा निर्वाह करते थे ॥ ८ ॥

एकदा लुब्धकः क्रूरो लुलोभ पिशिताशिनौ ।
आवां वीक्ष्य गृहे पुष्टं गृध्रं तत्राप्ययोजयत् ॥ ९ ॥

एक समय हम दोनोंको देखकर कोई क्रूर आशयवाला व्याध हमारे पकडनेका लालची हुआ । फिर उस व्याधने हमको पकडनेके लिये अपना पालू गीध छोडा ॥ ९ ॥

तं वीक्ष्य जातविश्रम्भौ क्षुधया परिपीडितौ ।
स्त्रीपुंसौ पतितौ तत्र मांसलोभितचेतसौ ॥ १० ॥

उस समय हमको बडी भूंख लगी थी, इस कारण हम उस पालेहुए गिद्धको देखकर विश्वासित हृदयसे मांसके लोभमें आय तिसके स्थानमें गिरे॥ १०॥

बद्धावावां वीक्ष्य तदा हर्षादागत्य लुब्धकः ।
जग्राह कण्ठे तरसा चञ्च्वग्राघातपीडितः ॥ ११ ॥

व्याधने हम दोनोंको बँधाहुआ देखकर हर्षयुक्त हृदयसे उस स्थानमें आय शीघ्रतासे हमारा गला पकड लिया । हमभी प्राणपणसे उसको चोंचसे काटने लगे ॥ ११ ॥

आवां गृहीत्वा गण्डक्याः शिलायां सलिलान्तिके ।
मस्तिष्कं चूर्णयामास लुब्धकः पिशिताशनः ॥ १२ ॥

फिर मांसके लोभी व्याधने हम दोनोंको पकड गंगाजलके निकट गंडकी-शिलापर पटक हम दोनोंका शिर चूर्ण कर डाला ॥ १२ ॥

चक्राङ्कितशिलागङ्गामरणादपि तत्क्षणात् ।
ज्योतिर्मयविमानेन सद्यो भूत्वा चतुर्भुजौ ॥ १३ ॥

गंगाजीके किनारे और चक्रांकित शिलापर मृत्यु होनेके कारण हम तत्काल चतुर्भुजमूर्ति धारण कर प्रकाशमान विमानमें सवार हो ॥ १३ ॥

प्राप्तौ वैकुण्ठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतम् ।
तत्र स्थित्वा युगशतं ब्रह्मणो लोकमागतौ ॥ १४ ॥

स्वर्गलोकसे पूजित वैकुण्ठधाममें गये । उस स्थानमें शत (१००) युगतक वास करके ब्रह्मलोकमें गये ॥ १४ ॥

ब्रह्मलोके पञ्चशतं युगानामुपभुज्य वै ।
देवलोके कालवशाद्गतं युगचतुःशतम् ॥ १५ ॥

ब्रह्मलोकमें पांचशतयुगतक सुखभोग करके कालके वशसे ४०० युगतक देवलोकमें स्वर्गके सुखको भोगा ॥ १५ ॥

ततो भुवि नृपास्तावद्वद्धसूनुरहं स्मरन् ।
हरेरनुग्रहं लोके शालग्रामशिलाश्रमम् ॥ १६ ॥

हे राजाओ ! तदुपरान्त हमने इस मृत्युलोकमें जन्म लिया है, परन्तु शालिग्रामशिलाका स्थान और नारायणजीका अनुग्रह यह सब हमारी स्मृतिमें जाग रहा है ॥ १६ ॥

जातिस्मरत्वं गण्डक्याः किं तस्याः कथयाम्यहम् ।
यज्जलस्पर्शमात्रेण माहात्म्यं महदद्भुतम् ॥ १७ ॥

गण्डकी नदीके किनारेपर मरनेसे जातिके स्मरणकी कैसी अद्भुत शक्ति उत्पन्न होती है सो क्या बताऊं । उसकें जलको स्पर्श करतेही एक अपूर्व माहात्म्य होता है ॥ १७ ॥

चक्रांकितशिलास्पर्शमरणस्येदृशं फलम् ।
न जाने वासुदेवस्य सेवया किं भविष्यति ॥ १८ ॥

चक्रसे अंकित शिलाको स्पर्श करनेसे मृत्यु होनेपर जब ऐसा फल मिलता है, तब भगवान् वासुदेवकी सेवा करनेका फल किसी रीतिसे नहीं कहा जा सकता ॥ १८ ॥

इत्यावां हरिपूजासु हर्षविह्वलचेतसौ ।
नृत्यन्तावनुगायन्तौ विलुठन्तौ स्थिताविह ॥ १९ ॥

यही विचारकर हम कभी नृत्य करते हैं, कभी नारायणजीकी पूजामें एकाग्रताचित्तसे आसक्त रहते हैं, कभी नारायणजीका गुण गाते हैं, भक्ति-भावसे लोटते हैं । हम इस प्रकारसे यहांपर समय विताते आये हैं ॥१९॥

कल्केर्नारायणांशस्य अवतारः कलिक्षयः ।
पुरा विदितवीर्य्यस्य पृष्टो ब्रह्ममुखाच्छ्रुतः ॥ २० ॥

हमने ब्रह्माजीकें मुखसे पहलेही सुनकर जानलियाथा कि, कलिका नाश करनेके लिये नारायणके अंश कल्किजी अवतार लेंगे । हम उनके वीर्यको भलीभांतिसे जानते हैं ॥ २० ॥

इति राजसभायां स श्रावयित्वा निजाः कथाः ।
ददौ गजानामयुतमश्वानां लक्षमादरात् ॥ २१ ॥

इस प्रकारसे सभामें अपने वृत्तान्तको वर्णन कर राजा शशिध्वजने कल्कि-जीको भक्तिपूर्णहृदयसे आदरसे दशहजार हाथी, एक लाख घोडे ॥२१॥

रथानां षट्सहस्रन्तु ददौ पूर्णस्य भक्तितः ।
दासीनां युवतीनां च रमानाथाय षट्शतम् ॥ २२ ॥
रत्नानि च महार्घाणि दत्त्वा राजा शशिध्वजः ।
मेने कृतार्थमात्मानं स्वजनैर्बान्धवैः सह ॥ २३ ॥

छः हजार रथ, छः सौ युवती दासी, बहुतसे महामोलके रत्न देकर बन्धुबान्धवोंके साथ अपनेको कृतार्थ समझा ॥ २२ ॥ २३ ॥

सभासद इति श्रुत्वा पूर्वजन्मोदिताः कथाः ।
विस्मयाविष्टमनसः पूर्णं तं मेनिरे नृपम् ॥ २४ ॥

इस प्रकार राजाके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनकर सभासदोंने मनमें विस्मित हो उसको पूर्ण जाना ॥ २४ ॥

कल्किं स्तुवन्तो ध्यायन्तः प्रशंसन्तो जगज्जनाः ।
पुनस्तमाहू राजानं लक्षणं भक्तिभक्तयोः ॥ २५ ॥

फिर तहांके सब लोग कल्किजीकी स्तुति करने लगे और ध्यान करने लगे । फिर उन्होंने राजा शशिध्वजसे भक्ति और भक्तके लक्षण पूछने आरम्भ किये ॥ २५ ॥

नृपा ऊचुः—भक्तिः का स्याद्भगवतः को वा भक्तो विधानवित् ।
किं करोति किमश्नाति क्व वा वसति वक्ति किम् ॥२६॥

राजाओंने कहाः—भगवद्भक्ति किसका नाम है ? विधानका जाननेवाला भक्त किसको कहा जासकता है ? यह भक्त क्या कार्य करता है ? क्या आहार करता है ? कहां रहता है ? किस प्रकारसे बात कहता है ॥२६॥

एतान्वर्णय राजेन्द्र सर्व्वं त्वं वेत्सि सादरात् ।
जातिस्मरत्वात्कृष्णस्य जगतां पावनेच्छया ॥ २७ ॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा प्रफुल्लवदनो नृपः ।
साधुवादैः समामन्त्र्य तानाह ब्रह्मणोदितम् ॥ २८ ॥

हे राजेन्द्र ! आप सब जानते हैं, इस कारण आप आदरपूर्वक तिस सब वार्ताको वर्णन करें । उनके यह वचन सुनकर राजा प्रफुल्लवदन हुआ और धन्यवाद दे तिनसे सम्भाषण कर जातिस्मरताके हेतु कृष्णनामसे जगत्को पवित्र करनेके अभिप्रायसे उसको कहना आरम्भ किया जिसको पहले ब्रह्माजीसे सुनाथा ॥ २७ ॥ २८ ॥

शशिध्वज उ०-पुरा ब्रह्मसभामध्ये महर्षिगणसंकुले ।
सनको नारदं प्राह भवद्भिर्यास्त्विहोदिताः ॥ २९ ॥

राजा शशिध्वजने कहा—पहले ब्रह्मलोकमें ब्रह्मसभाके बीच महर्षिलोग बैठे हैं कि, ऐसे समयनें यह कथा सनकादिने नारदजीसे पूछी थी कि, जो कथा आपलोग मुझसे पूछते हैं ॥ २९ ॥

तेषामनुग्रहेणाहं तत्रोषित्वा श्रुताः कथाः ।
यास्ताः सङ्कथयामीह शृणुध्वं पापनाशनाः ॥ ३० ॥

तिस काल मैं भी उसही स्थानमें था, अतएव मैंने तिनके अनुग्रहसे वह समस्त वाक्य सुनें थे । हे पापनाशक सभासदो ! मैंने जो जो बातें सुनी थीं वह इस समय आपसे कहता हूं श्रवण कीजिये ॥ ३० ॥

सनक उ०—का भक्तिः संसृतिहरा हरौ लोकनमस्कृता ।
तामादौ वर्णय मुने नारदावहिता वयम् ॥ ३१ ॥

सनकने पूछा—हे महर्षि नारद ! हरिमें किस प्रकारकी भक्ति करनेसे जन्म नहीं लेना पडता, किस प्रकारकी भक्ति प्रशंसाके योग्य है ? सो आप पहले वर्णन कीजिये । हम सावधान हृदयसे श्रवण करते हैं ॥ ३१ ॥

नारद उ०—मनःषष्ठानीन्द्रियाणि संयम्य परया धिया ।
गुरावपि न्यसेद्देहं लोकतन्त्रविचक्षणः ॥ ३२ ॥

नारदजीने कहा—लोकतंत्रका जाननेवाला चतुर साधक उत्तम बुद्धिसे

नेत्र, कर्ण, नासिका, जीभ, त्वचा इस ज्ञानेन्द्रियपंचक (१) और मनको रोककर परमज्ञानका आश्रय ले गुरुके चरणमें देहको अर्पण करे ॥ ३२ ॥

गुरौ प्रसन्ने भगवान् प्रसीदति हरिः स्वयम् ।
प्रणवाग्निप्रियामध्ये मवर्णं तन्निदेशतः ॥ ३३ ॥

जो गुरु प्रसन्न होवै तो स्वयं भगवान् नारायणजी भी प्रसन्न होजाते हैं। गुरुजीकी आज्ञाके अनुसार प्रणव अग्निकी प्रियाके बीचमें 'नमः' यह वर्ण 'ॐ नमः स्वाहा' (२) ॥ ३३ ॥

स्मरेदनन्यया बुद्ध्या देशिकः सुसमाहितः ।
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ॥ ३४ ॥

अनन्य हृदयसे स्मरण करे फिर शिष्यको चाहिये कि, सावधान हृदयसे पाद्य अर्घ्य व आचमनीय आदिसे और स्नानीय वस्त्र भूषणोंसे ॥ ३४ ॥

पूजयित्वा वासुदेवपादपद्मं समाहितः ।
सर्वाङ्गसुन्दरं रम्यं स्मरेद्धृत्पद्ममध्यगम् ॥ ३५ ॥

कार्यमें उत्तम चित्त लगाय नारायणजीके चरणकमलकी पूजा करे। फिर हृदयकमलके बीचमें विराजमान रमणीय सर्वाङ्गसुन्दर नारायणजीकी चिन्तना करे ॥ ३५ ॥

एवं ध्यात्वा वाक्यमनोबुद्धीन्द्रियगणैः सह ।
आत्मानमर्पयेद्विद्वान् हरावेकान्तभाववित् ॥ ३६ ॥

इस प्रकारसे ध्यान करके ज्ञानी और भावका जाननेवाला वाक्य, मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके साथ आत्माको नारायणजीमें समर्पण करे ॥ ३६ ॥

---

(१) नेत्र, कान, नाक, जीभ और त्वचा इन पांचोंको ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं। वेदान्तकी पंचदशी नामक पुस्तकमें लिखा है।

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा घ्राणं चेन्द्रियपंचकम् । कर्णादिगोलकस्थं तच्छब्दादिग्राहकं क्रमात् ॥
सौक्ष्म्यात्कार्यानुमेयं तत्प्रायो धावेद्बहिर्मुखम् ॥

(पंचदशी भूतविवेकनामक दूसरा परिच्छेद ४ श्लोक)

नेत्रसे दर्शन, त्वचासे स्पर्श, कानसे श्रवण, जीभसे स्वाद और नासिकासे गंधका ज्ञान होता है।

(२) यज्ञके मध्य अग्निमें घृत डालनेके समय "स्वाहा शब्द उच्चारण किया जाता है। श्रीमद्भागवतमें स्वाहाको अग्निकी भार्या लिखा है। स्वाहाके पिता दक्ष प्रजापति हैं।

अङ्गानि देवास्तेषां तु नामानि विदितान्युत ।
विष्णोः कल्केरनन्तस्य तान्येवान्यन्न विद्यते ॥ ३७ ॥

और देवमूर्ति कल्किमूर्ति अनन्त विष्णुजीकी अङ्गरूप हैं । उन सब नामोंको आप जानते हैं । उनके सिवाय और कुछभी नहीं है ॥ ३७ ॥

सेव्यः कृष्णः सेवकोऽहमन्ये तस्यात्ममूर्त्तयः ।
अविद्योपाधयो ज्ञानाद्वदन्ति प्रभवादयः ॥ ३८ ॥

कृष्णजी सेव्य, मैं सेवक, सर्वजीव कृष्णजीकी मूर्ति हैं, ज्ञानीलोग कहते हैं कि, अविद्याकी (१) उपाधिके वशसे इन सबकी उत्पत्ति होती है॥ ३८॥

भक्तस्यापि हरौ द्वैतं सेव्यसेवकवत्तदा ।
नान्यद्विना तमित्येव क्वच किञ्चन विद्यते ॥ ३९ ॥

जो भक्त हैं उसके लियेभी सेव्यसेवकरूप द्वैतभाव उदय होता है । फल यह है कि, नारायणजीके विना और कोई वस्तु कहींभी नहीं है ॥ ३९ ॥

भक्तः स्मरति तं विष्णुं तन्नामानि च गायति ।
तत्कर्माणि करोत्येव तदानन्दसुखोदयः ॥ ४० ॥

भक्त उन नारायणजीका स्मरण करता है, हरिनामको गाता है, नारायणजीके लिये कर्म करता है, तिससेही उसको आनन्द और सुखका उदय होता है ॥ ४० ॥

नृत्यत्युद्धतवद्रौति हसति प्रैति तन्मनाः ।
विलुण्ठत्यात्मविस्मृत्या न वेत्ति कियदन्तरम् ॥ ४१ ॥

भक्त प्रचण्डकी नांई नृत्य करता है, रोदन करता है, हँसता है, तन्मय होकर गमन करता है, अपनेको भूलकर लोटता है, कहींभी किसी भेदको नहीं देखता ॥ ४१ ॥

---

(१) जन्म और मृत्यु आदि अविद्याही है, अविद्याके उपाधिभेदको जन्ममृत्यु कहा जाता है । मध्वाचार्य कहते हैं-

ब्रह्माद्वयं जातबुद्धौ जीवत्वेन विशेत्स्वयम् । उपाधिकं जीवजन्म नित्यत्वं वस्तु तत्स्मृतम् ॥
(व्यासाधिकरणमाला २ अ० ३ पाद, १८ सूत्र)

एवंविधा भगवतो भक्तिरव्यभिचारिणी ।
पुनाति सहसा लोकान्सदेवासुरमानुषान् ॥ ४२ ॥

यही भगवद्विषयिणी अव्यभिचारिणी भक्ति (१) है, इस भक्तिके बलसे देव, दानव, गन्धर्व, मानवादि समस्त लोग तत्काल पवित्र होजाते हैं ॥ ४२ ॥

भक्तिः सा प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मसम्पत्प्रकाशिता ।
शिवविष्णुब्रह्मरूपा वेदाद्यानां वरापि वा ॥ ४३ ॥

जो नित्या प्रकृति है, ब्रह्मसम्पत्ति वही भक्तिके रूपसे प्रकाशित हुई है, यह भक्तिही वेदादिके बीचमें श्रेष्ठ है । यह भक्तिही विष्णु, ब्रह्मा और शिवरूपा है ॥ ४३ ॥

भक्ताः सत्त्वगुणाध्यासाद्रजसेन्द्रियलालसाः ।
तमसा घोरसंकल्पा भजन्ति द्वैतदृग्जनाः ॥ ४४ ॥

जिनको द्वैतज्ञान है, तिनमेंसे जितनोंमें सत्त्वगुणका अध्यास होताहै वह भक्त कहलाते हैं, जिनमें रजोगुणका अध्यास होता है वह इन्द्रियोंके व्यापारमें लालसा करते हैं, जिनमें तमोगुणका आगमन होता है वह घोर कार्यमें रत रहते हैं ॥ ४४ ॥

सत्त्वान्निर्गुणतामेति रजसा विषयस्पृहाम् ।
तमसा नरकं यान्ति संसाराद्वैतधर्म्मिणि ॥ ४५ ॥

संसारमें जो लोग द्वैतज्ञानसम्पन्न हैं तिनमें सत्त्वगुणकी अवाई होनेसे निर्गुणता प्राप्त होती है, रजोगुणका आगमन होनेसे विषयभोगमें स्पृहा होती है, तमोगुणकी अधिकाई होनेसे नरकगामी होते हैं ॥ ४५ ॥

---

(१) बहुतकालतक सत्कारादिके साथ सेवाका नाम अव्यभिचारिणी भक्ति है । यह सब मंगलोंमें प्रधान अर्थात् चतुर्वर्गफलकी देनेवाली और सर्वदा पूर्णानन्दमयी है। यथाः—
सर्वमङ्गलमूर्द्धन्या पूर्णानन्दमयी सदा । द्विजेन्द्र तव चाप्यस्तु भक्तिरव्यभिचारिणी ॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु २ लहरी)

इसकोही अव्यभिचारिणी भक्ति कहते हैं । अव्यभिचारिणी भक्तिका माहात्म्य विशेष प्रबल है। ऐसा वैष्णवशास्त्रमें कहा है ।

उच्छिष्टमवशिष्टं वा पथ्यं पूतमभीप्सितम् ।
भक्तानां भोजनं विष्णोर्नैवेद्यं सात्त्विकं मतम् ॥ ४६ ॥

विष्णुजीका उच्छिष्ट, पवित्र, पथ्य इच्छा किया हुआ नैवेद्य सात्त्विक आहार कहा जाता है, वह सात्त्विक आहारही भक्तोंको भोजन करना चाहिये ॥ ४६ ॥

इन्द्रियप्रीतिजननं शुक्रशोणितवर्द्धनम् ।
भोजनं राजसं शुद्धमायुरारोग्यवर्द्धनम् ॥ ४७ ॥

जो इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेवाला है, जिससे वीर्य और रुधिर बढता है, जिससे परमायुकी वृद्धि होती है, जिससे शरीर रोगरहित रहता है ऐसे शुद्ध भोजनको राजसभोजन कहा जाता है ॥ ४७ ॥

अतः परं तामसानां कट्वम्लोष्णविदाहिकम् ।
पूति पर्य्युषितं ज्ञेयं भोजनं तामसप्रियम् ॥ ४८ ॥

अब तामस आहार कहते हैं—जो कटु, खट्टा, दग्ध, दुर्गन्ध और बासी है सो तामस आहार तामसी आदमियोंको प्यारा है ॥ ४८ ॥

सात्त्विकानां वने वासो ग्रामे वासस्तु राजसः ।
तामसं द्यूतमद्यादिसदनं परिकीर्तितम् ॥ ४९ ॥

सत्त्वगुणका अवलम्बन करनेवाले वनमें, रजोगुणका अवलम्बन करनेवाले ग्राममें और तमोगुणका अवलम्बन करनेवाले जुएघर या सुरालयमें वास करते हैं ॥ ४९ ॥

न दाता स हरिः किञ्चित्सेवकस्तु न याचकः ।
तथापि परमा प्रीतिस्तयोः किमिति शाश्वती ॥ ५० ॥

नारायणजी किसीकोभी कुछ हाथसे उठाकर नहीं देते हैं, सेवक नारायणजीसे कुछ नहीं मांगता तो भी उनकी परस्पर परमप्रीति सदा दिखाई देती है । यह कुछ साधारण अद्भुत बात नहीं है अर्थात् बडी अद्भुत बात है ॥ ५० ॥

इत्येतद्भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्गुणकथनं सनको विबुध्य भक्त्या ।
सविनयवचनैः सुरर्षिवर्य्यं परिणुत्येन्द्रपुरं जगाम शुद्धः ॥ ५१ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे नृपगणशशिध्वज-
संवादे जातिस्मरत्वकथनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

शुद्ध हृदयवाले, महर्षि सनक भक्तिसहित देवर्षि नारदजीसे साक्षात् परमेश्वर भगवान् नारायणजीके गुणोंको श्रवण करते भये । वह विनययुक्त वचनोंसे देवर्षियोंमें श्रेष्ठ नारदजीकी स्तुति कर व उनको प्रणाम करके इन्द्रलोकमें गये ॥ ५१ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां
नृपगणशशिध्वजसंवादे जातिस्मरत्वकथनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

तृतीयांशः ।

द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

शशिध्वज उ०—एतद्वः कथितं भूपाः कथनीयोरुकर्म्मणः ।
कथा भक्तस्य भक्तेश्च किमन्यत्कथयाम्यहम् ॥१॥

राजा शशिध्वजने कहा—हे भूपालगण ! जिनका असाधारण कर्म कीर्तन करना चाहिये, तैसे भक्तोंका और भक्तिका माहात्म्य कहा, अब आज्ञा कीजिये कि क्या कहूं ॥ १ ॥

भूपा ऊचुः—त्वं राजन् वैष्णवश्रेष्ठः सर्व्वसत्त्वहिते रतः ।
तवावेशः कथं युद्धरङ्गे हिंसादिकर्मणि ॥ २ ॥

राजाओंने कहा—हे राजन् ! आप परम वैष्णव हैं, आप सर्व प्राणियोंका कल्याण साधन करने (अहिंसाही परम धर्म) में रत हैं, फिर किस कारणसे आप हिंसादिदोषसे दूषित युद्धकार्यमें लगे ॥ २ ॥

प्रायशः साधवो लोके जीवानां हितकारिणः ।
प्राणबुद्धिधनैर्वाग्भिः सर्व्वेषां विषयात्मनाम् ॥ ३ ॥

हमने देखा है कि, साधुलोग बहुधा प्राणद्वारा, बुद्धिद्वारा, धनद्वारा, वाक्यद्वारा विषयमें लिप्त जीवोंका हितानुष्ठान किया करते हैं ॥ ३ ॥

शशिध्वज उ०—द्वैतप्रकाशिनी या तु प्रकृतिः कामरूपिणी ।
सा सूते त्रिजगत्कृत्स्नं वेदांश्च त्रिगुणात्मिका ॥४॥

राजा शशिध्वजने कहा—सत, रज, तम यह तीन गुणवाली जो प्रकृति है तिससेही द्वैतभाव प्रगट होता है । यह प्रकृतिही कामरूपिणी अर्थात् सकलात्मिका (सांख्यदर्शनके मतसे) है । इस प्रकृतिसेही समस्त वेद और त्रिलोक उत्पन्न हुए हैं ॥ ४ ॥

ते वेदास्त्रिजगद्धर्म्मशासनाधर्म्मनाशनाः ।
भक्तिप्रवर्त्तका लोके कामिनां विषयैषिणाम् ॥ ५ ॥

जो लोग विषयके अभिलाषी कामी लोग हैं तिनके लिये त्रिजगत्का धर्मस्थापन करके अधर्मका नाश करके भक्तिको उत्पन्न करते हैं ॥ ५ ॥

वात्स्यायनादिमुनयो मनवो वेदपरागाः ।
वहन्ति बलिमीशस्य वेदवाक्यानुशासिताः ॥ ६ ॥

वेदके जाननेवाले वात्स्यायन आदि महर्षिलोग और मनुष्य वेदवाक्यके अनुगामी होकर उन भगवान् ईश्वरके लिये बलिदान करते हैं ॥ ६ ॥

वयं तदनुगाः कर्म्मधर्म्मनिष्ठा रणप्रियाः ।
जिघांसन्तं जिघांसामो वेदार्थकृतनिश्चयाः ॥ ७ ॥

हम लोग तिनके अनुवर्ती हो धर्मकर्ममें रत रहते हुए संग्राम करते हैं । वेदके तात्पर्यके अनुसार संग्रामके मध्य हम आततायीके प्राणोंका नाश करते हैं ॥ ७ ॥

अवध्यस्य वधे यावांस्तावान् वध्यस्य रक्षणे ।
इत्याह भगवान् व्यासः सर्व्ववेदार्थतत्परः ॥ ८ ॥

सर्व वेदार्थके जाननेमें विशारद भगवान् वेदव्यासजीने कहा है कि, अवध्यके मारनेसे अर्थात् जो मारने योग्य न हो उसके मारनेसे जैसा पाप होता है, मारने योग्यके जीवकी रक्षा करनेसे भी वैसाही पाप होता है ॥ ८ ॥

प्रायश्चित्तं न तत्रास्ति तत्राधर्म्मः प्रवर्त्तते ।
अतोऽत्र वाहिनीं हत्वा भवतां युधि दुर्जयाम् ॥ ९ ॥

ऐसा आचरण न करनेसे इतना अधर्म होता है कि, जिसका प्रायश्चित्त नहीं है । इसी कारणसे मैं संग्रामस्थलमें अपनी अजीत सेना समूहका संहार कर ॥ ९ ॥

धर्म्मं कृतं च कल्किं तु समानीयागता वयम् ।
एषा भक्तिर्मम मता तवाभिप्रेतमीरय ॥ १० ॥

धर्मको, सत्ययुगको और कल्किजीको लेकर आयाहूं । मेरे विचारमें यही यथार्थ भक्ति है । इस विषयमें आपका क्या अभिप्राय है सो कहिये॥१०॥

अहं तदनु वक्ष्यामि वेदवाक्यानुसारतः ।
यदि विष्णुः स सर्व्वत्र तदा कं हन्ति को हतः ॥ ११ ॥

तिसके पीछे मैं वेदवाक्यके अनुसार उत्तर दूंगा । सब स्थानोंमें विष्णुजी हैं, यदि यह सिद्धान्त निश्चय है तो कौन किसका नाश करता है ? अर्थात् कोई नाश करताभी नहीं, किसीका नाश होताभी नहीं ॥ ११ ॥

हन्ता विष्णुर्हतो विष्णुर्वधः कस्यास्ति तत्र चेत् ।
युद्धयज्ञादिषु वधे न वधो वेदशासनात् ॥ १२ ॥

वध करनेवालाभी विष्णु, हत होनेवालाभी विष्णु, फिर भला किसका वध होगा ? विशेष करके वेदकी आज्ञा है कि, यज्ञ और युद्धमें वध करना वधमें नहीं गिना जाता है ॥ १२ ॥

इति गायन्ति मुनयो मनवश्च चतुर्दश ।
इत्थं युद्धैश्च यज्ञैश्च भजामो विष्णुमीश्वरम् ॥ १३ ॥

महर्षिलोग और चौदह मनु ऐसाही कीर्त्तन करते हैं । हमभी ऐसेही युद्ध और यज्ञसे ईश्वर विष्णुजीकी पूजा किया करते हैं ॥ १३ ॥

अतो भागवतीं मायामाश्रित्य विधिना यजन् ।
सेव्यसेवकभावेन सुखी भवति नान्यथा ॥ १४ ॥

इस प्रकार भागवती मायाका अवलम्बन कर विधिविधान करके सेव्य-सेवकभावसे पूजा करके साधक सुखी होता है और प्रकारसे सुखी नहीं हुआ जा सकता ॥ १४ ॥

भूपा ऊचुः–निमेर्भूपस्य भूपाल गुरोः शापान्मृतस्य च ।
तादृशे भोगायतने विरागः कथमुच्यताम् ॥ १५ ॥

राजाओंने कहा–हे राजन् ! राजा निमिने गुरु वसिष्ठजीके शापसे शरीरको छोडा था (१) परन्तु इस प्रकारके भोगायतन शरीरमें तिसको क्यों

---

(१) सूर्यवंशमें इक्ष्वाकुनामक एक राजा था । तिसके निमिनामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ । निमिने एकवार सहस्रवर्षमें पूर्ण होनेवाले यज्ञका अनुष्ठान किया था, इस यज्ञमें वसिष्ठजी होता हुए थे । यथा:–

इक्ष्वाकुतनयो योऽसौ निमिर्नाम स तु सहस्रसंवत्सरं सत्रमारेभे वसिष्ठं च होतारं वरयामास १

(विष्णुपुराण, ४ अंश, ५ अध्याय)

परन्तु वशिष्ठजीने कहा कि, इससे पहले इन्द्रने पांच शतवर्षका यज्ञ करनेके अर्थ हमको वरण किया है, अतएव तुम कुछ समयतक ठहरो, इन्द्रका यज्ञ कराकर तुम्हारा ऋत्विक् बनूंगा । वशिष्ठजीके यह वचन सुनकर निमिने कुछ उत्तर न दिया, बरन चुपरहा । विष्णुपुराणमें कहा है:—

तमाह वशिष्ठः–अहमिन्द्रेण पंचशतवर्षं यागार्थं प्रथमतरं वृतः । तदन्तरं प्रतिपाल्यतामागतस्तवापि ऋत्विक् भविष्यामि इत्युक्तः स पृथिवीपतिर्न किञ्चिदुक्तवान् ॥ २ ॥

(विष्णुपुराण, ४ अंश ५ अध्याय)

वशिष्ठजीने विचारा, " मौनं सम्मातिलक्षणम् । " इसके अनुसार वह इन्द्रके यज्ञमें चले-गये यथा:–

वसिष्ठोऽप्यनेन समन्वीप्सितामित्यमरपतेर्यागमकरोत्॥३॥ (विष्णुपुराण, ४ अंश, ५ अध्याय)

तिस कालही निमि गौतमादि महर्षियोंसे यज्ञ कराने लगा । इन्द्रका यज्ञ समाप्त होनेपर वशिष्ठजी निमिका यज्ञ करानेको शीघ्रतासे वहां आये तब देखा कि, गौतमजी निमिका यज्ञ करा रहे हैं, तिसकाल राजा निमि सो रहा था । तब वशिष्ठजीने यह कहकर उसको शाप-दिया । मुझको तो मने नहीं किया और इस राजाने गौतमजपिर कर्मभार अर्पण किया है, अतएव (इस पापसे) निमि विदेह (देहहीन) होवै । यथाः–

विराग हुआ ? अर्थात् यज्ञके अन्तमें देवताओंने प्रसन्न हो उसको बचाय देहमें प्रवेश करनेकी अनुमति दी, तब वह किस कारणसे त्यागी हुई देहमें प्रवेश करनेको संमत न हुआ ॥ १५ ॥

शिष्यशापाद्वशिष्ठस्य देहावाप्तिर्मृतस्य च ।
श्रूयते किल मुक्तानां जन्म भक्तविमुक्तता ॥ १६ ॥

सुना है कि, महर्षि वशिष्ठजीने इस (निमि) शिष्यके शापसे देह छोड-कर फिर देहको ग्रहणकिया । भक्तको तो मुक्ति प्राप्त होती है । अतएव मुक्तजनका फिर किस प्रकारसे जन्म होसकता है ॥ १६ ॥

अतो भागवती माया दुर्बोध्याऽविजितात्मनाम् ।
विमोहयति संसारे नानात्वादिन्द्रजालवत् ॥ १७ ॥

ऐसे स्थानमें भगवान्‌की माया ज्ञानीलोगोंसे भी नहीं जानी जाती । यह माया इन्द्रजालकी समान संसारमें फैल रही है और लोगोंको मोहित करती है ॥ १७ ॥

—सोऽपि तत्कालमेवान्यैर्गौतमादिभिर्यागमकरोत् । समाप्ते चामरपतेर्यागे त्वरावान् वशिष्ठो निमेः कर्म करिष्यामीत्याजगाम । तत्कर्मकर्तृत्वं च तत्र गौतमस्य दृष्ट्वा अथ स्वपते तस्मै राज्ञे मामप्रत्याख्यायैतदनेन गौतमाय कर्मान्तरमर्पितं यस्मात् तस्मादयं विदेहो भविष्यतीति शापं ददौ ॥ ४ ॥ (विष्णुपुराण, ४ अंश, ५ अध्याय)

निमिकी निद्रा भंग हुई, उसने जागकर कहा, दुष्ट गुरुने हमसे कोई बात न पूछी, मैं सोताथा कोई बात न जानसका, इस अवस्थामें उन्होंने मुझको शाप दिया, इस कारण उसका देहभी पतन होगा, निमिने वह शाप देकर देहको छोडदिया । यथा:—

प्रतिबुद्धश्चासाववनीपतिरपि प्राह । यस्मान्माम् असम्भाष्य अजानत एव शयानस्य शापोत्सर्ग-मसौ दुष्टगुरुश्चकार । तस्मात्तस्यापि देहः पतितो भविष्यतीति प्रतिशापं दत्त्वा देहमत्यजत् ॥ ५ ॥

उस शापसे वशिष्ठजीका तेज मित्रावरुणके तेजमें प्रवेश करता हुआ । अनन्तर उर्वशी नामक स्वर्गकी वेश्याका (रूप) देखकर मित्रावरुणका वीर्य स्खलित हुआ । उसी वीर्यसे वसिष्ठजीने दूसरा जन्म पाया । यथा:—

तस्माच्छापाच्च मित्रावरुणयोस्तेजसि वसिष्ठतेजः प्रविष्टम् । उर्वशीदर्शनोद्भूतवीर्यप्रपातयोः सकाशात् वसिष्ठो देहमपरं लेभे ॥ ६ ॥ (विष्णुपुराण, ४ अंश, ५ अध्याय)

इस प्रकार परस्परके शापसे दोनोंने प्राण छोडे । फिर निमिराजा सब लोगोंके नेत्रोंपर निमेषरूपसे स्थिति करने लगे । राजा निमि परमतेजस्वी थे । इनके तेजस्वी होनेका प्रमाण उप-रोक्त वृत्तान्तसे प्रामाणिक होता है ।

इति तेषां वचो भूयः श्रुत्वा राजा शशिध्वजः ।
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठो भक्तिप्रवणया धिया ॥ १८ ॥

वचन बोलनेमें श्रेष्ठ राजा शशिध्वजने उनके यह वाक्य सुनकर भक्तिसे हृदयमें प्रणाम करके फिर कहना आरम्भ किया ॥ १८ ॥

शशिध्वज उ०—बहूनां जन्मनामन्ते तीर्थक्षेत्रादियोगतः ।
दैवाद्भवेत्साधुसंगस्तस्मादीश्वरदर्शनम् ॥ १९ ॥

शशिध्वजने कहा—तीर्थ, क्षेत्र आदिके दर्शनफलसे बहुत जन्मके पीछे दैवके अनुग्रहसे जीवको साधुका संग प्राप्त होता है। इस साधुसंगसेही जीवको ईश्वरका साक्षात् होता है ॥ १९ ॥

ततः सालोक्यतां प्राप्य भजन्त्यादृतचेतसः ।
भुक्त्वा भोगाननुपमान् भक्तो भवति संसृतौ ॥ २० ॥

फिर विष्णुलोकमें जाय आदरपूर्णहृदयसे भगवान्‌का भजन करता है। इस प्रकार जीव अनुपम भोग्य वस्तुभोग करके संसारमें भक्त होता है ॥२०॥

रजोजुषः कर्म्मपराः हरिपूजापराः सदा ।
तन्नामानि प्रगायन्ति तद्रूपस्मरणोत्सुकाः ॥ २१ ॥

रजोगुणका अवलम्बन करनेवाले सदा कर्म करते रहकर नारायणजीकी पूजा करते, सदा नारायणजीका नाम गाते हैं और सदा नारायणरूप स्मरण करनेको उन्मुख रहते हैं ॥ २१ ॥

अवतारानुकरणपर्वव्रतमहोत्सवाः ।
भगवद्भक्तिपूजाढ्याः परमानन्दसम्प्लुताः ॥ २२ ॥

वे लोग भगवान्‌के अवतारका अनुकरण करते हैं, एकादशी आदि पर्व२में व्रत करते हैं, महोत्सव, भगवान्‌के प्रति भक्ति, भगवान्‌की पूजा इन सब कार्योंसेही उनके हृदयमें आनन्दका प्रवाह प्रवाहित होता है ॥ २२ ॥

अतो मोक्षं न वाञ्छन्ति दृष्टभुक्तिफलोदयाः ।
भुक्त्वा लभन्ते जन्मानि हरिभावप्रकाशकाः ॥ २३ ॥

उन समस्त भक्तजनोंने भोगके फलका उदय प्रत्यक्ष किया है, इसी कारणसे वह मोक्षकी प्रार्थना नहीं करते । भक्तजन स्वर्गभोग करनेके पीछे जन्मग्रहण करके हरिभाव प्रगट किया करते हैं ॥ २३ ॥

हरिरूपाः क्षेत्रतीर्थपावना धर्म्मतत्पराः ।
सारासारविदः सेव्यसेवका द्वैतविग्रहाः ॥ २४ ॥

भक्तजन नारायणकेही रूप हैं । वे समस्त क्षेत्र और तीर्थोंको पवित्र करते हैं । वह धर्मानुष्ठानमें तत्पर रहते हैं । वह समस्त सार असारको जानते हैं । वह सेव्यसेवक इन दो मूर्तियोंमें रहते हैं ॥ २४ ॥

यथाऽवतारः कृष्णस्य तथा तत्सेविनामिह ।
एवं निमेर्निमिषता लीला भक्तस्य लोचने ॥ २५ ॥

जैसे कृष्णजीने अवतार लियाथा, वैसेही उनके सेवकभी समय २ पर अवतार लिया करते हैं । इसी कारणसे निमि, भक्तोंके नेत्रोंपर निमेषरूपसे स्थिति करता है, यहभी केवल भगवान्‌की लीलाही है ॥ २५ ॥

मुक्तस्यापि वसिष्ठस्य शरीरभजनादरः ।
एतद्वः कथितं भूपा माहात्म्यं भक्तिभक्तयोः ॥ २६ ॥

वसिष्ठजी मुक्त होकरभी जो शरीर ग्रहण कियाथा तिसकाभी कारण यही है । हे राजाओ ! यह आपसे भक्ति और भक्तका माहात्म्य कहा ॥ २६ ॥

सद्यः पापहरं पुंसां हरिभक्तिविवर्द्धनम् ।
सर्व्वेन्द्रियस्थदेवानामानन्दसुखसञ्चयम् ॥
कामरागादिदोषघ्नं मायामोहनिवारणम् ॥ २७ ॥

इसके श्रवण करनेसे मनुष्यके समस्त पाप तत्काल दूर होजाते हैं और इससे हरिभक्ति बढती है । इससे इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवताओंकी आनन्द और सुखका सन्दोह बढता है । इससे कामरागादि सब दोष दूर होते हैं । इससे मायामोह सबका निवारण होता है ॥ २७ ॥

नानाशास्त्रपुराणवेदविमलव्याख्यामृताम्भोनिधिं
संमथ्यातिचिरं त्रिलोकमुनयो व्यासादयो भावुकाः ।
कृष्णे भावमनन्यमेवममलं हैयङ्गवीनं नवं
लब्ध्वा संसृतिनाशनं त्रिभुवने श्रीकृष्णतुल्याय ते ॥ २८ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे भक्तिभक्तमाहात्म्यं नाम ादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

व्यासादि त्रिलोकीके विचार करनेवाले मुनिलोगोंने वेद पुराणादि नाना प्रकारके शुद्ध शास्त्रीयव्याख्यारूप अमृतसारको बहुत समयतक मंथन कर यह परमपवित्र असाधारण कृष्णप्रीतिरूप हैयङ्गवीन (१) प्राप्त कियाथा । इससे भवबन्धन छूट जाता है । व्यासादि मुनियोंको ऐसा (अनदेखा और अनसुना) फल प्राप्त करते देखकर लोगोंने भगवान् श्रीकृष्णजीके साथ उनकी तुलना की है ॥ २८ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां भक्तिभक्तमाहात्म्यं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

तृतीयांशः ।

त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

सूत उवाच-इति भूपः सभायां स कथयित्वा निजाः कथाः ।
शशिध्वजः प्रीतमनाः प्राह कल्किं कृताञ्जलिः ॥ १ ॥

उग्रश्रवा बोले-राजा शशिध्वज प्रसन्नहृदयसे सभामें स्थित हुए मनुष्योंके सन्मुख अपना वृत्तान्त प्रगट कर हाथ जोड कल्किजीसे कहने लगा ॥ १ ॥

शशिध्वज उ०-त्वं हि नाथ त्रिलोकेश एते भूपास्त्वदाश्रयाः ।
मां तथा विद्धि राजानं त्वन्निदेशकरं हरे ॥ २ ॥

---

(१) ताजे दुहे दूधसे जो घी तैयार होता है तिसको हैयङ्गवीन कहते हैं । अमरकोषमें कहा है-" तत्तु हैयङ्गवीनं यद् ह्योगोदोहोद्भवं घृतम् " हारावली नामक संस्कृत कोषमें लिखा है कि, करज मन्थज और कलम्बुट शब्द नवनीत (मक्खन) के पर्याय वाचक हैं । (ग्रंथकार)

शशिध्वजने कहा–हे हरे ! तुम त्रिलोकीके नाथ हो, यह समस्त राजा तुम्हारे आश्रय हैं । इन राजाओंको और मुझको अपनी आज्ञाके प्रति-पालन करनेमें तैयार जानो ॥ २ ॥

तपस्तप्तुं यामि कामं हरिद्वारं मुनिप्रियम् ।
एते मत्पुत्रपौत्राश्च पालनीयास्त्वदाश्रयाः ॥ ३ ॥

अब मैं मुनियोंके प्यारे हरिद्वारमें तप करनेको जाता हूं । यह मेरे बेटे पोते सब आपहीके आश्रित हैं, आपही इनका प्रतिपालन कीजियेगा ॥ ३ ॥

ममापि कामं जानासि पुरा जाम्बवतो यथा ।
निधनं द्विविदस्यापि तदा सर्वं सुरेश्वर ॥ ४॥

हे सुरनाथ ! मेरा जो अभिप्राय है सो तुम जानतेही हो और पहले जन्ममें जो अपने जाम्बवान् और द्विविद नामक वानरका नाश कियाथा सोभी आपको यादही है ॥ ४ ॥

इत्युक्त्वा गन्तुमुद्युक्तं भार्य्यया सहितं नृपम् ।
लज्जयाऽधोमुखं कल्किं प्राहुर्भूपाः किमित्युत ॥ ५ ॥

राजा शशिध्वज यह कहकर भार्याके साथ गमन करनेको तैय्यार हुआ । तब कल्किजीने लाजसे मुख नीचा करलिया तब राजा लोगोंने इसका कारण जाननेकी अभिलाषासे कहा ॥ ५ ॥

हे नाथ किमनेनोक्तं यच्छ्रुत्वा त्वमधोमुखः ।
कथं तद्ब्रूहि कामं नः किं वा नः शाधि संशयात् ॥ ६ ॥

हे नाथ ! राजा शशिध्वजने क्या वाक्य कहा ? आपने इसको किस कार-णसे मुख नवायकर सुना; आप कहकर हमारा संशय दूर कीजिये ॥ ६ ॥

कल्किरुवाच–अमुं पृच्छत वो भूपा युष्माकं संशयच्छिदम् ।
शशिध्वजं महाप्राज्ञं मद्भक्तिकृतनिश्चयम् ॥ ७ ॥

कल्किजीने कहा–हे राजाओ ! आप लोग राजा शशिध्वजसेही इसका

कारण पूछैं, यह आप लोगोंकी संशयको दूर करेंगे । यह राजा शशिध्वज उत्तम ज्ञानी है और मुझमें इसकी गाढी भक्ति है ॥ ७ ॥

इति कल्केर्वचः श्रुत्वा ते भूपाः प्रोक्तकारिणः ।
राजानं तं पुनः प्राहुः संशयापन्नमानसाः ॥ ८ ॥

कल्किजीके यह वचन सुनकर राजालोगोंने उनके कहनेके अनुसार संशययुक्त हृदयसे राजा शशिध्वजसे फिर कहा ॥ ८ ॥

नृपा ऊचुः—किंत्वया कथितं राजञ्छशिध्वज महामते ।
कथं कल्किस्तद्वदिदं श्रुत्वैवाभूदधोमुखः ॥ ९ ॥

राजा बोले—हे शशिध्वज ! आप महामतिमान् और राजा हैं । आपने इस समय क्या कहा और आपके वचनको सुनकर कल्किजीने किस कारणसे मुख नीचा करलिया ? ॥ ९ ॥

शशिध्वज उ०—पुरा रामावतारेण लक्ष्मणादिन्द्रजिद्वधम् ।
मोक्षं चालक्ष्य द्विविदो राक्षसत्वात्स दारुणात् ॥ १० ॥

शशिध्वज बोले—पहले जब रामचंद्रजीने अवतार लियाथा तब लक्ष्मणजीने इन्द्रजित्का वध किया, इस कारण दारुण राक्षसभावसे इन्द्रजित्की मुक्ति हुई ॥ १० ॥

अग्न्यागारे ब्रह्मवीरवधेनैकाहिको ज्वरः ।
लक्ष्मणस्य शरीरेण प्रविष्टो मोहकारकः ॥ ११ ॥

अग्निशालामें ब्राह्मणका वध करनेसे ऐकाहिक (इकतरा) ज्वर लक्ष्मणजीके शरीरमें प्रवेश कर गया, इससे लक्ष्मणजीको मोहादि उपद्रव होने लगे ॥ ११ ॥

तं व्याकुलमभिप्रेक्ष्य द्विविदो भिषजां वरः ।
अश्विवंशेन सञ्जातः रूयापयामास लक्ष्मणम् ॥ १२ ॥

आश्विनीकुमारके वंशसे उत्पन्न हुए वैद्योंमें श्रेष्ठ द्विविदनामक वानरने लक्ष्मणजीको व्याकुल देखकर एक मंत्र सुनाया ॥ १२ ॥

लिखित्वा रामभद्रस्य संज्ञापत्रीमतन्द्रितः ।
लक्ष्मणं दर्शयामास ऊर्द्ध्वे तिष्ठन्महाभुजः ॥ १३ ॥

और यही मंत्र लिखकर तत्काल रामचंद्रजीके सन्मुख ऊंचे स्थानमें रखकर लक्ष्मणजीको दिखाता हुआ ॥ १३ ॥

लक्ष्मणो वीक्ष्य तां पत्रीं विज्वरो बलवानभूत् ।
स ततो द्विविदं प्राह वरं वरय वानर ॥ १४ ॥

इस पत्रको देखकर लक्ष्मणजी ज्वररहित और बलवान् हुए । फिर लक्ष्मणजीने द्विविद नामक वानरसे कहा—हे वानर ! तुम वर मांगो ॥ १४ ॥

द्विविदस्तद्वचः श्रुत्वा लक्ष्मणं प्राह हृष्टवत् ।
त्वत्तो मे मरणं प्रार्थ्यं वानरत्वाच्च मोचनम् ॥ १५ ॥

द्विविदने यह सुन हर्षित होकर लक्ष्मणजीसे कहा—मैं प्रार्थना करताहूं कि, आपके हाथसे मेरी मृत्यु हो और वानरभावसे छूट जाऊं ॥ १५ ॥

पुनस्तं लक्ष्मणः प्राह मम जन्मान्तरे तव ।
मोचनं भविता कीश बलरामशरीरिणः ॥ १६ ॥

फिर लक्ष्मणजीने कहा—मैं दूसरे जन्ममें बलदेवरूपसे अवतार लूंगा । उस समय हमारे हाथसे तुम्हारा वानरभाव छूट जायगा ॥ १६ ॥

समुद्रस्योत्तरे तीरे द्विविदो नाम वानरः ।
ऐकाहिकं ज्वरं हन्ति लिखितं यस्तु पश्यति ॥ १७ ॥

" समुद्रस्योत्तरे तीरे द्विविदो नाम वानरः "—(समुद्रके उत्तर तीरपर द्विविद नाम वानर है) इस मंत्रको लिखकर देखनेसे इकतरे ज्वरका नाश होजाता है ॥ १७ ॥

इति मन्त्राक्षरं द्वारि लिखित्वा तालपत्रके ।
यस्तु पश्यति तस्यापि नश्यत्यैकाहिकज्वरः ॥ १८ ॥

यह मंत्र द्वारपर अथवा तालपत्रपर लिखकर दर्शन करनेसेभी इकतरा ज्वर दूर होजाता है ॥ १८ ॥

इति तस्य वरं लब्ध्वा चिरायुः सुस्थवानरः ।
बलरामास्त्रभिन्नात्मा मोक्षमापाऽकुतोभयम् ॥ १९ ॥

इस प्रकार लक्ष्मणजीसे वर पाय द्विविद वानर निरोगशरीरसे बहुत दिनों-तक जीवित रहा । बहुत कालके पीछे बलदेवजीके अस्त्रसे निडर हो तिसने प्राण छोडे और मोक्षपदको प्राप्त हुआ ॥ १९ ॥

तथा क्षेत्रे सूतपुत्रो निहतो लोमहर्षणः ।
बलरामास्त्रमुक्तात्मा नैमिषेऽभूत्स्ववाञ्छया ॥ २० ॥

ऐसेही आपकी इच्छाके अनुसार सूतपुत्र लोमहर्षण नैमिषारण्यमें बल-देवजीके अस्त्रसे मृतक हुआ था ॥ २० ॥

जाम्बवांश्च पुरा भूपा वामनत्वं गते हरौ ।
तस्याप्यूर्द्ध्वगतं पादं तत्र चक्रे प्रदक्षिणम् ॥ २१ ॥

हे राजाओ ! पहले जब वामनावतार हुआ, तब जिस समय वामनजीने तीन पैंड भूमिसे सब लोकोंको नाप लियाथा, तिस समय जाम्बवान्ने उनके उस चरणकी जो ऊपरके लोगोंमें स्थित था प्रदक्षिणा की ॥ २१ ॥

मनोजवं तं निरीक्ष्य वामनः प्राह विस्मितः ।
मत्तो वृणु वरं काममृक्षाधीश महाबल ॥ २२ ॥

मनके समान जाम्बवान्का शीघ्रवेग देखकर वामनजी विस्मित होकर बोले—हे ऋक्षपते ! तुम महाबली और पराक्रमी हो, तुम हमसे कोई वर मांगो ॥ २२ ॥

इति तं हृष्टवदनो ब्रह्मांशो जाम्बवान् मुदा ।
प्राह भो चक्रदहनान्मम मृत्युर्भविष्यति ॥ २३ ॥

यह वचन सुनकर ब्रह्माजीके अंशसे उत्पन्न हुए जाम्बवान्ने हँस सुखसे कहा—हमको यह वर दीजिये कि, आपके चक्रसे हमारी मृत्यु हो ॥ २३ ॥

इत्युक्ते वामनः प्राह कृष्णजन्मनि मे तव ।
मोक्षश्चक्रेण संभिन्नशिरसः संभविष्यति ॥ २४ ॥

यह सुनकर वामनजीने कहा कि, जब मैं कृष्णरूपसे अवतार लूंगा तब हमारे चक्रसे तुम्हारा शिर कटेगा और तुम मुक्ति पाओगे ॥ २४ ॥

मम कृष्णावतारे तु सूर्य्यभक्तस्य भूपतेः ।
सत्राजितस्य मण्यर्थे दुर्वादः समजायत ॥ २५ ॥

जब फिर कृष्णावतार हुआ था, तब मैं सत्राजितनामक राजा था मैं सूर्यकी आराधना किया करता । उस काल मुझसे मणिके निमित्त कृष्णजीका एक कलंक हुआ ॥ २५ ॥

प्रसेनस्य मम भ्रातुर्वधस्तु मणिहेतुकः ।
सिंहात्तस्यापि मण्यर्थे वधो जाम्बवता कृतः ॥ २६ ॥

हमारे छोटे भ्राताका नाम प्रसेन था । एक सिंहने मणिके लिये मेरे छोटे भ्राताको मारडाला, फिर सिंहभी इस मणिके निमित्तसेही जाम्बवान् करके मारा गयाथा ॥ २६ ॥

दुर्वादभयभीतस्य कृष्णस्यामिततेजसः ।
मण्यन्वेषणचित्तस्य ऋक्षेणाभूद्रणो बिले ॥ २७ ॥

सीमारहित तेजवाले कृष्णजी कलंकके भयसे भीत हो मणिको खोजने लगे; फिर एक गुहामें जाम्बवान्के साथ इनका संग्राम हुआ ॥ २७ ॥

स निजेशं परिज्ञाय तच्चक्रग्रस्तबन्धनम् ।
मुक्तो बभूव सहसा कृष्णं पश्यन् सलक्ष्मणम् ॥ २८ ॥

जाम्बवान्ने अपने प्रभुको पहचाना । कृष्णजीके चक्रसे उसका मस्तक काटागया । जाम्बवान्ने लक्ष्मणयुक्त श्रीकृष्णजीका दर्शन करते करते प्राण छोडदिये ॥ २८ ॥

नवदूर्वादलश्यामं दृष्ट्वा प्रादान्निजात्मजाम् ।
तदा जाम्बवतीं कन्यां प्रगृह्य मणिना सह ॥ २९ ॥

परंतु इस ऋक्षराजने, नवदूर्वादलकी समान कृष्णजीकी श्याममूर्तिका दर्शन करके, उनको मणिके साथ अपनी जाम्बवती नामक कन्या दान करदी ॥ २९ ॥

द्वारकां पुरमागत्य सभार्यां मामुपाह्वयत् ।
आहूय मह्यं प्रददौ मणिं मुनिगणार्च्चितम् ॥ ३० ॥

कृष्णजीने फिर द्वारकामें आय सभामें मुझको बुलाया, उस काल उन्होंने वह मणि जो कि, महर्षियोंकोभी दुर्लभ है मुझको देदी ॥ ३० ॥

सोऽहं तां लज्जया तेन मणिना कन्यकां स्वकाम् ।
विवाहेन ददावस्मै लावण्याज्जगृहे मणिम् ॥ ३१ ॥

उस कालमें मैंने अत्यन्त लजाय वह मणि और सत्यभामा नामक कन्या कृष्णजीको दान करी । कृष्णजीने दोनोंका लावण्य देखकर दोनोंको ग्रहण किया ॥ ३१ ॥

तां सत्यभामामादाय मणिं मय्यर्प्य स प्रभुः ।
द्वारकामागत्य पुनर्गजाह्वयमगाद्विभुः ॥ ३२ ॥

कुछ दिन पीछे कृष्णजी मेरे पास मणिको रखकर सत्यभामाको साथ ले हस्तिनापुरको गये (१) ॥ ३२ ॥

---

(१) निम्ननामक राजाके प्रसेन और सत्राजित नामक दो पुत्र थ । सत्राजित सूर्यका तप किया करता था, एक समय जब कि सूर्यका तप कर रहाथा कि, सूर्यनारायण प्रसन्न हाकर वहां आये । सत्राजित बोला—" हे देव ! जैसा तेजस्वी रूप आपका आकाशमें ह ऐसेही यहाँभी देखताहूं, तुम्हारी प्रसन्नताका कोई भी चिह्न दृष्टि नहीं आता । तब सूर्य भगवान्ने स्यमन्तकनामक मणि गलेसे निकाली । मणिकी प्रभा अलग होजानेसे सत्राजितने सूर्यनारायणकी प्रसन्न मूर्ति देखी । सूर्यभगवान्ने कहा—हे सत्राजित ! वर मांगो । सत्राजितने वही स्यमन्तक मणि मांगी। सूर्यभगवान् वह मणि देकर आकाशमार्गको चलेगये । सत्राजित घरपर आया । इस मणिसे प्रति दिन आठ भार सुवर्ण निकला करता था । इस मणिके प्रभावद्वारा राज्यसे अनावृष्टि, अतिवृष्टि, सर्पभय, अग्निभय और चोरोंके उपद्रव आदि दूर होगये । भगवान् श्रीकृष्णजीने उस मणिको राजा उग्रसेनके योग्य विचारकर सत्राजितसे उसके विषयमें कुछ कहा । वह बलसे भी मणिका ले सकतेथे परन्तु जातिविरोधके भयसे मणिको बलस न लेसके । यथाः-
अच्युतोऽपि तद्रत्नमुग्रसेनस्य भूपतेर्योग्यमेतादिति लिप्साञ्चके गोत्रभदभयाच्च शक्तोऽपि न जहार॥
(विष्णुपुराण—४ अंश १३ अध्याय)

सत्राजित समझ गया कि, कृष्णजीको इस मणि लेनेका लोभ उत्पन्न हुआ है । कदाचित् मुझसे मांग न बैठे, यह विचार स्यमन्तकमणि अपने भ्राता प्रसेनको देदी । इस मणिमें यह प्रभाव था कि, जो पवित्र होकर इसको धारण करता उसका मंगल हाता, अपवित्र होकर धारण करता तो उसका प्राण जाताथा । प्रसेनने पवित्र हाकर मणिको धारण नहीं किया । प्रसेन एक दिन इस मणिको धारण करके शिकार खेलने गयाथा, वहां एक सिंह प्रसेनको और उसके घोडेको मारकर स्यमन्तकमणि लेगया । उसही वनमें जाम्बवान्नामक ऋक्ष-

राज रहताथा । वह शेरको मारकर मणि ले आया और अपने पुत्रके खेलनेको वह मणि ददी । इस ओर प्रसेनको मृगयासे न आया देखकर समस्त यदुगण कानाफूसी करने लगे कि, कृष्णजी इस मणिको चाहतेथे, कदाचित् उन्होंनेही प्रसेनको मार डाला और किसीका यह काम नहीं ह । यथाः–

अनागच्छति च तस्मिन्प्रदेशे कृष्णो मणिरत्नमभिलषितवान् न च प्राप्तवान् नूनमेतदस्य कर्म नान्येन प्रसेनो हन्यत इत्याखिल एव यदुलोकः परस्परं कर्णाकर्ण्यकथयत् ॥

(विष्णुपुराण ४ अश, १३ अध्याय)

कृष्णजीने यह अपवाद सुना, वह यादवोंकी सेनाको साथ लेकर प्रसेनके घोडेका पदचिह्न देखते हुए चले; कुछ दूर जाकर देखा कि, प्रसेन घोडेके साथ सिंहके आघातसे मृत्युको प्राप्त हुआ है । सब साथियोंको कृष्णजीने सिंहके चरणचिह्न दिखलाकर अपने कलंकको धोडाला और उन्हीं चिह्नोंको देखते हुए चले । उन्होंने आगे बढकर देखा कि, सिंहको रीछने मारडाला है । तब वह रीछके चरणचिह्न देखते २ जाम्बवान्की गुफामें प्रवेश करते हुए वहां-पर जाम्बवान्के साथ कृष्णजीका भयानक युद्ध हुआ । कृष्णजीने युद्धमें जय पाई । फिरः—

स च प्रणिपत्यैनं पुनरपि प्रसाद्य जाम्बवतीं नाम कन्यां गृहागमनार्घ्यभूतां ग्राहयामास ॥ स्यमन्तकमणिमथासौ प्रणिपत्य तस्मै प्रददौ । अच्युतोऽप्यतिप्रणतात्तस्मादग्राह्यमपि तन्मणिरत्नमात्मशोधनाय जग्राह ॥ (विष्णुपुराण, ४ अंश, १३ अध्याय)

कृष्णजीको प्रणाम करके फिर प्रसन्न कर जाम्बवान्ने गृहपर जाय अर्घ्यरूपमें अपनी जाम्ब-वतीनामक कन्या देदी । वह उसके साथही उस प्रणत ऋक्षने स्यमन्तमकणिकोभी दिया । कृष्णजीने कलंकको दूर करनेकी अभिलाषासे उस मणिको ग्रहण किया । कृष्णजी मणि लेकर द्वारकामें गये । वहाँपरः—

भगवानपि यथानुभूतमशेषयादवसमाजे यथावदाचचक्षे ।
स्यमन्तकं च सत्राजिताय दत्त्वा मिथ्याभिशस्तिविशुद्धिमवाप ।
जाम्बवतीं चान्तःपुरे निवेशयामास । सत्राजितोऽपि मयाऽस्या-
भूतमलिनमारोपितामिति जातसंत्रासः स्वसुतां सत्यभामां भगवते भार्यां ददौ ।

(विष्णुपुराण, ४ अंश, १३ अध्याय)

जो जो बातें होगईथीं कृष्णजीने वह सब यादवोंसे निवेदन करके सत्राजितको स्यमन्तक मणि देदी । वह कलंकसे छूट गये । जाम्बवतीको रनिवासमें रक्खा । सत्राजितने मनमें विचारा कि, मैंने कृष्णजीको मिथ्या कलंक लगाया, यह विचार भयके मारे अपनी कन्या सत्यभामा कृष्णजीको विवाह दी । कुछ दिन पीछे शतधन्वानामक यादव सत्राजितका प्राण-सहार करके स्यमन्तकमणि ले गया था । कृष्ण और बलदेव दोनों जन सत्यभामाके कहनेसे मणिके लेनेको शतधन्वाके पीछे गये । परन्तु शतधन्वा वह मणि अक्रूरजीको देकर भागाथा कृष्णजीने शतधन्वाका प्राणसंहार किया, परन्तु मणि न पाई; बलदेवजीने कृष्णजीकी बातका विश्वास न करके समझा कि, स्वयं मणिको भोगनेके कारण इन्होंने हमसे यह कहा कि, मणि नहीं मिली । यह सोच समझकर इन्होंने देश छोड दिया फिर यह बात प्रगट हुई कि, कृष्णजीने मणि नहीं ली बरन् मणि अक्रूरजीके पास थी । कृष्णजीने व दूसरे यादवोंने इनको मणिको धारण करनेकी सम्मति दीथी । इत्यादि ॥ (यह स्यमन्तकमणिका उपाख्यान है)

गते कृष्णे मां निहत्य शतधन्वाऽग्रहीन्मणिम् ।
अतोऽहमिह जानामि पूर्वजन्मनि यत्कृतम् ॥ ३३ ॥

जब कृष्णजी हस्तिनापुरमें चले गये तब शतधन्वा नामक राजाने मेरा संहार करके मणिको ग्रहण करलिया । इस कारणसे पूर्वजन्ममें कल्किजीने जो कुछ किया था, उसको मैं जानता हूं ॥ ३३ ॥

मिथ्याभिशापात्कृष्णस्य नैवाभून्मोचनं मम ।
अतोऽहं कल्किरूपाय कृष्णाय परमात्मने ॥
दत्त्वा रमां सत्यभामारूपिणीं यामि सद्गतिम् ॥ ३४ ॥

मैंने कृष्णजीको मिथ्या कलङ्क लगाया, इस कारणसे उस जन्ममें मेरी मुक्ति नहीं हुई । इसीसे मैं इस जन्ममें कल्किरूप परमात्मा कृष्णको सत्यभामारूपिणी रमा नामक कन्या देकर श्रेष्ठगतिको प्राप्त करता हूं ॥ ३४ ॥

सुदर्शनास्त्रघातेन मरणं मम कांक्षितम् ।
मरणेऽभूदिति ज्ञात्वा रणे वाञ्छामि मोचनम् ॥ ३५ ॥

मैंनेभी कामना की थी कि, सुदर्शनचक्रके प्रहारसे मेरी मृत्यु हो, संग्राममें मृत्यु होनेसे मुक्ति होगी, यह जानकरही ऐसी कामना की थी ॥ ३५ ॥

इत्यसौ जगतामीशः कल्किः श्वशुरघातनम् ।
श्रुत्वैवाधोमुखस्तस्थौ ह्रिया धर्म्मभिया प्रभुः ॥ ३६ ॥

संसारके अधिपति प्रभु कल्किजी इस प्रकारसे श्वशुरका वध स्मरण करके धर्मभय और लाजके मारे नीचेको मुख नवालेते हुए ॥ ३६ ॥

अत्याश्चर्य्यमपूर्वमुत्तममिदं श्रुत्वा नृपा विस्मिता
लोकाः संसदि हर्षिता मुनिगणाः कल्केर्गुणाकर्षिताः ।
आख्यानं परमादरेण सुखदं धन्यं यशस्यं परं
श्रीमद्भूपशशिध्वजेरितवचो मोक्षप्रदं चाभवन् ॥ ३७ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे शशिध्वजेरितचक्रमरणकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अति आश्चर्यवाले अपूर्व मनोहर इस उपाख्यानको सुनकर सभामें स्थित हुए राजालोग विस्मित हुए, सभासदोंको आनन्द प्राप्त हुआ । महर्षिजन कल्किगुणोंसे मोहित हो गये । श्रीमान् राजा शशिध्वज करके कहे हुए इस उपाख्यानको जो श्रवण करता है, वह सुखी, धन्य, परमयशवान् होता और मोक्षको पाता है फिर उसको जन्ममृत्युकी घोर पीडा नहीं सहनी पडती ॥ ३७ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे बलदेवप्रसादमिश्रकृत-भाषाटीकायां शशिध्वजेरितचक्रमरणाख्यानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

तृतीयांशः ।

चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

सूत उवाच-ततः कल्किर्महातेजाः श्वशुरं तं शशिध्वजम् ।
समामन्त्र्य वचाश्चित्रैः सह भूपैर्ययौ हरिः ॥ १ ॥

उग्रश्रवा बोले-इसके उपरान्त महातेजस्वी कल्किजी विचित्र वचन कह अपने श्वशुर शशिध्वजको संतुष्ट कर व उनसे सम्भाषण करके चले गये ॥ १ ॥

शशिध्वजो वरं लब्ध्वा यथाकामं महेश्वरीम् ।
स्तुत्वा मायां त्यक्तमायः सप्रियः प्रययौ वनम् ॥ २ ॥

राजा शशिध्वजभी कल्किजीसे मनमाना वर पाय महेश्वरी मायाका स्तोत्र करनेसे मोहबन्धनसे छूट प्यारी भार्याके साथ वनको चलागया ॥ २ ॥

कल्किः सेनागणैः सार्द्धं प्रययौ काञ्चनीं पुरीम् ।
गिरिदुर्गावृतां गुप्तां भोगिभिर्विषवर्षिभिः ॥ ३ ॥

फिर कल्किजी सेनाके सहित काञ्चनीपुरीमें गये । इस पुरीके चारों ओर पहाडियोंका कोट है, विषको वर्षानेवाले सांपोंसे इसकी रक्षा होती है ॥ ३ ॥

विदार्य्य दुर्गं सगणः कल्किः परपुरञ्जयः ।
छित्त्वा विषायुधान्बाणैस्तां पुरीं ददृशेऽच्युतः ॥ ४ ॥

शत्रुपुरके जीतनेवाले अच्युत कल्किजी अपनी सेनाके साथ उस कठिन कोटको भेदकर बाण चलाय विषैले सर्पोंका संहार करके पुरीमें प्रवेश करते हुए ॥ ४ ॥

मणिकाञ्चनचित्राढ्यां नागकन्यागणावृताम् ।
हरिचन्दनवृक्षाढ्यां मनुजैः परिवर्ज्जिताम् ॥ ५ ॥

और देखा कि, वह पुरी बहुतसी मणियों करके और कंचनकी राशिसे सजरही है । उसके स्थान२में नागोंकी कन्या शोभायमान हैं, बीच२में कल्पवृक्ष शोभित होरहे हैं, परन्तु वहांपर एक भी मनुष्य नहीं है ॥ ५ ॥

विलोक्य कल्किः प्रहसन् प्राह भूपान् किमित्यहो ।
सर्पस्येयं पुरी रम्या नराणां भयदायिनी ॥
नागनारीगणाकीर्णा किं यास्यामो वदन्त्विह ॥ ६ ॥

इन अद्भुत बातोंको देख कल्किजीने मुसकायकर राजाओंसे कहा—देखो, कैसा आश्चर्य है ! यह सर्पोंकी पुरी है । मनुष्योंके लिये यह स्थान अत्यन्त भयानक है । इसमें केवल नागकन्यागण बसता है, अब बतलाओ कि, इसमें प्रवेश करना चाहिये वा नहीं ? ॥ ६ ॥

इतिकर्त्तव्यताव्यग्रं रमानाथं हरिं प्रभुम् ।
भूपांस्तदनुरूपांश्च खे वागाहाशरीरिणी ॥ ७ ॥

रमानाथ प्रभु हरि और राजालोग उस स्थानमें कुछ कर्त्तव्यनिश्चय न करसके चिन्ता कररहे हैं, इसी समयमें आकाशवाणी हुई ॥ ७ ॥

विलोक्य नेमां सेनाभिः प्रवेष्टुं भोस्त्वमर्हसि ।
त्वां विनाऽन्ये मरिष्यन्ति विषकन्यादृशादपि ॥ ८ ॥

इस पुरीमें सेनाके साथ आपको प्रवेश करना उचित नहीं है, कारण कि, इस पुरीके भीतर रहनेवाली विषकन्याकी दृष्टि पडनेसे केवल आपको छोड और सबही कालके कौर होंगे ॥ ८ ॥

आकाशवाणीमाकर्ण्य कल्किः शुकसहायकृत् ।
ययावेकः खड्गधरस्तुरगेण त्वरान्वितः ॥ ९ ॥

ऐसी आकाशवाणीको सुन शीघ्रतासे कल्किजी खड्ग लेकर अकेलेही घोडे पर सवार हो शुकपक्षीके साथ गमन करने लगे ॥ ९ ॥

गत्वा तां ददृशे वीरो धीराणां धैर्य्यनाशिनीम् ।
रूपेणालक्ष्य लक्ष्मीशं प्राह प्रहसितानना ॥ १० ॥

कुछ दूरपर जायकर कल्किजीने एक अपूर्व कन्याको देखा, इस कन्याके देखनेसे ज्ञानी लोगोंका भी धीरज जाता रहता है । अपूर्वरूपवाले कल्किजीको देखकर कन्या मुसकाती हुई बोली ॥ १० ॥

विषकन्योवाच–संसारेऽस्मिन्मम नयनयोर्वीक्षणक्षीणदेहा
लोका भूपाः कति कति गता मृत्युमत्युग्रवीर्य्याः ।
साऽहं दीनाऽसुरसुरनरप्रेक्षणप्रेमहीना
ते नेत्राब्जद्वयरससुधाप्लाविता त्वां नमामि ॥ ११ ॥

विषकन्या बोली–इस जगत्में महावीर्यशाली जाने कितने शतराजा व और दूसरे मनुष्य देहको नाश कराय कालके ग्रासमें गिरे हैं । अतएव मैं अत्यन्त दुःखिनी हूं । असुर देवता मनुष्य किसीके साथभी मेरे प्रेमकी सम्भावना नहीं है । इस समयमें आपके दृष्टिपातरूप अमृतमें बही हूं । मैं आपको नमस्कार करती हूं ॥ ११ ॥

क्वाऽहं विषेक्षणा दीना क्वाऽमृतेक्षणसङ्गमः ।
भवेऽस्मिन् भाग्यहीनायाः केनाहो तपसा कृतः ॥ १२ ॥

मैं इस संसारमें विषदृष्टिवाली दीन और अत्यन्त अभागिनी हूं । आपकी दृष्टि अमृतमय है । मैंने ऐसी कौनसी तपस्या की थी जो आपके साथ समागम हुआ ॥ १२ ॥

कल्किरुवाच–कासि कन्यासि सुश्रोणि कस्मादेषा गतिस्तव ।
ब्रूहि मां कर्म्मणा केन विषनेत्रं तवाभवत् ॥ १३ ॥

काल्किजी बोले–हे सुश्रोणि ! तुम कौन हो ? किसकी कन्या हो ? तुम्हारी ऐसी अवस्था कैसी हुई ? तुमने ऐसा कौनसा कर्म कियाथा कि, जिससे तुम्हारी विषदृष्टि हुई है ॥ १३ ॥

विषकन्योवाच–चित्रग्रीवस्य भार्य्याऽहं गन्धर्वस्य महामते ।
सुलोचनेति विख्याता पत्युरत्यन्तकामदा ॥ १४ ॥

विषकन्या बोली–हे महामते ! मैं चित्रग्रीव नामक गन्धर्वकी भार्या हूं । मेरा नाम सुलोचना है । मैं अपने पतिके मनको (मन वचन कायसे) आनन्द देती थी ॥ १४ ॥

एकदाऽहं विमानेन पत्या पीठेन सङ्गता ।
गन्धमादनकुञ्जेषु रेमे कामकलाकुला ॥ १५ ॥

एक समय मैं स्वामीके साथ विमानमें सवार हो गन्धमादनपर्वतके कुञ्जमें जाय किसी शिलापर बैठी हुई विहारादि कररही थी ॥ १५ ॥

तत्र यक्षमुनिं दृष्ट्वा विकृताकारमातुरम् ।
रूपयौवनगर्वेण कटाक्षेणाहं सम्मदात् ॥ १६ ॥

उस कालमें मदनमदसे अत्यन्त मतवाली थी । वहांपर विकटाकार यक्ष-मुनिका (विकटरूप) देखकर रूप, यौवन और गर्वके जोरसे अंधी हो कटाक्षके साथ मैंने उनको देखा और हँसने लगी ॥ १६ ॥

सोपालम्भं मुनिः श्रुत्वा वचनं च ममाऽप्रियम् ।
शशाप मां क्रुधा तत्र तेनाहं विषदर्शना ॥ १७ ॥

मेरे मुखसे अवज्ञा (निरादर) का जनानेवाला उपहास वाक्य सुनकर मुनिने क्रोधमें भरकर मुझको शाप दिया, उस शापसेही मैं विषदृष्टि हुई हूं १७॥

निक्षिप्ताऽहं सर्पपुरे काञ्चन्यां नागिनीगणे ।
पतिहीना दैवहीना चरामि विषवर्षिणी ॥ १८ ॥

इसके उपरान्त मैं काञ्चनी नामक सर्पोंकी इस पुरीके मध्य नागिनियोंमें डालीगई । मैं दृष्टि करके विष वर्षाया करती हूं । मैं अत्यन्त भाग्यहीन और पतिहीन हो अकेली यहांपर घूमती रहती हूं ॥ १८ ॥

न जाने केन तपसा भवदृष्टिपथं गता ।
त्यक्तशापाऽमृताक्षाऽहं पतिलोकं व्रजाम्यतः ॥ १९ ॥

मैं नहीं जानती कि, मैंने ऐसी कौनसी तपस्या की थी जो आपकी दृष्टिके सामने पडी । आपके दर्शनसे मेरा शाप छूट गया, इस समय मेरी दृष्टि अमृतकी वर्षानेवाली हुई है अब मैं पतिके निकट जाती हूं ॥ १९ ॥

अहो तेषामस्तु शापः प्रसादो मा सतामिह ।
पत्युः शापादृषेर्मोक्षात्तव पादाब्जदर्शनम् ॥ २० ॥

कैसा आश्चर्य है! साधुओंकी प्रसन्नतासे शापही अच्छा है, क्योंकि ऋषिका शाप होनेसे शापके छूटनेके समय आपके चरणकमलका दर्शन हुआ ॥ २० ॥

इत्युक्त्वा सा ययौ स्वर्गं विमानेनार्कवर्चसा ।
कल्किस्तु तत्पुराधीशं नृपं चक्रे महामतिम् ॥ २१ ॥

यह कहकर विषकन्या सूर्यके समान विमानमें सवार हो स्वर्गमें चली गई । कल्किजीने भी महामति नामक राजाको उस काञ्चनीपुरीका महाराज किया ॥ २१ ॥

अमर्षस्तत्सुतो धीमान् सहस्रो नाम तत्सुतः ।
सहस्रतः सुतश्चासीद्राजा विश्रुतवानसिः ॥ २२ ॥

महामतिका पुत्र अमर्ष, अमर्षका पुत्र धीमान् सहस्र, सहस्रसे असिनामक विख्यात राजाने जन्मग्रहण किया ॥ २२ ॥

बृहन्नलानां भूपानां सम्भूता यस्य वंशजाः ।
तं मनुं भूपशार्दूलं नानामुनिगणैर्वृतः ॥ २३ ॥
अयोध्यायां चाभिषिच्य मथुरामगमद्धरिः ।
तस्यां भूपं सूर्य्यकेतुमभिषिच्य महाप्रभम् ॥ २४ ॥

तिनके वंशमें बृहन्नलनामक राजाओंकी उत्पत्ति हुई है, राजाओंमें शार्दूल उस मनुको अयोध्याके राज्यपर अभिषेकित कर नारायणजी मुनियोंके साथ मथुरामें गये । फिर वे महाप्रभावाले राजा सूर्यकेतुको उस मथुराके राज्यपर अभिषेकित कर ॥ २३ ॥ २४ ॥

भूपं चक्रे ततो गत्वा देवापिं वारणावते ।
अरिस्थलं वृकस्थलं माकन्दं च गजाह्वयम् ॥ २५ ॥

वारणावतमें यात्रा करते हुए उस स्थानमें देवापिको राज्य दे उसको अरिस्थल, वृकस्थल, माकन्द, हस्तिनापुर, वारणावत ॥ २५ ॥

पञ्चदेशेश्वरं कृत्वा हरिः शम्भलमाययौ ।
शौम्भं पौण्ड्रं पुलिन्दं च सुराष्ट्रं मगधं तथा ।
कविप्राज्ञसुमन्त्रेभ्यः प्रददौ भ्रातृवत्सलः ॥ २६ ॥

इन पांच देशोंका स्वामी करके नारायणजी शम्भलदेशमें गमन करते हुए । फिर भ्राताओंके प्यारे नारायणजीने कवि, प्राज्ञ और सुमंत्रको शौम्भ, पौण्ड्र, पुलिन्द और मगधदेश दान किया ॥ २६ ॥

कीकटं मध्यकर्णाटमन्ध्रमोड्रं कलिंगकम् ।
अङ्गं वङ्गं स्वगोत्रेभ्यः प्रददौ जगदीश्वरः ॥ २७ ॥

फिर जगन्नाथने अपने जातिवालोंको कीकट, मध्यकर्णाटक, अन्ध्र, ओड्र, अंग, वंग यह सब देश दिये ॥ २७ ॥

स्वयं शम्भलमध्यस्थः कङ्केन कलापकान् ।
देशं विशाखयूपाय प्रादात्कल्किः प्रतापवान् ॥ २८ ॥

इसके उपरान्त कल्किजीने स्वयं शम्भलदेशमें स्थित होकर राजा विशाखयूपको कंकक देश और कलापदेश यह दोनों देश दिये ॥ २८ ॥

चोलबर्बरकर्बाख्यान् द्वारकादेशमध्यगान् ।
पुत्रेभ्यः प्रददौ कल्किः कृतवर्म्मपुरस्कृतान् ॥ २९ ॥

अनन्तर इन्होंने कृतवर्म आदि पुत्रोंको द्वारकाके अन्तर्गत चोल, बर्बर, और कर्ब देश दिये ॥ २९ ॥

पित्रे धनानि रत्नानि ददौ परमभक्तितः ।
प्रजाः समाश्वास्य हरिः शम्भलग्रामवासिनः ॥ ३० ॥

उन्होंने परम भक्तिके साथ पिताजीको धन और रत्न दिये, फिर शम्भलके उन रहवासियोंको धीरज देकर ॥ ३० ॥

पद्मया रमया कल्किर्गृहस्थो मुमुदे भृशम् ।
धर्मश्चतुष्पादभवत्कृतपूर्णं जगत्त्रयम् ॥ ३१ ॥

गृहस्थाश्रममें स्थित हो रमा और पद्माके साथ परमानन्दसे समयको बिताने लगे । त्रिलोकी सत्ययुगसे पूर्ण होगई ॥ ३१ ॥

देवा यथोक्तफलदाश्चरन्ति भुवि सर्वतः ।
सर्वसस्या वसुमती हृष्टपुष्टजनावृता ।
शाठ्यचौर्य्यानृतैर्हीना आधिव्याधिविवर्जिता ॥ ३२ ॥

देवतालोग भक्तोंको अभिलषित फल दे करके पृथ्वीमें सब कहीं विचरण करने लगे । सर्व धान्योंसे पृथ्वी परिपूर्ण होगई । सब स्थानोंमें सब लोगही हृष्ट पुष्ट हो गये । शठता, चोरी, मिथ्या बोलना, मिथ्या व्यवहार, आधि, व्याधि यह सब उपद्रव पृथ्वीपरसे दूर होगये ॥ ३२ ॥

विप्रा वेदविदः सुमङ्गलयुता नार्य्यस्तु चार्य्याव्रतैः
पूजाहोमपराः पतिव्रतधरा यागोद्यताः क्षत्रियाः ।
वैश्या वस्तुषु धर्मतो विनिमयैः श्रीविष्णुपूजापराः
शूद्रास्तु द्विजसेवनाद्धरिकथालापाः सपर्य्यापराः ॥ ३३ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे विषकन्या-मोक्षकृतधर्मप्रवृत्तिकथनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

ब्राह्मणलोग वेदपाठ करने लगे । स्त्रियें मंगलके कार्योंका और व्रतादि पुण्य कार्योंका अनुष्ठान करने लगीं । वे पूजा और होम करतीं व अत्यन्त पतिव्रता होती थीं । क्षत्रियलोग याग यज्ञ करनेको तैय्यार हुए । वैश्यलोग विष्णुजीकी पूजा किया करते । वह विष्णुजीकी पूजामें लगे रहकर द्रव्यको खरीद बेंचकर जीवनयात्राको निर्वाह किया करते, शूद्रलोग ब्राह्मणोंकी सेवा करते हुए श्रीनारायणजीके गुणोंका कीर्त्तन श्रवण कर विष्णुजीकी पूजा करते रहकर संसारयात्राको निर्वाह करने लगे ॥ ३३ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे बलदेवप्रासादमिश्रकृतभाषाटीकायां विषकन्यामोक्षकृतधर्मप्रवृत्तिकथनं नाम चतुर्दशोध्ययाथः ॥ १४ ॥

तृतीयांशः ।

पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

शौनक उ०—शशिध्वजो महाराजः स्तुत्वा मायां गतः कुतः ।
का वा मायास्तुतिः सूत वद तत्त्वविदां वर ॥
या त्वत्कथा विष्णुकथा वक्तव्या सा विशुद्धये ॥ १ ॥

शौनकजीने कहाः—हे सूत महाराज ! शशिध्वज मायास्तव करके कहां गये ? तुमको ब्रह्मज्ञान होगया । अतएव मायास्तुति कैसी है सो तुम कहो । मायाकी कथा और विष्णुजीकी कथा अलग नहीं है अतएव पापमोचनके लिये तुम उस मायाके स्तुतिवाक्य कहो ॥ १ ॥

सूत उ०—शृणुध्वं मुनयः सर्वे मार्कण्डेयाय पृच्छते ।
शुकः प्राह विशुद्धात्मा मायास्तवमनुत्तमम् ॥ २ ॥

उग्रश्रवा बोले—हे मुनिगण ! महर्षि मार्कण्डेयजीके पूछनेपर विशुद्धात्मा शुकदेवजीने उनसे अत्यन्त उत्तम मायास्तव कहाथा, मैं इस समय वही मायास्तव कहता हूं, श्रवण करो ॥ २ ॥

तच्छृणुष्व प्रवक्ष्यामि यथाऽधीतं यथाश्रुतम् ।
सर्वकामप्रदं नृणां पापतापविनाशनम् ॥ ३ ॥

मैंने जिसको पढा और सुना है, जिसके श्रवण करनेसे मनुष्योंकी सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं, जिससे सारे पाप ताप दूर होजाते हैं, ऐसे माया-स्तवको कहता हूं श्रवण करो ॥ ३ ॥

शुक उ०—भल्लाटनगरं त्यक्त्वा विष्णुभक्तः शशिध्वजः ।
आत्मसंसारमोक्षाय मायास्तवमलं जगौ ॥ ४ ॥

शुकदेवजी बोले—विष्णुजीके भक्त राजा शशिध्वजने भल्लाट नगरको छोडकर संसारसे मुक्त होनेके निमित्त मायास्तव करना आरम्भ किया ॥४॥

शशिध्वज उवाच ।

ॐ ह्रींकारां सत्त्वसारां विशुद्धां ब्रह्मादीनां मातरं वेदबोध्याम् ।
तन्वीं स्वाहां भूततन्मात्रकुक्षिं वन्दे वन्द्यां देवगन्धर्वसिद्धैः ॥ ५ ॥

शशिध्वजने कहा—हे माया ! तुम शुद्ध सत्त्वगुणमयी हो, विशुद्धरूपिणी हो, तुमही ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजीकी माता हो, वेदमें तुम्हारी ही (महिमा) प्रतिपादित हुई है। तुम्हारी कुक्षिमें भूतगण और पंचतन्मात्रा स्थिति करते हैं। देव, गन्धर्व, सिद्ध और विद्याधरगण तुम्हारी वन्दना करते हैं, तुम सूक्ष्म और स्वाहारूपिणी और ह्रींबीजरूपिणी हो, तुम्हारी वंदना करता हूं ॥ ५ ॥

लोकातीतां द्वैतभूतां समीडे भूतैर्भव्यां व्याससामासिकाद्यैः ।
विद्वद्गीतां कालकल्लोललोलां लीलापाङ्गक्षिप्तसंसारदुर्गाम् ॥ ६ ॥

तुम लोकसे परे होरही हो, तुम्हारे (स्वरूपमें) द्वैतभाव लगाया गया है, व्यास शातातपादि महर्षिगण तुम्हारी वन्दना करते हैं । विष्णुजी तुम्हारे स्तुतिके गीत गाते हैं, तुम कालरूपी समुद्रकी किलोलमें लहराती हो, तुम्हारे कुटिल कटाक्षकी विलासलीलामें (समस्त प्राणी) संसारके प्रपञ्चमें पडते हैं, मैं तुम्हारी वन्दना करता हूं ॥ ६ ॥

पूर्णां प्राप्यां द्वैतलभ्यां शरण्यामाद्ये शेषे मध्यतो या विभाति ।
नानारूपैर्देवतिर्य्यङ्मनुष्यैस्तामाधारां ब्रह्मरूपां नमामि ॥ ७ ॥

सृष्टिके आदि, मध्य और अन्तमें तुम विराजमान थीं, तुम सर्व प्राणियोंके आश्रय होरही हो, पूर्ण अथवा द्वैतभावसे तुम्हारी उपासना करनेपर तुमको प्राप्त किया जाता है, तुम देवता, तिर्यक् (पशु आदि) और मनुष्यजातिमें अनेक प्रकारसे विभक्त होरही हो, तुम सारे संसारकी आधार हो, तुम ब्रह्मस्वरूपिणी हो, तुमको नमस्कार है ॥ ७ ॥

यस्या भासा त्रिजगद्भाति भूतैर्न भात्येतत्तदभावे विधातुः ।
कालो दैवं कर्म्म चोपाधयो ये तस्या भासा तां विशिष्टां नमामि ॥ ८ ॥

तुम्हारी प्रभासे त्रिजगत् भूतपंचक करके प्रकाशमान होरहाहै, तुम्हारे प्रकाशके विना काल, दैव, कर्म, उपाधि आदि विधाताका नियत किया

हुआ कोई भाव प्रकाशित नहीं होता, तुम उसही प्रभासे प्रभावती होरही हो, मैं तुमको नमस्कार करता हूं ॥ ८ ॥

भूमौ गन्धो रसताऽप्सु प्रतिष्ठा रूपं तेजस्येव वायौ स्पृशत्वम् ।
खे शब्दो वा यच्चिदाभाति नाना तामभ्येतां विश्वरूपां नमामि ॥९॥

तुम चिदाभासरूपसे भूमिमें गन्ध, जलमें रस, तेजमें रूप, पवनमें स्पर्श और आकाशमें शब्द, इस भाँति अनेक प्रकारके रूपोंसे (जगत्में) विराजमान होरही हो, सारे संसारमें तुम प्रवेश कर रही हो, अतएव तुम विश्वरूपिणी हो, तुमको नमस्कार करता हूं ॥ ९ ॥

सावित्री त्वं ब्रह्मरूपा भवानी भूतेशस्य श्रीपतेः श्रीस्वरूपा ।
शची शक्रस्यापि नाकेश्वरस्य पत्नी श्रेष्ठा भासि माये जगत्सु ॥१०॥

तुम ब्रह्मरूपिणी सावित्री हो, तुमही महादेवजीकी भवानी हो, तुमही नारायणजीकी लक्ष्मी हो, तुमही स्वर्गके पति इन्द्रकी पटराणी इन्द्राणी हो, हे माया ! सारे विश्वसंसारमें तुम इसी प्रकारसे भासमान होरहीहो ॥ १० ॥

बाल्ये बाला युवती यौवने त्वं वार्द्धक्ये या स्थविरा कालकल्पा ।
नानाकारैर्योगयोगैरुपास्या ज्ञानातीता कामरूपा विभासि ॥ ११ ॥

तुम शैशवावस्थामें बाला, यौवनकालमें युवती हो, स्त्रियोंकी वृद्धदशामें तुम वर्षीयसी हो, (समस्तस्त्रियोंमें तुम्हारा वास है) तुम कालसे कल्पित हो, तुम ज्ञानसे परे और कामरूपिणी हो, तुम अनेक प्रकारकी मूर्तियें धारण करके प्रकाशमान होरही हो । यज्ञ और योगसे तुम्हारी पूजा की जाती है, मैं तुम्हारी वन्दना करता हूं ॥ ११ ॥

वरेण्या त्वं वरदा लोकसिद्ध्या साध्वी धन्या लोकमान्या सुकन्या ।
चण्डी दुर्गा कालिका कालिकाख्या नानादेशे रूपवेषैर्विभासि ॥१२॥

तुम (सबकी) वरणीय हो, तुम उपासक लोगोंको वर और अभीष्ट देती हो, तुम साध्वी और धन्यवादके योग्य हो, लोग तुम्हारा सन्मान करते हैं, तुम चण्डी, दुर्गा, कालिका आदि समयानुसार नाम धारण करके अनेकरूपसे, अनेक वेषसे, अनेक देशोंमें प्रकाशित होती हो ॥ १२ ॥

तव चरणसरोजं देवि देवादिवन्द्यं यदि हृदयसरोजे भावयन्तीह भक्त्या । श्रुतियुगकुहरे वा संश्रुतं धर्म्मसम्पज्जनयति जगदाद्ये सर्वसिद्धिं च तेषाम् ॥ १३ ॥

हे जगदाद्ये देवि ! यदि कोई अपने हृदयकमलमें तुम्हारे उन चरणोंको जो देवादिकोंसे वन्दना किये जाते हैं—ध्यान करे भक्तिसहित भावना करे अथवा यदि कोई कर्णकुहरमें तुम्हारा नाम श्रवण करे उसको धर्मकी संपत्ति प्राप्त होती है और वह सर्व बातोंमें सिद्धिको प्राप्त करसकता है ॥ १३ ॥

मायास्तवमिदं पुण्यं शुकदेवेन भाषितम् ।
मार्कण्डेयादवाप्यापि सिद्धिं लेभे शशिध्वजः ॥ १४ ॥

इस पवित्र मायास्तोत्रको शुकदेवजीने कहाथा। महर्षि मार्कण्डेयजीसे इस मायास्तोत्रको पाकर राजा शशिध्वजने सिद्धि पाई ॥ १४ ॥

कोकामुखे तपस्तप्त्वा हरिं ध्यात्वा वनान्तरे ।
सुदर्शनेन निहतो वैकुण्ठं शरणं ययौ ॥ १५ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे मायास्तवो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

वनके बीच कोकामुख नामक स्थानमें तपकर नारायणजीका ध्यान करता हुआ राजा शशिध्वज सुदर्शनचक्रसे निहत हो वैकुण्ठधाममें चला गया॥ १५॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे बलदेव० कृतभाषाटीकायां मायास्तवो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

तृतीयांशः ।

षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सूत उवाच—एतद्वः कथितं विप्राः शशिध्वजविमोक्षणम् ।
कल्केः कथामप्रतिमां शृण्वन्तु विबुधर्षभाः ॥ १ ॥

१—शुककृतमभिशुद्धं हृत्सरोजे स्मरन्ति । इति पाठान्तरम् ।

उग्रश्रवा बोले—हे ब्राह्मणो ! यह मैंने आपसे राजा शशिध्वजकी मुक्तिका वृत्तान्त कहा । हे विबुधगण ! अब फिर कल्किजीका अद्भुत उपाख्यान कहता हूं श्रवण करो ॥ १ ॥

वेदो धर्म्मः कृतयुगं देवा लोकाश्चराचराः ।
हृष्टाः पुष्टाः सुसंतुष्टाः कल्कौ राजनि चाभवन् ॥ २ ॥

(जब) कल्किजी राजसिंहासनपर बैठगये (तब) वेद, धर्म, सत्ययुग, देवता, स्थावर जंगमादि समस्त जीवही हृष्ट, पुष्ट और संतुष्ट हुए ॥ २ ॥

नानादेवादिलिङ्गेषु भूषणैर्भूषितेषु च ।
इन्द्रजालिकवद्वृत्तिकल्पकाः पूजका जनाः ॥ ३ ॥

पहले युगमें (कलियुगमें) पूजारी ब्राह्मण लोग अनेक प्रकारके गहनोंसे भूषित देवमूर्तियोंमें इन्द्रजालीके समान व्यवहार करके (लोगोंको मोहित करतेथे । अब ऐसा इन्द्रजाली व्यवहार) ॥ ३ ॥

न सन्ति मायामोहाढ्याः पाखण्डाः साधुवञ्चकाः ।
तिलकाञ्चितसर्वाङ्गाः कल्कौ राजनि कुत्रचित् ॥ ४ ॥

न रहा । इस समय और कहींभी मायामोहसे शोभायमान साधुओंको धोखा देनेवाला पाखण्ड न रहा । कल्किजीके राजा होनेपर सबही सब अंगोंमें तिलक धारण करने लगे ॥ ४ ॥

शम्भले वसतस्तस्य पद्मया रमया सह ।
प्राह विष्णुयशाः पुत्रं देवान् यष्टुं जगद्धितान् ॥ ५ ॥

पद्मा और रमाके साथ शम्भलग्राममें इस प्रकारसे कल्किजी वास करने लगे । एक समय कल्किजीके पिताने उनसे कहा कि, देवतालोग जगत्का हित किया करते हैं, इस कारण उनके लिये यज्ञ करना चाहिये ॥ ५ ॥

तच्छ्रुत्वा प्राह पितरं कल्किः परमहर्षितः ।
विनयावनतो भूत्वा धर्मकामार्थसिद्धये ॥ ६ ॥

पिताजीके वचन सुन मनमें परमानंदित हो विनयसहित कल्किजीने उनसे कहा । मैं धर्म, काम और अर्थकी सिद्धिके लिये ॥ ६ ॥

राजसूयैर्वाजपेयैरश्वमेधैर्महामखैः ।
नानायागैः कर्मतन्त्रैरीजे क्रतुपतिं हरिम् ॥ ७ ॥

कर्मकाण्डके अन्तर्गत जो राजसूय यज्ञ है, अश्वमेध यज्ञ है व औरभी जो अनेक प्रकारके यज्ञ हैं उनको करके यज्ञनाथ नारायणजीकी पूजा करूंगा॥ ७॥

कृपरामवसिष्ठाद्यैर्व्यासधौम्याकृतव्रणान् ।
अश्वत्थाममधुच्छन्दोमन्दपालान् महात्मनः ॥ ८ ॥

फिर कल्किजीने (यह कहकर यज्ञका अनुष्ठान किया और) कृपाचार्य, परशुराम, वसिष्ठ, व्यास, धौम्य, अकृतव्रण, अश्वत्थामा, मधुच्छन्द, मन्दपालादि महर्षियोंको ॥ ८ ॥

गंगायमुनयोर्मध्ये स्नात्वाऽवभृथमादरात् ।
दक्षिणाभिः समभ्यर्च्य ब्राह्मणान् वेदपारगान् ॥ ९ ॥

और वेदपारग महात्मा ब्राह्मणोंको पूजकर गंगायमुनाके मध्यमें यज्ञमें दीक्षित हो व स्नानकर दक्षिणा दी ॥ ९ ॥

चर्व्यैश्चोष्यैश्च पेयैश्च पूपशष्कुलियावकैः ।
मधुमांसैर्मूलफलैरन्यैश्च विविधैर्द्विजान् ॥ १० ॥

फिर उन्होंने अनेक प्रकारके चर्व्य (चावने योग्य), चोष्य (चूसने योग्य), लेह्य (चाटने योग्य), पेय (पीने योग्य), पूप (पुआ उस समयभी वैद्यकशास्त्रमें पुएका वृत्तान्त पायाजाता है), शष्कुलि (जौके माडमें तिल चावल आदि मिलाकर यह पदार्थ बनता है), यावक (यवका प्रकार विशेष) अधपके जौका नाम यावक है, वहुरी (चलित भाषामें) कहते हैं, ताजा मांस, फल, मूल व अनेक प्रकारके द्रव्य ब्राह्मणोंको ॥ १० ॥

भोजयामास विधिवत्सर्वकर्मसमृद्धिभिः।
यत्र वह्निर्वृतः पाके वरुणो जलदो मरुत् ॥ ११ ॥

विधिविधानसे भोजन कराया, इस यज्ञके सब अंश भलीभांतिसे पूरे हुए। इस यज्ञमें अग्निने भोजन रन्धन किये, वरुणजीने जल दिया, पवन॥११॥

परिवेष्टा द्विजान् कामैः सदन्नाद्यैरतोषयत्।
वाद्यैर्नृत्यैश्च गीतैश्च पितृयज्ञमहोत्सवैः ॥ १२ ॥

परसनेवाला हुआ। कमलके समान नेत्रवाले कल्किजीने मनमाने उत्तम अन्नादिसे नृत्य, गीत और बाजोंके बजवानेसे पितृ यज्ञमें अनेक उत्सवोंके करानेसे ॥ १२ ॥

कल्किः कमलपत्राक्षः प्रहर्षः प्रददौ वसु।
स्त्रीबालस्थविरादिभ्यः सर्वेभ्यश्च यथोचितम् ॥ १३ ॥

सबके आनन्दको बढाया। उन्होंने बालकसे लेकर वृद्ध स्त्री तक सब-कोही जैसा चाहिये वैसा धन दिया ॥ १३ ॥

रम्भा तालधरा नन्दी हूहूर्गायति नृत्यति।
दत्त्वा दानानि पात्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः स ईश्वरः ॥ १४ ॥

रम्भा अप्सरा नाचने लगीं। नन्दी बाजा बजाने और ताल देने लगा। हूहू नामक गन्धर्वने इस प्रकार गाना आरंभ किया:—

"वह छवि विसरत नाहिं विसारी।
देह गेहकी सुधि नहिं तबते, जबते दृगनि निहारी ॥
रँग भरे वसन रसीली अँखियाँ कर कंचन पिचकारी।
ग्वालनि माधि अलबेली आवन गावन मधुरी गारी ॥
हितसों बार २ हित हेरनि मृदु मुस्कान पियारी।
गोल कपोलनि दोलति अलके अविर भरीं घुँघरारी ॥
कोउ कछु कहै होइ कतहूँ कछु हौं तो तन मन वारी।

होइ चुकी ब्रजराज कुँवर पर प्रेमदास बलिहारी ॥
वह छबि बिसरत नाहिं बिसारी ॥ १ ॥

मिलो मोहि आज अचानक गैल ।
मेघमाल सँग तडित लता जनु, हृदय गई दै शैल ॥
आधंचल खसि आधवदन हँसि आधहि नयन तरंग ।
आँचर उडत वक्ष निरखी जब तब धरि देहेउ अनंग ॥
इक तनुगोरा कनक कटोरा नयन श्यामसों श्याम ।
हर २ कह मन समुझि शत्रु निज पाश पसारो काम ॥
दशन पाँतिकी काँति कहै को मृदु २ बोलत बोल ।
श्याम गौर युत "मिश्र" वरण लखि बेंचिदियो मन मोल ॥
मिलो मोहि आज अचानक गैल ॥ २ ॥

बहार—आये न अजौं वे हाय वीर ! बौंरी बनि बैरिन आमिनियां ॥ टे० ॥
गुलअनार कचनार सुहाए, औरे आँब गुलाब ले आए;
दाऊदी द्युति दामिनियां ॥

गुल्लाले लाली लहकाए, जनु होली खेलत चलिआए;
लखत जगेसे जामिनियां ॥

खेतन अति अतसी सरसाई, सरसों सुमन वसन्त ले आई;
पीत पटीं कलकामिनियां ॥

सुन्दरता विकसी है वनमें, फूले ललित पलाशपवनमें;
शीतल गति गजगामिनियां ॥
आये न अजौं० ॥ ३ ॥

बहार--अब तो लखिये आलिये अलियन--कलियनमुख चुम्बन करन लगे ।
पीवत मकरन्द मनोमाते, ज्यों अधर सुधारसमें राते;
कहि केलि कथा गुंजरन लगे ॥

कविवर श्रीबद्रीनारायण, निज प्यारीके करि आलिंगन;
लिपटे प्रसून मनहार न लगे ॥
अब तो लखिये अलिये अलियन ॥ ४ ॥ "

वह जगदीश्वर कल्किजीने ब्राह्मणोंको और सत्पात्रोंको धन बांटकर १४॥

उवास तीरे गङ्गायाः पितृवाक्यानुमोदितः ।
सभार्यां विष्णुयशसः पूर्वराजकथाः प्रियाः ॥ १५ ॥
कथयन्तो हसन्तश्च हर्षयन्तो द्विजा बुधाः ।
तत्रागतस्तुम्बुरुणा नारदः सुरपूजितः ॥ १६ ॥

पिताजीकी अनुमति ले गंगाके किनारे वास करने लगे । इस ओर विष्णुयशाकी सभामें ब्राह्मण और पंडितोंने पहले राजाओंके श्रवणमनोहर-चरित्र कीर्त्तन कर संतुष्ट करते हैं. हास्य करते हैं कि, इतनेमेंही देवताओंसे पूजित महर्षि नारदजी और तुंबुरु उस स्थानमें आतेभये ॥ १५ ॥ १६ ॥

तं पूजयामास मुदा पित्रा सह यथाविधि ।
तौ सम्पूज्य विष्णुयशाः प्रोवाच विनयान्वितः ॥
नारदं वैष्णवं प्रीत्या वीणापाणिं महामुनिम् ॥ १७ ॥

महायशवान् विष्णुयशाने प्रसन्नहृदयसे उन दोनों महर्षियोंकी विधि-विधानसे पूजा की । उत्तम प्रकारसे उनकी पूजा करके विनययुक्त हृदयसे विष्णुजीके भक्त वीणापाणि महामुनि नारदजीकी प्रीतिसहित पूजा की॥ १७॥

विष्णुयशा उ०–अहो भाग्यमहो भाग्यं मम जन्मशतार्जितम् ।
भवद्विधानां पूर्णानां यन्मे मोक्षाय दर्शनम् ॥१८॥

विष्णुयशाने कहा–हमारा कैसा सौभाग्य है ! शतजन्ममें इकट्ठा किया हुआ मेरा भाग्य कैसा अद्भुत है ! आप लोग पूर्ण हैं । हमारी मुक्तिके लियेही आप लोगोंके दर्शन प्राप्त हुए ॥ १८ ॥

अद्याग्नयश्च सुहुतास्तृप्ताश्च पितरः परम् ।
देवाश्च परिसन्तुष्टास्तवावेक्षणपूजनात् ॥ १९ ॥

आज आपके दर्शन पानेसे व आपकी पूजा करनेसे हमारे पितृगण तृप्त हुए, मैंने जो अग्निमें आहुति दी है सो सफल हुई। आज देवतालोगभी संतुष्ट हुए ॥ १९ ॥

यत्पूजायां भवेत्पूज्यो विष्णुर्यन्मम दर्शनम् ।
पापसंवं स्पर्शनाच्च किमहो साधुसंगमः ॥ २० ॥

जिसकी पूजा करनेसे विष्णुजी पूजित होते हैं, तिनका दर्शन करनेसे फिर जन्म नहीं होता, तिसके स्पर्शसे पापपुञ्जका क्षय होता है, ऐसे साधु-ओंका समागम क्याही अद्भुत है ॥ २० ॥

साधूनां हृदयं धर्म्मो वाचो देवाः सनातनाः ।
कर्मक्षयाणि कर्म्माणि यतः साधुर्हरिः स्वयम् ॥ २१ ॥

साधुओंका हृदयही धर्म है, साधुओंका वाक्यही सनातन देवता हैं, साधु-ओंके कर्महीं कर्मक्षय होनेके कारण हैं, अतएव साधुलोग स्वयंही नारा-यणजीकी मूर्ति हैं ॥ २१ ॥

मन्ये न भौतिको देहो वैष्णवस्य जगत्त्रये ।
यथाऽवतारे कृष्णस्य सतो दुष्टविनिग्रहे ॥ २२ ॥

दुष्टोंको दंड देनेके लिये कृष्णावतारमें कृष्णजीका नित्य शरीर जैसे भौतिक नहीं है, वैसेही इस त्रिलोकीमें वैष्णव शरीरभी भूत पंचकसे बना हुआ नहीं ज्ञात होता ॥ २२ ॥

पृच्छामि त्वामतो ब्रह्मन् मायासंसारवारिधौ ।
नौकायां विष्णुभक्त्या च कर्णधारोऽसि पारकृत् ॥ २३ ॥

हे ब्रह्मन् ! मायामय संसारसें आप विष्णुभक्तिरूप नावके पार करनेवाले होते हैं इसी कारण आपसे कुछ पूछता हूं ॥ २३ ॥

केनाऽहं यातनागारान्निर्वाणपदमुत्तमम् ।
लप्स्यामीह जगद्बन्धो कर्म्मणा शर्म्म तद्वद ॥ २४ ॥

हे जगद्बन्धो ! मैं किस कर्मके करनेसे इस संसाररूप पीडाके स्थानसे

छुटकारा पाय श्रेष्ठताका साधन उत्तम निर्वाणपद प्राप्त करसकूंगा, सो आप कहैं ॥ २४ ॥

नारद उ०—अहो बलवती माया सर्वाश्चर्य्यमयी शुभा ।
पितरं मातरं विष्णुर्नैव मुञ्चति कर्हिचित् ॥ २५ ॥

नारदजी बोले—माया कैसी शोभायमान है, माया कैसी बलवती है, माया सबको कैसा विस्मित करती है, क्या आश्चर्य है कि, विष्णुजी पिता माताकोभी इस मायासे नहीं छुटाते ॥ २५ ॥

पूर्णो नारायणो यस्य सुतः कल्किर्जगत्पतिः ।
तं विहाय विष्णुयशा मत्तो मुक्तिमभीप्सति ॥ २६ ॥

साक्षात् सनातन भगवान् नारायणजी जिनके पुत्र हैं, वह विष्णुयशा हमसे मुक्तिकी कामना करता है ॥ २६ ॥

विविच्येत्थं ब्रह्मसुतः प्राह ब्रह्मयशःसुतम् ।
विविक्ते विष्णुयशसं ब्रह्मसंपद्विवर्द्धनम् ॥ २७ ॥

ब्रह्माजीके पुत्र नारदजीने यह सोच विचारकर ब्रह्मयशाके पुत्र विष्णुयशाको निर्जनमें ब्रह्मज्ञान देनेके निमित्त यह वाक्य कहा ॥ २७ ॥

नारद उ०—देहावसाने जीवं सा दृष्ट्वा देहावलम्बनम् ।
मायाऽऽह कर्त्तुमिच्छन्तं यन्मे तच्छृणु मोक्षदम् ॥२८ ॥

नारदजी बोले--(जब) देहका ध्वंस होनेपर जीवने फिर देहका आश्रय करनेकी इच्छा की (तब उस काल) मायाने जो कुछ कहाथा सो मैं कहता हूं श्रवण करो, इसके श्रवण करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है ॥ २८ ॥

विन्ध्याद्रौ रमणी भूत्वा मायोवाच यथेच्छया ॥ २९ ॥

अपनी इच्छाके अनुसार विन्ध्यपर्वतपर स्त्रीका रूप धारणकर मायाने कहा ॥ २९ ॥

मायोवाच—अहं माया मया त्यक्तः कथं जीवितुमिच्छसि ॥३०॥

माया बोली--मैं माया हूं, तुमको छोडदिया है, तुम किस प्रकारसे जीवन धारण करनेकी इच्छा करते हो ॥ ३० ॥

जीव उवाच–नाहं जीवाम्यहं माये कायेऽस्मिञ्जीवनाश्रये ।
अहमित्यन्यथाबुद्धिर्विना देहं कथं भवेत् ॥ ३१ ॥

जीवने कहा–हे माये ! मैं नहीं जिऊंगा, शरीरही जीवनका आश्रय है, " अहं " इस अभिमानसे भेदज्ञानके विना किस प्रकारसे देह धारण कर सकता है ॥ ३१ ॥

मायोवाच--देहबन्धे यथाऽऽश्लेषास्तथा बुद्धिः कथं तव ।
मायाधीनां विना चेष्टां विशिष्टां ते कुतो वद ॥ ३२ ॥

माया बोली -देहधारण किये जानेपर जब भेदज्ञान होता है, तुम्हारी बुद्धि इस समय वैसी क्यों होती है, चेष्टा मायाके अधीन है, अब मायाके विना तुम्हारी चेष्टा कैसे होती है ? सो कहो ॥ ३२ ॥

जीव उवाच–मां विना प्राज्ञता माये प्रकाशविषयस्पृहा ॥ ३३ ॥

जीवने कहा–हे माये ! विना मेरे तुम्हारी प्राज्ञताका प्रकाश नहीं हो सकता, न विषयमें स्पृहा होसकती है ॥ ३३ ॥

मायोवाच--मायया जीवति नरश्चेष्टते हतचेतनः ।
निःसारः सारवद्भाति गजभुक्तकपित्थवत् ॥ ३४ ॥

मायाने कहा--जीव माया करके यंत्रके समान कार्य और चेष्टा करता है, मायासे जीवन धारण करता है और हाथीके खाये कपित्थ फलके समान जान पडता है ॥ ३४ ॥

जीव उवाच–मम संसर्गजाता त्वं नानानामस्वरूपिणी ।
मां विनिन्दसि किं मूढे स्वैरिणी स्वामिनं यथा ॥३५॥

जीवने कहा–हे मूढे ! तुमने हमारे संसर्गसे उत्पन्न होकर बहुतसे नाम-रूप धारण किये हैं । जैसे स्वैरिणी स्त्री स्वामीकी निन्दा करती है वैसेही तू किस कारणसे हमारी निन्दा करती है ॥ ३५ ॥

ममाभावे तवाभावः प्रोद्यत्सूर्य्ये तमो यथा ।
मामावर्य्य विभासि त्वं रविं नवघनो यथा ॥ ३६ ॥

जैसे सूर्योदयके होनेपर अन्धकार नहीं रहता, वैसेही हमारे अभावसे

तुम्हाराभी अभाव होता है। जैसे नवीन नीरद (बादर) सूर्यको ढककर प्रकाशमान होता है, तैसेही तुम हमको ढककर शोभायमान होती हो ३६

लीलाबीजकुशूलाऽसि मम माये जगन्मये ।
नाद्यन्ते मध्यतो भासि नानात्वादिन्द्रजालवत् ॥ ३७ ॥

हे माये ! तुम लीलामय बीजकी कुशूला अर्थात् भुस्सीरूप हो, नानात्व होनेमें हेतु, तुम जगत्के आदि, अन्त और मध्यमें इन्द्रजालके समान शोभायमान हो ॥ ३७ ॥

एवं निर्विषयं नित्यं मनोव्यापारवर्जितम् ।
अभौतिकमजीवं च शरीरं वीक्ष्य साऽत्यजत् ॥ ३८ ॥

इस प्रकार विषयव्यापाररहित, मानसिक व्यापारसे रहित, अभौतिक, जीवन रहित शरीरको देखकर मायाने उसको छोडदिया ॥ ३८ ॥

त्यक्त्वा मां सा ददौ शापमिति लोके तवाऽप्रिय ।
न स्थितिर्भविता काष्ठकुड्योपम कथञ्चन ॥ ३९ ॥

मायाने मुझको छोडकर इस प्रकारसे शाप दिया कि, हे अप्रिय ! (हमको जानपडता है कि) तू काष्ठभित्तिकी समान अत्यन्त चेष्टाहीन है। इस पृथ्वी-पर कभी और किसी रूपमें तेरी स्थितिका (प्रत्यक्ष) नहीं होगा ॥ ३९ ॥

सा माया तव पुत्रस्य कल्केर्विश्वात्मनः प्रभोः ।
तां विज्ञाय यथाकामं चर गां हरिभावनः ॥ ४० ॥

नारदजी (यह माया और जीवका उपाख्यान कहकर) विष्णुयशासे बोले—हे देव ! विश्वरूप, परमदेवता तुम्हारे पुत्र कल्किजीसेही इस मायाकी उत्पत्ति हुई है, तुम उस मयाका तत्त्व जानो और नारायणजीका ध्यान करते हुए इच्छानुसार पृथ्वीपर विचरण करो ॥ ४० ॥

निराशो निर्ममः शान्तः सर्व्वभोगेषु निःस्पृहः ।
विष्णौ जगदिदं ज्ञात्वा विष्णुर्जगति वासकृत् ॥
आत्मन्याऽऽत्मानमावेश्य सर्व्वतो विरतो भव ॥ ४१ ॥

तुम आशा और ममताको छोडो, पार्थिव विषयभोग वासनाको जलाञ्जलिदेकर शान्तिरसमें अभिषेकित होवो। तब समझ सकोगे कि, यह जगत् विष्णुजीके (विराट्प्रभावसे) स्थिति करता है और भगवान् विष्णुजी इस प्रत्यक्ष परिदृश्यमान जगत्में प्रविष्ट हुए हैं। इस प्रकार ज्ञानका उदय होनेपर जीवात्माको परमात्मामें संयुक्त करके सर्व प्रकारकी कामनाओंसे विरत होना उचित है ॥ ४१ ॥

एवं तं विष्णुयशसमामन्त्र्य च मुनीश्वरौ ।
कल्किं प्रदक्षिणीकृत्य जग्मतुः कपिलाश्रमम् ॥ ४२ ॥

विष्णुयशासे इस प्रकार सम्भाषण करके दोनों महर्षि कल्किजीकी प्रदक्षिणा करके कपिलजीके आश्रममें चले गये ॥ ४२ ॥

नारदेरितमाकर्ण्य कल्किं सुतमनुत्तमम् ।
नारायणं जगन्नाथं वनं विष्णुयशा ययौ ॥ ४३ ॥

जब नारदजीके मुखसे विष्णुयशाने सुना कि, मेरे पुत्र कल्किजी जगन्नाथ नारायण हैं, तब वह संसारको छोडकर वनमें चले गये ॥ ४३ ॥

गत्वा बदरिकारण्यं तपस्तप्त्वा सुदारुणम् ।
जीवं बृहति संयोज्य पूर्णस्तत्याज भौतिकम् ॥ ४४ ॥

विष्णुयशाजी बदरिकाश्रममें जाय दारुण तप करनेके द्वारा आत्माको परब्रह्ममें मिलाय पूर्णस्वरूप होकर पांच भूतके बनेहुए शरीरको छोडते हुए ॥ ४४ ॥

मृतं स्वामिनमालिङ्ग्य सुमतिः स्नेहविक्लवा ।
विवेश दहनं साध्वी सुवेशौर्दिवि संस्तुता ॥ ४५ ॥

स्वामीके प्रेमके वश हुई पतिव्रता सुमति अपने मृतक पतिको हृदयसे लगायकर अग्निमें प्रवेश करती हुई। देवलोकमें देवता लोग श्रेष्ठ वस्त्र पहरकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ ४५ ॥

कल्किः श्रुत्वा मुनिमुखात्पित्रोर्निर्याणमीश्वरः ।
सबाष्पनयनं स्नेहात्तयोः समकरोत्क्रियाम् ॥ ४६ ॥

मुनियोंके मुखसे पिता माताके स्वर्ग जानेका वृत्तान्त सुनकर स्नेहके मारे कल्किजीके नेत्रोंमें जल भरआया (और उन्होंने) श्राद्धादि क्रिया की॥ ४६॥

पद्मया रमया कल्किः शम्भले सुरवाञ्छिते ।
चकार राज्यं धर्म्मात्मा लोकवेदपुरस्कृतः ॥ ४७ ॥

लोकाचार और वेदाचार करनेवाले धर्मात्मा कल्किजी देवताओंके भी प्रार्थित शम्भलग्राममें स्थित हो रमा और पद्माके साथ राज्यपालन करने लगे ॥ ४७ ॥

महेन्द्रशिखराद्रामस्तीर्थपर्य्यटनादृतः ।
प्रायात्कल्केर्दर्शनार्थं शम्भलं तीर्थतीर्थकृत् ॥ ४८ ॥

तीर्थकोभी पवित्र करनेवाले परशुरामजी तीर्थ पर्यटन करते हुए महेन्द्र पर्वतके शिखरपरसे उतरकर कल्किजीका दर्शन करनेके निमित्त शम्भल ग्राममें आये ॥ ४८ ॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय पद्मया रमया सह ।
कल्किः प्रहर्षो विधिवत्पूजाञ्चक्रे विधानवित् ॥ ४९ ॥

परशुरामजीको देखतेही विधानके जाननेवाले कल्किजी आनन्दके सहित पद्मा और रमाके साथ सिंहासनसे उठकर विधिविधानसे उनकी पूजा करते हुए ॥ ४९ ॥

नानारसैर्गुणमयैर्भोजयित्वा विचित्रिते ।
पर्य्यङ्केऽनर्घवस्त्राढ्ये शाययित्वा मुदं ययौ ॥ ५० ॥

उन्होंने परशुरामजीको उत्तम गुणकारी अनेक रसवाले द्रव्योंसे भोजन कराय अमोल वस्त्रवाले विचित्र पर्यंक (पलंग) पर शयन कराया ॥ ५० ॥

तं भुक्तवन्तं विश्रान्तं पादसंवाहनैर्गुरुम् ।
संतोष्य विनयापन्नः कल्किर्मधुरमब्रवीत् ॥ ५१ ॥

गुरु परशुरामजी भोजन करके विश्राम करते हैं कि, इतनेमें पांव पलोट-कर कल्किजीने उनको संतुष्ट कर विनयसे नवते हुए मधुर वचन कहे ॥ ५१ ॥

तव प्रसादात्सिद्धं मे गुरो त्रैवर्गिकं च यत् ।
शशिध्वजसुतायास्तु शृणु राम निवेदितम् ॥ ५२ ॥

हे गुरो ! आपके प्रसादसे हमारे अर्थ, धर्म, काम यह तीनों वर्ग सिद्ध होगयेहैं, इस समय शशिध्वजकी पुत्री (रमा) का एक निवेदन है (उसको) श्रवण कीजिये ॥ ५२ ॥

इति पतिवचनं निशम्य रामा निजहृदयेप्सितपुत्रलाभमिष्टम् ।
व्रतजपनियमैर्यमैश्च कैर्वा मम भवतीह मुदाह जामदग्न्यम् ॥ ५३ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे विष्णुयशसो मोक्षो रामदर्शनं च नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

पतिके यह वचन सुनकर रमाने मनमें हर्षित हो परशुरामजीसे बूझा कि, किस प्रकारसे यम, नियम, जप या व्रतका अनुष्ठान करनेसे मैं अपना मन-माना पुत्र पाय सकतीहूं ॥ ५३ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां विष्णुयशसो मोक्षो रामदर्शनं च नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

तृतीयांशः ।

सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

सूत उवाच--जामदग्न्यः समाकर्ण्य रमां तां पुत्रगर्द्धिनीम् ।
कल्केरभिमतं बुद्ध्वाकारयद्रुक्मिणीव्रतम् ॥ १ ॥

उग्रश्रवा बोलेः—रमाको पुत्रकी अभिलाषावाली देख और कल्किजीके अभिप्रायको जानकर परशुरामजीने उससे रुक्मिणीव्रत कराया ॥ १ ॥

व्रतेन तेन च रमा पुत्राढ्या सुभगा सती ।
सर्व्वभोगेन संयुक्ता बभूव स्थिरयौवना ॥ २ ॥

उस व्रतके प्रभावसे सती रमा पुत्रवती, सौभाग्यवती, सर्वभोगयुक्त और स्थिरयौवनवाली हुई ॥ २ ॥

शौनक उ०—विधानं ब्रूहि मे सूत व्रतस्यास्य च यत्फलम् ।
पुरा केन कृतं धर्म्यं रुक्मिणीव्रतमुत्तमम् ॥ ३ ॥

शौनक बोले--हे सूत ! इस रुक्मिणीव्रतका विधान कैसा है ? फल कैसा है ? और किस आदमीने इस परमश्रेष्ठ व्रतको कियाथा, सो आप हमसे कहैं ॥ ३ ॥

सूत उवाच—शृणु ब्रह्मन् राजपुत्री शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ।
अवगाह्य सरोनीरं सोमं हरमपश्यत ॥ ४ ॥

उग्रश्रवाने कहा--हे ब्रह्मन् ! मैं सब कहताहूं श्रवण करो कि, वृषपर्वा नामक दानवनाथकी एक शर्मिष्ठानामक कन्या थी । एक समय वह सरोवरके जलमें घुसकर जलविहार करती थी कि, इतनेमें उमासहित भगवान् महेश्वरको देखती भई ॥ ४ ॥

सा सखीभिः परिवृता देवयान्या च संगता ।
शम्भुभीत्या समुत्थाय पर्य्यधाद्वसनं द्रुतम् ॥ ५ ॥

शर्मिष्ठा और उसकी सखियें और देवयानी उनको देख भय पाकर डरती हुई शीघ्र सरोवरसे बाहर किनारेपर आईं और अपने २ वस्त्र पहरने लगीं॥५॥

तत्र शुक्रस्य कन्याया वस्त्रव्यत्ययमात्मनः ।
संलक्ष्य कुपिता प्राह वसनं त्यज भिक्षुकि ॥ ६ ॥

उस समय देवताओंके गुरु शुक्राचार्यकी कन्या देवयानीने (अपने वस्त्रोंके धोखेमें) शर्मिष्ठाके वस्त्र पहरेंथे इस प्रकार कपडोंका अत्यन्त उलट-पन देखकर शर्मिष्ठाने कुपित होकर कहा, हे देवयानी ! हे भिक्षुकि ! हमारे वस्त्र छोड ॥ ६ ॥

इति दानवकन्या सा दासीभिः परिवारिता ।
तां तस्या वाससा बद्ध्वा कूपे क्षिप्त्वा गता गृहम् ॥ ७ ॥

दानवराजकी कन्या शर्मिष्ठाने यह कहकर दासियोंकी सहायतासे उसके वस्त्रके द्वारा देवयानीको बाँधकर एक निकटके कुएँमें उसको डालदिया और अपने घरकी ओरको चलीगई ॥ ७ ॥

तां मग्नां रुदतीं कूपे जलार्थी नहुषात्मजः ।
करे स्पृष्ट्वा समुद्धृत्य प्राह का त्वं वरानने ॥ ८ ॥

देवयानी कुएँमें गिरकर रोने लगी, इसी समयमें नहुषका पुत्र राजा ययाति जल पीनेके लिये वहां पहुँचा और देवयानीका हाथ पकड उठाकर कहा कि, हे वरानने ! तुम कौन हो ? ॥ ८ ॥

सा शुक्रपुत्री वसनं परिधाय ह्रिया भिया ।
शर्म्मिष्ठया कृतं सर्वं प्राह राजानमीक्षती ॥ ९ ॥

शुक्रकी पुत्रीने लाज और भयके मारे वस्त्र पहरकर राजाकी ओर निहार शर्मिष्ठाकी सारी करतूत कह सुनाई ॥ ९ ॥

ययातिस्तदभिप्रायं ज्ञात्वाऽनुव्रज्य शोभनम् ।
आश्वास्य तां ययौ गेहं तस्याः परिणयाहृतः ॥ १० ॥

फिर देवयानीके अभिप्रायको जानकर राजा ययातिने उसके पाणिग्रहण करनेका अभिलाष किया । कुछ दूरतक साथ जाय भली भाँति समझाय बुझाय राजा अपने गृहको चले गये ॥ १० ॥

सा गत्वा भवनं शुक्रं प्राह शर्म्मिष्ठया कृतम् ।
तच्छ्रुत्वा कुपितं विप्रं वृषपर्वाऽऽह सान्त्वयन् ॥ ११ ॥

फिर अपने घरपर पहुँच पिता शुक्राचार्यसे शर्मिष्ठाका समस्त व्यवहार देवयानीने कहा । इस वृत्तान्तको सुनतेही शुक्राचार्य कुपित हुए, दैत्योंका राजा वृषपर्वा उनको समझाने लगा ॥ ११ ॥

दण्डयं मां दण्डय विभो कोपो यद्यस्ति ते मयि ।
शर्म्मिष्ठां वाप्यपकृतां कुरु यन्मनसेप्सितम् ॥ १२ ॥

और कहा–हे विभो ! जो हमारे ऊपर आपका क्रोध हुआ हो,

और मैं दण्डके योग्य होऊं अथवा आपकी अपकारिणी शर्मिष्ठाके ऊपर जो क्रोध हुआ हो तो जो इच्छा हो वह दण्ड आप दीजिये ॥ १२ ॥

राजानं प्रणतं पादे पितुर्दृष्ट्वा रुषाऽब्रवीत् ।
देवयानी त्वियं कन्या मम दासी भवत्विति ॥ १३ ॥

अपने पिता शुक्राचार्यके चरणोंमें दैत्यराजको गिरा हुआ देख देवयानीने क्रोधमें भरकर कहा कि, आपकी यह कन्या हमारी दासी होजाय ॥ १३ ॥

समानीय तदा राजा दास्ये तां विनियुज्य सः ।
ययौ निजगृहं ज्ञानी दैवं परमकं स्मरन् ॥ १४ ॥

दैवको बलवान् जानकर ज्ञानी राजाने शर्मिष्ठाको लाय देवयानीकी दासी करदिया और अपने गृहको चलागया ॥ १४ ॥

ततः शुक्रस्तमानीय ययातिं प्रतिलोमकम् ।
तस्मै ददौ तां विधिवद्देवयानीं तया सह ॥ १५ ॥

फिर शुक्राचार्यने राजा ययातिको बुलवाय प्रतिलोम विवाहके अनुसार विधिविधानसे देवयानीको दान किया । देवयानीके साथ उसकी दासी शर्मिष्ठा भी दीगई ॥ १५ ॥

दत्त्वा प्राह नृपं विप्रोऽप्येनां राजसुतां यदि ।
शयने ह्वयसे सद्यो जरा त्वामुपभोक्ष्यति ॥ १६ ॥

राजकुमारी शर्मिष्ठाके समर्पण करनेके समय शुक्राचार्यने राजासे कहा—जो तुम इस कन्याको शयनभवनमें बुलाओगे तो तत्काल तुमको जरा अवस्था प्राप्त होगी ॥ १६ ॥

शुक्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा राजा तां वरवर्णिनीम् ।
अदृश्यां स्थापयामास देवयान्यनुगां भिया ॥ १७ ॥

शुक्राचार्यके यह वचन सुनकर राजा ययातिने भयके मारे देवयानीकी सहेली परम रूपवती शर्मिष्ठाको ऐसे स्थानमें रक्खा जहां उसपर अपनी दृष्टि ही न पड़े ॥ १७ ॥

सा शर्म्मिष्ठा राजपुत्री दुःखशोकभयाकुला ।
नित्यं दासीशताकीर्णा देवयानीं तु सेवते ॥ १८ ॥

दुःखित, शोकसे सन्तापित, भयसे आकुल वह राजकुमारी शर्मिष्ठा प्रतिदिन शत दासियोंके साथ मिलकर देवयानीकी सेवा करने लगी ॥ १८ ॥

एकदा सा वनगता रुदती जाह्नवीतटे ।
विश्वामित्रं मुनिं सा तं ददृशे स्त्रीभिरावृतम् ॥ १९ ॥

एक समय गंगाजीके तीरपर वनमें बैठी हुई शर्मिष्ठा रोरही है इतनेमें उसने देखा कि, महर्षि विश्वामित्रजी स्त्रियोंके साथ हैं ॥ १९ ॥

व्रतिनं पुण्यगन्धाभिः सुरूपाभिः सुवासितम् ।
कारयन्तं व्रतं माल्यधूपदीपोपहारकैः ॥ २० ॥

यह महर्षिजी स्वयं व्रतको धारण किये हुए सुगन्धित पदार्थोंसे भूषित हैं, पवित्र गन्धवाली परम रूपवती स्त्रियें उनके चारों ओर बैठी हैं । वह विश्वामित्रजी धूप, दीप, माल्य व अनेक प्रकारके उपहारोंसे इन स्त्रियोंको व्रत करा रहे हैं ॥ २० ॥

निर्म्मायाष्टदलं पद्मं वेदिकायां सुचिह्नितम् ।
रम्भापोतैश्चतुर्भिस्तु चतुष्कोणं विराजितम् ॥ २१ ॥

विश्वामित्रजीने वेदिकाके ऊपर आठ दलका पद्म बनाया है, वेदीके चार कोनोंमें चार कदलीके वृक्ष लगे थे ॥ २१ ॥

वाससा निर्मितगृहे स्वर्णपट्टैर्विचित्रिते ।
निर्मितं श्रीवासुदेवं नानारत्नविघट्टितम् ॥ २२ ॥

वस्त्रनिर्मित (डेरे) गृहके भीतर सुवर्णके बने हुए पीठपर मणिजडित और सुघटित वासुदेवजीकी मनोहर मूर्ति विराजमान थी ॥ २२ ॥

पौरुषेण च सूक्तेन नानागन्धोदकैः शुभैः ।
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैर्यथामन्त्रैर्द्विजेरितैः ॥ २३ ॥

(पूजाका विधान यह है कि) पुरुषसूक्त पढकर मनोहर अनेक

प्रकारके सुगन्धित जलसे पंचामृतसे और पंचगव्यसे ब्राह्मण करके उच्चारित यथोक्त मंत्रसे ॥ २३ ॥

स्थापयित्वा भद्रपीठे कर्णिकायां प्रपूजयेत् ।
पञ्चभिर्दशभिर्वापि षोडशैरुपचारकैः ॥ २४ ॥

वासुदेवजीको भद्रपीठमें कर्णिकाके ऊपर स्थापन कराय सोलह अथवा पंद्रह उपचारोंसे अथवा दश उपचारोंसे पूजा करे ॥ २४ ॥

पाद्यमध्वश्रमहरं शीतलं सुमनोहरम् ।
परमानन्दजनकं गृहाण परमेश्वर ॥ २५ ॥

हे परमेश्वर ! तुम्हारी मार्गथकावटको दूर करनेके लिये यह परम प्रीतिकारी शीतल और सुन्दर पाद्य है इसको ग्रहण करो ॥ २५ ॥

दूर्वाचन्दनगन्धाढ्यमर्घ्यं युक्तं प्रयत्नतः ।
गृहाण रुक्मिणीनाथ प्रसन्नस्य मम प्रभो ॥ २६ ॥

हे रुक्मिणीवल्लभ ! हे वासुदेव ! यत्नसहित इस दूर्वायुक्त व चन्दनचर्चित अर्घ्यको स्थापित किया है, शरणागतजनोंका निवेदन किया अर्घ्य ग्रहण करो ॥ २६ ॥

नानातीर्थोद्भवं वारि सुगन्धि सुमनोहरम् ।
गृहाणाचमनीयं त्वं श्रीनिवास श्रिया सह ॥ २७ ॥

हे कमलापते ! अनेक तीर्थोंका पवित्र जल संग्रह किया है, तुम और लक्ष्मीजी इस मनोहर सुगन्धित जलको अपने आचमनीय स्वरूपमें ग्रहण करो ॥ २७ ॥

नानाकुसुमगन्धाढ्यं सूत्रग्रथितमुत्तमम् ।
वक्षःशोभाकरं चारु माल्यं नय सुरेश्वर ॥ २८ ॥

हे सुरेश्वर ! अनेक प्रकारके सुगन्धित फूलोंकी माला गूंथी है, यह माला तुम्हारी छातीकी शोभाको बढावैगी, हे देव! इस शोभायमान मालाको ग्रहण करो ॥ २८ ॥

तन्तुसन्तानसन्धानरचितं बन्धनं हरे ।
गृहाणावरणं शुद्धं निरावरण सप्रिय ॥ २९ ॥

हे हरे ! (तुम अनादि, अनन्त, महापुरुष हो) तुमको कौन ढक सकता है ? तथापि तुम और तुम्हारी प्यारी लक्ष्मी सूत्रसन्धानसे रचित इन शुद्ध आवरण वस्त्रको ग्रहण करो ॥ २९ ॥

यज्ञसूत्रमिदं देव प्रजापतिविनिर्मितम् ।
गृहाण वासुदेव त्वं रुक्मिण्या रमया सह ॥ ३० ॥

हे देव ! प्रजापतिने इस यज्ञसूत्रको बनाया है, तुम और तुम्हारी भार्या रुक्मिणी और लक्ष्मीजी इस यज्ञोपवीतको ग्रहण करें ॥ ३० ॥

नानारत्नसमायुक्तं स्वर्णमुक्ताविघट्टितम् ।
प्रियया सह देवेश गृहाणाभरणं मम ॥ ३१ ॥

हे देवताओंके स्वामिन् ! इन मोतियोंसे जडे, सुवर्णके बने, रत्नमय आभरणोंको तुम और तुम्हारी भार्या ग्रहण करें ॥ ३१ ॥

दधिक्षीरगुडान्नादिपूपलड्डुकखण्डकान् ।
गृहाण रुक्मिणीनाथ सनाथं कुरु मां प्रभो ॥ ३२ ॥

हे रुक्मिणीवल्लभ ! दही, दूध, गुड, अन्न, पुआ, लड्डू, खांड आदि ग्रहण करो, हे देव ! मैं अनाथ हूं मुझे सनाथ करो ॥ ३२ ॥

कर्पूरागुरुगन्धाढ्यं परमानन्ददायकम् ।
धूपं गृहाण वरद वैदर्भ्या प्रियया सह ॥ ३३ ॥

हे वरद ! तुम रुक्मिणीजीके साथ परमानन्दको देनेवाली, कपूर और अगरकी गन्धसे युक्त इस धूपको ग्रहण करो ॥ ३३ ॥

भक्तानां गेहसक्तानां संसारध्वान्तनाशनम् ।
दीपमालोकय विभो जगदालोकनादर ॥ ३४ ॥

हे भगवन् ! तुम संसारविलासी भक्तोंके संसार (मोह) रूप अन्धकारको दूर करते हो, तुम समस्त संसारमें आदरसहित कृपाकटाक्ष चलाओ; अब इस (साधारण) दीपकपर नेत्रोंका संचार करो ॥ ३४ ॥

श्यामसुन्दर पद्माक्ष पीतांबर चतुर्भुज ।
प्रपन्नं पाहि देवेश रुक्मिण्या सहिताच्युत ॥ ३५ ॥

हे पद्मपलाशलोचन ! हे श्यामसुन्दर ! हे पीताम्बर ! हे देवदेव ! हे चतुर्भुज ! आप और भगवती रुक्मिणीजी हमार प्रसन्न होवैं (और) हमारी रक्षा करें ॥ ३५ ॥

इति तासां व्रतं दृष्ट्वा मुनिं नत्वा सुदुःखिता ।
शर्म्मिष्ठा मिष्टवचना कृताञ्जलिरुवाच ताः ॥ ३६ ॥

स्त्रियोंके इस व्रतको देखकर दुःखित हुई शर्मिष्ठाने महर्षिजीको प्रणाम किया और हाथ जोडकर मीठे वचनोंसे बोली ॥ ३६ ॥

शर्मिष्ठोवाच-राजपुत्रीं दुर्भगां मां स्वामिना परिवर्ज्जिताम् ।
त्रातुमर्हथ हे देव्यो व्रतेनानेन कर्म्मणा ॥ ३७ ॥

शर्मिष्ठा बोली-हे देवियो ! म अत्यन्त अभागिनी हूं, राजकुमारी थी, परन्तु भाग्यदोष करके पतिके संगसे वर्जित हूं। इस व्रतका अनुष्ठान किस प्रकारसे होता है सो उपदेश करके आप हमारी रक्षा करें ॥ ३७ ॥

श्रुत्वा तु ता वचस्तस्याः कारुण्याच्च कियत्कियत् ।
पूजोपकरणं दत्त्वा कारयामासुरादरात् ॥ ३८ ॥

शर्मिष्ठाके यह वचन सुनकर उन स्त्रियोंने दयाके वश हो, कुछ२पूजाकी सामग्री दे आदरसहित उसको वह व्रत कराया ॥ ३८ ॥

व्रतं कृत्वा तु शर्मिष्ठा लब्ध्वा स्वामिनमीश्वरम् ।
सूत्वा पुत्रान्सुसन्तुष्टा समभूत्स्थिरयौवना ॥ ३९ ॥

उस व्रतको करके शर्मिष्ठा अपने प्यारे पतिको पायकर पुत्रवती और स्थिर यौवनवाली हुई ॥ ३९ ॥

सीता चाशोकवनिकामध्ये सरमया सह ।
व्रतं कृत्वा पतिं लेभे रामं राक्षसनाशनम् ॥ ४० ॥

सीता (१) और सरमा (२)ने अशोकवनमें इस व्रतको कियाथा, उसही पुण्यके बलसे फिर जानकीजी राक्षसनाशी रामचंद्रजीके साथ मिलीं॥ ४०॥

बृहदश्वप्रसादेन कृत्वेमं द्रौपदी व्रतम् ।
पतियुक्ता दुःखमुक्ता बभूव स्थिरयौवना ॥ ४१ ॥

बृहदश्वके प्रसादसे द्रौपदी (३) इस व्रतको करके पतियुक्त हो, दुःखसे छुटकारा पाय स्थिर यौवनवाली हुई थी ॥ ४१ ॥

---

(१) एक समय राजा सीरध्वजने सन्तानकी कामनासे यज्ञ किया था । उस यज्ञभूमिको जोतनेके समय हलकी सीता (हलकी पद्धति, हलके चलनेपर मिट्टीमें जो दाग पडता है)से एक कन्या उत्पन्न हुई थी । सीतासे उत्पत्ति होनेके कारण सीतानाम हुआ था । विष्णुपुराणमें कहा है:-

तस्य पुत्रार्थं यजनभुवः कर्षतः सीरे सीता दुहिता समुत्पन्नाऽऽसीत् ॥
(विष्णुपुराण, ४ अंश, ५ अ०)

विदेह, जनकादि सीरध्वजके दूसरे नाम हैं । इनकी कन्या सीता हुईं, उनकेही जानकी वैदेही आदि दूसरे नाम थे, वह पृथ्वीसे उत्पन्न हुई थी इस कारण उनको धरणिकुमारी व अयोनिजा कहा जाता था । महादेवजीका धनुष तोडकर रामचंद्रजीने सीताका पाणिग्रहण किया । जनकदुलारीने जिस प्रकार असाधारण गुणोंकी स्वामिनी होकर जन्म लिया था और जैसी वह पतिपरायणा थी ऐसे दृष्टान्त पृथ्वीपर अत्यन्त विरल हैं । बहुतसे नये रोशनीवाले कहते कि, यदि देवता और देवगुणोंका आस्तित्व यथार्थ है [illegible] :सन्देह सीताजी वही देवता है । इसमें सन्देह नहीं कि, सीताजीने स्त्रियोंका आदर्श होकर जन्म लिया था ।

(२) सरमा-विभीषणकी भार्याका नाम है । यह अत्यन्त सुशीला और पतिरता थी । सीताजीने इसी सरमाकी सेवकाईसे और धीरज बँधानेसे अशोकवनमें जीवन धारण किया था । सरमाका चरित्र अत्यन्त उदार शुद्ध और सरल था ।

(३) द्रौपदी-द्रुपदराजाकी कन्याका नाम है । द्रौपदीका विवाह स्वयंवरकी रीतिसे हुआ । देश२से राजालोग आये थे । एक निशाना बनाया गया था और नियत किया गया कि, जो इस लक्ष (निशाने) को भेदै उसकेही साथ द्रौपदीका विवाह होगा, सबके पीछे अर्जुनने उस लक्ष्यको भेद डाला । राजाओंने डाहके वश होकर अर्जुनसे युद्ध करना आरम्भ किया, युद्धमें विजय पाय द्रौपदीको संग लेकर अर्जुन अपने आश्रमको चला गया । यह समय पाण्डवोंके अज्ञातवास करनेका था । यह भिखारीका वेष धारण करके दिन बिताते थे । उस दिन थके थकाये आश्रममें जायकर अर्जुनने कहा-मैया ! आज बडा थक गया हूं । कुंतीजी घरके भीतरसे बोली-बेटा ! जो कुछ इकट्ठा करके लाये हो पांचों भैया बांट लो । अब बडी अनबन आनपडी । एक स्त्रीको किस प्रकारसे पांच जन बांट सकें ? माताकी आज्ञा किस प्रकारसे लँघन की जाय ? अन्तमें कुन्तीकी बातही मानी गई । पांचों पाण्डवोंने राजा द्रुपदकी पुत्री द्रौपदीके साथ विवाह किया । इस प्रकारसे द्रौपदीका विवाह हुआ ।
(महाभारतमें यह कथा विस्तारपूर्वक लिखी है)

तथा रमा सिते पक्षे वैशाखे द्वादशीदिने ।
जामदग्न्याद्व्रतं चक्रे पूर्णं वर्षचतुष्टयम् ॥ ४२ ॥

कल्किजीकी रमाने वैशाखमासके शुक्लपक्षमें द्वादशीतिथिके दिन परशुरामजीको पुरोहित बनाय रुक्मिणीव्रतका आरम्भ किया । चार वर्ष बीत जानेपर रमाका रुक्मिणीव्रत पूर्ण होगया ॥ ४२ ॥

पट्टसूत्रं करे बद्ध्वा भोजयित्वा द्विजान् बहून् ।
भुक्त्वा हविष्यं क्षीराक्तं सुमृष्टं स्वामिना सह ॥ ४३ ॥

हाथमें रेशमका डोरा बाँधकर रमाने अनेक ब्राह्मणोंको भोजन कराया, फिर उत्तम बना हुआ क्षीरयुक्त हविष्यान्न (खीर) स्वामीके साथ भोजन करके ॥ ४३ ॥

बुभुजे पृथिवीं सर्वामपूर्वां स्वजनैर्वृता ।
सा पुत्रौ सुषुवे साध्वी मेघमालबलाहकौ ॥ ४४ ॥

निज जनोंसे युक्त होकर अखण्ड पृथ्वीको भोगने लगी, अनन्तर पतिव्रता रमाके दो पुत्र उत्पन्न हुए । एक पुत्रका नाम मेघमाल और दूसरे पुत्रका नाम बलाहक था ॥ ४४ ॥

देवानामुपकर्त्तारौ यज्ञदानतपोव्रतैः ।
महोत्साहौ महावीर्य्यौ सुभगौ कल्किसम्मतौ ॥ ४५ ॥

यह दोनों सौभाग्यवान् महापुरुष दान, धर्म, योग, यज्ञ, तपादिका अनुष्ठान करके देवताओंका उपकार करते रहते थे । इन दोनों अत्यन्त उत्साही पुत्रोंपर कल्किजी अत्यन्त प्रसन्न थे ॥ ४५ ॥

व्रतवरमिति कृत्वा सर्वसम्पत्समृद्ध्या
भवति विदिततत्त्वा पूजिता पूर्णकामा ।
हरिचरणसरोजद्वन्द्वभक्त्यैकताना
व्रजति गतिमपूर्वां ब्रह्मविज्ञैरगम्याम् ॥ ४६ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे रुक्मिणीव्रतं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

जो इस व्रतका अनुष्ठान करते हैं वे लोग सब प्रकारसे सुख, सम्पत्ति और समृद्धिको पातेहैं। उनके सर्व प्रकारके अभीष्ट सिद्ध हो जाते हैं, ब्रह्मज्ञानका उदय होता है। वह हरिजीके चरणकमलमें एकान्तमनसे भक्तिमान् हो उस श्रेष्ठगतिको पाते हैं, जो महर्षियोंको अगम्य, अनहुई और अपूर्व है ॥ ४६ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां रुक्मिणीव्रतं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

तृतीयांशः ।

अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

सूत उवाच-एतद्वः कथितं विप्रा व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
अतः परं कल्किकृतं कर्म्म यच्छृणुत द्विजाः ॥ १ ॥

उग्रश्रवा बोले-हे ब्राह्मणगण ! यह मैंने आप लोगोंसे त्रिलोकीमें विख्यात रुक्मिणीव्रत कहा। इसके उपरान्त कल्किजीने जो जो कर्म किये थे वह कहताहूं श्रवण करो ॥ १ ॥

शम्भले वसतस्तस्य सहस्रपरिवत्सराः ।
व्यतीता भ्रातृपुत्रस्वज्ञातिसम्बन्धिभिः सह ॥ २ ॥

इस प्रकारसे कल्किजीने भ्राता, पुत्र, जाति, सम्बन्धी और निज जनोंके साथ एक हजार वर्षतक शम्भलग्राममें वास किया ॥ २ ॥

शम्भले शुशुभे श्रेणी सभापणकचत्वरैः ।
पताकाध्वजचित्राढ्यैर्यथेन्द्रस्यामरावती ॥ ३ ॥

ध्वजा और पताकाओंसे विभूषित शम्भलनगरी अपने चौराहोंकी शोभासे इन्द्रकी अमरावतीकी समान शोभायमान होने लगी ॥ ३ ॥

यत्राष्टषष्टितीर्थानां सम्भवः शम्भलेऽभवत् ।
मृत्योर्मोक्षः क्षितौ कल्केरकल्कस्य पदाश्रयात् ॥ ४ ॥

इस शम्भलग्राममें अडसठ तीर्थोंका निवास हुआथा । अकलंक काल्कि-जीके पदाश्रयके प्रभावसे शम्भलनगरमें मृत्यु होनेपर मोक्षकी प्राप्ति होने लगी ४

वनोपवनसन्ताननानाकुसुमसंकुलैः ।
शोभितं शम्भलं ग्रामं मन्ये मोक्षपदं भुवि ॥ ५ ॥

वहांके वन उपवनादि अनेक प्रकारके कमनीय फूलोंसे सज गये थे । हमको जानपडता है कि, वह परम रमणीय शम्भल ग्राम पृथ्वीमें मोक्षपदरूप गिना गया था ॥ ५ ॥

तत्र काल्किः पुरस्त्रीणां नयनानन्दवर्द्धनः ।
पद्मया रमया कामं रराम जगतीपातिः ॥ ६ ॥

पुरस्त्रियोंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले जगत्‌के नाथ कल्किजी इस शम्भल ग्राममें पद्मा और रमाके साथ अभिलाषाके अनुसार क्रीडा करने लगे ॥ ६ ॥

सुराधिपप्रदत्तेन कामगेन रथेन वै ।
नदीपर्वतकुञ्जेषु द्वीपेषु परया मुदा ॥ ७ ॥
रममाणो विशन् पद्मारमाद्याभी रमापातिः ।
दिवानिशं न बुबुधे स्त्रैणश्च कामलम्पटः ॥ ८ ॥

वह इन्द्रके दिये हुए कामगामी रथपर सवार हो परमप्रसन्न हृदयसे नदी, पर्वत, कुंज और द्वीपोंमें प्रवेशित होकर रमा, पद्मा आदि कामिनियोंके साथ विहार करने लगे । कामसे लम्पट हुए स्त्रैण उन रमापतिको दिनरातका विचार न रहा ॥ ७ ॥ ८ ॥

पद्मासुखामोदसरोजशीधुवासोपभोगी सुविलासवासः ।
प्रभूतनीलेन्द्रमणिप्रकाशे गुहाविशेषे प्रविवेश कल्किः ॥ ९ ॥

इसके उपरान्त एक समय पद्माके सुखामोदरूप कमलमधुगन्धके भोग करनेवाले कल्किजी एक पर्वतकी गुहामें प्रवेश करते हुए जो कि, बहुतसी इन्द्रनील मणियोंके द्वारा शोभायमान होरही थी ॥ ९ ॥

पद्मा तु पद्माशतरूपरूपा रमा च पीयूषकलाविलासा ।
पतिं प्रविष्टं गिरिगह्वरे ते नारीसहस्राकुलिते त्वगाताम् ॥ १० ॥

कमलाके समान, सुवर्णसम रंगवाली पद्मा व अमृतपात्ररूपा रमाने भी पतिको गिरिगुहामें प्रवेश करते हुए देखकर सहस्र दासियोंके साथ उस स्थानमें प्रवेश किया ॥ १० ॥

पद्मा पतिं प्रेक्ष्य गुहानिविष्टं रन्तुं मनोज्ञा प्रविवेश पश्चात् ।
रमाऽबलायूथसमन्विता तत्पश्चाद्गता कल्किमनूग्रकामा ॥ ११ ॥

मनकी हरनेवाली पद्मा अपने पतिको गुहामें प्रवेश करते हुए देखकर विहार करनेकी अभिलाषासे पतिके पीछे २ उस गुफामें गई । कल्किजीके साथ अत्यन्त विहार करनेकी अभिलाषासे रमाभी स्त्रियोंके साथ उनके पीछे २ प्रवेश करने लगी ॥ ११ ॥

तत्रेन्द्रनीलोत्पलगह्वरान्ते कान्ताभिरात्मप्रतिमाभिरीशम् ।
कल्किं च दृष्ट्वा नवनीरदाभं ततः स्थितं प्रस्तरवन्मुमोह ॥ १२ ॥

इसके उपरान्त पद्मावतीने देखा कि, उस इन्द्रनीलमणिमय गुहाके बीच नवीन बादरके समान कान्तिमान् ईश्वर कल्किजी, अपनी समान रूपवान् स्त्रियोंके साथ विराजमान होरहे हैं । यह देखकर पद्मा मोहके मारे चेष्टा रहित और पत्थरसी हो गिरपडी ॥ १२ ॥

रमा सखीभिः प्रमदाभिरार्त्ता विलोकयन्ती दिशमाकुलाक्षी ।
पद्मापि पद्माशतशोभमाना विषण्णचित्ता न बभौ स्म चार्त्ता ॥ १३ ॥

स्त्रियोंके साथ व्याकुलनेत्रोंसे रमाभी कातर हो चारों ओर देखने लगी, शत २ पद्माके समान शोभायमान पद्माभी शोकितहृदय और कातर हो एक साथ प्रभाहीन बनगई ॥ १३ ॥

भूमौ लिखन्ती निजकज्जलेन कल्किं शुकं तं कुचकुंकुमेन ।
कस्तूरिकाभिस्तु तदग्रमग्रे निर्म्माय चालिङ्गच ननाम भावात् ॥ १४ ॥

पद्माके नेत्रोंमें जो काजल था उससे भूमि अंकित होने लगी, वह

कुचमें लगे हुए कुंकुमसे कल्किजीको, शुकको व कस्तूरीसे निकटकी भूमिको धूसरित करके तिसके ऊपर गिरी ॥ १४ ॥

रमा कलालापपरा स्तुवन्ती कामार्दिता तं हृदये निधाय ।
ध्यात्वा निजालंकरणैः प्रपूज्य तस्थौ विषण्णा करुणावसन्ना ॥ १५ ॥

मधुर वचन बोलनेवाली कामदेवके भारसे दुःखी हुई रमा हृदयमें कल्किजीका ध्यान करके अपने अन्तःकरणरूपी फूलोंसे पूजा करके दुःखभारसे दबनेके कारण शोकित हो गिरपडी ॥ १५ ॥

क्षणात्समुत्थाय रुरोद रामा कलापिनः कण्ठनिभं स्वनाथम् ।
हृदोपगूढं न पुनः प्रलभ्य कामार्दितेत्याह हरे प्रसीद ॥ १६ ॥

फिर उसनें क्षणभरके पीछे उठकर मोरके समान ऊंचे स्वरसे रोना आरंभ किया, वह अपने हृदयमें स्वामी कल्किजीका आलिंगन न करने पाकर कामके वश हो कहने लगी, हे नारायण ! प्रसन्न होवो ॥ १६ ॥

पद्मापि निर्म्मुच्य निजाङ्गभूषाश्चकार धूलीपटले विलासम् ।
कण्ठं च कस्तूरिकयापि नीलं कामं निहन्तुं शिवतामुपेत्य ॥ १७ ॥

पद्माभी अपने अंगके शृंगारको छोडकर धूरिमें लोटने लगी । उसका शरीर धूरिसे मलीन और कण्ठ कस्तूरी करके नीलवर्ण होनेसे ऐसा जान पडने लगा मानो उसने कामदेवका नाश करनेके लिये शिवरूप धारण किया हो ॥ १७ ॥

कलावतीनां कलयाकलय्य क्षीणेक्षणानां हरिरार्त्तबन्धुः ।
कामप्रपूराय ससार मध्ये कल्किः प्रियाणां सुरतोत्सवाय ॥ १८ ॥

कातरनेत्रवाली प्यारी विलासिनियोंके विहारवासनाको जानकर उनकी कामना पूर्ण करनेके निमित्त और सुरतका उत्सव करनेको आरत जनोंके बन्धु नारायणजी उनके बीचमें आगये ॥ १८ ॥

ताः सादरेणात्मपतिं मनोज्ञाः करेणवो यूथपतिं यथेयुः ।
सानन्दभावा विशदानुवृत्ता वनेषु रामाः परिपूर्णकामाः ॥ १९ ॥

जिस प्रकार हथिनियें यूथपति हाथीके समीप (उत्सुकताके साथ) जाती हैं, वैसेही स्त्रियें अत्यन्त प्रसन्न हो आनन्दित हृदयसे कल्किजीके निकट आईं, उनका शोक सन्ताप दूर हो गया । उसही वनमें उनकी कामना पूर्ण हुई थी ॥ १९ ॥

वैभ्राजके चैत्ररथे सुपुष्पे सुनन्दने मन्दरकन्दरान्ते ।
रेमे स रामाभिरुदारतेजा रथेन भास्वत्खगमेन कल्किः ॥२०॥

उदार चरित्रवाले, परमतेजस्वी, कल्किजी, विमलप्रभावशाली, आकाशगामी, प्रकाशमान रथमें सवार हो पद्मा व रमा आदि स्त्रियोंको संग ले फूलोंकी शोभासे शृंगारित, वैभ्राजकवन, चैत्ररथ और नन्दनकाननमें जायकर विहार करने लगे ॥ २० ॥

पद्मामुखाब्जामृतपानमत्तो रमासमालिङ्गनवासरङ्गी ।
वरांगनानां कुचकुंकुमाक्तो रतिप्रसंगे विपरीतयुक्तः ॥
मुखे विदष्टो रसनावशिष्टामोदः स कल्किर्न हि वेद देहम् ॥२१॥

पद्माके वदनकमलका मधुपान करनेसे मत्त, रमाके आलिंगन करनेसे उत्पन्न हुए सौरभसे लुभाये श्रेष्ठ युवतियोंके कुचकुंकुमसे लिपटे हुए कल्किजी विपरीत रतिके प्रसंगमें लिप्त हुए । स्त्रियें उनके मुखको काटने लगीं । वह प्यारियोंके मुखके अमृतको पान करके ऐसे विह्वल हुए कि, उनका शरीरभी उनके वशमें न रहा ॥ २१ ॥

रमासमानाः पुरुषोत्तमं तं वक्षोजमध्ये विनिधाय धीराः ।
परस्पराश्लेषणजातहासा रेमुर्मुकुन्दं विलसच्छरीराः ॥ २२ ॥

रमाके समानरूपवाली धीरा स्त्रियोंने पुरुषोत्तम मुकुन्दको अपने स्तनोंमें धारण करके क्रीडा करना आरम्भ किया । उनका पुलकित शरीर परस्पर श्लेष होनेसे सबही हास्य करने लगीं ॥ २२ ॥

ततः सरोवरं त्वरा स्त्रियो ययुः क्लमज्वराः
प्रियेण तेन कल्किना वनान्तरे विहारिणा ।

सरः प्रविश्य पद्मया विमोहरूपया तया
जलं ददुर्वराङ्गनाः करेणवो यथा गजम् ॥ २३ ॥

श्रमसे थकी हुई स्त्रियें फिर दूसरे वनमें विहार करनेवाले प्यारे कल्कि-जीके साथ शीघ्रतासे सरोवरपर गईं। जिस प्रकार हथिनियें यूथपतिके अंगपर जल छिडकती हैं, वैसेही यह श्रेष्ठ स्त्रियें, अनुपम रूपवती पद्माके साथ सरो-वरमें गोते लगाय नहायकर कल्किजीके शरीरपर जल वर्षाने लगीं॥ २३ ॥

इति ह युवतिलीला लोकनाथः स कल्किः
प्रिययुवतिपरीतः पद्मया रामयाऽऽद्यः ।
निजरमणविनोदैः शिक्षयँल्लोकवर्गा-
ञ्जयति विबुधभर्त्ता शम्भले वासुदेवः ॥ २४ ॥

तरुणियों (स्त्रियों) के साथ लीला करनेमें लोभी देवताओंके स्वामी आदिनाथ, लोकनाथ कल्किजीकी जय हो । उन्होंने शम्भलग्राममें अपने प्यारी रमाके साथ व औरभी प्यारी स्त्रियोंके साथ मिल अपने किये विहारादि विनोदसे समस्त लोगोंको उपदेश दियाथा ॥ २४ ॥

ये शृण्वन्ति वदन्ति भावचतुरा ध्यायन्ति सन्तः सदा
कल्केः श्रीपुरुषोत्तमस्य चरितं कर्णामृतं सादराः ।
तेषां नो सुखयत्ययं मुररिपोर्दास्याभिलाषं विना
संसारः परिमोचनं च परमानन्दामृताम्भोनिधेः ॥ २५ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कल्किवर्णनं
नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

जो विचारवान् साधुलोग श्रुतिमार्गका अमृतस्वरूप भगवान् कल्किजीका यह चरित्रामृत आदरसहित श्रवण कीर्त्तन अथवा ध्यान किया करते हैं, दास्यभावसे उन मुरके मारनेवाले भगवान्‌की सेवाके सिवाय उनके हृदयमें और किसीकी प्रीतिका संचार वा सुखका उदय नहीं होता, उनको ऐसा

ज्ञात होता है कि, इस परमप्रीति अमृतमय संसारसे मुक्ति होनेकी अपेक्षा अधिक सुखकी सम्भावना नहीं ॥ २५ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे बलदेव० भाषा० कल्किवर्णनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

तृतीयांशः ।

ऊनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

सूत उवाच—ततो देवगणाः सर्वे ब्रह्मणा सहिता रथैः ।
स्वैःस्वैर्गणैः परिवृताः कल्किं द्रष्टुमुपाययुः ॥ १ ॥

सूतजी बोले—इसके उपरान्त देवता और ब्रह्माजी सब मिलकर अपने अपने सेवकोंके सहित रथोंपर सवार हो कल्किजीका दर्शन करनेके निमित्त आये ॥ १ ॥

महर्षयः सगन्धर्वाः किन्नराश्चाप्सरोगणाः ।
समाजग्मुः प्रमुदिताः शम्भलं सुरपूजितम् ॥ २ ॥

महर्षि, गन्धर्व, किन्नर और अप्सरायें हृदयमें आनन्दित हो देवताओंसे पूजित शम्भल ग्राममें आये ॥ २ ॥

तत्र गत्वा सभामध्ये कल्किं कमललोचनम् ।
तेजोनिधिं प्रपन्नानां जनानामभयप्रदम् ॥ ३ ॥

उन्होंने सभामें प्रवेश करके देखा कि, तेजके समूहके ढेर कमलके समान नेत्रोंवाले कल्किजी, शरणमें आये हुए जनोंको अभय देरहे हैं ॥ ३ ॥

नीलजीमूतसंकाशं दीर्घपीवरबाहुकम् ।
किरीटेनार्कवर्णेन स्थिरविद्युन्निभेन तम् ॥ ४ ॥

उनकी कान्ति नीले बादरके समान है । बाँहें दीर्घ और पुष्ट हैं । उनका मस्तक स्थिर सौदामिनी (बिजली) की समान, सूर्यके समान तेजःपुंजयुक्त किरीटसे शोभायमान होरहा है ॥ ४ ॥

शोभमानं द्युमणिना कुण्डलेनाभिशोभिना ।
सहर्षालापविकसद्वदनं स्मितशोभितम् ॥ ५ ॥

सूर्यके समान प्रकाशमान कुण्डलोंसे उनका वदनमंडल विराजमान होरहा है । विशेष करके हर्षकी वार्त्ता करनेसे उनका यह मुखकमल प्रफुल्ल होरहा है और मुस्कानसे शोभायमान होरहा है ॥ ५ ॥

कृपाकटाक्षविक्षेपपरिक्षिप्तविपक्षकम् ।
तारहारोल्लसद्वक्षश्चन्द्रकान्तमणिश्रिया ॥ ६ ॥

उनकी कृपाकटाक्षके चलनेसे शत्रुलोग अनुगृहीत होरहे हैं । उनकी छातीमें पडाहुआ मनोहर हार बीचमें पिरोई हुई चन्द्रकान्तमणिकी कान्तिसे ॥ ६ ॥

कुमुद्वतीमोदवहं स्फुरच्छक्रायुधाम्बरम् ।
सर्वदानन्दसन्दोहरसोल्लसितविग्रहम् ॥ ७ ॥

कुमुदनी प्रसन्न होरही थीं । इन्द्रधनुषके समान उनके वस्त्र शोभाको विस्तार कररहे हैं । उनका शरीर सदा आनन्दसमूहके रससे हर्षित हो रहा है ॥ ७ ॥

नानामणिगणोद्योतदीपितं रूपमद्भुतम् ।
ददृशुर्देवगन्धर्वा ये चान्ये समुपागताः ॥ ८ ॥

उनका अनुपम रूप अनेक प्रकारके मणियोंके किरणोंसे प्रकाशमान हो रहा है । देवता, गन्धर्व और जो कोई आये थे उन सबने कल्किजीको इस प्रकारसे देखा ॥ ८ ॥

भक्त्या परमया युक्ताः परमानन्दविग्रहम् ।
कल्किं कमलपत्राक्षं तुष्टुवुः परमादरात् ॥ ९ ॥

वह सबही परमभक्तियुत हो आदरपूर्वक परमानन्दमय शरीर कमलदलके समान नेत्रवाले कल्किजीका स्तोत्र करने लगे ॥ ९ ॥

देवा ऊचुः—जयाशेषसंक्लेशकक्षप्रकीर्णानलोद्दामसंकीर्णहीश
देवेश विश्वेश भूतेश भावः । तवानन्त चान्तः
स्थितोऽङ्गातरत्नप्रभाभातपादाजितानन्तशक्ते ॥ १० ॥

देवतालोग बोले—हे देवदेव विश्वेश्वर ! हे भूतनाथ ! तुम अनन्त हो। तुम्हारे अन्तरमें समस्त भाव विराजमान हैं, हे भगवन् ! तुम प्रचण्ड अग्निरूप हो, तुम्हारे कनभर स्पर्शसे इस संसारका क्लेशराशिरूप अगणित ईंधन भस्म होजाता है, तुम्हारे चरणकमलमें कान्तिका जाल भासमान होरहा है, तुम्हारे उन्हीं पाँवोंसे (सर्पराज) अनन्त (शेष) की प्रबल शक्ति दबगई है, हे देव ! तुम्हारी जय हो ॥ १० ॥

प्रकाशीकृताशेषलोकत्रयात्र वक्षःस्थले भास्वत्कौस्तुभश्याम ।
मेघौघराजच्छरीरद्विजाधीशपुञ्जानन त्राहि विष्णो सदारा वयं
त्वां प्रपन्नाः सशेषाः ॥ ११ ॥

हे जगदीश ! तुम्हारी श्यामवर्ण छातीमें प्रकाशमान कौस्तुभमणि विराजमान है, मणिकी किरणमालासे त्रिलोकी उज्ज्वल होकर प्रकाशित होरही है, इससे ऐसा जान पडता है कि, मानो पूर्णचन्द्रमा मेघ मालाके भीतर विराजमान होरहा है। हे देव ! विपत्तिमें पडकर स्त्री, पुत्र और परिजनोंके सहित आपकी शरणमें आये हैं, आप हमारी रक्षा करें ॥ ११ ॥

यद्यस्त्यनुग्रहोऽस्माकं व्रज वैकुण्ठमीश्वर ।
त्यक्त्वा शासितभूखण्डं सत्यधर्माविरोधतः ॥ १२ ॥

हे ईश्वर ! यदि हमपर तुम कृपा किया करते हो, तो इस भूमण्डलका जो कि, सत्यधर्मके अविरोधसे शासित होरहाहै—त्यागकर वैकुण्ठमें यात्रा करो ॥ १२ ॥

कल्किस्तेषामिति वचः श्रुत्वा परमहर्षितः ।
पात्रमित्रैः परिवृतश्चकार गमने मतिम् ॥ १३ ॥

देवताओंका यह निवेदन सुनकर कल्किजी आनन्दित हुए और पात्र मित्रोंके साथ मिलकर वैकुण्ठ जानेकी अभिलाषा करते हुए ॥ १३ ॥

पुत्रानाहूय चतुरो महाबलपराक्रमान् ।
राज्ये निक्षिप्य सहसा धर्मिष्ठान् प्रकृतिप्रियान् ॥ १४ ॥

प्रजाके परम प्यारे, परम धार्मिक, महाबली पराक्रमी चारों पुत्रोंको कल्किजीने बुलाकर तिस कालही राज्यपदपर अभिषेकित करदिया ॥ १४ ॥

ततः प्रजाः समाहूय कथयित्वा निजाः कथाः ।
प्राह तान्निजनिर्याणं देवानामुपरोधतः ॥ १५ ॥

फिर उन्होंने समस्त प्रजाको बुलाकर अपना वृत्तान्त जताया और कहा कि, देवताओंके कहनेसे हमको वैकुण्ठकी यात्रा करनी पडैगी ॥ १५ ॥

तच्छ्रुत्वा ताः प्रजाः सर्वा रुरुदुर्विस्मयान्विताः ।
तं प्राहुः प्रणताः पुत्रा यथा पितरमीश्वरम् ॥ १६ ॥

यह वचन सुनतेही विस्मित हो सारी प्रजा रोने लगी। जिस प्रकार पुत्र अपने पितासे कहते हैं, वैसेही वह (प्रजालोग) ईश्वरको प्रणाम करके कहने लगे ॥ १६ ॥

प्रजा ऊचुः—भो नाथ सर्वधर्मज्ञ नास्मांस्त्यक्तुमिहार्हसि ।
यत्र त्वं तत्र तु वयं यामः प्रणतवत्सल ॥ १७ ॥

प्रजा लोग बोले—हे नाथ ! आप सम्पूर्ण धर्म जानते हैं, हम लोगोंको छोड जाना आपको उचित नहीं है । आप प्रणतवत्सल हैं, जहांपर आप जायँगे वहींपर हम जायँगे ॥ १७ ॥

प्रिया गृहा धनान्यत्र पुत्राः प्राणास्तवानुगाः ।
परत्रेह विशोकाय ज्ञात्वा त्वां यज्ञपूरुषम् ॥ १८ ॥

इस संसारमें धन, पुत्र और गृह सबके लिये प्यारा है तो परन्तु आप यज्ञपुरुष हैं, आपसे समस्त शोक दुःखकी शान्ति होती है, यह जानकर हमारे प्राण आपके अनुगामी हुआ चाहते अर्थात् साथ चलना चाहते हैं ॥ १८ ॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा सान्त्वयित्वा सदुक्तिभिः ।
प्रययौ क्लिन्नहृदयः पत्नीभ्यां सहितो वनम् ॥ १९ ॥

प्रजाके ऐसे वचन सुनकर कल्किजीने सदुपदेश देकर उन्हें समझाया और शोकितमनसे दोनों भार्याओंके साथ वनको चले गये ॥ १९ ॥

हिमालयं मुनिगणैराकीर्णं जाह्नवीजलैः ।
परिपूर्णं देवगणैः सेवितं मनसः प्रियम् ॥ २० ॥

फिर कल्किजी मुनियों करके सेवित, गंगाजलसे परिपूर्ण देवताओंकरके सेवित अन्तःकरणमें हर्ष करनेवाले हिमालय पर्वतपर ॥ २० ॥

गत्वा विष्णुः सुरगणैर्वृतश्चारुचतुर्भुजः ।
उषित्वा जाह्नवीतीरे सस्मारात्मानमात्मना ॥ २१ ॥

जाय देवताओंके साथ बैठ चतुर्भुज विष्णुरूप धारण कर अपनेको स्मरण करने लगे ॥ २१ ॥

पूर्णज्योतिर्मयः साक्षी परमात्मा पुरातनः ।
बभौ सूर्यसहस्राणां तेजोराशिसमद्युतिः ॥ २२ ॥

तिस काल सहस्रसूर्यके समान उनका तेज प्रकाशित होने लगा । वह पूर्ण ज्योतिर्मय साक्षिस्वरूप सनातन परमात्मा दीप्तिमान् होने लगा ॥२२॥

शंखचक्रगदापद्मशार्ङ्गाद्यैः समभिष्टुतः ।
नानालङ्करणानां च समलङ्करणाकृतिः ॥ २३ ॥

उनका आकार अनेक प्रकारके अलंकारोंका अलंकाररूप हो गया । वह शंख, चक्र, गदा, पद्म, शार्ङ्गादि करके उपासना किये जाने लगे ॥ २३ ॥

ववृषुस्तं सुराः पुष्पैः कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ।
सुगन्धिकुसुमासारैर्देवदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ २४ ॥

उनके हृदयमें कौस्तुभमणि शोभायमान होने लगी, देवता लोग उनके ऊपर सुगंधित फूल वर्षाने लगे, चारों ओर देवताओंके नगाडे बजने लगे॥२४॥

तुष्टुवुर्मुमुहुः सर्वे लोकाः सस्थाणुजंगमाः ।
दृष्ट्वा रूपमरूपस्य निर्याणे वैष्णवं पदम् ॥ २५ ॥

जब कल्किजीने विष्णुपदमें प्रवेश किया तब उन अरूप विष्णुजीका

रूप दर्शन करके स्थावर जंगम सब कोई मोहित हुए और स्तोत्र करने लगे ॥ २५ ॥

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं पत्युः कल्केर्महात्मनः ।
रमा पद्मा च दहनं प्रविश्य तमवापतुः ॥ २६ ॥

अपने स्वामी महात्मा कल्किजीका ऐसा बडे अचरजका रूप देखकर रमा और पद्माने अग्निमें प्रवेश करके उनको पाया ॥ २६ ॥

धर्मः कृतयुगं कल्केराज्ञया पृथिवीतले ।
निःसपत्नौ सुसुखिनौ भूलोकं चेरतुश्चिरम् ॥ २७ ॥

कल्किजीकी आज्ञाके अनुसार धर्म और सत्ययुग सपत्नरहित हो परम सुखसे चिरकालतक पृथ्वीमें विचरण करने लगे ॥ २७ ॥

देवापिश्च मरुः कामं कल्केरादेशकारिणौ ।
प्रजाः सम्पालयन्तौ तु भुवं जुगुपतुः प्रभू ॥ २८ ॥

प्रभु देवापि और मरुनामक दो राजा कल्किजीकी आज्ञाके अनुसार प्रजापालन करके भूमण्डलकी रक्षा करने लगे ॥ २८ ॥

विशाखयूपभूपालः कल्केर्निर्याणमीदृशम् ।
श्रुत्वा स्वपुत्रं विषये नृपं कृत्वा गतो वनम् ॥ २९ ॥

विशाखयूप राजा कल्किजीका इस प्रकारसे जाना सुनकर अपने पुत्रको राज्य दे वनको चलागया ॥ २९ ॥

अन्ये नृपतयो ये च कल्केर्विरहकर्षिताः ।
तं ध्यायन्तो जपन्तश्च विरक्ताः स्युर्नृपासने ॥ ३० ॥

औरभी जो राजालोग कल्किजीके विरहमें कातर हुए थे, वह राज-सिंहासनसे विरक्त हो केवल कल्किजीका नाम जपते हुए उनकीही मूर्तिका ध्यान करने लगे ॥ ३० ॥

इति कल्केरनन्तस्य कथां भुवनपावनीम् ।
कथयित्वा शुकः प्रायान्नरनारायणाश्रमम् ॥ ३१ ॥

इस प्रकार अनन्त कल्किजीके जगत्पवित्रकारी वृत्तान्तको वर्णन करके शुकदेवजी नरनारायणाश्रममें चलेगये ॥ ३१ ॥

मार्कण्डेयादयो ये च मुनयः प्रशमायनाः ।
श्रुत्वाऽनुभावं कल्केस्ते तं ध्यायन्तो जगुर्यशः ॥ ३२ ॥

शान्तिगुणका अवलम्बन करनेवाले मार्कण्डेयादि ऋषिगण कल्किजीका माहात्म्य सुनकर उनका ध्यान करके उनका यश गाने लगे ॥ ३२ ॥

यस्यानुशासनाद्भूमौ नाधर्मिष्ठाः प्रजाजनाः ।
नाल्पायुषो दरिद्राश्च न पाखण्डा न हैतुकाः ॥ ३३ ॥

जिन कल्किजीके शासनकालमें पृथ्वीके बीच कोई प्रजाही अधार्मिक, अल्पायु, दरिद्र, पाखण्ड और कपटाचारी न रही ॥ ३३ ॥

नाधयो व्याधयः क्लेशा देवभूतात्मसम्भवाः ।
निर्मत्सराः सदानन्दा बभूवुर्जीवजातयः ॥ ३४ ॥

सबही जीव आधिव्याधिशून्य, क्लेशरहित, मत्सरताहीन हो देवताओंके समान सदानंदमय हुए थे ॥ ३४ ॥

इत्येतत्कथितं कल्केरवतारं महोदयम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं परम् ॥ ३५ ॥

यह उन्हीं महोदय कल्किजीके अवतारकी कथा कही । इसके श्रवण करनेसे धन यश और आयुकी वृद्धि होकर परम मंगल होता है और अन्तमें स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥ ३५ ॥

शोकसन्तापपापघ्नं कलिव्याकुलनाशनम् ।
सुखदं मोक्षदं लोके वांछितार्थफलप्रदम् ॥ ३६ ॥

विशेष करके इसके श्रवण करनेसे पाप, शोक व सन्ताप दूर हो जाता है । कलिकालसे उत्पन्न हुए उद्वेगका नाश हो जाता है । सुख मिलता है, मोक्षप्राप्ति होती है और अभीष्टफलभी मिलजाते हैं ॥ ३६ ॥

तावच्छास्त्रप्रदीपानां प्रकाशो भुवि रोचते ।
भाति भानुः पुराणाख्यो यावल्लोकेऽति कामधुक् ॥ ३७ ॥

जबतक लोकमें इच्छित फल देनेवाले पुराणरूप सूर्यका उदय नहीं होता, तबतकही इस पृथ्वीपर और और शास्त्ररूप दीपकके उजालेका प्रकाश हुआ करता है ॥ ३७ ॥

श्रुत्वैतद्भृगुवंशजो मुनिगणैः साकं सहर्षी वशी
ज्ञात्वा सूतममेयबोधविदितं श्रीलोमहर्षात्मजम्।
श्रीकल्केरवतारवाक्यममलं भक्तिप्रदं श्रीहरेः
शुश्रूषुः पुनराह साधुवचसा गङ्गास्तवं सत्कृतः॥ ३८ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कल्किनिर्णायो नामोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥

महर्षिशौनकने भृगुवंशमें जन्म लिया था और अतिशय जितेन्द्रिय थे, वह और इकट्ठे हुए महर्षिलोग इस परम प्रीतिकारी भक्तिरसके आश्रय भगवान् श्रीहरिके अवतारका वृत्तान्त सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होते भये और भलीभांति जानते हुए कि, लोमहर्षणके पुत्र सूत इस प्रकार ज्ञानगौरवमें प्रसिद्ध हैं। महर्षिके हृदयमें पुनर्वार नारायणजीकी कथाके श्रवण करनेका अभिलाष उत्पन्न हुआ; उन्होंने सूतजीसे कल्किजीके पढेहुए गंगास्तोत्रको पूछा ॥ ३८ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे बलदेव०भाषा०कल्किनिर्याणो नाम ऊनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥

तृतीयांशः।

विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

शौनक उ०–हे सूत सर्वधर्मज्ञ यत्त्वया कथितं पुरा।
गङ्गां स्तुत्वा समायाता मुनयः कल्किसन्निधिम्॥ १ ॥

शौनक बोले–हे सूत ! तुम सब धर्मोंके जाननेवाले हो, तुमने पहले कहा है कि, मुनिजन गंगाजीकी स्तुति करके कल्किजीके निकट गमन करते हुए ॥ १ ॥

स्तवं तं वद गङ्गायाः सर्वपापप्रणाशनम् ।
मोक्षदं शुभदं भक्त्या शृण्वतां पठतामिह ॥ २ ॥

उस गंगास्तोत्रको तुम कहो । उसको भक्तिपूर्वक श्रवण करनेसे या पाठ करनेसे कल्याणकी प्राप्ति होती है, मोक्ष मिलता है और समस्त पापोंके ढेर क्षयको प्राप्त होजाते हैं ॥ २ ॥

सूत उवाच–शृणुध्वमृषयः सर्वे गङ्गास्तवमनुत्तमम् ।
शोकमोहहरं पुंसामृषिभिः परिकीर्तितम् ॥ ३ ॥

उग्रश्रवा बोले–हे मुनिगण ! शोकमोहके नाश करनेवाले ऋषियोंके कहे हुए परमश्रेष्ठ गंगास्तोत्रको कहता हूं श्रवण करो ॥ ३ ॥

ऋषय ऊचुः–इयं सुरतरङ्गिणी भवनवारिधेस्तारिणी
स्तुता हरिपदाम्बुजादुपगता जगत्संसदः ।
सुमेरुशिखरामरप्रियजला मलक्षालनी
प्रसन्नवदना शुभा भवभयस्य विद्राविणी ॥ ४ ॥

ऋषिलोग बोले–यह देवनदी संसाररूप सागरसे (जीवजातिका) उद्धार करती है, यह देवनदी भगवान् कमलापति नारायणजीके चरणकमलसे उत्पन्न होकर पृथ्वीपर प्रवाहित हुई है, इनके प्रसादसे भवभय दूर होकर पापकी कीचड धुल जाती है । वह कल्याणी प्रसन्नमूर्ति भगवती भागीरथीजी सुमेरुके शिखरपरभी वर्तमान है, उस जलके (स्पर्श) से देवताओंके हृदयमेंभी प्रीतिरसका उदय होता है । (संसारके) समस्त जीव गंगाजीकी स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

भगीरथमथानुगा सुरकरीन्द्रदर्पापहा
महेशमुकुटप्रभा गिरिशिरःपताका सिता ।
सुरासुरनरोरगैरजभवाच्युतैः संस्तुता
विमुक्तिफलशालिनी कलुषनाशिनी राजते ॥ ५ ॥

यह देवीजी भगीरथके पीछे पृथ्वीधाममें आईथीं । इन देवीजीने

ऐरावतका दर्प चूर्ण किया था। गंगाजी महादेवजीके मुकुटकी प्रभारूपिणी है, हिमालयके शिखरकी मानो श्वेत पताका है। ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी, देव, दानव, मनुष्य, सर्पादि इन महादेवीजीकी स्तुतिको गाया करते हैं। गंगाजी मुक्तिपदको देती है, (संसारकी) पापराशिको दूर करती है॥५॥

पितामहकमण्डलुप्रभवमुक्तिबीजालता
श्रुतिस्मृतिगणस्तुता द्विजकुलालवालावृता ।
सुमेरुशिखराभिदा निपतिता त्रिलोकावृता
सुधर्मफलशालिनी सुखपलाशिनी राजते ॥ ६ ॥

ब्रह्माजीके कमण्डलुसे इस गंगारूपी लताकी उत्पत्ति हुई थी। उस लताका बीज मुक्ति है और ब्राह्मणगण इस लताके आलवालरूप हैं। सुधर्मरूप फलवाली इस लतामें सुखरूप पत्रावली शोभायमान होरही है। यह लता सुमेरुपर्वतके शिखरको भेद करके उदित हुई है और त्रिलोकीमें व्याप्त हो गई है। श्रुति व स्मृति आदि धर्मपुस्तकमें इनकी स्तुति गाई गई है ॥ ६ ॥

चरद्विहगमालिनी सगरवंशमुक्तिप्रदा
मुनींद्रवरनन्दिनी दिवि मता च मन्दाकिनी ।
सदा दुरितनाशिनी विमलवारिसंदर्शन-
प्रणामगुणकीर्त्तनादिषु जगत्सु संराजते ॥ ७ ॥

इनके निर्मल जलका दर्शन करनेसे, इनको प्रणाम करनेसे, इनके गुणकीर्त्तन करनेसे जगत्के सब अमंगलोंका क्षय होता है। इन्हीसे सगरवंशवालोंकी मुक्ति हुईथी। महर्षि जह्नुकी यह पुत्री है, देवलोकमें यह मन्दाकिनी नामसे प्रसिद्ध है ॥ ७ ॥

महाभिधसुतांगना हिमगिरीशकूटस्तनी
सफेनजलहासिनी सितमरालसंचारिणी ।
चलल्लहरिसत्करा वरसरोजमालाधर
रसोल्लसितगामिनी जलधिकामिनी राजते ॥ ८ ॥

जो शान्तनु राजाकी रानी हुई थीं, हिमालयके शिखर जिनके स्तनरूप हैं, फेनसमूहसे शोभायमान जल जिसका हास्यस्वरूप है, श्वेतवर्णके हंसगण जिनकी गतिके रूप हैं, समस्त तरंगे जिनके मानो हाथ हैं, प्रफुल्ल (खिले हुए) कमलोंकी पांति मानो जिनकी मालारूप है । वह रसकरके हर्षित हुई चालसे समुद्रकी कामना करके चली जारही हैं ॥ ८ ॥

क्वचित्कलकलस्वना क्वचिदधीरयादोगणा
क्वचिन्मुनिगणैः स्तुता क्वचिदनन्तसंपूजिता ।
क्वचिद्रविकरोज्ज्वला क्वचिदुदग्रपाताकुला
क्वचिज्जनविगाहिता जयति भीष्ममाता सती ॥ ९ ॥

किसी स्थानमें मुनिलोग स्तुति करते हैं, किसी स्थानमें अनंत देवता पूजा करते हैं, किसी स्थानमें कल २ शब्द होता है, किसी स्थानमें घोर उग्र नाके आदि जलजीव विचरण कररहे हैं, किसी स्थानमें सूर्य भगवान्की किरणोंकरके प्रकाशमान होरही हैं, किसी स्थानमें भयंकर नाद करता हुआ जल गिररहा है, किसी स्थानमें जनगण स्नान करते हैं, ऐसी भीष्मजीकी माता सती भागीरथीजीकी जय हो ॥ ९ ॥

स एव कुशलो जनः प्रणमतीह भागीरथीं
स एव तपसां निधिर्जपति जाह्नवीमादरात् ।
स एव पुरुषोत्तमः स्मरति साधु मन्दाकिनीं
स एव विजयी प्रभुः सुरतरंगिणीं सेवते ॥ १० ॥

जो गंगा देवीके (चरणोंमें) प्रणाम करता है, वही अच्छा चतुर है । आदरके साथ जो गंगाजीका नाम जपता है, यथार्थमें वही तपस्वी है । जो मनुष्य गंगाजीके नामका स्मरण करता है, वही सब पुरुषोंमें श्रेष्ठ है । जो पुरुष इस देवनदीकी सेवा करसकता है, वही निःसन्देह विजयी और सबका स्वामी है ॥ १० ॥

तवामलजलाचितं खगशृगालमीनक्षतं
चलल्लहरिलोलितं रुचिरतीरजम्बालितम् ।

कदा निजवपुर्मुदा सुरनरोरगैः संस्तुतो-
ऽप्यहं त्रिपथगामिनि प्रियमतीव पश्याम्यहो ॥ ११ ॥

हे त्रिपथगामिनि ! हे भगवति ! कब तुम्हारे निर्मलजलमें हमारा (मृतक) देह भासमान होगा ? पक्षी, श्रृगालादि (मांसलोलुप जीव) इस मृतक शरीरको छिन्न भिन्न करेंगे, चंचल तरंगमालामें डोलता हुआ और किनारेके सुन्दर शिवारसे यह शरीर कब सजेगा कहो ? तब मैं (तुम्हारे जल स्पर्श करनेके बलसे) सुरलोकको चला जाऊंगा। देवता, मनुष्य और सर्पगण मेरी स्तुति पढेंगे, मैं कब वहांसे (स्वर्गसे) अपनी मृतक देहकी ऐसी दशा देखूंगा ? ॥ ११ ॥

त्वत्तीरे वसतिं तवामलजलस्नानं तव प्रेक्षणं
त्वन्नामस्मरणं तवोदयकथासंलापनं पावनम् ।
गंगे मे तव सेवनैकनिपुणोऽप्यानन्दितश्चादृतः
स्तुत्वा त्वद्गतपातको भुवि कदा शान्तश्चरिष्याम्यहम् ॥१२॥

हे भागीरथि ! कब तुम्हारे किनारेपर वास करके तुम्हारे पवित्र जलमें स्नान करके उसको निहारूंगा, तुम्हारा नामस्मरण करूंगा, तुम्हारे पृथ्वीमें आनेका शुद्ध उपाख्यान कीर्त्तन करूंगा, हे देवि ! केवल तुम्हारी सेवा करनेसेही मेरे हृदयमें (अनदेखे) प्रीतिरसका उदय होगा, लोग मेरा आदर करेंगे, मेरे किये पापोंका ढेर निःसन्देह दूर हो जायगा, तब मैं शान्तचित्तसे पृथ्वीपर विचरण करूंगा ॥ १२ ॥

इत्येतदृषिभिः प्रोक्तं गंगास्तवमनुत्तमम् ।
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं पठनाच्छ्रवणादपि ॥ १३ ॥

इस परम मनोहर गंगास्तोत्रको मुनिलोगोंने पाठ कियाथा। इसके पढने अथवा श्रवण करनेसे स्वर्ग व यश मिलता है और परमायु बढती है ॥१३॥

सर्वपापहरं पुंसां बलमायुर्विवर्द्धनम् ।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने गंगासान्निध्यता भवेत् ॥ १४ ॥

प्रातःकालके समय, मध्याह्न कालके समय वा सन्ध्याके समय (इस स्तोत्रके पढने या श्रवण करनेसे) सदा गंगाजीसे निकटता होती है, सब पाप क्षय होजाते हैं और बल बढता है व आयुभी बढती है ॥ १४ ॥

इत्येतद्भार्गवाख्यानं शुकदेवान्मया श्रुतम् ।
पठितं श्रावितं चात्र पुण्यं धन्यं यशस्करम् ॥ १५ ॥

मैंने शुकदेवजीसे इस भार्गवाख्यानको सुना था, इसके पढने या श्रवण करनेसे पुण्य होता है, धन मिलता है, यश बढता है ॥ १५ ॥

अवतारं महाविष्णोः कल्केः परममद्भुतम् ।
पठतां शृण्वतां भक्त्या सर्वाशुभविनाशनम् ॥ १६ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे गंगास्तवो नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

जो लोग भक्तिके सहित भगवान् विष्णुजीके परम विस्मयकारी कल्किरूप धारण करनेके उपाख्यानको श्रवण करते अथवा पढते हैं उनको सर्व प्रकारके अमंगल दूर होजाते हैं ॥ १६ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे बलदेवप्रासादमिश्रकृतभाषाटीकायां गंगास्तवो नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

तृतीयांशः ।

एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

अत्रापि शुकसंवादो मार्कण्डेयेन धीमता ।
अधर्मवंशकथनं कलेर्विवरणं ततः ॥ १ ॥

उग्रश्रवाजी बोले–पहले तो इस कल्किपुराणमें बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीके साथ (१) शुकका संवाद, फिर अधर्मके वंशका कीर्त्तनकथन फिर कल्किजीके वृत्तान्तका वर्णन लिखागया है ॥ १ ॥

---

(१) श्रीशुकदेवजीने महर्षिकृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीके औरससे जन्म लिया था। श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि, यह माताके गर्भसे उत्पन्न होतेही तप करनेके लिये वनमें चले–

देवानां ब्रह्मसदनप्रयाणं गोभुवा सह ।
ब्रह्मणो वचनाद्विष्णोर्जन्म विष्णुयशोगृहे ॥ २ ॥

गोरूपधारी पृथ्वीके साथ देवताओंका ब्रह्मलोकमें जाना फिर ब्रह्माजीके वाक्यानुसार विष्णुयशाके गृहमें विष्णुजीके जन्मकी कथा ॥ २ ॥

सुमत्यां स्वांशकैर्भ्रातृचतुर्भिः शम्भले पुरे ।
पितुः पुत्रेण संवादस्तथोपनयनं हरेः ॥ ३ ॥

शम्भलग्राममें सुमतिके गर्भसे विष्णुजीके अंशद्वारा चार भ्राताओंकी उत्पत्ति फिर पितापुत्रका संवाद, कल्किजीका यज्ञोपवीत ॥ ३ ॥

पुत्रेण सह संवासो वेदाध्ययनमुत्तमम् ।
शस्त्रास्त्राणां परिज्ञानं शिवसंदर्शनं ततः ॥ ४ ॥

पितापुत्रका साथ रहना, कल्किजीका वेद पढना, तदुपरान्त कल्किजीका अस्त्र शस्त्र विद्याका सीखना, शिवजीका दर्शन ॥ ४ ॥

कल्केः स्तवं शिवपुरो वरलाभः शुकापनम् ।
शम्भलागमनं चक्रे ज्ञातिभ्यो वरकीर्त्तनम् ॥ ५ ॥

कल्किजीका कियाहुआ शिवस्तोत्र, महादेवजीसे कल्किजीका वर पाना, शुककी प्राप्ति, फिर कल्किजीका शम्भलग्राममें लौटआना, जातिवालोंको महादेवजीसे वर पानेका वृत्तान्त सुनाना ॥ ५ ॥

विशाखयूपभूपेन निजसर्वात्मवर्णनम् ।
महाभाग्याद्ब्राह्मणानां शुकस्यागमनं ततः ॥ ६ ॥

—गये थे। शुकदेवजी परम ज्ञानी और योगी थे इन्होंनेही राजा परीक्षित्को श्रीमद्भागवत सुनाई थी। कूर्मपुराणमें कहा है:—

द्वैपायनाच्छुको जज्ञे भगवानेव शङ्करः। अंशेनैवावतीर्य्योर्व्यां संप्राप परमं पदम् ॥
शुकस्याप्यभवन् पुत्राः पञ्चात्यन्ततपस्विनः । भूरिश्रवाः प्रभुः शंभुः कृष्णो गौरश्च पञ्चमः ॥ कन्याकीर्तिमती चैव योगमाता धृतव्रता। (कूर्मपुराण)

श्रीशुकदेवजीके विषयमें अनेक मुनियोंके अनेक मत देखे जाते हैं । एक भागवतमें ही मत भेद दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त महाभारतके हरिवंश पर्वमें और अग्निपुराणके प्रजापति सर्ग नामक अध्यायमें शुकदेवजीका वृत्तान्त लिखा है, विस्तारभयसे उसको नहीं लिखा॥

विशाखयूपराजाके कहनेसे अपने स्वरूप और ब्राह्मणोंके माहात्म्यका वर्णन करना तदुपरान्त शुकका आना ॥ ६ ॥

कल्किना शुकसंवादः सिंहलाख्यानमुत्तमम् ।
शिवदत्तवरा पद्मा तस्या भूपस्वयंवरे ॥ ७ ॥

कल्किजीके साथ शुकका कथोपकथन, शुककृत सिंहलका वृत्तान्त वर्णन, महादेवजीके दिये हुए वरके अनुसार पद्माके स्वयंवरस्थलमें ॥ ७ ॥

दर्शनाद्भूपसंघानां स्त्रीभावपरिकीर्त्तनम् ।
तस्या विषादः कल्केस्तु विवाहार्थं समुद्यमः ॥ ८ ॥

पद्माका दर्शन करतेही राजाओंका स्त्रीभावको प्राप्त होजाना, पद्माके विषादका वर्णन, विवाहके लिये कल्किजीका उद्योग करना ॥ ८ ॥

शुकप्रस्थापनं दौत्ये तया तस्यापि दर्शनम् ।
शुकपद्मापरिचयः श्रीविष्णोः पूजनादिकम् ॥ ९ ॥

फिर शुकका दूतकार्यमें भेजाजाना, पद्माका शुकके दर्शन पाना, शुक और पद्माका परस्पर परिचय, फिर श्रीविष्णुजीकी पूजा आदिका कहना॥९॥

पादादिदेहध्यानं च केशान्तं परिवर्णितम् ।
शुकभूषणदानं च पुनः शुकसमागमः ॥ १० ॥

चरणसे लेकर केशतक विष्णुजीके ध्यानका वर्णन करना, फिर पद्माका शुकको भूषण देना, अनन्तर कल्किजीके साथ फिर शुकका समागम होना ॥ १० ॥

कल्केः पद्माविवाहार्थं गमनं दर्शनं तयोः ।
जलक्रीडाप्रसङ्गेन विवाहस्तदनन्तरम् ॥ ११ ॥

पद्माके साथ विवाह करनेके लिये कल्किजीकी यात्रा, जलक्रीडाके प्रसंगसे कल्किजीके साथ पद्माकी जान पहिचान, फिर विवाहका होना ॥ ११ ॥

पुंस्त्वप्राप्तिश्च भूपानां कल्केर्दर्शनमात्रतः ।
अनन्तागमनं राज्ञा संवादस्तेन संसदि ॥ १२ ॥

कल्किजीका दर्शन पातेही राजालोगोंका पुरुषभावको प्राप्त होजाना, फिर अनन्तमुनिका आना, सभाके स्थानमें राजाओंके साथ अनन्तका संवाद ॥ १२ ॥

षण्ढत्वादात्मनो जन्म कर्म चात्र शिवस्तवः ।
मृते पितरि तद्विष्णोः क्षेत्रे मायाप्रदर्शनम् ॥ १३ ॥

अनन्तमुनिका षण्ढरूपसे जन्मकथन, शिवस्तोत्र, तदुपरान्त अनन्तके पिताकी मृत्यु होनेके पीछे विष्णुक्षेत्रमें मायाका दर्शन ॥ १३ ॥

अत्राख्यानमनन्तस्य ज्ञानवैराग्यवैभवम् ।
राज्ञां प्रयाणं कल्केश्च पद्मया सह शम्भले ॥ १४ ॥

अनन्तका आख्यान, अनन्तका ज्ञान, वैराग्य और वैभव, राजाओंका जाना फिर पद्माके साथ कल्किजीका शम्भलको जाना ॥ १४ ॥

विश्वकर्मविधानं च वसतिः पद्मया सह ।
ज्ञातिभ्रातृसुहृत्पुत्रैः सेनाभिर्बुद्धनिग्रहः ॥ १५ ॥

फिर विश्वकर्माके द्वारा शम्भलपुरीका बनाया जाना फिर पद्माके साथ, जातिवालोंके साथ, भ्राताओंके साथ, इष्टमित्रोंके साथ, तिनके पुत्रोंके साथ और सेनाके साथ कल्किजीका विश्वकर्माकी बनाई पुरीमें वास करना फिर बौद्धोंका दमन ॥ १५ ॥

कथितश्चात्र तेषां च स्त्रीणां संयोधनाश्रयः ।
ततोऽत्र वालखिल्यानां मुनीनां स्वनिवेदनम् ॥ १६ ॥

बौद्धोंकी स्त्रियोंका लडनेके लिये आना फिर वालखिल्यनामक मुनियोंका आना और अपना वृत्तांत कहना ॥ १६ ॥

सपुत्रायाः कुथोदर्या वधश्चात्र प्रकीर्त्तितः ।
हरिद्वारगतस्यापि कल्केर्मुनिसमागमः ॥ १७ ॥

पुत्रके सहित कुथोदरी नामवाली राक्षसीका माराजाना, हरिद्वारमें गये हुए कल्किजीके साथ मुनियोंका समागम ॥ १७ ॥

सूर्यवंशस्य कथनं सोमस्य च विधानतः ।
श्रीरामचरितं चारु सूर्यवंशानुवर्णने ॥ १८ ॥

फिर सूर्यवंशका वर्णन, चन्द्रवंशका वर्णन, सूर्यवंशके प्रसंगमें श्रीरामचंद्रजीके चरित्रका वर्णन ॥ १८ ॥

देवापेश्च मरोः संगो युद्धायात्र प्रकीर्तितः ।
महाघोरवने कोकविकोकविनिपातनम् ॥ १९ ॥
भल्लाटगमनं तत्र शय्याकर्णादिभिः सह ।
युद्धं शशिध्वजेनात्र सुशान्ताभक्तिकीर्त्तनम् ॥ २० ॥

संग्राम करनेके लिये मरु और देवापिका आना, अनन्तर महाघोर कोक विकोकका वध, कल्किजीका भल्लाटनगरमें जाना, शय्याकर्णादिके साथ संग्राम, राजा शशिध्वजके साथ कल्किजीका युद्ध, सुशान्ताकी भक्तिका कीर्त्तन ॥ १९ ॥ २० ॥

युद्धे कल्केरानयनं धर्मस्य च कृतस्य च ।
सुशान्तायाः स्तवस्तत्र रमोद्वाहस्तु कल्किना ॥ २१ ॥

अनन्तर संग्रामभूमिसे कल्किजीका और धर्म व सत्ययुगका आना, सुशांताका कियाहुआ कल्किस्तोत्र, उसी स्थानमें कल्किजीके साथ रमाका विवाह होना ॥ २१ ॥

सभायां पूर्वकथनं निजगृध्रत्वकारणम् ।
मोक्षः शशिध्वजस्यात्र भक्तिप्रार्थयितुर्विभोः ॥ २२ ॥

सभामें राजा शशिध्वजका पूर्ववृत्तान्तकथन, अपने गिद्धपनका कारण, विभु कल्किजीसे भक्तिकी प्रार्थना करनेवाले शशिध्वजका मोक्ष पाना॥ २२॥

विषकन्यामोचनं च नृपाणामभिषेचनम् ।
मायास्तवः शम्भलेषु नानायज्ञादिसाधनम् ॥ २३ ॥

तदुपरान्त विषकन्याका उद्धार, राजाओंका अभिषेक फिर मायास्तव, तदनन्तर शम्भलग्राममें बहुतसे यज्ञोंका अनुष्ठान ॥ २३ ॥

नारदाद्विष्णुयशसो मोक्षश्चात्र प्रकीर्तितः ।
कृतधर्मप्रवृत्तिश्च रुक्मिणीव्रतकीर्त्तनम् ॥ २४ ॥

फिर नारदजीसे विष्णुयशाकी मोक्ष, सत्ययुगके धर्मका स्थापित होना, रुक्मिणीव्रतका वर्णन ॥ २४ ॥

ततो विहारः कल्केश्च पुत्रपौत्रादिसम्भवः ।
कथितो देवगन्धर्वगणागमनमत्र हि ॥ २५ ॥

अनन्तर कल्किजीका विहार, कल्किजीके पुत्र पौत्रादिकोंकी उत्पत्ति फिर शम्भलग्राममें देवता व गन्धर्वोंका आना ॥ २५ ॥

ततो वैकुण्ठगमनं विष्णोः कल्केरिहोदितम् ।
शुकप्रस्थानमुचितं कथयित्वा कथाः शुभाः ॥ २६ ॥

तदुपरान्त विष्णु कल्किजीका वैकुण्ठमें जाना कहागया है । फिर इस मधुर कथाको कहकर शुकदेवजीका प्रस्थान ॥ २६ ॥

गंगास्तोत्रमिह प्रोक्तं पुराणे मुनिसंमतम् ।
जगतामानन्दकरं पुराणं पंचलक्षणम् ॥ २७ ॥

और पश्चात् इस पुराणमें मुनियोंका कहाहुआ गंगास्तोत्र कहा है । यह कल्किपुराण पंचलक्षण[१] युक्त है, यह जगत्को आनंदसंदोहका देनेवाला है२७

संकल्पसिद्धिदं श्लोकैः षट्सहस्रं शताधिकम् ।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वानां सारं श्रुतिमनोहरम् ॥ २८ ॥

जो लोग कलिकलुषसे पूर्ण हैं इसके श्रवण करनेसे उनकोभी सिद्धि प्राप्त होजाती है, इस पुराणमें छः हजार एक सौ श्लोक हैं, यह सर्व शास्त्रार्थके तत्त्वका सार है, इसके सुनतेही लोगोंका मन हरण होजाता है ॥ २८ ॥

चतुर्वर्गप्रदं कल्किपुराणं परिकीर्तितम् ।
प्रलयान्ते हरिमुखान्निःसृतं लोकविस्तृतम् ॥ २९ ॥

१-शास्त्रमें पुराणके पांच लक्षण कहे हैं । यथाः—
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंश्यानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ॥
सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंश्यानुचरित, पुराणके यह पांच लक्षण हैं। सर्ग-सृष्टि । प्रतिसर्ग-प्रलय । वंश-सूर्य चंद्रादि वंशका वर्णन। मन्वन्तर-मनु लोगोंका अधिकार। वंश्यानु-चरित-अनेक वंशोंमें जिन लोगोंने जन्म लिया है, उनके चारित्रका वर्णन ।

कहा है कि, इस कल्किपुराणसे चतुर्वर्ग फल प्राप्त हो जाते हैं। प्रलयके अंतमें यह नारायणजीके मुखसे निकलकर जगत्‌में विस्तारित हुआ है॥ २९॥

अहो व्यासेन कथितं द्विजरूपेण भूतले ।
विष्णोः कल्केर्भगवतः प्रभावं परमाद्भुतम् ॥ ३० ॥

भगवान् वेदव्यासजीने ब्राह्मणरूपसे पृथ्वीपर अवतार ले इस पुराणको कहा है। इसमें विष्णुरूप भगवान् कल्किजीके परम अद्भुत प्रभावका वर्णन हुआ है॥

ये भक्त्याऽत्र पुराणसारममलं श्रीविष्णुभावाप्लुतं
शृण्वन्तीह वदन्ति साधुसदसि क्षेत्रे सुतीर्थाश्रमे ।
दत्त्वा गां तुरगं गजं गजवरं स्वर्णं द्विजायादरात्
वस्त्रालङ्करणैः प्रपूज्य विधिवन्मुक्तास्त एवोत्तमाः ॥ ३१ ॥

जो लोग साधु समाजमें, पुण्यक्षेत्रमें, पुण्य तीर्थमें और महर्षि आदिके आश्रममें वस्त्राभूषण आदिसे ब्राह्मणोंकी पूजा कर आदरसहित गौ, अश्व, हाथी, सुवर्ण आदि (तिनको) देकर भक्तिके साथ विष्णुभावपूर्ण, सब पुराणोंका सार इस शुद्ध कल्किपुराणको कीर्त्तन अथवा श्रवण करेंगे उन पुरुषश्रेष्ठ महापुरुषोंकी मुक्ति निश्चय है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३१ ॥

श्रुत्वा विधानं विधिवद्ब्राह्मणो वेदपारगः ।
क्षत्रियो भूपतिर्वैश्यो धनी शूद्रो महान् भवेत् ॥ ३२ ॥

विधिविधानसे कल्किपुराणको श्रवण करनेसे ब्राह्मणको वेदविषयमें निपुणता उत्पन्न होती है क्षत्रियको राज्यकी प्राप्ति और वैश्य धनवान् होता है, शूद्रभी महान् हो सकता है ॥ ३२ ॥

पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां पठनाच्छ्रवणादपि ॥ ३३ ॥

इस पुराणके पढने अथवा श्रवण करनेसे पुत्रका चाहनेवाला पुत्रको पाता है, धनका चाहनेवाला धनको लाभ करता है और विद्यार्थीको विद्याकी प्राप्ति होती है ॥ ३३ ॥

इत्येतत्पुण्यमाख्यानं लोमहर्षणजो मुनिः ।
श्रावयित्वा मुनीन् भक्त्या ययौ तीर्थाटनादृतः ॥ ३४ ॥

लोमहर्षणके पुत्र महर्षि सूत भक्तिके साथ शौनकादि मुनियोंको यह पुण्यावह पौराणिक उपाख्यान सुनाय तीर्थोंमें पर्यटन करनेको चलेगये ३४॥

शौनको मुनिभिः सार्द्धं सूतमामन्त्र्य धर्मवित् ।
पुण्यारण्ये हरिं ध्यात्वा ब्रह्म प्राप महर्षिभिः ॥ ३५ ॥

योगशास्त्रमें विशारद, धर्मके जाननेवाले महर्षि शौनकजी मुनियोंके सहित उग्रश्रवाजीका ध्यान करते हुए ब्रह्मको प्राप्त हुए ॥ ३५ ॥

लोमहर्षणजं सर्वपुराणज्ञं यतव्रतम् ।
व्यासशिष्यं मुनिवरं तं सूतं प्रणमाम्यहम् ॥ ३६ ॥

समस्त पुराणोंके जाननेवाले लोमहर्षणके पुत्र सूतजी व्यासजीके शिष्य थे; वह व्रतादि करते रहते थे; मैं उनको प्रणाम करताहूं ॥ ३६ ॥

आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।
इदमेव सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥ ३७ ॥

समस्त शास्त्रोंकी आलोचना करके,वारंवार विचार कर, यह (सर्ववादि-सम्मत) सिद्धान्त हुआ है कि, सदा श्रीनारायणजीका ध्यान करो ॥३७॥

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥ ३८ ॥

वेद,पुराण और रामायण समस्त शास्त्रोंके प्रारम्भ, मध्य और शेष भागमें सब जगहही श्रीनारायणजीके नाम और लीला गाये गये हैं ॥ ३८ ॥

सजलजलददेहो वातवेगैकवाहः
करधृतकरवालः सर्वलोकैकपालः ।
कलिकुलवनहन्ता सत्यधर्मप्रणेता
कलयतु कुशलं वः कल्किरूपः स भूपः ॥ ३९ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे विषयसूचीपुराणश्रवणफल-कथनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

जो पवनके समान वेगगामी घोडेपर सवार होते हैं, जिनके हाथमें कराल करवाल (तरवार) विराजमान है, जिन्होंने कलिकुलको ध्वंस किया है,

जिन्होंने (इस पृथ्वीपर) सत्यधर्मको स्थापित किया है, जो सजल बादलके समान कान्तिमान् हैं, वह समस्त लोकके स्वामी कल्किरूपी भगवान् श्रीनारायणजी तुमलोगोंका मंगल विधान करें ॥ ३९ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां विषयसूचीपुराणश्रवणफलकथनं नाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

समाप्तश्चायं तृतीयांशः ॥

लावनी–कलियुगही कलियुग छाय रह्यो दिशि चारों । अब कस न कल्कि अवतार वेगि प्रभु धारो ॥ द्विजवर कुलीन कारज कुलीनके करहीं। पढिबो तजि परदेसिनके पायन परहीं ॥ राक्षसन हेत अगनित नित गैयां मरहीं । ऋषि वंशज लखि २ लाज न कछु उर धरहीं ॥ ब्रह्मण्य देव गोपाल जो नाम तिहारो ॥ अब कस न कल्कि० ॥ १ ॥ धन गयो बिलायत 'अनुत्साह' बल खोयो । प्रगटे मत कुमत अनेक प्रेमपथ गोयो ॥ सब विधि निजता ताजि जन समाज सुख सोयो । मूरख न सुनहिं बुध वृंद बहुत दुख रोयो ॥ हे पतित उधारण ! भारत पतित उधारो ॥ अब कस न कल्कि० ॥२॥ कोउ निज नारिनको मारि मानसिक मारै । कोउ नर कहाय आचरण तियनके धारै ॥ कोउ मनके हित धन धर्महिं बेचे डारै । कोउ हिन्दू ह्वै तुरकीपर तनमन वारै ॥ कर लै तिच्छन तरवारि मलिच्छन मारो । अब कस न कल्कि० ॥ ३ ॥ ऋषि नाहिन जे सुखदायक पंथ चलै हैं । नहिं रहे वीर जो धर्म हेत कटिजैहैं ॥ कहँ बचे धनिक जो दुख दरिद्र हरि लै हैं । अब तो पापी पेटहिके दास सबै हैं ॥ परतापहि केवल तव पदपद्दुम सहारो ॥ अब कस न कल्कि अवतार वेगि प्रभु धारो ॥ ४ ॥

भाषाटीकासमेतं कल्किपुराणं सम्पूर्णम् ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास, "लक्ष्मीवेंकटेश्वर" स्टीम्–प्रेस, कल्याण–बंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्–प्रेस, खेतवाडी–बंबई.